लोक प्रशासन : एक परिचय

डॉ. के. सी. सामोता

Copyright © Dr. K. C. Samota
All Rights Reserved.

This book has been self-published with all reasonable efforts taken to make the material error-free by the author. No part of this book shall be used, reproduced in any manner whatsoever without written permission from the author, except in the case of brief quotations embodied in critical articles and reviews.

The Author of this book is solely responsible and liable for its content including but not limited to the views, representations, descriptions, statements, information, opinions and references ["Content"]. The Content of this book shall not constitute or be construed or deemed to reflect the opinion or expression of the Publisher or Editor. Neither the Publisher nor Editor endorse or approve the Content of this book or guarantee the reliability, accuracy or completeness of the Content published herein and do not make any representations or warranties of any kind, express or implied, including but not limited to the implied warranties of merchantability, fitness for a particular purpose. The Publisher and Editor shall not be liable whatsoever for any errors, omissions, whether such errors or omissions result from negligence, accident, or any other cause or claims for loss or damages of any kind, including without limitation, indirect or consequential loss or damage

arising out of use, inability to use, or about the reliability, accuracy or sufficiency of the information contained in this book.

Made with ❤️ on the Notion Press Platform
www.notionpress.com

"मेरे प्रिय विध्यार्थियों को समर्पित "

प्रस्तावना

भूमिका

1.
लोक प्रशासन : अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र

2.
लोक प्रशासन के नवीन आयाम

3.
विकास प्रशासन

4.
प्रशासन के सिद्धांत

5.
संगठन के सिद्धांत - I

6.

संगठन के सिद्धांत - II
7.
प्रशासनिक व्यवहार के सिद्धांत
8.
कार्मिक प्रशासन
9.
वित्तीय प्रशासन
10.
अभिशासन, सुशासन और ई-शासन की धारणा
11.
लोक उद्यमों का सांगठनिक स्वरूप

प्रस्तावना

लोक प्रशासन मानवीय जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय जीवन की उत्पत्ति के साथ ही जुड़ा हुआ है। शासन का स्वरूप भले ही राजतंत्र या कुलीन तंत्र अथवा लोकतंत्र या कोई अन्य प्रकार का रहा हो परंतु उसके साथ लोक प्रशासन हमेशा से विद्यमान रहा है। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि लोक प्रशासन उस दिन से प्रचलन में है जब से मानव सभ्यता विकसित हुई है और मानव पूरी दुनिया में एक संगठित समाज में रहने लगा है। हम वस्तु विनिमय प्रणाली, संगठित जीवन, उपयोगिताओं, समुदाय के प्रमुखों के रूप में लोक प्रशासन की झलक देख सकते हैं। लोक प्रशासन एक विषय के रूप में विकसित हुआ क्योंकि संगठित जीवन विकसित होने लगा और लोग गाँवों, कस्बों, शहरों, राज्यों और अब लोकतांत्रिक राष्ट्रों के रूप में बस गए हैं।

लोक प्रशासन परिभाषित करने के लिए एक जटिल अवधारणा है क्योंकि इसमें शामिल सरकार की सभी गतिविधियों को एक परिभाषा में शामिल करना संभव नहीं है। इसलिए, इसे केवल उन तरीकों और कार्यप्रणाली के रूप में परिभाषित करना आसान है जिसमें सरकारी नीतियों को सार्वजनिक

अधिकारियों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। लोक प्रशासन अधिकांश देशों में एक अनुशासन के साथ-साथ अभ्यास के रूप में राजनीति विज्ञान का एक हिस्सा था क्योंकि इसे सार्वजनिक नीतियों के कार्यान्वयन के रूप में माना जाता था। यह एक लंबा सफर तय कर चुका है और वर्तमान में, सार्वजनिक सेवाओं को वितरित करने के लिए नए तरीके खोजना प्रशासकों के लिए स्वाभाविक है। प्राचीनकाल में राजा ही प्रशासन का मुखिया हुआ करता था और वह अपनी प्रजा के लिए यथासंभव जनकल्याण का कार्य करता था। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में लिखा भी है कि राजा और प्रजा के बीच पिता व पुत्र जैसे सम्बन्ध होते है अर्थात् प्रजा के सुख-दुःख के साथ ही राजा का सुख व दुःख एवं वैभव जुडा होता था। आधुनिक राष्ट्र राज्य भी कल्याणकारी स्वरूप में सामान्य हित के अनेक कार्य अर्थात् राज्य मानव के जन्म के पहले कार्य करना आरम्भ करता है और उसकी मृत्यु के बाद तक कार्य करता रहता है। वह पालनागृह से शवदाहगृह तक के कार्य या गर्भवती महिलाओं के पंजीकरण या विवाह पंजीकरण से लेकर जन्म व मृत्यु प्रमाणपत्र बनाने तक के कार्य निष्पादित कर रहा हैं। इसीलिए इन राष्ट्र राज्यों को प्रशासी राज्य या प्रशासनिक राज्यों के नाम से भी जाना जाता है।

इस पुस्तक के लेखन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरें सहयोग के लिए मैं सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ। विशेष रूप से मेरे प्रिय विद्यार्थियों के प्रति जिनकी निरतंर प्रेरणा एवं उत्साह ने मुझे पुस्तक लेखन के लिए तैयार किया। इसी के साथ मैं नोशन प्रेस के प्रति जीवन भर कृतज्ञ रहूँगां जिनके सहयोग के बिना शायद मैं किसी भी तरह से इस पुस्तक का प्रकाशन करने में समर्थ नहीं हो पाता। सबके प्रयासों के बावजूद भी पुस्तक में यदि काई त्रुटि रहती है तो पाठकों के सुझाव सदैव आमंत्रित है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

"यह लेखक की पाँचवी महत्त्वपूर्ण रचना है। लेखक पिछले एक दशक से भी अधिक समय से अध्ययन एवं अध्यापन के क्षेत्र से जुड़े हुए है । इस समय आप राजस्थान विश्वविध्यालय में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत है। आप लम्बे समय से लेखन कार्य से सतत् रूप से संयोजित है। आप अकादमिक एवं सिविल दोनो ही सेवाओं में सफल रहे है लेकिन आपने अंतिम रूप से अकादमिक को चुना है। आपके अनेक शोध पत्र राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके है।"

मेरे द्वारा लिखित इस पुस्तक में मुख्य केन्द्र सामान्य स्तर के विद्यार्थियों को रखा गया है जो कि स्वयंपाठी के रूप में भी आसानी से इस विषय की व्यापक एवं गहन समझ को विकसित कर सकते है। पुस्तक की भाषा शैली को बहुत ही सरल और सुबोध स्वरूप दिया गया है। हिन्दी माध्यम में इस तरह की पुस्तके उपलब्ध नहीं है और जो उपलब्ध है उनको समसामयिक बदलाव के अनुरूप संशोधित और अद्यतन नहीं किया गया है। इसी के साथ लोक प्रशासन के उपागमों, अवधारणाओं एवं पद्धतियों के सन्दर्भ मे सामान्य लेखकों, शोधार्थियों और पाठकों के बीच विद्यमान भ्रान्तियों को प्रामाणिक पुस्तकों और विश्वसनीय तथ्यों का सहारा लेकर दूर करने का सार्थक प्रयास किया गया है। यह पुस्तक अन्य पूर्व रचनाओं से इस सन्दर्भ मे भी भिन्न है कि इसके अन्तर्गत विषय वस्तु को न तो जटिल स्वरूप दिया गया हैं और न ही निरर्थक विस्तार दिया गया हैं। यह पुस्तक विशेष रूप से

भारतीय विश्वविद्यालयों में एम. ए. और बी. ए. ऑनर्स के विद्यार्थियों के लिए तथा प्रतियोगी परीक्षाओं विशेषतः नेट, जे. आर. एफ. सेट, लोक सेवा आयोग की तैयारी कर रहे है प्रतिभागियों के लिए बहुत उपयोगी व सार्थक सिद्व होगी। इसी के साथ यह पुस्तक लगभग राजस्थान प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को भी शामिल करती है।

1

लोक प्रशासन : अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र

लोक प्रशासन मानवीय जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय जीवन की उत्पत्ति के साथ ही जुड़ा हुआ है। शासन का स्वरूप भले ही राजतंत्र या कुलीन तंत्र अथवा लोकतंत्र या कोई अन्य प्रकार का रहा हो परंतु उसके साथ लोक प्रशासन हमेशा से विद्यमान रहा है। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि लोक प्रशासन उस दिन से प्रचलन में है जब से मानव सभ्यता विकसित हुई है और मानव पूरी दुनिया में एक संगठित समाज में रहने लगा है। हम वस्तु विनिमय प्रणाली, संगठित जीवन, उपयोगिताओं, समुदाय के प्रमुखों के रूप में लोक प्रशासन की झलक देख सकते हैं। लोक प्रशासन एक विषय के रूप में विकसित हुआ क्योंकि संगठित जीवन विकसित होने लगा और लोग गाँवों, कस्बों, शहरों, राज्यों और अब लोकतांत्रिक राष्ट्रों के रूप में बस गए है।

लोक प्रशासन परिभाषित करने के लिए एक जटिल अवधारणा है क्योंकि इसमें शामिल सरकार की सभी गतिविधियों को एक परिभाषा में शामिल करना संभव नहीं है। इसलिए, इसे केवल उन

तरीकों और कार्यप्रणाली के रूप में परिभाषित करना आसान है जिसमें सरकारी नीतियों को सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। लोक प्रशासन अधिकांश देशों में एक अनुशासन के साथ-साथ अभ्यास के रूप में राजनीति विज्ञान का एक हिस्सा था क्योंकि इसे सार्वजनिक नीतियों के कार्यान्वयन के रूप में माना जाता था। यह एक लंबा सफर तय कर चुका है और वर्तमान में, सार्वजनिक सेवाओं को वितरित करने के लिए नए तरीके खोजना प्रशासकों के लिए स्वाभाविक है। प्राचीनकाल में राजा ही प्रशासन का मुखिया हुआ करता था और वह अपनी प्रजा के लिए यथासंभव जनकल्याण का कार्य करता था। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में लिखा भी है कि राजा और प्रजा के बीच पिता व पुत्र जैसे सम्बन्ध होते है अर्थात् प्रजा के सुख-दुःख के साथ ही राजा का सुख व दुःख एवं वैभव जुडा होता था। आधुनिक राष्ट्र राज्य भी कल्याणकारी स्वरूप में सामान्य हित के अनेक कार्य अर्थात् राज्य मानव के जन्म के पहले कार्य करना आरम्भ करता है और उसकी मृत्यु के बाद तक कार्य करता रहता है। वह पालनागृह से शवदाहगृह तक के कार्य या गर्भवती महिलाओं के पंजीकरण या विवाह पंजीकरण से लेकर जन्म व मृत्यु प्रमाणपत्र बनाने तक के कार्य निष्पादित कर रहा हैं। इसीलिए इन राष्ट्र राज्यों को प्रशासी राज्य या प्रशासनिक राज्यों के नाम से भी जाना जाता है।

लोक प्रशासन का सामान्य अर्थ होता है किसी सरकारी एजेंसी के द्वारा जनता के लिए प्रस्तुत की जाने वाली सेवा। लोक प्रशासन भी राज्य की तरह ही विकास की प्रक्रिया का परिणाम है जिसके संदर्भ में दो आधारों पर विचार किया जा सकता है। एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन और एक अध्ययन के विषय के रूप में या बौद्धिक अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन।

1. लोक प्रशासन एक गतिविधि या क्रिया के रूप में (As a form of Action) :

एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन, उतना ही पुराना है जितना

पुराना सामाजिक जीवन या नदी घाटी सभ्यताओं का जीवन। अतः एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन को हम प्राचीन नदी घाटी सभ्यताओं से रेखांकित कर सकते हैं जिनमें मिस्त्र या इजिप्ट की सभ्यता, चीन की सभ्यता, भारत की सभ्यता या सिन्धु घाटी या मोहनजोदडो व हडप्पा की नगरीय सभ्यता और मेसोपोटामिया या दजला फरात नदी घाटीयों की सभ्यता इत्यादि प्रमुख है। केंद्रीकृत नौकरशाहीनुमा प्रशासन की प्रणाली के रूप में मिस्त्र के द्वारा विकसित की गई प्रशासनिक व्यवस्था इसी क्रिया का प्रतीक है। चीन ही वह प्रथम देश है जहाँ पर लोक सेवकों की भर्ती प्रक्रिया का आयोजन करने के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं को पहली बार आरंभ किया गया। यह प्राचीन समय था जहाँ पर यूनानी नगर राज्य, गणराज्य और भारत के प्राचीन साम्राज्यों में प्रशासनिक व्यवस्था को बहुत ही अच्छे स्वरुप में स्थापित एवं विकसित किया गया। यहाँ तक कि मध्यकालीन सामंती समाजों में प्रशासन के विकेंद्रीकरण की व्यवस्था विद्यमान रही है। यह सब यूरोपियन राष्ट्रीय राजतंत्रों विशेषतः फ्रांस, ब्रिटेन और रूस के उदय के साथ जुड़ी हुई अवधारणाएं हैं।

ये सब प्रशासन के विस्तार व युद्ध जैसी नीतियों और नेतृत्व का ही परिणाम था कि मंत्रालयों और विभागों को बड़े स्तर पर स्थापित किया गया। लोकतंत्र के विकास ने इसमें आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। अब बड़े स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्था की प्रकृति में बदलाव आने लगा। 18 वीं सदी की औद्योगिक क्रांति ने इसमें निर्णायक योगदान दिया। नवोदित संगठनों और प्रशासन की पद्धतियों ने प्रशासनिक गतिविधियों को बहुत जटिल बना दिया। प्रथम महायुद्ध और दूसरे महायुद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न पुनर्निर्माण और पुनर्वास की समस्याओं का समाधान करने में प्रशासन की आवश्यकता हुई। आर्थिक मंदी, महंगाई इत्यादि का समाधान करने के लिए प्रशासनिक व्यवस्था को स्थापित किया गया। इस तरह संपूर्ण समाज में सभी प्रकार की क्रियाओं का निदान करने के लिए प्रशासन एक अनिवार्य क्रिया के रूप में

स्थापित हुआ।
यदि प्रशासन का अर्थ कि किसी भी कार्य को पूर्ण करने अथवा क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित तरीके से निष्पादित करने से लिया जाता है अथवा श्रेष्ठ शैली से किया गया कार्य ही प्रशासन होता है तो फिर मिस्त्र की सभ्यता में जल प्रबंधन का कार्य, पिरामिडों के निर्माण का कार्य, मृतशवों को संरक्षित करने का कार्य निस्सन्देह प्रशासनिक कार्य के रूप में उल्लेखनीय रहा है। व्यक्तियों का दैनिक जीवन भोजन करने का तरीका, कपड़ों का पहनावा, सभ्यता या संस्कृति की जीवन स्वरूप इसी प्रकार के कौशल से जुड़ा हुए रहते है।
संगठन की सबसे छोटी इकाई होती है परिवार। परिवार का संचालन करना भी एक प्रशासनिक क्रिया है। प्रशासन अर्थात् श्रेष्ठ शैली से किया गया कार्य ही प्रशासन के नाम से जाना जाता है। कार्य की इस श्रेष्ठतम शैली का संबंध व्यक्तिगत जीवन अथवा सार्वजनिक जीवन से हो सकता है। यह संबंध ही निजी और सरकारी प्रशासन में भिन्नताओं को अभिव्यक्त करता है। जब से राज्य रूपी संगठन का उदय हुआ है तब से राज्य का प्रशासन या कार्य करने का तरीका लोक प्रशासन के नाम से पहचाना गया है या पहचाना जाने लगा है। यह क्रिया रूपी प्रशासन राज्यों के संदर्भ में राज्यों के विकास के उद्गम से जुड़ा हुआ है जैसे कि कबीला राज्यों से प्राचीन राज्यों तक, यूनानी राज्यों से रोमन राज्यों तक तथा सामंती राज्यों से वर्तमान के राष्ट्र राज्यों तक।
अब यह विश्व राज्य की प्राक्कलप्ना तक विस्तृत हो चुका है। विज्ञान और तकनीकी विकास ने राज्यों के मूल स्वरूप को पूर्णतया बदल दिया है। इसलिए अब सरकारी और निजी प्रशासन में कोई विशेष अंतर नहीं रहा है अथवा सुशासन की अवधारणा ने प्रशासन को एक नवीन स्वरूप प्रदान कर दिया है। अतः आज नगरीय सभ्यता या नदी घाटी सभ्यताओं से शुरू होने वाला लोक प्रशासन अथवा आदिमानव के द्वारा जंगल में किए जाने वाले शिकार के परम्परागत तरीके से आरंभ होकर अंतरिक्ष की यात्रा

तक विस्तृत हो चुका है। एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन वार्ड सभा अथवा ग्राम पंचायत से लेकर वैश्विक ग्राम या ग्लोबल विलेज, विश्व राज्य, विश्व संगठनों तक उनके द्वारा सम्पादित की जाने वाले कार्यों के स्वरूप में एक क्रिया के रूप में विस्तृत हो चुका है।

2. लोक प्रशासन एक विषय के रूप में ***(As a form of Discipline)*** **:**
लोक प्रशासन एक अनुशासन के रूप में या अध्ययन के क्षेत्र के रूप में भी लम्बे समय से समाजविज्ञान या उसकी विविध नवोदित विद्याओं में अन्तर्निहित रहा है। यद्यपि लोक प्रशासन एक क्रिया के रूप में उतना ही पुराना है जितनी की नगरीय सभ्यता। लेकिन अध्ययन के क्षेत्र के रूप में लोक प्रशासन 19वीं शताब्दी के अंतिम समय में उदित या विकसित हुआ है। फिर भी इसका अर्थ यह नहीं है कि लोक प्रशासन इससे पहले विद्यमान ही नहीं था। लोक प्रशासन एक अनुशासन के रूप में समाज विज्ञान में उसी तरह से अंतर्निहित था जैसे कि समाज विज्ञान की अन्य शाखाएं राजनीति विज्ञान, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान इत्यादि समाजविज्ञान में निहित थी। यह समाज विज्ञान की संबंधित शाखाओं राजनीति, नीतिशास्त्र और कानून इत्यादि के साथ भी विद्यमान रहा है। उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों रामायण और महाभारत के अंतर्गत राजनीतिक विचारों के साथ-साथ प्रशासनिक विचारों का भी उल्लेख किया गया है। इन्हीं धार्मिक ग्रंथों के समानांतर स्मृति या स्मृतियों में भी न्यायिक प्रशासन के रूप में यह विद्यमान रहा है। इससे भी अधिक विस्तृत स्वरूप में यह कौटिल्य के द्वारा लिखित अर्थशास्त्र नामक पुस्तक जो की राजनीति और शासन कला की सर्वश्रेष्ठ प्राचीन पुस्तक मानी जाती है जिसके अंतर्गत कोटिल्य के द्वारा राज्य के सैद्धान्तिक स्वरूप और उसकी प्रशासनिक समस्याओं और प्रशासनिक निदानों का उल्लेख किया गया है। इसी तरह से शुक्रनीतिसार में भी आचार्य शुक्र ने विस्तृत आधार वाली

कल्याणकारी नौकरशाही की विस्तार से परिचर्चा की है। निसंदेह वह कल्याणकारी नौकरशाही थी जिसे आधुनिक भारत में लागू करना आज भी प्रासंगिक होगा।
एक विषय या अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन न केवल प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में विद्यमान रहा है अपितु पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन में भी यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।
प्राचीनकाल के महान चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं में प्रशासनिक सिद्धांतों का विस्तार से वर्णन किया गया है।
राजनीति विज्ञान के पिता और यूनानी शोधार्थी अरस्तु के द्वारा अपनी पुस्तक **'दी पॉलिटिक्स' (The Politics)** के अंतर्गत प्रशासनिक परिप्रेक्ष्य का विवेचन दिया गया है। पुनर्जागरण से पूर्व अंधकार युग में लोक प्रशासन विस्तृत रूप से दिखाई नहीं देता है परंतु इसके पश्चात् मध्यकालीन राजनीतिक चिंतन में या पुनर्जागरण के इस युग में यह पुनः विस्तृत रूप में प्रकट होता है।
इतालवी लेखक और राजनीतिज्ञ मैक्यावली के द्वारा अपनी पुस्तक **दि प्रिंस (The Prince, 1513-1532AD)** के अंतर्गत शासन कला और प्रशासन के संदर्भ में विस्तार से चर्चा की गई है। यह एक अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन का मिश्रित स्वरूप वाला इतिहास है।
आधुनिक राष्ट्र राज्य में शोधार्थियों के द्वारा राजनीति विज्ञान और प्रशासनिक मामलों में प्रयुक्त की गई पद्धतियों के माध्यम से इसके अध्ययन को विस्तृत स्वरूप दिया गया। लेकिन इस समय तक भी लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान से भिन्न एक स्वतंत्र विषय के रूप में या अनुशासन के रूप में स्थापित नहीं हो पाया था।
यहाँ तक कि लोक प्रशासन शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भी 17 वीं शताब्दी में यूरोपियन राजतंत्रों के संदर्भ में किया गया। यूरोपियन राजतंत्रों में राजा के निजी कार्यों और जनता से जुड़े हुए राजा के कार्यों में पृथक्करण की परंपरा शुरू हुई। यही से लोक प्रशासन शब्द को पहली बार अनुप्रयोग लिया गया अथवा वह पहली बार प्रयुक्त हुआ। लेकिन इस समय तक अर्थात 17 वीं शताब्दी तक

लोक प्रशासन के अर्थ को किसी भी स्तर पर परिभाषित नहीं किया गया था।

18 वीं सदी में लोक प्रशासन के अर्थ और क्षेत्र को एक अनुशासन के रूप में परिभाषित करने का अवसर सर्वप्रथम अमेरिका के हेमिल्टन को मिला। हेमिल्टन अमेरिका में प्रथम वित्तमंत्री (1789-1795) थे जिन्हें सेक्रेटरी ऑफ ट्रेजरी के पदनाम से जाना जाता था। **एलेग्जेंडर हैमिल्टन (Alexander Hamilton)** ने 85 आलेखों अथवा निबंधों की एक श्रृंखला **दी फेडरलिस्ट पेपर्स 1788** (The Federalist Papers 1788AD) के नाम से प्रकाशित की। हैमिल्टन की इस निबंध रचना में पहली बार लोक प्रशासन के अर्थ और क्षेत्र को परिभाषित किया गया।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में चार्ल्स जीन बोपिस्टे बोनिन के द्वारा 'प्रिंसिपल्स डी एडमिनिस्ट्रेशन पब्लिक्यू' (Principles D Administration Publique) अथवा प्रिंसिपल्स ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के नाम से फ्रांसीसी भाषा में एक शोध पत्र लिखा गया जिसमें लोक प्रशासन के बारे में विस्तार से उल्लेख किया गया। इस श्रंखला के तीन प्रकाशन 1808, 1809 और 1812 में पेरिस से निकाले गए।

इसी समय **जर्मनी और ऑस्ट्रिया में सार्वजनिक कार्यों के प्रबंधन से संबंधित** एक नवीन अवधारणा का उदय हुआ जिसे **कैमरलवाद या (Cameralism)** के नाम से जाना जाता है। इस अवधारणा के प्रमुख समर्थक **जॉर्ज जिंके और डेविड ऐ लिंडेनफेल्ड (Georg Jinkey and David A Lindenfeld)** थे। इसके अंतर्गत जर्मन साइंस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन के सार्वजनिक कार्यों को तीन भागों में विभाजित किया गया अर्थात लोक वित्त के कार्य, आर्थिक कार्य, राजनीतिक कार्य। यद्यपि प्रतियोगी परीक्षा के द्वारा लोक सेवकों के चयन की प्रणाली सर्वप्रथम तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व चीन में शुरू हो चुकी थी लेकिन **परसा या आधुनिक जर्मनी** वह पहला देश था जहाँ पर प्रशासनिक कार्मिकों को प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षण के

पाठ्यक्रम में लोक प्रशासन या इसकी प्रशासनिक क्रियाओं के संदर्भ में अध्ययन कराया जाता था।

एक अनुशासन और विषय के रूप में लोक प्रशासन के उदय के पीछे अमेरिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। शायद इसीलिए वह लोक प्रशासन की जन्म स्थली बन गया है। इस क्रम में **जैक्शन या जैक्शोनियन विचारधारा** अपरिहार्य रूप में उल्लेखनीय रही है जो एक स्वतंत्र विषय के रूप में लोक प्रशासन को स्थापित करने का पहला निर्णय कदम माना जाता है। अमेरिका के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और सातवें **राष्ट्रपति एंडर्यू जैक्शन (Andrew Jackson, 1829-1837)** के द्वारा अपने 8 वर्ष के दूसरे कार्यकाल में अमेरिकी लोकतंत्र में एक नवीन परंपरा की शुरुआत की गई जिसे **जैक्शन लोकतंत्र** भी कहा जाता है। प्रशासकों के नियुक्ति की इस परंपरा को या राजनीतिक दया की परंपरा को **लूट प्रणाली या पितृशाही या पैतृक व्यवस्था(Spoils System or Patronage Systems)** के नाम से जाना जाता है अर्थात् एक ऐसी स्वतंत्र राजनीतिक गतिविधि जिसमें जनता के प्रतिनिधि अपने पसंद या जानकार या रिश्तेदार लोगों को बड़े-बड़े प्रशासनिक पदों पर अपनी इच्छा से नियुक्त करते हैं। इस कारण से प्रशासनिक कार्मिकों के चयन की व्यवस्था में अयोग्यता, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद को बढावा मिला।

इसी **लूट प्रणाली** की व्यवस्था के प्रतिरोध में या प्रतिक्रिया स्वरूप 1880 के दशक में एक दीर्घकालिक या लंबा सुधार आंदोलन (Civil services reforms movement) आरंभ किया गया। इसके परिणाम स्वरूप 1883 में कांग्रेस के द्वारा **पेंडलटन अधिनियम (The Pendleton Civil Service Reform Act)** पारित किया गया जिसे प्रेजीडेंट चेस्टर ए आर्थर के द्वारा 16 जनवरी, 1883 को स्वीकृति प्रदान की गई। इस बिल को प्रस्तुत करने वाले **सीनेटर जॉर्ज एच पेंडलटन (Sen. George Hunt Pendleton)** थे। अतः इसे **पेंडलटन एक्ट** भी कहा जाता है।

इसमें पहली बार अमेरिकी प्रशासनिक कार्मिकों के चयन में अथवा भर्ती प्रक्रिया में सीमित स्तर अर्थात् केवल दस फीसदी, पर योग्यता आधारित प्रणाली अथवा लिमिटेड लेवल मेरिट बेसिक सिस्टम को स्वीकार किया गया जो कि 1980 तक 90 फीसदी हो गया।

इसी क्रम में सबसे महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका का निर्वहन करते हुए थॉमस वुड्रो विल्सन के द्वारा एक स्वतंत्र विषय के रूप में लोक प्रशासन का श्रीगणेश किया।

लोक प्रशासन के विकास मे थॉमस वुड्रो विल्सन (Thomas Woodrow Wilson) का योगदान : विल्सन (1856-1924) का जन्म 1856 ईसवी में अमेरिका के वर्जीनिया प्रांत में हुआ। इन्होंने गवर्नर (New Jercy, 1910) 28 वें राष्ट्रपति (1913- 1921) **लीग ऑफ नेशन या राष्ट संघ के संस्थापक**, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर और चेयर, डेमोक्रेटिक पार्टी की प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, शांति के नोबेल पुरस्कार विजेता और एक प्रसिद्ध प्रशासनिक सुधारक के रूप में पहचान प्राप्त की है। वुड्रो विल्सन की प्रसिद्ध रचनाओं में ’कांग्रेसनल गवर्नमेंट,1885, दि स्टेट 1889, हिस्ट्री ऑफ दि अमेरिकन पिपुल,1902, कॉन्स्टिट्यूशनल गवर्नमेंट इन यूएसए 1908 इत्यादि प्रसिद्ध है। विल्सन के द्वारा अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस एसोसिएशन से प्रकाशित होने वाले त्रैमासिक जर्नल पॉलिटिकल साइंस क्वार्टरली पत्रिका में **’दि स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेन ’ (The Study of Administration, June, 1887)** नामक निबंध या आलेख लिखा और इसके प्रकाशन के साथ ही एक स्वतंत्र विषय या अनुशासन के रूप में अमेरिका में लोक प्रशासन का उदय हुआ।

अतः एक स्वतंत्र एवं पृथ्थ्क अनुशासन के रूप में लोक पप्रशासन को आरंभ करने का श्रेय वुडरो विल्सन को जाता है। वे लोक प्रशासन के संस्थापक जनक माने जाते है।

एल डी व्हाईट के शब्दों में ’’वे शास्त्र के रूप में लोक प्रशासन

के जन्मदाता हैं।"
यह इस युग की युगप्रवर्तक घटना थी जिसने राजनीति और प्रशासन में द्विविभाजन का बिगुल बजा दिया। वुड्रो विल्सन का यह संदेश पॉलिटिकल साइंस क्वार्टरली के वॉल्यूम-2, जून, 1887 26 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। **विल्सन का संदेश :-**

"मेरा मानना है कि व्यवहार में ऐसा विज्ञान कहीं नहीं पढ़ाया जाता है जहाँ इसको जानने की आवश्यकता नहीं हो।** *प्रशासन* **का विज्ञान राजनीति के विज्ञान के अध्ययन का समसामयिक प्रतिफल है जो कि लगभग 2200 वर्षों पूर्व आरंभ हुआ था। इसका स्वतंत्र रूप से उदय अपनी शताब्दी या 19वीं शताब्दी में और मुख्यतः अपनी पीढ़ी में हुआ है। लोक प्रशासन,** *शासन* **का अति महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह क्रिया के स्वरूप में शासन ही है। यह कार्यकारी संचालनकर्ता व सरकार की तरफ से दृश्य होता है और निश्चित रूप से यह उतना ही पुराना है जितना कि शासन। लोक प्रशासन , प्रशासन का विज्ञान है। राजनीति और प्रशासन दोनों का अलग अध्ययन किया जाना चाहिए। संविधान की रचना सरल है परंतु उसे चलाना बहुत कठिन है। प्रशासन राजनीति के विषय क्षेत्र से बाहर है। प्राचीन राज्यों राजतंत्र या कुलीन तंत्र की कार्यप्रणाली सरल व सीमित थी परंतु आधुनिक राज्यों में के कार्यों में विशालता, व्यापकता और जटिलता आ गई है। अब तो तुलनात्मक लोक प्रशासन का

अध्ययन भी अपरिहार्य है क्योंकि जहांँ तक हम अपने आपको जानते हैं, हम कुछ भी नहीं जानते हैं।"

लोक प्रशासन की विकास के चरण (Phases of Evolution of Public Administration as a Independent Discipline) :

एक विषय या अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन की विकास की यात्रा को सामान्यतया 5 स्तरों अथवा चरणों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. **राजनीति और प्रशासन के द्विविभाजन या दैतवाद का काल 1887 से 1926 :**
2. **प्रशासनिक सिद्धांतों के निर्माण का काल 1927 से 1937 :**
3. **आलोचनाओं और चुनौतियों का काल 1938 से 1947 :**
4. **संकट का काल या चरण 1948 से 1970 :**
5. **परिपक्वता का काल 1971 व उसके बाद :**

1. प्रथम चरण (The Politics and Administration Dichotomy)1887- 1926 :

इस चरण में लोक प्रशासन का उदय एक स्वतंत्र विषय के रूप में हुआ है। लोक प्रशासन के जन्मदाता वुड्रो विल्सन ने अपने आलेख 'प्रशासन का अध्ययन, 1887 ईस्वी' (The Study of Administration, June, 1887AD) से पूरी दुनिया में क्रांति की लहर उत्पन्न कर दी। यह प्रथम युग प्रवर्तक घटना थी जिसने राजनीति विज्ञान से लोक प्रशासन को पृथ्थ्क कर दिया। अब राजनीति और प्रशासन को पृथ्थ्क-पृथ्थ्क स्वरूप में देखा जाने लगा। विल्सन ने प्रशासन व राजनीति को एक दूसरे से भिन्न स्वरूप मेंें स्थापित करने का प्रयास किया। **उसने कहा कि,**

''संविधान का निर्माण करना सरल है परन्तु इसको लागू करना कठिन है।'' इसी क्रम में कोलंबिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर गुडनाउ ने विल्सन के विचारों का समर्थन करते हुए बताया कि राजनीति और प्रशासन दोनों के अलग-अलग कार्य होते है। उसने **'राजनीति और प्रशासन'** (Politics and Administration, 1900 AD) नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में राजनीति और प्रशासन के विभाजन की प्रक्रिया का समर्थन किया गया। गुड़नाउ के अनुसार **''राजनीति राज्य की इच्छा को अभिव्यक्त करती है जबकि प्रशासन इस इच्छा या नीति को लागू करने का कार्य करता है।''**

लोक प्रशासन की विकास यात्रा का यह प्रथम चरण मुख्य रूप से राजनीतिक एवं प्रशासनिक सुधारों पर केंद्रित रहा। अनेक विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन विभाग की स्थापना की गई तथा अनुसंधान व अध्ययन की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया गया। 1914 ईस्वी में अमेरिकी राजनीति विज्ञान संघ ने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट किया कि सरकार में कार्य करने हेतु कुशल लोगों को शामिल करना राजनीति शास्त्र का उत्तरदायित्व है। यह लोक प्रशासन की नींव के निर्माण का काल था। इसी समय **एल डी व्हाईट ने (Introduction to the Study of Public Administration, 1926, AD)** नामक पुस्तक लिखी। **एल डी व्हाईट** की यह पुस्तक **लोक प्रशासन की पहली पाठ्यपुस्तक** या टेक्स्ट बुक मानी जाती है। इसे लोक प्रशासन विषय की पहली पुस्तक भी माना जाता है। वुड्रो विल्सन और गुडनाउ के विचारों का समर्थन करते हुए एल डी व्हाईट ने लिखा है कि **''लोक प्रशासन का उद्देश्य प्रशासन में कुशलता लाना है ताकि राज्य की नीतियों का सही रूप से क्रियान्वयन हो सके।''** व्हाईट ने कहा कि लोक प्रशासन में एक मूल्यविहीन विज्ञान बनने की क्षमता है। प्रशासन और राजनीति दोनों अपनी स्वतंत्र पहचान रखते है। अतः इस चरण में लोक प्रशासन विषय का स्वतंत्र उदय हुआ तथा राजनीति और प्रशासन में पृथक्करण संभव हुआ।

2. दूसरा चरण(The Principles of Administration)1927-1937 :
सिद्धांतों के निर्माण का युग दूसरे चरण के नाम से जाना जाता है। जहाँ प्रथम चरण में एक स्वतंत्र विषय के रूप में लोक प्रशासन का उदय हो चुका था। विचारकों ने यह विश्वास अभिव्यक्त किया कि लोक प्रशासन स्वयं के स्थापित क्षेत्र और सिद्धान्तों के आधार पर एक पृथ्थक अनुशासन है। अतः अब सबसे पहली आवश्यकता इसके अंतर्गत अध्ययन किए जाने वाले सिद्धांतों की हुई। **विलोबी (W. F. Willouby)** ने प्रिंसिपल्स ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन **(Principles of Public Administration, 1927, AD)** नामक पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक के अंतर्गत लोक प्रशासन को विज्ञान की तरह सिद्धांतों वाला विषय बताया गया और इसमें क्रमागत रूप से सुधार की बात कही गई। ***मेरी पार्कर फॉलेट ने 'क्रिएटिव एक्सपीरियंस' 1924, हेनरी फेयोल ने 'इंडस्ट्रियल एंड जनरल मैनेजमेंट' 1929 (1916 में फ्रेंच में लिखी गई थी जिसका अंग्रेजी अनुवाद) लूथर गुलिक और उर्विक ने 'पेपर्स ऑन दि साइंस ऑफ एडमिनिस्ट्रेन, 1937, (Papers on the Science of Administration, 1937) जे डी मुनै, एलन सी व रैले ने 'प्रिंसिपल ऑफ आर्गेनाईजेशन', 1939 में लिखी जो कि 1930 में ऑनवार्डस इंडस्ट्री के*** नाम से प्रकाशित हुई थी। इसी समय पोस्डकॉर्ब उपागम व टेलरबाद जैसे सिद्धान्तों का निर्माण हुआ। टेलर के द्वारा 'प्रिंसीपल्स आर्फ सांईटिफिक मैनेजमेंट" 1911 पुस्तक के अन्तर्गत संगठन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो काफी चर्चित रहा। इसी के साथ संगठन के अनेक नवीन सिद्धान्तों को स्थापित किया गया। लोक प्रशासन के क्षेत्र में अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान करने वाले लोगों को 'अमेरिकन सोसायटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' के माध्यम से आर्थिक सहायता व सहयोग किया गया। इन कार्यो के प्रकाशन

हेतु प्राईमर जर्नल ’पब्लिक एडमिनिस्टेशन रिव्यू’ का आरंभ किया गया। यह चरण लोक प्रशासन के विकास में स्वर्णिम युग के रूप में जाना जाता है।

3. तीसरा चरण (Criticism and Challenges)**1938-1947 :**

यह चरण चुनौतियों व आलोचनाओं के काल के नाम से प्रसिद्ध रहा है। लोक प्रशासन के आरंभिक नवीन सिद्धांतों को शीघ्र ही आलोचनाओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ा। नवीन सिद्धांतों की कमियों को उजागर किया गया। अतः इस युग को लोक प्रशासन के लिए एक चुनौती के रूप में देखा जाता है। लोक प्रशासन के सिद्धान्तों को दो आधारों पर चूनौतियां दी गई अर्थात् राजनीति प्रशासन की द्विवाभन के विचार की अस्वीकृति और लोक प्रशासन के सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता की वैधता के आधार पर।

चेस्ट आई बर्नार्ड (C.I. Bernard) ’दि फंक्शन ऑफ दि एग्जीक्यूटिव’1938 (The Function of Executive,1938) नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक के अंतर्गत अनेक प्रशासनिक विषयों पर तो विस्तार से चर्चा की गई परंतु किसी भी सिद्धांत का उल्लेख नहीं किया गया। प्रशासन का व्यापक और दीर्घ अनुभव सिद्धांत निर्माण में काम नहीं आया। इस कारण यह निराशापूर्ण क्रांति साबित हुई।

एफ एम मार्क्स ने अपनी पुस्तक ’एलीमेण्टस आफॅ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन’ 1946 के अन्तर्गत बताया कि प्रशासन व राजनीति के अलगाव की विचारधारा व्यर्थ है। प्रशासन राजनीति से किसी भी तरह अलग नहीं हो सकता है क्योंकि यह प्रकृति से ही राजनीतिक है।

सबसे बड़ी चुनौती हर्बर्ट साइमन द्वारा लिखित आलेख ’प्रोवर्बस आफॅ एडमिनिस्ट्रेशन’ (Proverbs of Administration, 1946) पब्लिकेशन एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू’ नामक जर्नल में प्रकाशित से मिली जिसमें उन्होंने लोक प्रशासन के सिद्धांतों को

तथाकथित लोकोक्तियों और **मुहावरों या किवदंतिओं की संज्ञा** देकर उपहास उड़ाया। उसने लोक प्रशासन के सिद्धांतों को बेकार या व्यर्थ साबित करने का प्रयास किया और कहा कि ''लोक प्रशासन के ऐसे सिद्धांत मानवीय आवास युक्त मकान के निर्माण की अपेक्षा छोटी-छोटी गुमटीओ या कोठियों के निर्माण की श्रंखला के जैसे हैं या समान है''। साइमन ने अपनी रचना **'एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर : स्टडी ऑफ डिसीजन मेकिंग प्रोसेस इन एडमिनिस्ट्रेटिव ऑर्गेनाइजेशन,1947** के अंतर्गत यह साबित करने का प्रयास किया कि लोक प्रशासन विषय में स्वयं के सिद्धांतों का निर्माण हो ही नहीं सकता है या उसके स्वयं के सिद्धांत नहीं हो सकते। प्रशासनिक संगठनों में निर्णय निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण करने के कारण उन्हें 1978 में नोबेल पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। इस क्रम में रॉबर्ट ए डाहल ने अपने आलेख ***'दि साइंस ऑफ़ एडमिनिस्ट्रेशन: थ्री प्रोब्लम्स, 1947*** के अंतर्गत यह स्पष्ट किया कि लोक प्रशासन कभी भी प्रशासन का विज्ञान नहीं हो सकता है क्योंकि वह न तो मूल्यविहीन हो सकता है और न ही सामाजिक संरचना और परिवेश से दूर हो सकता है और न ही मानवीय व्यवहार की विभिन्नताओं का अन्त किया जा सकता है। ठीक इसी तरह के विचार डी वाल्डो की रचना 'दि एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट'1948 या प्रशासी राज्य में भी परिलक्षित होते है।

4. चौथा चरण (Crisis of Identity) **1948-1970 :** इस चरण को पहचान के संकट के काल के नाम से जाना जाता है। तीसरे चरण की चुनौतियों ने लोक प्रशासन विषय के अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया। परंपरागत सिद्धांतवादी विचारधारा को स्पष्ट रूप से नकार देने के कारण उस पर संदेह होने लगा। जहाँ एक तरफ हर्बर्ट साइमन ने इस विषय के सामने चिंतन की समस्या को उत्पन्न कर दिया वही दूसरी तरफ नवोदित लोकतांत्रिक राष्ट्रों के लिए विकास प्रशासन की अवधारणा के

उदय के कारण अब तुलनात्मक लोक प्रशासन और नवीन लोक प्रशासन के आगमन के कदमों की आहट भी सुनाई देने लगी। ऐसे हालातों में हाल ही में विकसित लोक प्रशासन अनुशासन पतन की ओर बढ़ने लगा। कुछ विचारको ने लोक प्रशासन को पुनः राजनीति विज्ञान में समायोजित करने के विचार प्रस्तुत किये तो कुछ अन्य विद्वान प्रशासनिक विज्ञान की ओर बढ़ने की बात करने लगे। इसे राजनीति विज्ञान का पर्यायवाची बताया जाने लगा। जॉन गास ने अपने प्रसिद्ध आलेख 'टेण्ड्रस इन दि थ्योरी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'1950 में बताया कि लोक प्रशासन के सिद्धान्तों का मतलब था अपने समय के राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त। इसी कारण से राजनीतिक चिंतकों ने इसे न तो प्रोत्सहान दिया और न ही जुडाव पर बल दिया। अतः लोक प्रशासन अपने स्वरुप को बचाने के लिए बदलाव की ओर बढ़ने लगा जिसे प्रशासनिक विज्ञान के रूप में देखा गया। अब लोक प्रशासन एवं प्रबंधन ने आपसी समन्वय स्थापित कर लिया। अब यह स्पष्ट किया गया कि प्रशासन तो प्रशासन ही होता है चाहे वह परिवार का प्रशासन हो यह राज्यरूपी संगठन का प्रशासन। 1956 में एडमिनिस्ट्रेटिव साइंस क्वार्टरली पत्रिका के प्रकाशन में इन सबका जिक्र किया गया।
इसी समय विकसित नवीन उपागम तुलनात्मक एवं विकास प्रशासन की अवधारणा ने लोक प्रशासन में एक नवीन क्षेत्र को उदित किया। 1960 के दशक में **'तुलनात्मक प्रशासनिक समूह'** के द्वारा तीसरी दूनिया के देशों की प्रशासनिक व्यवस्था के अध्ययन पर विशेष रूप से बल दिया गया। सीएजी के द्वारा इसके विकास के लिए फोर्ड जैसे संस्थानों से आर्थिक सहायता प्राप्त की गई। इस अध्ययन को तुलनात्कम प्रशासन के उपक्षेत्र के रूप में विकास प्रशासन के नाम से पुकारा जाने लगा। इस समय सबसे महत्वपूर्ण योगदान रिग्स के द्वारा दिया गया।

5. पाँंचवा चरण(Public Administration as an

Independent Discipline) 1971 व इसके बाद : 1971 और उसके बाद निरंतर इसी परिपक्वता का काल कहा जाता है। इस काल में लोक प्रशासन को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इन चुनौतियों का सामना करते हुए लोक प्रशासन ने स्वयं को बचाने में सफल हुआ और अब एक नवीन राजनीति का सहारा लिया गया जिसमें अनेक समाज विज्ञानियों ने अपना सहयोग देकर इसे अलगाव या पृथ्थ्करण की अपेक्षा अंतःअनुशासनात्मक अवधारणा की ओर आगे बढ़ाया। राजनीति और प्रशासन, राजनीति और अर्थशास्त्र एवं संगठन व प्रशासनिक सिद्धान्त के रूप में इसका आरम्भ हुआ। अब वह सब विषयों में शामिल हो गया और उसने एक विस्तारित स्वरूप प्राप्त कर लिया। डी वाल्डों के प्रयासों से या नेतृत्व में प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 का आयोजन हुआ। इसी के साथ **नवीन लोक प्रशासन (NPA)** का उदय हुआ। इसमें परम्परागत लक्ष्यों दक्षता व प्रभावशीलता के स्थान पर **प्रासंगिकता, सामाजिक समता और बदलाव** को स्वीकार किया गया। लोक प्रशासन सामाजिक हित के रूप में स्वीकार करते हुए लक्ष्य, जनहित, मानकात्मक, वैज्ञानिक स्वरूप पर बल दिया गया। अन्तराष्टीय स्तर पर उच्च शिक्षण संस्थानों में लोक प्रशासन विषय के अध्यापन को प्रसारित करने के लिए तथा लोक प्रशासन के कार्यक्रमों के अध्ययन को बढावा देने के लिए **नास्पा 1970,** ***(National Association of Schools of Public Affairs and Administration (NASPAA)*** की स्थापना की गई। इसके प्रयासों से अनेक विश्वविद्यालयों में राजनीति विज्ञान के साथ और स्वतंत्र रूप से लोक प्रशासन विभागों की स्थापना हुई। नव उदारवाद की अवधारणा ने लोक प्रशासन को नवीन आयाम प्रदान किये। प्राकृतिक विज्ञानों से उदित व्यवस्था सिद्धान्त ने तथा पर्यावरणीय उपागमों ने लोक प्रषासन को जनहित में नैतिक निहितार्थ तथा सैद्धान्तिक आधार उपलब्ध कराया। नव लोक प्रशासन के विकास की दिशा में रिग्स के द्वारा विकसित साला

मॉडल या प्रतिमान मील का पत्थर साबित हुआ। 1980 के दशक में सांगठनिक एवं प्रबन्धकीय उपागमों के रूप में विकसित ***नव लोक प्रबन्धन(NPM)*** की अवधारणा ने लोक प्रशासन को निजी प्रारूप वाले प्रशासन की स्टाईल पर संचालित करने विचार दिया। अब निजी व सार्वजनिक प्रशासन समानान्तर रूप से संचालित हो रहे है। **विंसेट आस्ट्रोम के द्वारा लोक चयन सिद्धान्त** के अन्तर्गत इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि 21 वीं सदी जो कि राज्य की न्यूनतम भूमिका के साथ आरंभ हुई है जिसमें लोक प्रशासन से यह उम्मीद की गई है कि न्यूनतम सरकार परन्तु प्रभावी सरकार। अब प्रबन्धन और प्रशासन के बीच राज्य रूपी संगठन के संचालन में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा है। यद्यपि प्रशासन, प्रबन्धन और संगठन अपनी-अपनी विशिष्ट पहचान रखते है। विज्ञान, संचार और तकनीक ने इसे और अधिक प्रभावी बना दिया है। उदारीकरण ने लोक प्रशासन में युगांतकारी परिवर्तन ला दिया है। अब केवल राज्य रूपी प्रशासन ही इसके विषय क्षेत्र में शामिल नहीं है अपितु लोकनीति, लोक प्रबंधन, निजी क्षेत्र की सहभागिता, प्रबंधन विज्ञान इत्यादि भी इसी में समाहित हैं। इस तरह लोक प्रशासन लड़खड़ाता हुआ अपनी मंजिल पर पहँच ही गया है और अब इसे **'लोक प्रशासन और लोक नीति' (Public Administration and Public Policy)** के नामकरण से दुनिया भर में प्रसिद्धि प्राप्त है। **भारत में लोक प्रशासन विषय की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के मध्य** में हुई । भारत में यह सर्वप्रथम अनिवार्य प्रश्न पत्र के रूप में **लखनऊ विश्वविद्यालय** के राजनीति विज्ञान विभाग में 1930 में शुरू हुआ। डिप्लोमा स्तर पर लोक प्रशासन विषय **1937 में मद्रास विश्वविद्यालय** में शुरू किया गया। व्यवस्थित स्वरूप में यह **1950 में नागपुर से शुरू हुआ**। स्नातकोत्तर स्तर पर लोक प्रशासन के अध्ययन की शुरुआत करने का श्रेय नागपुर विश्वविद्यालय के **प्रोफेसर महादेव प्रसाद शर्मा** को जाता है।

उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय में लोक प्रशासन विषय का अध्यापन कराने के लिए एक स्वतंत्र विभाग की स्थापना की जिसका नाम **'लोक प्रशासन और स्थानीय स्वशासन'** विभाग रखा। एम पी शर्मा इस विभाग के पहले विभागाध्यक्ष बने। इसके बाद यह अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों, राज्य विश्वविद्यालयों और केंद्रीय तथा राज्य प्रशासनिक सेवकों के प्रशिक्षण केंद्रों में अध्यापन कराया जाने लगा। इसी के साथ यह धीरे-धीरे भारतवर्ष में विस्तृत हो गया और अनेक विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन विभागों की स्थापना की गई।

प्रशासन और लोक प्रशासन (Administration and Public Administration) :

लोक + प्रशासन यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। लोक का अर्थ स्पष्ट करने से पहले हमारे लिए प्रशासन को समझना अति महत्वपूर्ण होगा। प्रशासन शब्द प्र + शासन से मिलकर बना है जिसमें संस्कृत का प्र उपसर्ग और शास् धातु शामिल है। प्रशासन जिसका अभिप्राय है श्रेष्ठ रीति या तरीके से कार्य करना अर्थात किसी भी कार्य को पूर्ण करने की सर्वश्रेष्ठ पद्धति ही प्रशासन है। एडमिनिस्ट्रेशन शब्द **अंग्रेजी भाषा** के **एडमिनिस्ट्रेयर (Administrare)** से बना है। अंग्रेजी भाषा का एडमिनिस्ट्रेयर शब्द **लैटिन भाषा** के दो शब्दों **Ad + Ministrare** से निर्मित है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है **'व्यवस्थित कार्य अथवा लोगों की देखभाल करना या कार्य व्यवस्था या ध्यान रखना या प्रबंधन करना या लोगों से सम्बन्धित मामलों का प्रबंधन करना अर्थात क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित स्वरूप में किसी भी कार्य का निष्पादन करना** ही प्रशासन है। अतः प्रशासन श्रेष्ठ रीति से कार्य करना है अथवा यह शासन की एक कला है। प्रशासन एक व्यापक और सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक या सांगठनिक जीवन अथवा परिवार से लेकर अंतरराष्ट्रीय संगठन तक अभिव्यक्त होती है। इसीलिए प्रशासन निजी या सरकारी दोनों से जुड़ी हुई व्यवस्था का नाम है। यह एक गतिविधि के रूप

में आदिमकाल अथवा सभ्यताओं की उत्पत्ति से शुरू होता है। यह कबीला राज्यों से राष्ट्र राज्यों के विकास तक एक क्रिया के रूप में दिखाई देता है। जहाँ एक समान लक्ष्यों के लिए सामूहिक प्रयास किये जाते है। जैसे कि आदिमानव के द्वारा शिकार करना एक व्यवस्थित प्रणाली थी, मिस्र के पिरामिड का निर्माण, उनके द्वारा मृतशवों को वर्षों तक संरक्षित रखना इत्यादि इसी श्रेष्ठ प्रशासन के उदाहरण है।

देशकाल परिस्थितियों के अनुरूप इसके अर्थ, परिभाषा क्षेत्र और स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। आज राजतंत्र से लोकतंत्र की ओर बढ़ना या पिछड़े समाजों से विकसित समाजों की ओर बढ़ना इसकी बदलाव को सरलता के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसीलिए प्रशासन की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है तथापि आधुनिक संदर्भों में इसके अर्थ को **4 भिन्न स्वरूपों में प्रस्तुत** किया जा सकता है। प्रशासन के रूप में यह चार भिन्न अर्थ अभिव्यक्त करता है। **लोक प्रशासन एक विषय के रूप में** ; **लोक प्रशासन एक ज्ञान की शाखा के रूप में** ; **लोक प्रशासन सार्वजनिक नीति या नीतियों को लागू करने वाली इकाई के अर्थ में** ; **लोक प्रशासन कला के अर्थ में** ; लोक प्रशासन मंत्री मंडल या सर्वोच्च कार्यकारिणी इकाई के रूप में ज्ञान की शाखा या एक अनुशासन का प्रतिनिधित्व करता है जबकि सार्वजनिक नीतियों को लागू करने वाली इकाई और प्रबंधन की कला के अर्थ में यह लोक प्रशासन को एक क्रिया या गतिविधि के रूप में अभिव्यक्त करता है।

लोक प्रशासन प्रथम अर्थ में मंत्रिमंडल अथवा सर्वोच्च कार्यकारिणी इकाई के रूप में प्रशासन को अभिव्यक्त करता है जैसे कि नेहरू प्रशासन मोदी प्रशासन या भारत के सभी राजनीतिक दलों नेताओं को इसमें शामिल किया जा सकता है दूसरे अर्थ में लोक प्रशासन ज्ञान की शाखा के रूप में अथवा शिक्षा की एक विद्या के रूप में अपना अर्थ अभिव्यक्त करता है। यहाँ लोक प्रशासन हमें समाज विज्ञान की एक षाखा के रूप में दिखाई

देता है। लोक प्रशासन का तीसरा अर्थ सार्वजनिक नीतियों एवं निर्णयों को लागू करने वाली इकाई के रूप में अभिलक्षित होता है। जहाँ इसे रेलवे प्रषासन, शैक्षणिक प्रशासन या लोक नीति लागू करने वाली क्रिया के रूप में देखा जा सकता है। लोक प्रशासन का चौथा अन्तिम अर्थ प्रबंधन की कला के रूप में अभिव्यक्त होता है। जहाँ इसे प्रबन्धन की क्रिया कहा जाता है। यदि इन चारों आधारों को अर्थ के रूप में स्वीकार किया जाए तो यही स्पष्ट होता है कि प्रशासन ज्ञान की एक शाखा तो है परंतु एक क्रिया भी है और वह प्रबंधन की कला भी है उपयुक्त चारों अर्थ अभिव्यक्त करने वाले संदर्भों को लेकर लोक प्रशासन कि अर्थ के समूह को अथवा विचारधाराओं को दो समूह में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

1. **पहला तो एकीकृत दृष्टिकोण (Integrated Views) के अनुसार लोक प्रशासन का अर्थ क्या है? और**
2. **दूसरा प्रबंधकीय दृष्टिकोण (Managerial Views) के अनुसार प्रशासन का अर्थ क्या है?**

पहले एकीकृत दृष्टिकोण के अनुसार प्रशासन के आशय के अन्तर्गत चपरासी से लेकर प्रबंधन के स्तर का कार्य करने वाले सभी कर्मचारियों को शामिल किया जाता है जबकि दूसरे उपागम के अनुसार प्रशासन के आशय में केवल प्रबंधन के कार्यों में नियोजित कार्मिकों से ही होता है। दोनों ही दृष्टिकोणों में विद्यमान मौलिक अंतर को विद्वानों ने अपनी-अपनी परिभाषाओं में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

साइमन, स्मिथवर्ग और थॉमसन (Simon, Smithbourg and Thompson) के अनुसार ''प्रषासन समूह की सहयोग पूर्ण क्रियाएं हैं जो भी सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु करते हैं।'' **निग्रो (Nigro)** के अनुसार प्रशासन का मतलब है ''जनसाधारण

की सेवा करना जैसे शिक्षा सफाई सुरक्षा इत्यादि।" पिफनर के अनुसार "सरकार का कार्य ही प्रशासन है चाहे वह स्वास्थ्य प्रयोगशाला में एक्स-रे मशीन को चलाना हो या टकसाल में सिक्कों की ढलाई करना हो।" **पिफनर व प्रेस्थस** के अनुसार "प्रशासन वांछित लक्ष्यों को हासिल करने हेतु किया जाने वाला मानवीय और भौतिक संसाधनों का संगठन और निर्देशन है।" **मार्शल ई डिमॉक** के अनुसार "प्रशासन का संबंध क्या और कैसे क्या का मतलब विषय वस्तु और कैसे का मतलब प्रबंधन की तकनीक दोनों के समन्वय को ही प्रशासन कहा जाता है।" उपयुक्त सभी परिभाषाएं एकीकृत दृष्टिकोण अर्थात् प्रशासन की सभी क्रियाएं और सभी क्षेत्र इसमें शामिल होते है, इसका समर्थन करती है।

लूथर गुलिक के अनुसार " प्रशासन का संबंध निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति सेवा कार्यों को करवाने से है। प्रशासन विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला व्यवसाय है।" **एल डी व्हाइट** के अनुसार "किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु थोड़े से लोगों का निर्देशन, समन्वय और नियंत्रण ही प्रशासन है।" **एफएम मार्क्स** के अनुसार "सचेतन लक्ष्य हेतु किया जाने वाला प्रबन्धन का कार्य ही प्रशासन है। इन्होंने प्रशासन का अर्थ सीमित क्षेत्र अर्थात् केवल प्रबन्धन की कार्यों से लिया है। अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि प्रशासन लक्ष्य प्राप्ति हेतु किया गया सामूहिक प्रयत्न है परंतु यदि यह कला कौशल है तो प्रबंधन के कार्यो की निपुणता से संबंधित होगा।" **हेनरी फेयोल** के अनुसार "यह प्रशासनिक कौशल है जिसकी आवश्यकता परिवार या घर उद्योग व सरकार के प्रबंधन में पढ़ती है। यह प्रशासनिक प्रक्रिया सार्वभौमिक है।"

प्रशासन और लोक प्रशासन में अंतर :

1. प्रशासन एक व्यापक एवं विस्तृत अवधारणा है जबकि लोक प्रशासन इसी का एक घटक है।
2. प्रशासन का संबंध कार्यों के व्यवस्थाकरण से है जबकि लोक प्रशासन एक क्रिया और एक विषय दोनों है।
3. प्रशासन का संबंध क्रिया और प्रक्रिया दोनों से है जबकि लोक प्रशासन नीति निर्माण और क्रियान्वयन से जुड़ा हुआ विषय है।
4. प्रशासन एक सार्वभौमिक क्रिया है जो परिवार समाज और संगठन से संबंधित है जबकि लोक प्रशासन सरकार द्वारा जनहित में की जाने वाली विशिष्ट प्रक्रिया है।
5. प्रशासन निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किया जाने वाला सामूहिक प्रयास है जबकि राज्य की नीतियों निर्णय और लक्ष्यों के अनुरूप जनहित में किया जाने वाला सांगठनिक प्रयत्न लोक प्रशासन है
6. प्रशासन व्यक्तिगत, निजी और सरकारी हो सकता है परंतु लोक प्रशासन का संबंध सदैव केवल सरकारी या सार्वजनिक प्रशासन से ही होता है।

सार्वजनिक एवं निजी प्रशासन (Public and Private Administration) :

सरकारी और निजी प्रशासन शब्दों के माध्यम से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों एक दूसरे के विपरीत स्वरूपों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। यद्यपि दोनों में अनेक समानताएं व समानताएं विद्यमान है तथापि उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण के युग के पश्चात इनके बीच अंतराल समाप्त होता जा रहा है। अब स्वयं सरकारी प्रशासन, निजी प्रशासन के साथ मिलकर कार्य कर रहा है। वह लोगों को राज्य द्वारा प्रदत की जाने वाली आधारभूत सेवाओं की उपलब्धता में निजी प्रशासन को शामिल कर रहा है

अथवा उसका सहयोग ले रहा है। निजी प्रशासन के अनेक कार्मिक सरकारी प्रशासन में और सरकारी प्रशासन से कार्मिक निजी प्रशासन में हस्तानान्तरित हो रहे हैं। यद्यपि अभी भी दोनों का अपना अपना अस्तित्व या पहचान विद्यमान है। लोक प्रशासन और निजी प्रशासन भिन्न है अथवा समान है। इस संदर्भ में अनेक विद्वानों के बीच मतभेद विद्यमान है।

लोक प्रशासन और निजी प्रशासन एक समान होते हैं : थॉमस वुड्रो विल्सन, हेनरी फयोल, मैरी पार्कर फोलेट, मूनै और रैले, लूथर गुलिक और उर्विक तथा सेल्टन जैसे विचारकों की मान्यता है कि निजी प्रशासन और सरकारी प्रशासन में कोई अंतर नहीं होता है। प्रशासन एक कुशलता या दक्षता या कौशल होता है जो सब जगह एक समान रूप से पाया जाता है । प्रबन्धनकीय तकनीक, नियोजन का कौशल, संगठन, पदसोपानीय व्यवस्था, समन्वय बजट इत्यादि सार्वजनिक एवं निजी प्रशासन में समान रूप से प्रयुक्त होते है। आजकल निजी व्यापारिक संगठनों के द्वारा भी सार्वजनिक नियमों एवं विनियमों की अनुपालना की जा रही है। सार्वजनिक एवं निजी सहभागिता के माध्यम से अनेकानेक जन सुविधाओं और आधारभूत संरचनाओं के विकास की नितियों को सार्वजनिक-निजी-सहभागिता के आधार पर लागू किया जा रहा है। जैसे कि दिल्ली मेट्रों, जून, 2015 में आरंभ 100 स्मार्ट सिटीज की विकास योजना, पासपोर्ट सेवा, परिवहन, संचार, बांध, सड़के, विद्युत, वितीय सेवाएं इत्यादि समानान्तर रूप से सार्वजनिक एवं निजी संगठनों के द्वारा उपलब्ध करायी जा रही है। **विल्सन** के अनुसार,''लोक प्रशासन, प्रशासन का विज्ञान है।'' **हेनरी फेयोल** के अनुसार, ''अब हमारे सामने अनेक प्रशासनिक विज्ञान नहीं है अपितु एक ही है जिसे निजी या सरकारी दोनों ही प्रशासन के लिए समान रूप से उपयोग में लिया जा सकता है।'' **उर्विक** की मान्यता है कि, ''जिस प्रकार से सभी लोगों के लिए सभी विषय एक समान होते हैं ठीक उसी तरह से प्रशासन भी सबके लिए एक जैसा ही होता है।''

1. दोनों ही प्रकार के प्रशासन का उद्देश्य संगठन के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है।
2. सरकारी और निजी उद्यमों की कार्यप्रणाली सामान्य तौर पर एक ही प्रारूप में होती है।
3. दोनों ही प्रकार के प्रशासन में योग्यता के आधार पर कार्मिकों का चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति , स्वैच्छिक सेवानिवृति या वीआरएस, एनपीएस पेंशन व्यवस्था विद्यमान है।
4. निजी और सार्वजनिक प्रशासन ने आजकल कार्मिकों का की अदला बदली हो रही है तथा एक दूसरे के कार्मिकों को प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है।
5. दोनों ही प्रकार की प्रशासन में लेखांकन, रिकॉर्ड प्रबंधन, फाइलिंग सिस्टम इत्यादि एक ही पैटर्न पर संचालित होते हैं।
6. दोनों ही प्रकार के प्रशासन में उन्नति के लिए निरंतर बदलाव, अनुसंधान और सुधार की आवश्यकता होती है।

लोक प्रशासन और निजी प्रशासन दोनों भिन्न-भिन्न होते हैं :-

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि लोक प्रशासन और निजी प्रशासन एक समान नहीं होते हैं। इस मान्यता के प्रमुख समर्थक पीटर एफ ड्रकर, हर्बर्ट साइमन, पी एच एपलबी, फैसलर, जोसिया स्टांप और तथा निग्रो हैं। इन विचारकों की मान्यता है कि दोनों ही प्रकार के प्रशासन अपने अपने विशेष लक्षण रखते हैं जिनको नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

पीटर ड्रकर के अनुसार, ''लोक प्रशासन वह निजी प्रशासन में उद्देश्यों, मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व का अंतर होता है।''

हर्बर्ट ए साइमन के अनुसार, ''निजी प्रशासन और सरकारी

प्रशासन में नौकरशाही की प्रवृत्ति , राजनीतिक वातावरण और लालफीताशाही के आधार पर अंतर किया जा सकता है।''
एप्पल बी के अनुसार, ''निजी प्रशासन और सार्वजनिक प्रशासन के बीच अंतर का मुख्य आधार लोक महत्व और प्रभाव, सार्वजनिक जवाबदेयता और राजनीतिक संरचना को माना जा सकता है।''
सर जोसिया स्टांप के अनुसार, ''सार्वजनिक और निजी प्रशासन के बीच एकरूपता, वित्तीय नियंत्रण, जनउत्तरदायित्व और लाभ के स्वरूप के आधार पर अंतर किया जा सकता है।''

1. सार्वजनिक और निजी प्रशासन अपनी प्रकृति, संगठन के स्वरूप, उद्देश्य एवं आकार संबंधी विभिन्नताएं रखते हैं।
2. लोक और निजी प्रशासन के बीच जन उत्तरदायित्व, व्यापारीक इच्छाशक्ति, वित्तीय संसाधनों पारदर्शिता, कार्यकुशलता के आधार पर पर्याप्त असमानताएं होती हैं।
3. दोनों ही प्रकार के प्रशासन के बीच स्थायीत्व, उदारता, लचीलापन, कानून के शासन एवं कर्तव्यों के आधार पर भिन्नता आएं होती हैं।
4. सार्वजनिक और निजी प्रशासन के बीच जन नियंत्रण, जनहित, सुरक्षा और विकास के रूप में भी असमानता होती हैं।

लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions of Public Administration) :
लोक प्रशासन आंग्ल भाषा के दो शब्दों पब्लिक + एडमिनिस्ट्रेशन से मिलकर बना है। जहांँ पब्लिक का शाब्दिक अर्थ लोक या जनता अथवा जनता के लिए प्रशासन से है। इसे जन प्रशासन या सार्वजनिक प्रशासन या सरकारी प्रशासन भी कहा जाता है। अतः **पब्लिक या लोक शब्द सार्वजनिकता अथवा सरकार** का संकेत

देता है। यह आम आदमी के लिए प्रशासन अर्थात् राज्य रूपी संगठन द्वारा जनहित में किए जाने वाले व्यवस्थित एवं व्यापक कार्य का प्रतीक है। सरकार या राज्य या राजनीति संगठन ही एकमात्र ऐसा संगठन है जिसमें सभी आमजन शामिल रहते हैं। जनता राज्य रूपी संगठन की सदस्य होती है जिसे नागरिकता के नाम से जाना जाता है। इस शब्द में निजी या व्यक्तिगत प्रशासन के विपरीत भावार्थ परिलक्षित होता है। सार्वजनिक प्रशासन कदापि व्यक्तिगत अथवा निजी नहीं हो सकता है। लोक प्रशासन के कार्यों में व्यापकता, सार्वजनिकता व लोकहितकारीता की भावना अंतर्निहित होती है परंतु जब राज्य रूपी संगठन से शासन या सरकार की तरफ आगे बढ़ते हैं तो एक नवीन समस्या उत्पन्न होती है। राज्य या शासन की कौन सी क्रियाओं को लोक प्रशासन में शामिल किया जाए और कौन से कार्यों को शामिल नहीं किया जाए?

फ्रांसीसी दार्शनिक विचारक **मोंटेस्क्यू** ने अपनी पुस्तक (The Spirits of The Laws, 1748,AD) के अन्तर्गत त्रिमूर्ति शासन को व्यक्त किया है। उसने सरकार की शक्तियों को तीन शाखाओं में विभाजित करने की वकालत की है। शासन के तीनों अंगों की क्रियाओं को लोक प्रशासन में शामिल किया जाए अथवा केवल कार्यपालिका की क्रियाओं को ही लोक प्रशासन में शामिल किया जाए। यह एक विवादास्पद प्रश्न है। अतः लोक प्रशासन को परिभाषित करना एक चुनौती के समान है। इस संदर्भ में विचारको में भी मतभेद विद्यमान है। प्रशासनिक विचारकों की भिन्न-भिन्न मान्यताओं के आधार पर लोक प्रशासन के संबंध में पारिभाषिक दृष्टिकोण को दो भागों में विभाजित किया गया है। एकीकृत या व्यापक दृष्टिकोण और प्रबंधकीय दृष्टिकोण।

एकीकृत उपागम (Integrated or Integral Approach or View's)**:**

लोक प्रशासन की परिभाषा और अर्थ के संदर्भ में **एकीकृत**

दृष्टिकोण ***(Integral School of Public Administration)*** की मान्यता है कि लोक प्रशासन का कार्य एक विस्तृत कार्य होता है। जहाँ सार्वजनिक नीति को लागू करने के लिए अनेक संगठनों का और सभी स्तर के कार्मिकों का सहयोग अपरिहार्य होता है। इसीलिए लोक प्रशासन का अर्थ जनहित के लिए की जाने वाली सरकार की प्रत्येक क्रिया से और प्रत्येक कार्मिक की भागीदारी से लिया गया है।
एकीकृत दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थकों में लोक प्रशासन के संस्थापक जनक वुड्रो विल्सन, गुडनाउ, एल डी व्हाइट, पिफनर, एफ एस नीग्रो, मार्शल ई. डिमॉक और पर्सी मैकक्विन इत्यादि है। इन सभी विचारकों की मान्यता है कि लोक प्रशासन के अर्थ और परिभाषा तथा क्षेत्र में शासन की सभी क्रियाओं और शासन के तीनों अंगों को शामिल किया जाना चाहिए।
वुड्रो विल्सन के अनुसार, ''लोक प्रशासन विधि या कानून की विस्तृत एवं व्यवस्थित प्रयुक्ति है। विधि की प्रत्येक विशिष्ट प्रयुक्ति प्रशासनिक क्रिया है।''
एल डी व्हाइट के अनुसार, ''सार्वजनिक नीति को लागू करने हेतु किए जाने वाले सभी कार्य लोक प्रशासन के कार्य होते हैं।''
जॉन फिफनर के अनुसार, ''जन सहयोग से संचालित सभी कार्य लोक प्रशासन में शामिल हैं। लोक प्रशासन में सभी कार्य आते है चाहे वह स्वास्थ्य प्रयोगशाला में एक्स रे मशीन का संचालन हो या टकसाल में सिक्कों की ढलाई।''
एफ ए नीग्रो के अनुसार, ''लोक प्रशासन का संबंध सरकार की तीनों शाखाओं और उनकी पारस्परिक संबंध से है।''
मार्शल ई डिमॉक के अनुसार, ''इसका संबंध सरकार के क्या अर्थात् विषय वस्तु से और कैसे अर्थात् प्रबंधन की तकनीक से होता है। इन दोनों का समन्वय ही लोक प्रशासन है।''
पर्सी मैकक्विन के शब्दों में, ''केंद्रीय अथवा स्थानीय सरकार के कार्यों से संबंधित प्रशासन ही लोक प्रशासन होता है।''

प्रबंधकीय दृष्टिकोण (Managerial View's) : इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि लोक प्रशासन एक प्रबंधकीय क्रिया अथवा तकनीक है। इसे संकीर्ण या तकनीकी उपागम के नाम से भी जाना जाता है। **प्रबन्धकीय उपागम** ***(Managerial School of Public Administration)*** के समर्थकों का मानना है कि प्रबंधन के कार्य का संचालन सभी लोग नहीं कर सकते अपितु यह कार्य कुछ लोगों के द्वारा ही संपन्न किया जा सकता है। इसलिए लोक प्रशासन के अर्थ और परिभाषा में केवल प्रबंधकीय क्रियाओं और केवल कार्यपालिका की क्रियाओं को ही सम्मिलित किया जा सकता है। इस उपागम के अनुसार केवल सांगठनिक एवं प्रबन्धकीय गतितिधयां ही लोक प्रशासन के अर्थ को अभिव्यक्त करती है।

इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थकों में लूथर गुलिक, हर्बर्ट साइमन, स्मिथबर्ग, थॉम्पसन, विलोबी, हेनरी फेयोल, एफ एम मार्क्स और पॉल एच एपलबी, आर्डवे टीड, जेम्स डब्ल्यू डेविस, मर्सन इत्यादि है।

लूथर गुलिक के शब्दों में, ''यह प्रशासनिक विज्ञान का वह भाग है जो सरकार की कार्यपालिका शाखा से संबंधित होता है। यह प्राथमिक रूप से कार्यपालिका शाखा से सम्बन्धित है परन्तु कार्य सरकार के द्वारा सम्पादित किये जाते है और प्रशासनिक समस्याएं विधायी और न्यायिक इकाईयों से भी जुडी होती है।''

हर्बर्ट साइमन, स्मिथबर्ग व थॉम्पसन के अनुसार, ''सामान्य प्रयोग में लोक प्रशासन का अर्थ केन्द्रीय, प्रांतीय और स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखाओं की क्रियाओं से है।''

डब्ल्यू एफ विलोबी के शब्दों में, ''व्यापक अर्थ में यह सरकार के सभी कार्यों से संबंधित है परंतु संकीर्ण अर्थ में यह केवल प्रशासनिक शाखा से जुड़ा हुआ है।''

एप्पल बी के शब्दों में, ''नीति निर्माण ही लोक प्रशासन का सार है।''

डेविस के अनुसार, ''लोक प्रशासन को सरकार की कार्यकारी

शाखा के रूप में पहचाना जा सकता है।''

ई एन ग्लेडेन के अनुसार, ''लोक प्रशासन सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित है।''

डी वाल्डों कहते है कि '' लोक प्रशासन राज्य के विषयों या मामलों को लागू करने के रूप में प्रबन्धन की कला और विज्ञान है।''

उपयुर्क्त परिभाषाओं के अलावा कुछ चिंतकों ने दोनों ही उपागमों के समन्वित स्वरूप में लोक प्रशासन के अभिप्राय को स्पष्ट किया है अर्थात्

निकोलस हेनरी का मत है कि ''लोक प्रशासन व्यापक रूप में सिद्धान्त और व्यवहार का मेलजोल है जिसका ध्येय राज्य और समाज के बीच के सम्बन्धों के चिंतन को सर्वोतम बनाना है।'' हेनरी ने लोक प्रशासन को तीन आयामों अभिकरण, जनहित व उपलब्धता (Agency, Interest and Access) से जुडा हुआ माना है।

एफ ए निग्रो व एल जी निग्रों ने लोक प्रशासन को व्यापक स्वरूप में परिभाषित किया है अर्थात् लोक प्रशासन :

''लोक मामलों में यह सहकारी समूह है; यह सरकार के तीनों अगों व उनके पारस्परिक सम्बन्धों से जुडा हुआ है; लोक नीतियों को लागू करने में यह प्रमुख भूमिका का निर्वहन करता है और इसी क्रम में यह राजनीतिक प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा होता है; यह निजी प्रशासन से अनेक भिन्नताएं रखता है; और यह जन सुविधाओं को जनता तक पहुँचाने के लिए असंख्य निजी संगठनों के साथ एसोसिएटेड या जुड़ा हुआ रहता है।''

इस प्रकार से निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है कि राज्य रूपी संगठन लोक प्रशासन का पर्याय होता है।

लोक प्रशासन की प्रकृति

(Nature pf Public Administration)

लोक प्रशासन की प्रकृति (Nature of Public Administration) :
प्रकृति शब्द का सामान्य अर्थ विषय के संदर्भ में उसके स्वभाव से होता है। लोक प्रशासन की प्रकृति का मतलब इसके द्वारा सम्पादित की जाने वाली गतिविधियों और प्रकार्यों (Types of activities and Functions) के स्वरूप या प्रकार से है। अतः किसी विषय का स्वभाव उसके अंतर्गत अध्ययन की जाने वाली विषय सामग्री के स्वरूप को या उसकी संरचना को अभिव्यक्त करता है। यही स्वरूप उस विषय की प्रकृति का अर्थात् विज्ञान या कला या दर्शन का निर्धारण करता है। प्राकृतिक विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान की विषय वस्तु में बहुत अधिक अंतर होता है। लोक प्रशासन को भी समाज विज्ञान की श्रेणी में शामिल किया गया है क्योंकि इसकी विषय वस्तु 'मानवीय समाज और उसके प्रशासनिक व्यवहार' से संबंधित है।
लोक प्रशासन की प्रकृति के बारे में विवेचन करने पर हमारे सामने दो तरह की मुख्य समस्याएं आती हैं अर्थात् प्रथम तो लोक प्रशासन का एक क्रिया के रूप में और एक विषय के रूप में विद्यमान होना और दूसरी समस्या लोक प्रशासन के अन्तर्गत सरकार के तीनों अंगों की क्रियाओं का अध्ययन अथवा कार्यपालिका की क्रियाओं के अध्ययन अर्थात् व्यापक और संकीर्ण दृष्टिकोण की अवधारणा का विद्यमान होना।
इसी कारण से कुछ विचारको ने लोक प्रशासन को कला के रूप में, कुछ ने साहित्य के रूप में, कुछ ने दर्शन के रूप में और कुछ ने विज्ञान के रूप में स्वीकार किया है। इसे निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. लोक प्रशासन एक कला है (Public Administration is an Art) : किसी भी कार्य को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से संपन्न करने का कौशल ही कला है। यह कौशल जन्मजात भी होता है और इसे अभ्यास से अर्जित भी किया जा सकता हैं। यदि हम एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन पर विचार करें तो निश्चित ही वह एक सुंदर कला है जो प्राचीन काल या मानवीय सभ्यताओं की उत्पत्ति से ही चली आ रही है। इसे सम्राट अशोक, कौटिल्य, कनिष्क, हर्षवर्धन, अकबर, सरदार पटेल और बिस्मार्क इत्यादि ने इसी कला या कौशल का उपयोग कर चमत्कारिक कार्य किर्य है। आधुनिक राष्ट्र राज्य जो कि प्रशासनिक राज्य भी कहे जाते हैं। जहाँ लोकतंत्र में विशाल नौकरशाही कार्यरत हैं। वास्तव में लोक प्रशासन एक कला के रूप में ही दिखाई पड़ता है। प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों को संसाधनों में परिवर्तित करने का कौशल एक कला है। मानवीय संसाधन अपने प्रबंधन कला के द्वारा ही अन्य साधनों को उपयोगी बना पाता हैं। लोक प्रशासन भी कला की इन विशेषताओं को अपने में अभिलक्षित करता है। इसीलिए उसे कला के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। यह मानवीय प्रबंधन की कुशलता या कौशल वाली एक कला है जो मानवीय क्रियाओं को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के अनुरूप डालती है।

ऑर्डवे टीड (Ardway Teed) के शब्दों में, ''प्रशासन एक सुंदर कला है। प्रशासन का कार्य नैतिक कार्य होता है और प्रशासक इसके नैतिक अभिकर्ता होते हैं।''

यद्यपि कला के जन्मजात लक्षण होते हैं परंतु इसे अभ्यास द्वारा भी सीखा जा सकता है।

ऑर्डवे टीड ने प्रशासन को न केवल कला अपितु **'ललित कला' (Fine Art)** के रूप में अभिव्यक्त किया है। उसने बताया है कि जिस प्रकार नाट्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला इत्यादि ललित कलाएं है। ठीक वैसे ही लोक प्रशासन भी एक

ललित कला है।
टीड के अनुसार, ''यदि मिट्टी या रंगों से बनी कृति रंगोली है, यदि स्वरों की आपसी संगुफन के उतार-चढ़ाव का नाम संगीत है, यदि शब्दों व भावों का संचय साहित्य है। यदि ये सब ललित कलाएं हैं तो किसी एक ध्येय के लिए व्यक्तियों व समूहों के संगठित संबंधों को एक दूसरे के समीप लाने वाला प्रशासन मिश्रित स्वरूप में उच्च कोटि की ललित कला है।''
रोबोट टी गोलमव्हिस्की (Golembiewski) के शब्दों में, ''लोक प्रशासन विषय का संबंध **लोकस (Locus)** अर्थ कहाँ? का प्रतीक है और **फोकस (Focus)** का अर्थ क्या? से है। लोकस के रूप में यह राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र और इतिहास के साथ रहा है जबकि फोकस के रूप में यह लोक नीतियों की अपेक्षा प्रशासनिक तकनीकों पर अधिक बल देने वाला विषय है।

2. लोक प्रशासन एक दर्शन है (Public Administration is a Philosophy) : आधुनिक राष्ट्र राज्य का प्रशासकीय स्वरूप मानवीय जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया को प्रभावित करता है। लोक प्रशासन एक जीवन दर्शन के समान संपूर्ण सामाजिक जीवन तक विस्तृत हो गया है। लोक प्रशासन को एक दर्शन होना भी चाहिए क्योंकि वह मनुष्यों से संबंधित है जो ध्येयपूर्ण कार्य करने और मूल्य निर्धारित करने की क्षमता रखते हैं। विज्ञान द्वारा मौलिक प्रयोजन का पता नहीं लगता है। अतः इसके लिए दर्शन की आवश्यकता होती है। लोक प्रशासन का स्वरूप उस पर्यावरण के साथ परिवर्तित हो जाता है जिसमें वह कार्य करता है जैसे कि यूनानी नगर राज्यों से आधुनिक राष्ट्र राज्यों के राजनीतिक परिवेश ने इसे पूर्ण तरह बदल दिया है। **ग्राहम बालास (Graham Wallas)** ने आधुनिक समाज को एक **'महतर समाज' (Scavenger Society)** अर्थात् मैला ढोने वाले समाज की संज्ञा दी है। जहाँ पर अंतः निर्भरता विनाशकारी शक्तियों या परमाणु ताकत या कृत्रिम वायरस जैसी ताकतों के साथ बनी हुई है। अतः इन शक्तियों के सामने व्यक्ति स्वयं को

असहाय और असुरक्षित महसूस करता है। तुरंत कभी भी कोई भी परिवर्तन हो सकता है। यदि विज्ञान एवं तकनिकी रूपी समाज को समुचित रीति से नियमित व नियंत्रित नहीं किया गया तो वह **दैत्य समाज (Monster)** का रूप ले लेगा।

चार्ल्स बीयर्ड के अनुसार, ''सभ्य शासन का अथवा मेरे विचार से खुद सभ्यता का भी भविष्य हमारी इस क्षमता पर निर्भर करता है कि हम प्रशासन को एक ऐसे विज्ञान, दर्शन और व्यवहार के रूप में विकसित कर पाते हैं या नहीं जो सभ्य समाज के कार्यों को पूर्ण करने में सक्षम हो।''

चार्ल्स बीयर्ड के अलावा अमेरिका की सीआई बरनार्ड, ब्रिटेन के जोफने बिचनर्ज, पीटर्ज, साईमन, थाम्पसन, लैसम इत्यादि ने प्रशासन को दर्शन के रूप में अभिव्यक्त किया है। प्रशासन के दर्शन पर पहली पुस्तक 1958 में मार्शल डिमाक के द्वारा लिखी गई जिसका शीर्षक **'ए फिलोसोफी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन : टुवार्ड्स क्रिएटिव ग्रोथ' 1958** है।

मार्शल के शब्दों में ''आज लोक प्रशासन का कार्य व क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि प्रशासन का दर्शन ही संपूर्ण जीवन दर्शन जैसा दिखाई देने लगा है।''

''नैतिक दर्शन ही मनुष्य व संस्थानों की आवश्यकताओं को समन्वित एवं संतुलित करता है।''

पीटर ड्रकर के शब्दों में ''व्यक्तियों और संस्थाओं के मूल्यों को समन्वित करना ही प्रशासन का उच्चतम सिद्धांत है। यही दर्शन व नैतिकता का क्षेत्र है।''

क्रिस्टोफर हॉकिंग (Cristopher Hodgkinson) ने अपनी पुस्तक 'टुवार्डस ए फिलोसोफी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन'1978 में इसे तीन भागों में विभाजित किया है अर्थात तथ्य या तर्क, मूल्य और दर्षन। उसके अनुसार प्रशासन मानवीय जीवन और व्यवहार तक विस्तृत हो गया है। प्रशासन का संबंध मनुष्यों से है और मानवीय तत्व इसका केंद्र बिंदु है। यह प्रशासक व प्रशासन तथा प्रशासक व प्रशासित के रूप में विभाजित है।

3. लोक प्रशासन एक विज्ञान है (Public Administration is a Science) :

लोक प्रशासन विज्ञान है या नहीं : लोक प्रशासन एक विज्ञान है अथवा नहीं इस संदर्भ में विचारों में मतभेद है। सामान्यतया विज्ञान शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से प्राकृतिक विज्ञानों के लिए किया जाता है। उनकी विषय सामग्री अधिक वैज्ञानिक होती है परंतु सामाजिक विज्ञान मानवीय व्यवहार से जुड़ा हुआ विज्ञान है। अतः वे प्राकृतिक विज्ञान के समान तो नहीं हो सकते है फिर भी विज्ञान की तरह हो सकते हैं। लोक प्रशासन विज्ञान है या नहीं? इस संबंध में तीन दृष्टिकोण है। लोक प्रशासन पूर्णतया या विशुद्ध विज्ञान है। लोक प्रशासन आंशिक विज्ञान या विज्ञान है और लोक प्रशासन विज्ञान नहीं है। सामान्यतया हम कह सकते है कि वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा ज्ञान अर्जित करने का तरीका किसी विषय को विज्ञान के नजदीक ले जाता है। विज्ञान की प्रकृति वाले विषय में सामान्यतया अध्ययन की प्रणाली के चार मुख्य चरण होते है अर्थात् **निरीक्षण (Observation) सामान्य करण (Generalisation) व्याख्या (Explanation) और भविष्यवाणी तथा निर्देशन (Prediction and Direction)** शामिल होते हैं।

लोक प्रशासन पूर्ण या विशुद्ध विज्ञान है : इसके प्रमुख समर्थक थामस वुड्रो विल्सन, विलोबी, मर्सन, बर्नार्ड, ग्रिफिथ, ग्लेन नेग्ली और रोबर्ट ए डाहल इत्यादि हैं। विल्सन के अनुसार ''लोक प्रशासन प्रशासन का विज्ञान है।'' डब्ल्यू एफ विलोबी के अनुसार, ''प्रशासन में भी विज्ञान की विशेषता रखने वाले आधारभूत सिद्धांत हैं।'' जी एफ मर्सल के शब्दों में, ''लोक प्रशासन नीति निर्माण, व्यापार और प्रशासन से पृथ्थक् एक विज्ञान है।'' चार्ल्स ए बीयर्ड के अनुसार ''लोक प्रशासन का स्वरूप पूर्ण विज्ञान के समान है।'' ग्रिफिथ के अनुसार '' एक चिकित्सक और अभियंता के समान

प्रशासक भी वैज्ञानिक ढंग से प्रशासन चला सकता है।"
ग्लेन नेग्ली के अनुसार "लोक प्रशासन विज्ञानों के सोपानों में सर्वोच्च है।"
डाहल के अनुसार "जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन को तुलनात्मक नहीं बनाया जाता है तब तक लोक प्रशासन को विज्ञान मानने का दावा खोखला है।"

लोक प्रशासन आंशिक विज्ञान है :
लोक प्रशासन की प्रकृति के संदर्भ में इस अवधारणा के प्रमुख समर्थक रिग्स, फिफनर, टेलर, हर्बर्ट साइमन व उर्विक हैं। इनकी मान्यता है कि लोग प्रशासन वर्तमान में तो विज्ञान नहीं है परंतु भविष्य में वह विज्ञान बन जाएगा। वैज्ञानिक प्रबंधन आंदोलन के पिता एफ डब्ल्यू टेलर ने कहा है कि नवीन प्रबंधन का प्रथम कर्तव्य है कि वह मनुष्य के कार्य के प्रत्येक तत्व के लिए एक ऐसे विज्ञान का विकास करें जो अंधानुकरण की पुरानी पद्धति का स्थान ले सकें।

लोक प्रशासन विज्ञान नहीं है :
कुछ प्रशासनिक विचारकों की मान्यता है की लोक प्रशासन न तो विज्ञान है और न ही वह विज्ञान बन सकता है। इस विचार के प्रमुख समर्थक मॉरिस, कोहेन, ऐसी फाइनर, वाल्डों एवं ग्राहाम वालास इत्यादि है।
इस अवधारणा के अनुसार लोक प्रशासन विज्ञान नहीं है क्योंकि इसमें सर्वमान्य सिद्धांतों का अभाव होता है। यह मानवीय स्वभाव और व्यवहार से प्रभावित होता है। इसमें वैज्ञानिक पद्धतियों का अभाव है। इसकी प्रयोगशाला संपूर्ण राज्य और समाज है। वालास के शब्दों में "लोक प्रशासन में विज्ञान जैसे सिद्धांत अभी तक केवल कल्पनाएं मात्र हैं।"
इन तीनों ही दृष्टिकोण पर विचार करने पर हम तुलनात्मक रूप से निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि लोक प्रशासन प्राकृतिक विज्ञान की भांति विज्ञान तो नहीं है और ना ही हो सकता है। फिर

भी वह समाज विज्ञानों की श्रेणी का एक विज्ञान है। लोक प्रशासन भी राजनीति विज्ञान की तरह एक विज्ञान है।

लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र
(The Scope of Public Administration)

लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र (Scope of Public Administration) : लोक प्रशासन के अर्थ एवं प्रकृति को लेकर जिस तरह से प्रशासनिक विचारों में मतभेद विद्यमान हैं। ठीक उसी तरह से इसके विषय क्षेत्र को लेकर भी विद्वानों में मतभेद बने हुए हैं। किसी अनुशासन के विषय क्षेत्र से हमारा अभिप्राय है उसके अंतर्गत अध्ययन की जाने वाली विषय वस्तु या विशेष सामग्री से है अर्थात् विषय की पहुंँच अथवा उसके अध्ययन की सीमाएं। लोक प्रशासन एक गतिशील और विकास की ओर अग्रसर नवीनतम विषय है। विषय क्षेत्र को लेकर भी दो समस्याएं सामने आती हैं जो अर्थ व परिभाषाओं से भी जुड़ी हुई थी। अर्थात कौन सी क्रियाओं का अध्ययन करें। केवल प्रबंधन की क्रियाओं का अथवा सभी क्रियाओं का। इसी तरह दूसरी समस्या है कि लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगों की गतिविधियों के अध्ययन को सम्मिलित किया जाए या केवल कार्यकारी शाखाओं की क्रियाओं के अध्ययन को शामिल किया जाए। लोक प्रशासन में वे सभी सार्वजनिक कार्य शामिल है जो समाज में निष्पादित होते हैं। इस आधार पर यदि हम विचार करें तो लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र को लेकर निम्न छः दृष्टिकोण विद्यमान हैं अर्थात्

1. **व्यापक उपागम;**

2. **संकुचित उपागम;**
3. **लोक कल्याणकारी उपागम ;**
4. **विषय वस्तुउपागम;**
5. **पोस्डकॉर्ब उपागम ;**
6. **आधुनिक उपागम।**

1.व्यापक या समन्वित उपागम : इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में सभी प्रकार की सामान्य सार्वजनिक क्रियाओं को और शासन के तीनों अंगों की क्रियाओं को शामिल किया जाता है। यह मांटेस्क्यू के त्रिमुर्ति सिद्धान्त की अवधारणा से दूर तीनों अंगों को एक दूसरे से जोड़कर देखता है तथा इन अंगों के संबंधित प्रशासनिक कार्यों के निर्वहन प्रक्रिया और सहयोग को शामिल करता है। तीनों ही अंगों का अपना-अपना प्रशासनिक स्वरूप होता है। न्यायपालिका के निर्णय व आदेश भी स्थायी कार्यपालिका अथवा राजनीतिक कार्यपालिका के स्वरूप और कार्यप्रणाली को प्रभावित करते हैं। इसी तरह से व्यवस्थापिका के द्वारा निर्मित नियम, लिए गए निर्णय भी प्रशासन को प्रभावित करते हैं। इस दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक वुड्रो विल्सन, गुडनाउ, एल डी व्हाइट, पिफनर, एफ एस नीग्रो, मार्शल ई डिमॉक और पर्सी मैक्विन इत्यादि है।

2. **संकुचित उपागम :**

इस उपागम के समर्थकों की मान्यता है कि लोक प्रशासन की से क्षेत्र में केवल प्रबंधन की क्रियाओं और कार्यपालिका से संबंधित कार्यों को ही शामिल किया जाना चाहिए। प्रशासन एक कला या कौशल है जो सबके पास नहीं होता है। कानूनों व नीतियों को क्षेत्र में लागू करने से संबंधित कार्य ही लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में शामिल हो सकते हैं। क्षेत्रीय इकाई के रूप में कार्यपालिका ही कार्य करती है। इसके समर्थक लूथर गुलिक, हर्बर्ट साइमन, स्मिथबर्ग, थॉम्पसन, विलोबी, हेनरी फेयोल, एफ

एम मार्क्स और पॉल एच एपलबी, आर्डवे टीड, जेम्स डब्ल्यू डेविस, मर्सन इत्यादि है।

3. लोक कल्याणकारी उपागम : सामान्य रूप से यह व्यापक उपागम का ही समर्थन करता है। राज्य का उद्देश्य यूनानी नगर राज्य के इतिहास से लेकर अब तक जनता का हित करना ही रहा है। जैसा कि राजनीति विज्ञान के पिता अरस्तू ने कहा भी है कि ''राज्य का उदय सद् जीवन के लिए हुआ है और सह इस सद् जीवन ;ळववक स्पमिद्ध को बनाए रखने हेतु बना हुआ है।'' राज्य प्रशासन अर्थात सरकारी प्रशासन या सार्वजनिक प्रशासन का उद्देश्य जनता का हित करना ही होता है। वह आम लोगों के जीवन का सरल, आसान व सुगम बनाने के लिए अनेक जनहितकारी कार्य करता है। ब्रिटिश चिंतक लॉर्ड विलियम बेवरीज की 'बेवरीज रिपोर्ट' 1943 से कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का उदय माना जाता है। जिसमें पाँच मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व राज्य को दिया गया। इसी कारण से ब्रिटेन को कल्याणकारी राज्य की जन्मस्थली कहा जाता है। अतः लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र में राज्य द्वारा किए जाने वाले लोक कल्याणकारी कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। इस आधार पर लोक प्रशासन के विषय वस्तु बहुत व्यापक स्वरूप वाली हो जाती है। आज लोक कल्याणकारी राज्य एक प्रशासी या प्रशासनिक राज्य के रूप में पहचान रखने लगा है। ऐसा राज्य जो व्यक्ति के लिए पालना गृह से लेकर उसके कब्रगाह के बाद तक भी उसके लिए कार्य करता है। अतः उसकी सभी क्रियाएं लोक प्रशासन का भाग होनी चाहिए इसके समर्थक एलडी वाही कंट्रोल इत्यादि हैं। इस उपागम को 'लोकनीति उपागम' के नाम से भी जाना जाता है। यह आदर्शवादी दृष्टिकोण भी कहलाता है।

4. पोस्डकॉर्ब उपागम ***(POSDCoRB View's)*** **:** जहांँ कल्याणकारी उपागम विस्तृत उपागम का समर्थन करता है वही पोस्डकॉर्ब उपागम संकीर्ण उपागम का पक्षधर है। इस

दृष्टिकोण की मूल मान्यता है कि प्रशासन विशिष्ट लोगों का कार्य होता है जिसे संपन्न करने के लिए विशेष तकनीक होती हैं। प्रशासन का कार्य इन विशेष तकनीकों के माध्यम से ही कार्या का सम्पादन करनार होता है। अतः लोक प्रशासन के क्षेत्र में केवल प्रबंधन के कार्यो और इनको पूर्ण करने वाली इकाइयों के अध्ययन को शामिल किया जा सकता है। इस उपागम के प्रतिपादक लूथर गुलिक हैं। इसके अन्य समर्थकों में हेनरी फेयोल विलोबी पर्सी मैक्वीन, डोनेल, उरविक इत्यादि है।
ब्रिटिश विचारक **पर्सी मैकक्वीन (Percy MC Queen)** के द्वारा लोक प्रशासन के क्षेत्र को बहुत ही सरल और संचित स्वरूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उसके अनुसार हम लोग प्रशासन के विषय क्षेत्र में केवल तीन तत्वों को शामिल करते हैं अर्थात् मानवीय साधन, प्राकृतिक संसाधन और विधि या तकनीक अर्थात साधन को संसाधन में परिवर्तित करने के तरीका।
फ्रांसीसी खान अभियंता हेनरी फेयोल का विचार है कि किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिए उद्देश्य की प्रकृति की पहचान करना और फिर उसी के अनुरूप लक्ष्य प्राप्ति के साधनों का पता लगाना अर्थात तकनीक। ऐसा करने से भावी कार्य की योजना बन जाती है जो लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है। उर्विक भी फेयोल के इसी विचार का समर्थन करते हैं। अतः किसी भी संगठन के पांच प्रमुख कार्य होते हैं। इन कार्यों को लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है। इसे **हेनरी फेयोल का पोकोक (POCCOC) अवधारणा** के नाम से जाना जाता है अर्थात् नियोजन (Planning) संगठन (Organising) आदेश (Commanding) समन्वय (Coordinating) और नियंत्रण (Controlling) ये सभी श्रेणियां परस्पर एक दूसरे से संबंधित होती है। ऐसा कार्य निश्चित रूप से प्रबंधन का ही कार्य हो सकता है।
लोक प्रशासन के आरंभिक अमेरिकी विचारको पर व्यापारिक संगठनों के विचारों का काफी प्रभाव था। परंतु विलोबी जैसे

विचारको ने यह अनुभव किया कि हेनरी फेयोल व उसके अनुयायियों का नजरिया काल्पनिक व संकीर्ण था जिस कारण से लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं को इसके विशेष क्षेत्र से दूर रखा गया। अतः इस दृष्टिकोण में उचित संशोधन करने का सर्वप्रथम प्रयास विलोबी के द्वारा किया गया। उसने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' 1927 के अंतर्गत लोक प्रशासन की विषय वस्तु को पांच भागों में विभाजित किया अर्थात् सामान्य प्रषासन, संगठन, कार्मिकों के प्रबन्धन, भौतिक साधन व संभरण तथा वित। यह पोकोक से आगे का उपागम है जिसने पोस्डकॉर्ब उपागम की पृष्ठभूमि को तैयार किया। **गुलिक एवं उर्विक के द्वारा 'पेपर्स आन दि सांइस ऑफ एडमिनिस्टेशन' 1937** के अन्तर्गत इस पोस्डकॉर्ब उपागम विवेचन किया है। यदि हमारे सामने यह प्रश्न आये कि मुख्य कार्यकारी के कार्य क्या है? और वह कार्य कैसे करे? तो इसका जबाव होगा **पोस्डकॉर्ब।** अमेरिकी विचारक **लूथर गुलिक ने** लोक प्रशासन के क्षेत्र में शामिल की जाने वाली विषय वस्तु या प्रशासनिक क्रियाओं को वर्णों या अक्षरों के रूप में स्पष्ट किया है। पोस्डकॉर्ब का प्रत्येक वर्ण प्रशासनिक कार्य और उस कार्य को पूर्ण करने की प्रबंधकीय तकनीक का प्रतिनिधित्व करता है। यह सूत्र सभी संगठनों में एक समान रूप से लागू होता है। भले ही वह सरकारी संगठन हो या निजी संगठन। प्रशासन प्रबंधन का कार्य अथवा कौशल है जिसकी आवश्यकता सबको ही पड़ती है। गुलिक ने सभी प्रकार के संगठनों में कार्यों को पूर्ण की जाने वाली सात तकनीकों को महत्वपूर्ण माना है। प्रशासनिक तत्वों का समूह है जिसका प्रत्येक वर्ण प्रशासन की तकनीक का प्रतिनिधित्व करता है। अमेरिकी प्रशासनिक विचारधारा इन अक्षरों से निर्मित क्रियाओं के आसपास ही विचरण करती है।

1. नियोजन (Planning) : सुपरिभाषित एवं निर्धारित आगामी लक्ष्यों की पूर्ति हेतु उपलब्ध

सीमित संसाधनों का पूर्ण एवं कुषलतम उपयोग करने की योजना का निर्माण करना ही नियोजन होता है। नियोजन लक्ष्य तक पहुँच आसान बना देता है।

2. संगठन (Organising) :
किसी भी संगठन में किए जाने वाले कार्य शक्ति संरचना एवं स्वरूप को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप में समन्वित करना संगठन का कार्य व तकनीक है। संगठन कार्मिकों के सामुहिक प्रयास का समुह होता है।

3. कार्मिक (Staffing) :
किसी भी संगठन के संचालन में कर्मचारियों की सबसे बड़ी भूमिका होती है। मानवीय संसाधन ही अन्य साधनों को उपयोगी अथवा संसाधन बनाता है। इसलिए प्रत्येक संगठन में कार्मिकों का प्रबंधन अर्थात भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति इत्यादि महत्वपूर्ण कार्य होते हैं

4. निर्देशन (Directing):
संगठन का संचालन कार्मिकों के प्रबंधन से जुड़ी हुई अवधारणा है। जहाँ संगठन का नेतृत्व कर्ता अथवा उच्च कार्मिकों द्वारा अधीनस्थों का निर्देशन किया जाता है। इससे मानव शक्ति का उचित नियोजन संभव हो जाता है और संगठन अपने लक्ष्यों व ध्येय के अनुरूप कार्य करने में सफल हो पाता है।

5. समन्वय (Coordinating) :
संगठन को किसी निश्चित उद्देश्य की ओर संचालित करने के लिए विभिन्न इकाइयों, विभागों, उपविभागों, उप संगठनों व कर्मचारियों के बीच समन्वय स्थापित करना होता है। इसके अभाव में इस संगठन में अव्यवस्था, संघर्ष और जटिलता उत्पन्न हो जाती है।

6. प्रतिवेदन (Reporting):
किसी भी संगठन में कार्य की स्थिति, सफलता-असफलता के संबंध में निर्धारित समय पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना बहुत आवश्यक होता है। प्रत्येक कार्मिक अर्थात् उच्चस्थ व अधीनस्थ को अपना प्रतिवेदन देना होता है ताकि उस पर अग्रिम कार्यवाही

अथवा निर्णय किया जा सके। कार्य संबंधी निरीक्षण, अनुसंधान और अभीलेखन ही प्रतिवेदन होता है।

7. वित्तीय प्रशासन (Budgeting) : इसे बजटिंग के नाम से भी जाना जाता है। किसी भी संगठन में संचालन का वित व्यवस्था पर निर्भर होता है। अतः उसके आय-व्यय का संपूर्ण संकलन, अभिलेखन रखना एक तकनीक है। इस तरह से यह उपागम तकनीकों व प्रशासन के कार्य क्षेत्र को स्पष्ट करने करता है। इन तकनीकों की आवश्यकता प्रबंधन या प्रशासन के सभी क्षेत्रों में एक जैसी होती है। संगठन का उद्देश्य भले ही कुछ भी हो वे क्रियाएं अनिवार्य होती हैं। स्वंय गुलिक ने 1971 में इस दृष्टिकोण में एक नया **आठवां तत्व ई-इवोल्यूशन (Evaluation)** मूल्यांकन को जोड़ा है अर्थात् अब यह **पोस्डईकार्ब (POSDECoRB**) के रूप में जाना गया। लोक प्रशासन के इस दृष्टिकोण का अमेरिकी प्रशासन में व्यापक प्रभाव रहा है अतः आलोचनाओं से भी सुरक्षित नहीं रह पाया। **लेविस मेरियम के अनुसार पोस्डईकार्ब** दृष्टिकोण संकुचित उपागम है जो केवल प्रबंध की क्रियाओं को शामिल करता है **अतः यह स्वेच्छाचारी काल्पनिक और संकुचित है यह दो फल को वाली कैंची के समान है जिसकी एक फलक पर विषय वस्तु और दूसरी फलक पर तकनीक होती है।" वाकर के अनुसार "सैद्धान्तिक प्रशासन + प्रायोगिक प्रशासन + मानवीय संबन्ध। लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र प्रशासन के सिद्धांतों व अनुप्रयुक्त सिद्धांतों में विभाजित है।"**

5. विषय वस्तु संबंधी उपागम *(The Subject Matter View)* : इस दृष्टिकोण का उदय पोस्डकॉर्ब दृष्टिकोण के प्रतिक्रिया स्वरुप हुआ है। गुलिक का दृष्टिकोण केवल प्रशासनिक कार्यों में तकनीकों का ही अध्ययन करना है जोकि न तो संपूर्ण प्रशासन है और न ही इसका महत्वपूर्ण भाग है। इन प्रबंधन की क्रियाओं में तकनीकों की अपेक्षा विषय वस्तु का या सार अर्थात जनता को

प्रशासन द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाएं महत्वपूर्ण है। इन तकनीकों उपयोग किसके लिए किया जाए और कौन से कार्य हेतु अर्थात कार्य के अनुरूप तकनीक को अपनाया जाए। इसे सेवा दृष्टिकोण भी कहा जाता है।

6. आधुनिक उपागम ***(Modern Approach) :*** इस दृष्टिकोण के अनुसार संकीर्ण दृष्टिकोण लोक प्रशासन के विकास को अवरुद्ध करने वाला मार्ग है। यदि एक विषय व क्रिया के रूप में इसे आगे बढ़ाना है तो इसमें प्रशासनिक सिद्धांतों और प्रायोगिक प्रशासन दोनों को शामिल करना होगा। लोक प्रशासन नवीनतम, गतिशील और विकसित होता विषय है जिसमें मानवीय जीवन के सभी पक्ष प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। उसके बिना जीवन का संचालन ही संभव नहीं है। वह ग्राम पंचायत अथवा वार्ड सभा के छोटी से संगठन से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे बडे संगठन तक कार्य करता है अथवा विवाह पंजीकरण, जन्म पूर्व पंजीकरण या गर्भवती महिलाओं का नामांकन, जन्म प्रमाण पत्र से लेकर मृत्यु प्रमाण पत्र तक जारी करना भी उसी का कार्यक्षेत्र है। यह पालनागृह से समषान घाट तक कार्य करने वाला प्रशासनिक राज्य है। आधुनिक विज्ञान व तकनीकी युग में उसका कार्यक्षेत्र और भी अधिक मजबूत हो गया है। अब तो राष्ट्रीय सीमाएं भी इसके आगे छोटी होने लगी है। उसका विषय क्षेत्र मानवीय जीवन की सभी गतिविधियों तक विस्तृत हो गया है। भले ही वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण सम्बन्धी, तकनीक सम्बन्धी या अन्य किसी क्षेत्र से सम्बन्धित हो राज्य या लोक प्रशासन के दायरे या नियंत्रण से बाहर नहीं हो सकती है। निजी संगठन एवं अभिकरण कदापि राज्य से उपर नहीं हो सकते है।

लोक प्रशासन की मुख्य विशेषताएं
(The Major Characteristics of Public Administration)

1. लोक प्रशासन को सामान्य रूप से नौकरशाही के पर्याय के रूप में जाना जाता है जो कि एक व्यावसायिक, प्रशिक्षित, दक्ष व कुशल तथा गैर राजनीतिक संस्था के रूप में राज्य की जिम्मेदारियों का निर्वहन करती है।
2. लोकतांत्रिक राज्य व इसकी राजनीतिक प्रणाली इसके उद्देश्यों व क्षेत्र का निर्धारण करती है। प्रत्यक्ष रूप से शासन प्रणाली का संचालन नौकरशाही के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश के अंतर्गत किया जाता है। लोक प्रशासन राज्य के लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन है, साध्य नहीं।
3. लोक प्रशासन को सामान्य रूप से शासन की कार्यकारी शाखा के रूप में जाना जाता है लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह केवल कार्यकारी शाखा से ही जुड़ा हुआ है क्योंकि कार्यकारी प्रशासन, विधायी प्रशासन और न्यायिक प्रशासन में अंतर संबंध पाए जाते हैं। शासन के अंग राज्य के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सामूहिक प्रयास करते हैं। इसीलिए लोक प्रशासन लोक विषयों का प्रबंधन करने वाली एक जटिल व्यवस्था बन गया है।
4. परंपरागत रूप से लोक नीतियों के क्रियान्वयन में लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है परंतु

यह लोग नीतियों के निर्माण में भी प्रभावी भूमिका निभाता है।

5. निजी प्रशासन और लोक प्रशासन के बीच विशेष रूप से अंतर पाया जाता है यद्यपि कार्यप्रणाली नवप्रवर्तन, रणनीति, संसाधनों के संदर्भ में दोनों ही समान रूप से प्रयास करते हैं परंतु लोक प्रशासन सदैव जन हित में ही कार्य करता है।
6. लोक प्रशासन सिद्धांत और व्यवहार के मध्य अंतः संबंध स्थापित करने वाला अनुप्रयोग है। इसीलिए समाज विज्ञान की सभी शाखाओं का ज्ञान समाज की व्यवहारिक समस्याओं का निदान करने में लोक प्रशासन विशिष्ट सहायता करता है।
7. यह एक कला और विज्ञान है।
8. यह एक गतिशील और मानवीय सभ्यता को जिंदा बनाए रखने वाली अवधारणा है।
9. यह सक्रिय रूप से आम जनता तक सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए निजी संगठनों की सहायता लेता है और उनके साथ जुड़ा हुआ रहता है।

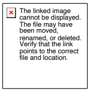

लोक प्रशासन का महत्व या उपयोगिता

(Significance of Public Administration)

लोक प्रशासन 19वीं शताब्दी का नवीनतम विषय है जिसका अध्ययन शताब्दियों तक राजनीति विज्ञान के साथ होता रहा है। आधुनिक राष्ट्र राज्य जिनका स्वरुप कल्याणकारी है उसके द्वारा आज अपने नागरिकों के लिए बड़े स्तर पर जनहित के कार्य किए जा रहे हैं। लोक प्रशासन का महत्व प्रत्येक शासन व्यवस्था में सदैव बना रहा है भले ही वह राजतंत्र हो या कुलीन तंत्र या लोकतंत्र या सैन्य तंत्र। वह सभी शासन प्रणालियों में सदैव विद्यमान रहता

है। यह मानवीय जीवन के लिए किए जाने वाले कार्यों से जुड़ा हुआ विज्ञान है जो सरकार और व्यक्ति की बीच की औपचारिक संबंधों को अभिव्यक्त करता है। आज संपूर्ण मानवीय जीवन ही लोक प्रशासन के क्षेत्र और कार्यों में शामिल हो गया है। अब मानवी जीवन का कोई ऐसा पक्षी होता नहीं है जो लोक प्रशासन से दूर रह गया हो चार्ल्स ई डिमाक के शब्दों में प्रशासन से अधिक कोई अन्य महत्वपूर्ण विषय नहीं हो सकता है यह हमारी सभ्यता का भविष्य बनाए रखेगा अथवा इस सभ्यता का भविष्य इस बात पर निर्भर होगा कि लोक प्रशासन का दार्शनिक वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक स्वरूप कितना विकसित होता है आधुनिक कल्याणकारी राज्य में जहां विज्ञान और तकनीक ने बहुत अधिक उन्नति कर ली है ऐसी स्थिति में लोक प्रशासन के महत्व को हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझ सकते हैंः-

1. लोक प्रशासन मानवीय सभ्यता की सुरक्षा का उपकरण है : यह एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन मानवीय सभ्यता की उत्पत्ति के साथ जुड़ा हुआ है। यह प्राचीन राजतंत्र प्रणालियों से लेकर आधुनिक लोकतांत्रिक वैश्विक प्रणालियों के साथ जुड़ा हुआ विषय है। प्राचीन काल से लेकर अब तक इसके स्वरूप में व्यापक और मौलिक परिवर्तन आ गया है परंतु आज भी इस विकसित मानवीय समाज में जिसे ग्राहाम वालास ने महतर समाज (Scavenger Society)के नाम से संबोधित किया है उसे एक दैत्य (Monster) समाज में परिवर्तित होने से रोकने का उत्तरदायित्व अथवा एकमात्र सहारा लोक प्रशासन है। राज्य के प्रशासन में ही वह क्षमता है। इसके द्वारा मानवीय सभ्यता को सुरक्षित रखा जा सकता है जैसा कि प्रोफेसर डानहम के शब्दों से स्पष्ट होता है ''यदि हमारी सभ्यता असफल होती है तो इसका प्रमुख कारण प्रशासन का पतन ही होगा भविष्य उसकी निर्णय प्रक्रिया और समन्वय की संभावनाओं पर निर्भर है।

2. लोक प्रशासन राज्य का व्यवहारिक उपकरण है : जैसा कि फ्रैंक जी गुडनाउ ने कहा है राजनीति विज्ञान राज्य की इच्छा को अभिव्यक्त करती है परंतु लोक प्रशासन इस इच्छा को लागू करने वाला विषय होता है। राज्य में कानून, व्यवस्था, विकास के स्वरूप को बनाए रखना प्रशासन का ही उत्तरदायित्व है जिसका वह कुशल निर्वहन करता है। इसके अभाव में एक सरल और सामान्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। देश काल और परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुरूप ही आज जब राज्य 'पुलिस राज्य' से लोक कल्याणकारी राज्य की तरफ बढ़ रहा है, ठीक उसी तरह लोक प्रशासन के कार्य की प्रकृति एवं स्वरूप में भी बदलाव आ गया है। विज्ञान और तकनीक के विकसित संसार में प्रशासन के लिए अपने दायित्वों का निर्वहन करना अधिक जवाबदेय हो गया है। वह इन दायित्वों से बच नहीं सकता है यद्यपि लोकनीति और प्रशासन के रूप में उदारीकरण के पश्चात् उसने निजी क्षेत्र को भी अपना सहयोगी बना लिया है। लोगों को उपलब्ध कराए जाने वाली आधारभूत सुविधाएं निजी प्रशासन के द्वारा प्रस्तुत की जा रही है तथापि लोक प्रशासन उसकी संपूर्ण निगरानी रखता है और खामियों का ध्यान भी रखता है।

3. लोक प्रशासन अध्ययन के एक विषय के रूप में : लोक प्रशासन का उदय एक स्वतंत्र विषय के रूप में 19वीं शताब्दी की देन है परंतु यह शीघ्रता से अनेक क्षेत्रों व विश्व राज्यों तक पहुंँच गया है। आज दुनिया के अनेक विश्वविद्यालयों में लोक नीति के रूप में इसका अध्ययन कराया जा रहा है। अब यह विषय के रूप में न केवल अकादमिक संस्थानों में अपितु प्रशासनिक कार्मिकों की चयन प्रक्रिया और प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में भी शामिल किया गया है जिससे प्रशिक्षण द्वारा श्रेष्ठ कार्मिकों को तैयार किया जा सके। भारत सहित विश्व के अनेक विकासशील देशों में 1950 के दशक के पश्चात् यह लगातार

विकसित होने वाला अनुशासन है। यह ऐसा विषय है जो लोगों को, सरकार व उनके पारस्परिक औपचारिक संबंधो तथा कार्यप्रणाली के बदलाव इत्यादि के संदर्भ में जानकारी उपलब्ध कराता है।

4. लोक प्रशासन लोक कल्याणकारी राज्य के पर्याय के रूप में :

समय के अनुरूप राज्यों की प्रकृति में भी परिवर्तन आ गया है और राज्य का कार्य केवल कानून और व्यवस्था की देखभाल करना ही नहीं है अपितु वह पुलिस राज्य से आगे बढ़कर कल्याणकारी राज्य बन गया है। उसके द्वारा आज अपने सदस्यों के लिए उनके जीवन से जुड़े हुए आधारभूत कार्यों भोजन, स्वास्थ्य, आवास, संचार, परिवहन, सड़क, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा, पेंशन, बीमा इत्यादि कार्यों को संपन्न किया जाता है। अतः अब राज्य की प्रकृति कल्याणकारी हो गई है। वह जनहित के कार्य संपन्न करता है जो प्रशासन के बिना संभव नहीं हो सकते। इसका आभास समाजविज्ञानी मार्शल ई डीमोंक इन शब्दों से होता है ''कि लोक प्रशासन प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्व का विषय है।'' मानवीय जीवन से जुडे सभी कार्यों का संचालन करने मे लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अतः आज लोक प्रशासन कल्याणकारी राज्य का पर्याय बन गया है।

5. लोक प्रशासन प्रशासनिक राज्य के रूप में :

लोक प्रशासन का कार्यक्षेत्र आज इतना अधिक विस्तृत हो गया है कि लोक कल्याणकारी राज्य को अब प्रशासी राज्य के नाम से पहचाना जाने लगा है। प्रशासनिक राज्य मानव के जन्म से पहले अर्थात् व विवाह पंजीकरण व गर्भवती महिलाओं के पंजीकरण के रूप में कार्य करना शुरू करता है और उसकी मृत्यु के बाद तक मृत्यु प्रमाण पत्र बनाने तक का कार्य करता है। समाजशास्त्री डिमाक के शब्दों में ''लोक प्रशासन सभ्य समाज का अंग और

आधुनिक जीवन का हिस्सा बन गया है।" अतः उसे प्रशासनिक राज्य के नाम से पहचान मिली है। वह अब निजी क्षेत्र के साथ मिलकर नागरिकों को हर प्रकार की हरसंभव सेवाएं उपलब्ध कराता है।

6. लोक प्रशासन सामाजिक बदलाव के उपकरण के रूप में : लोक प्रशासन केवल प्रशासनिक एवं आर्थिक विकास से ही सरोकार नहीं रखता है अपितु यह पिछड़े समाजों को विकसित या आधुनिक समाजों की ओर ले जाने का कार्य भी करता है। विकासशील समाज जहाँ सामाजिक परंपराएं, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और रीति-रिवाज एक बुराई के रूप में अथवा मानवीय शोषण के रूप में शारीरिक, मानसिक या आर्थिक शोषण के रूप में विद्यमान होते हैं जैसे कि छुआछूत, जातीय भेदभाव, दहेज पृथा, मृत्यु भोज पृथा, देवदासी पृथा, मौताणा पृथा, बाल विवाह पृथा, विधवा पुनर्विवाह पृथा, कन्या वध पृथा, बालक और बालिका में भेदभाव की पृथा, घुंघट प्रथा इत्यादि। यह लोक प्रशासन की ही प्रमुख देन है कि कानूनों के क्रियान्वयन के परिणाम स्वरूप इन बुराईयों में बड़े स्तर पर कमी आई है अथवा ये समाप्त हो गई हैं। लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का वाहक होता है। यह विशेष रूप से विकासशील राज्यों की जटिल परिस्थितियों में ऐसे ही एजेंट की भूमिका निभाता है। प्रशासन से ही यह उम्मीद की जाती है कि सामाजिक आर्थिक बदलाव को स्थापित करें। वह बनी बनाई या यथास्थिति को बनाए नहीं रखे। अतः विकासशील देशों में जहाँ सामाजिक पिछड़ापन होता है और सामाजिक संरचना का स्तर कमजोर रहता है। वहाँ पर लोक प्रशासन का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

7. लोक प्रशासन विकास के वाहक के रूप में : जैसा कि सर्वज्ञात है कि लोक प्रशासन का मूल उद्देश्य ही जनता के लिए प्रशासन अर्थात जनहित का कार्य करना होता है। अतः

लोक प्रशासन जहाँ विकसित राष्ट्रों में विकास के स्तर को बनाए रखता है अथवा आर्थिक विकास से जुड़ा रहता है। वहीं विकासशील समाजों में यह विकास प्रशासन के रूप में आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, तकनीकी क्षेत्र में भी निर्णायक भूमिका का निर्वहन करता है। यहाँ पर विकास प्रशासन परिणाम उन्मुखी, लक्ष्य उन्मुखी, ग्राहक उन्मुखी हो जाता है जिससे कि नवोदित लोकतांत्रिक राष्ट्रों के भविष्य को और लोगों के जीवन को सुरक्षित बनाए रखा जा सकता है। यदि इन देशों में राजनीतिक संकट गहरा जाता है तो प्रशासन इसके निवारण में संरक्षक की भूमिका निभाता है।

8. लोक प्रशासन संविधान के व्यावहारिक स्वरूप में : किसी भी देश की शासन व्यवस्था के संचालन में विस्तृत व्यवस्था है जिसे संविधान कहा जाता है। उसमें नागरिकों के लिए राष्ट्र के द्वारा तय की गए उद्देश्यों को प्राप्त करने, कानून के शासन को लागू करने, लोगों के अधिकारों, कर्तव्यों की संरचना स्थापित करने, न्याय व्यवस्था की स्थापना करने, लोकनीति का क्रियान्वयन करने इत्यादि कार्य लोक प्रशासन के द्वारा ही निष्पादित किए जाते हैं। राज्य के संविधान की सफलता प्रशासन की सफलता पर निर्भर करती है। समस्त नीतियों और कार्यक्रमों को प्रशासन हीं सफल बनाता है जो कि जनकल्याण से जुड़े होते हैं। इसीलिए निस्संदेह लोक प्रशासन के महत्व को शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है।

9. लोक प्रशासन सरकार की आधारभूत संस्था के रूप में : एडमण्ड ब्रुक कहते हैं कि ''बिना प्रबंधन के कागजों पर भी नीति निर्माण संभव नहीं है अपितु इसके बिना जीवन स्तर को भी श्रेष्ठ बनाना संभव नहीं है। एक प्रभावी, कुशल और सक्रिय संविधान को प्रबंधन के माध्यम से ही लागू हो सकता है।'' प्रशासन सभी परिस्थितियों में विद्यमान रहता है। प्रशासन के बिना संविधान का

कोई भविष्य नहीं होता है। संभव्यतया शासन बिना विधायिका और न्यायपालिका के बिना तो यह संभव हो सकता है परंतु प्रशासन के बिना नहीं। इस तरह से प्रशासन सरकार के अस्तित्व का आधारभूत ढांचा होता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन प्रमुख उपागम

(The Main Approaches of Public Administration)

लोक प्रशासन मानव की प्रशासनिक व्यवहार का अध्ययन करने वाला विषय है। लेकिन इस व्यवहार को पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें अनेक अध्ययन पद्धतियों अथवा अंतः अनुशासनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ती है। वह सामाजिक प्रकृति का विषय है जिस पर सामाजिक परिवेश का भी प्रभाव पड़ता है। इसीलिए हमें अंतर अनुशासनात्मक दृष्टिकोण के स्वरूप वाली प्रणालियों की आवश्यकता पड़ती है। लोक प्रशासन के अध्ययन के उपागम अथवा पद्धतियों को निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

1. ऐतिहासिक उपागम : अध्ययन का यह उपागम किसी भी विषय के ऐतिहासिक स्वरूप या अतीत के बारे में जानकारी जुटाता है। ऐतिहासिक घटनाक्रम की जानकारी के आधार पर ही हम उसके स्वरूप को जानकर भविष्य का निर्माण कर सकते हैं और आगामी समय में उठाए जाने वाले कदमों के बारे में निर्णय कर सकते हैं। एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के ऐतिहासिक स्वरूप के बारे में ज्ञान अर्जित करने के लिए यह पद्धति बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा ही कौटिल्य और आचार्य शुक्र की प्रशासनिक व्यवस्था के बारे में सूचना प्राप्त कर आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था के स्वरूप को और अधिक

श्रेष्ठतम बनाया जा सकता है। इसके अलावा प्रोफेसर एल डी व्हाईट ने 'दि फेडरलिस्ट'1951 में अमेरिकी गणराज्य के प्रथम चार दशकों के प्रशासन के बारे में जानकारी प्रदान की है। अतः वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था संस्थाओं को समझने के लिए इस उपागम का सहारा लेना अपरिहार्य होता है।

2.वैज्ञानिक उपागम अथवा पद्धति :
इस अध्ययन पद्धति का प्रयोग सामान्य प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। भौतिक विज्ञान की विषय सामग्री का सत्यापन, परीक्षण, सामान्यीकरण, भविष्यवाणी क्रमबद्धतता इत्यादि को आसानी से प्रयुक्त किया जा सकता है परंतु लोक प्रशासन समाज विज्ञान की प्रकृति का विषय है जिसकी विषय सामग्री निर्जीव न होकर सजीव है अर्थात मानव है और उसको विज्ञान की परिभाषा में शामिल कर पाना आसान नहीं है फिर भी वैज्ञानिक पद्धति अर्थात निरीक्षण सामान्य करण व्याख्या भविष्यवाणी तथा निर्देशन यथार्थ वैज्ञानिक पद्धति के चरणों को आंशिक रूप से अपनाया जा सकता है लोक प्रशासन के अनेक सिद्धांत वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से समझे जा सकते हैं। राजनीति विज्ञान में अरस्तू ने आगनात्मक पद्धति का सहारा लिया है।

3. वैधानिक अथवा कानूनी उपागम :
इस उपागम को न्यायिक अथवा वैधानिक उपागम भी कहा जाता है। यह उपागम लोक प्रशासन का अध्ययन कानूनी स्वरूप में करने का समर्थन करता है। यह उपागम यूरोप महाद्वीप के देशों में विशेष रूप से फ्रांस, जर्मनी व बेल्जियम में विकसित होने वाला प्राचीनतम उपागम है। यहाँ पर लोग विधियों को अर्थात् संवैधानिक कानून और प्रशासनिक कानून में विभक्त किया गया है। फ्रांस के प्रशासनिक न्यायालय आज भी लोकप्रिय हैं। अतः उसे प्रशासनिक कानूनों का घर भी कहा जाता है। शासन व उसके

अंगों की कार्य प्रणाली के स्वरूप का अध्ययन तथा नियमों, अधिकरणों, केंद्रीय, प्रांतीय और स्थानीय शासन की प्रक्रिया का अध्ययन प्रशासनिक कानूनों से किया जाता है। अतः प्रषासन के कानूनी पक्ष का अध्ययन करने के लिए इस उपागम की अपनी महता होती है।

4. दार्शनिक उपागम :
अध्ययन का यह उपागम अति प्राचीन है जिसके माध्यम से प्रशासन के दार्शनिक स्वरूप को परिलक्षित किया जा सकता है। इस उपागम की उपयोगिता उस समाज में और भी अधिक बढ़ जाती है जिसे ग्राहम वालास ने 'मेहतर समाज' की संज्ञा दी है। इस उपागम के ऐतिहासिक क्रम में महाभारत के शांति पर्व, प्लेटो के गणराज्य, हॉब्स के लवियाथन, हीगल की विश्वात्मा, ग्रीन की शाश्वत चेतना की धारणा विश्व प्रसिद्ध रही है। यह उपागम अध्ययन की निगनात्मक ;क्मकनबजपअमद्ध प्रणाली का समर्थन करता है। आधुनिक राष्ट्र राज्यों का कार्य क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो गया है। अतः लोक प्रशासन का अध्ययन इस उपागम की दृष्टि से करना मानवीय सभ्यता की सुरक्षा के लिए अति महत्वपूर्ण है।

5. विषय वस्तु अथवा घटना व्यक्ति अध्ययन पद्धति (Case Study Methode) :
यह एक वैज्ञानिक पद्धति है जिसमें किसी समसामयिक घटना विशेष को आधार बनाकर उसके बारे में पूर्ण अध्ययन किया जाता है। लोक प्रशासन में इस उपागम की शुरुआत 1930 के दशक में अमेरिका में हुई। किसी प्रशासनिक अधिकरण में उत्पन्न होने वाली किसी समस्या विशेष का अध्ययन उस घटना या समस्या के समय विद्यमान दशाओं, उसका समाधान, निर्णय प्रक्रिया, कारणों तथा परिणामों का निष्पक्ष स्वरूप में किया जाता है। इस अर्थ में यह अतिसंवेदनशील पद्धति होती है। 1940 में अमेरिका सामाजिक अनुसंधान परिषद की लोक प्रशासन समिति ने ऐसी घटना पद्धति क अध्ययन की सीरिज का प्रकाशन किया। अनेक

विचारों की मान्यता है कि ऐसे अध्ययनों के निष्कर्षों का उपयोग लोक प्रशासन में उसी प्रकार किया जा सकेगा जैसे कि न्याय प्रशासन में पूर्व निर्णयों का, चिकित्सा विज्ञान में पूर्व मरीजों का तथा विधि में पूर्व उदाहरणों से सहायता ली जाती है प्रोफेसर वालों के शब्दों में व्यक्ति पद्धति उपागम समाजशास्त्री उद्देश्य व्यक्तियों की प्रतिबद्धता से प्रेरित है परंतु यह मानविकी की परंपरागत संवेदनशीलता तथा शोध की अपेक्षा शिक्षा की व्यावहारिक रूप से अधिक प्रभावित है इस पद्धति की अपनी सीमाएं होती हैं।

6. संस्थागत कुछ रचनात्मक उपागम :
यह परंपरागत उपागम है जिसके अंतर्गत प्रशासनिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली और उनकी संरचना के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है यह उपागम किसी संस्था की व्यवहारिक कार्यप्रणाली और उसकी संरचना की निर्माण के पीछे के कारकों की खोज कर पाने में सक्षम नहीं है यह केवल सामान्य जानकारी प्रदान करने वाला औपचारिक दृष्टिकोण मात्र है।

7. व्यवहारवादी उपागम :
यह वैज्ञानिक अध्ययन का उपागम है जिसका उदय औपचारिक संस्थागत संरचनात्मक उपागम की प्रति असंतोष से हुआ है यह उपागम मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से अध्ययन करने वाला उपागम है जो प्राकृतिक विज्ञान के अधिक नजदीक है इसका उदय बीसवीं सदी की चतुर्थ दशक में हुआ राजनीति विज्ञान में तो एक नवीन क्रांति व्यवहारवादी क्रांति के नाम से भी जाना जाता है लोक प्रशासन इस पद्धति को विकसित करने में हर्बर्ट साइमन रॉबर्ट एडेल स्मिथ वर्ग रिक्स जैसे विचार कोने महत्वपूर्ण योगदान दिया है इसे सामाजिक वैज्ञानिक पद्धति भी कहा जाता है क्योंकि यह सामाजिक व्यवहार का अध्ययन विज्ञानिक पद्धति से करता है।

8. मनोवैज्ञानिक उपागम :

व्यक्ति के प्रशासनिक व्यवहार का अध्ययन करने वाला उपागम है परंतु उसके इस व्यवहार को समझने के लिए उसके पीछे नहीं मन के बारे में जानना होगा और इसके लिए मनोविज्ञान की आवश्यकता होती है प्रशासन का व्यवहारिक रूप से संचालन करने वाले प्रशासकों के मनोविज्ञान का अध्ययन करना अति महत्वपूर्ण होता है ताकि यह पता चल सके कि प्रशासनिक कार्मिक अच्छा या बुरा नीति अथवा अनैतिक ईमानदार या बेईमान ऐसा कार्य कैसे करता है अथवा क्यों करता है प्रशासन में इस अध्ययन पद्धति का उपयोग डच्4 नेट के द्वारा किया गया अमेरिका और यूरोपीय देशों में इस पद्धति का बड़े स्तर पर प्रयोग किया जाता है।

9. राजनीतिक दृष्टिकोण :
यह दृष्टिकोण राजनीति एवं प्रशासन की समन्वित सरूपवाली विचारधारा का समर्थन करता है प्रशासन और राजनीति को पृथक रूप में रखकर किया जाने वाला अध्ययन अपूर्ण ही होता है इसलिए इन दोनों को एक दूसरे के पूरक के रूप में अध्ययन करना आवश्यक है अमेरिकी चिंतक जॉन गौस पाक एप्पल भी ने राजनीतिक दृष्टिकोण या तकनीकी दृष्टिकोण को त्याग दिया है

10. अन्य उपागम :
लिखित उपाधियों के अलावा आधुनिक समाज विज्ञान के अधिकांश विषयों की मूल प्रकृति समाज की है यह विषय परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं अतः एक अंतर अनुशासनात्मक अध्ययन दृष्टिकोण के माध्यम से ही इन्हें विकसित स्वरूप की ओर ले जाया जा सकता है लोक प्रशासन भी ऐसी ही मानवीय प्रकृति वाला विषय है जिसके अध्ययन हेतु राजनीति मनोविज्ञान प्रबंधन विधि नीतिशास्त्र समाज सब पदवाने प्रकार के दृष्टिकोण की आवश्यकता पड़ती है और उनकी सहायता से ही इसे पूर्ण समझा जा सकता है इसके अलावा विषय वस्तु दृष्टिकोण जीवन

भर तांत्रिकों का भी सहारा लिया जा सकता है। इस प्रकार से लोक प्रशासन के अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं अध्ययन के उपागमों के सन्दर्भ में विभिन्न प्रशासनिक चिंतकों के भिन्न-भिन्न विचार सामने आते है तथापि यह अध्ययन का एक नवीन अनुशासन है। समसामयिक परिदृश्य के अन्तर्गत इसका महत्व ओर अधिक बढ गया है। अब यह लोक प्रशासन एवं लोक नीति के नाम से प्रचलित होने लगा है।

संदर्भ :

Ali Farazmand (Edited) ‘Handbook of Comparative and Development Public Administration’ Second Edition, Marcel Dekker, Inc New York, 2001

Eric Edwin Otenyo, Nancy S. Lind (Edited) ’Comparative Public Administration : The Essential Readings’ Jai Press Publication, New York, 2007

Woodrow Wilson, ‘The Study of Administration’ Source: Political Science Quarterly, Vol. 2, No. 2 (Jun., 1887), pp. 197-222 Published by: The Academy of Political Science, Stable URL: http://www.jstor.org/stable/2139277 Accessed: 24/02/2009 17:42

Avasthi and Maheshwari, ‘Public Administration’ Laxmi Narain Aggarwal, Agra, 2010

Mohit Bhattacharya, ‘New Horizons of Public Administration’ Jawahar Publishers, New Delhi, 2010

Rumki Basu, ‘Public Administration-Concepts and Theories’ Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 2007

H. George Frederickson and Kevin B. Smith, 'Public Administration Theory Primer' Rawat Publications, Jaipur, 2008

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, 'Public Administration : An Introduction' PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

2

लोक प्रशासन के नवीन आयाम

नवीन लोक प्रशासन

(New Public Administration - NPA)

यह 1960 और 70 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले व्यापक परिवर्तन का परिणाम है। अब आम जनता यह मांग करने लगी कि परंपरागत प्रशासन जो कार्यकुशलता और मितव्ययता पर आधारित रहा है। उसका त्याग करके एक नवीन जिम्मेदारी का निर्वहन करना प्रशासन का उत्तरदायित्व होना चाहिए। आण्विक शस्त्रों के भय, वियतनाम युद्ध 1955 से 1975, वॉटरगेट कांड जैसी घटनाओं इत्यादि ने इसमें व्यापक परिवर्तन कर दिया। रिचर्ड निक्सन रिपब्लिक पार्टी का उम्मीदवार था जिसने एफबीआई और सीआईए के माध्यम से डेमोक्रेट्स के पेपर चुरा लिए थे इसलिए उन्हें 1974 में अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। इसके पश्चात इस बात पर ध्यान देने का

आह्वान किया गया कि लोक प्रशासन का जन्म समस्याओं के निदान में प्रभावी एवं कुशल भूमिका का निर्वहन करने के लिए हुआ है। अमेरिकी विद्वानों, शोधार्थियों एवं युवा वर्ग ने लोक प्रशासन को एक नया स्वरूप प्रदान किया जिसे नवीन लोक प्रशासन कहा जाता है। युवा आंदोलन ने नवीन लोक प्रशासन का मूल मानव कल्याण को घोषित किया और इसकी दो प्रमुख उद्घोष नैतिकता और सामाजिक उपयोगिता को स्वीकार किया गया। अब मूल्यों और नैतिकता को लोक प्रशासन में महत्वपूर्ण स्थान मिला। लोक प्रशासन में किए जाने वाले शोध और अनुसंधान सामाजिक समस्याओं से संबंधित होने चाहिए। इस युग का आभास गोलोम्ब्यूसकी के शब्दों से भी होता है कि लोक प्रशासन के लिए इस शताब्दी का सातवा दशक युद्ध के समान था। इसके पुराने सिद्धांतों मितव्ययिता, कार्यकुशलता को लोक प्रशासन की क्रिया प्रणाली के उद्देश्य के रूप में अपराध और अपूर्ण माना गया। इस तरह परंपरागत लोक प्रशासन 1970 के दशक में एक नवीन युग की ओर बढ़ा जो इसके विकास का पांचवा चरण था। इसे ही नवीन लोक प्रशासन के नाम से जाना जाता है।

नवीन लोक प्रशासन का उदय : यह परंपरागत प्रशासन की कमियों के विरुद्ध अस्तित्व में आने वाली नवीन अवधारणा है जो मूल्यों से जुड़ी धारणा है इसके उदय में अमेरिकी समाज वहां के वातावरण, युवा शोधार्थियों और अनेक सम्मेलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें प्रमुख कारक किस प्रकार रहे हैं

हनी प्रतिवेदन (Henny Report) : सिराकोज यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर जॉन सी हनी के द्वारा अमेरिकन लोक प्रशासन सोसायटी द्वारा किए गए आग्रह 1966 को स्वीकार करते हुए सार्वजनिक सेवाओं के संबंध में उच्च शिक्षा पर एक रिपोर्ट 1967 प्रस्तुत की जिसे ही हनी रिपोर्ट के नाम से जाना

जाता है। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन को एक स्वतंत्र विषय के रूप में विकसित करने की संभावनाओं पर विशेष ध्यान देने की बात कही गई। इस विषय के कार्य क्षेत्र को सरकार की तीन शाखाओं के प्रशासन तक विस्तृत स्वरूप देने का समर्थन किया गया। इसी के साथ समस्याओं और समाधानों का भी विवेचन किया गया। हनी प्रतिवेदन में वर्णित अध्ययन चार समस्याओं पर केन्द्रित था।

1. लोक प्रशासन का एक स्वतंत्र विषय के रूप में विकास और
2. अनुसंधान हेतु वित्त की कमी।
3. लोक प्रशासन एक विषय अथवा अनुशासन के रूप में विद्यमान बौद्धिक मतभेदों प्रकृति क्षेत्र अर्थ को लेकर मतैक्य।
4. लोक प्रशासन के शोधार्थियों अथवा विद्वानों और सेवारत शासकों के बीच अंतराल।

इन समस्याओं के निदान हेतु प्रस्तुत सुझाव निम्न थे :-

1. लोकसेवा शिक्षा संबंधी आयोग का गठन जो सरकार को प्रशिक्षित कार्मिक उपलब्ध कराने की दायित्व का निर्वहन करें।
2. इस विषय में स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा प्राप्त करने वाले और लोक सेवा को आजीविका के रूप में अपनाने वाले के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाए।
3. लोकसेवा को आजीविका का साधन बनाने वाले प्रत्याशियों को स्नातक और उच्च स्तर पर संघ राज्य और स्थानीय शासन के स्तरों पर प्रशिक्षण दिया जाए।

4. लोक प्रशासन अथवा इससे संबंधित विद्यालयों में शिक्षक बनने वालों हेतु विशेष छात्रवृत्ति।
5. विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक मामलों में कार्यरत कर्मचारियों को शासन की व्यवहारिक ज्ञान का अनुभव कराया जाए।
6. सार्वजनिक मामलों से संबंधित शिक्षण और शोध पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रमों के लिए अनुदान की व्यवस्था की जाए।
7. लोक प्रशासन एवं सामाजिक मुद्दों के शोधार्थियों को विशेष आर्थिक एवं अन्य सहायता मिले।
8. इससे संबंधित अनुसंधान और पाठ्यक्रमों की विकास हेतु तीनों ही स्तरों पर व्यापक सहायता मिले।
9. लोक सेवा संबंधी शिक्षण शोध और कार्यों की समीक्षा की जाए तथा नवीन लोक प्रशासन कार्यक्रम हेतु परामर्शदात्री सेवाओं की शुरुआत हो।

हनी प्रतिवेदन पर मिलीजुली प्रतिक्रियाएं सामने आई। इस प्रतिवेदन में लोक प्रशासन के विकास और प्रशासनिक कमियों के निदान पर विशेष बल दिया गया तथा सामाजिक समस्याओं और उनके समाधान का कोई जिक्र नहीं किया गया।

फिलाडेल्फिया सम्मेलन 1967 : अमेरिकी नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र परिषद के द्वारा दिसंबर 1967 में फिलाडेल्फिया में लोक प्रशासन के सिद्धांत और व्यवहार, क्षेत्र, उद्देश्य और अध्यन उपागम विषय पर एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। फिलाडेल्फिया सम्मेलन की अध्यक्षता जेम्स सी चार्ल्सवर्थ के द्वारा की गई यह सम्मेलन भी किसी सर्व सम्मत निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाया क्योंकि विचारकों के बीच

बौद्धिक मतभेद विद्यमान रहा कुछ विचारकों ने इसे केवल क्रिया के रूप में तो, कुछ ने अनुशासन अथवा दोनों के रूप में, तो कुछ चिंतकों ने व्यवसाय मानने का समर्थन किया। अन्य विचारकों ने इसे जनहित का कार्य करने के रूप में परिभाषित किया। फिर भी कुछ मुद्दों पर आम सहमति जरूर बनी जो निम्नलिखित थे :-

1. लोक प्रशासन का अर्थ स्पष्ट करना अथवा उसे एक व्यवसाय प्रबंधन मानना अथवा उसके विषय क्षेत्र का निर्धारण करना एक कठिन कार्य है।
2. लोक प्रशासन को सामाजिक समस्याओं के निदान में प्रासंगिक बनाना अपरिहार्य है। इस विषय की प्रकृति समाज विज्ञान के विषयों की तरह है। अतः इसे समझने हेतु एक अंतर अनुशासनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।
3. प्रशासकों को व्यवसायिक विद्यालयों में प्रशिक्षित किया जाए। जहाँ केवल लोक प्रशासन ही नहीं अपितु महत्वपूर्ण विषय अथवा व्यवहारिक प्रशासन की जानकारी भी दी जाए।
4. यद्यपि व्यवसाय के रूप में राजनीति विज्ञान से पृथ्थक कर सकते हैं परंतु नीति निर्माण से जुड़े हुए स्वरूपों को अलग करना संभव ही नहीं है। नौकरशाही संबंधी अध्ययन चुनाव एवं प्रक्रिया दोनों स्वरूपों में करना सही है।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन 1968 (The Minnow-brook Conference) :
यह सम्मेलन युवा पीढ़ी का आंदोलन था जिसके पीछे दो उत्तरदाई कारक विद्यमान रहे। इनमें पहला इस समय 1960 के दशक में अमेरिकी समाज प्रशासन एवं राजनीति में व्यापक बदलाव और अनिश्चितता का दौर चल रहा था। जहाँ विद्यमान समस्याओं की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया प्रोफेसर वाल्डो ने अपने आलेख

से क्रांति काल में लोक प्रशासन के माध्यम से इन समस्याओं की तरफ ध्यान आकर्षित किया जो कि लोक प्रशासन रिव्यू पत्रिका में प्रकाशित हुआ दूसरा कारक युवाओं की बढ़ती भागीदारी अर्थात युवा शोधार्थियों के रचनात्मक मौलिक और क्रांतिकारी विचारों ने इस सम्मेलन का आगाज कर दिया। अतः इसे युवा सम्मेलन भी कहा जाता है जिसने एक युवा अथवा नवीन लोक प्रशासन को जन्म दिया इस सम्मेलन में उठाए गए अधिकांश विषय फिलाडेल्फिया सम्मेलन से संबंधित रहे। अतः **फिलाडेल्फिया सम्मेलन को इस युवा आंदोलन का पूर्वगामी** कहा जाता है। फिलाडेल्फिया सम्मेलन की प्रतिभागी औसतन 35 से अधिक आयु के थे अधिकांश 50 से 70 वर्ष जबकि मिन्नोब्रुक सम्मेलन में भाग लेने वाली युवा पीढ़ी थी। मैथ्यू क्रेनसन ने मिन्नोब्रुक सम्मेलन में अनेक विचार प्रस्तुत किए गए। यद्यपि इस सम्मेलन में भी मतभेद की स्थिति विद्यमान रही। प्रशासकों और प्रशासनिक संगठनों के उत्तरदायित्व, मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण, सामाजिक समस्याओं का निदान, प्रतिबद्धता, पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, प्रासंगिकता और परिवर्तन, समानता इत्यादि विषय केंद्र में छाए रहे। सबसे बड़ी बात यह रही कि लोक प्रशासन को युवा क्रांति के रूप में नवीन दिशा प्राप्त हुई जिसकी परिणिति **मीनो ब्रुक सम्मेलन 1968, 1988 और तीसरे मीनों ब्रुक सम्मेलन** 2008 में हुई।

युवा और क्रांतिकारी साहित्य :- प्रशासन में महिलाओं की भागीदारी और प्रशासन में नारीवादी सिद्धांत की बात भी उभर कर सामने आयी। इसी क्रम में 1974 में प्रथम महिला वर्ष मनाया गया।

नवीन लोक प्रशासन का स्वरूप और लक्ष्य : परंपरागत लोक प्रशासन में मूल्य निरपेक्षता, दक्षता, निष्पक्षता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कार्यकुशलता, व्यवसायिक प्रबंधन,

उत्पादकता, मितव्ययिता जैसे तत्वों पर विशेष ध्यान दिया गया। परंतु जैसा की सर्वविदित है कि लोक प्रशासन व्यक्ति के प्रशासनिक व्यवहार का अध्ययन करता है जहां व्यक्ति को उसके मूल्य, समाज, गरिमा, मानवता, सदाचार से दूर नहीं किया जा सकता है। वह एक मशीन अथवा उपकरण नहीं है जिसकों प्राकृतिक विज्ञानों की तरह प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए रख लिया जाए। अतः नवीन लोक प्रशासन ने विषय की प्रकृति को ध्यान में रखकर नवीन लोक प्रशासन के अंतर्गत प्रासंगिकता, परिवर्तन, मानववाद की भावना, नीति और मूल्य, नवाचार, समानता, प्रतिबद्धता, जनहित तटस्थता, मुल्यउन्मुखी और ग्राहक उन्मुखी दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया। नवीन लोक प्रशासन की प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

प्रासंगिकता :-

1960 और 70 के दशक में अमेरिकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में बड़े स्तर पर परिवर्तन हुए जिनके संदर्भ में लोक प्रशासन का परंपरागत स्वरूप कोई समाधान नहीं खोज पाया और उसके द्वारा विद्यमान सामाजिक समस्याओं के प्रति सवेंदनशीलता का दृष्टिकोण अपनाया गया। इसीलिए मिन्नोब्रुक सम्मेलन 1968 में अनेक प्रशन उत्पन्न हुए की आखिरकार लोक प्रशासन का सामाजिक व राजनीति विज्ञान के रूप में क्या उपयोग है? क्या उसे सामाजिक और नैतिक निहितार्थो, का ज्ञान है और क्या लोक प्रशासन विद्यमान सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक समस्याओं के लिए उपयोगी है अथवा नहीं ऐसे ही तमाम सवालों ने लोक प्रशासन की उपयोगिता पर ही प्रश्नचिन्ह उत्पन्न कर दिया। इसीलिए लोक प्रशासन ने स्वयं को प्रासंगिकता की ओर मोड़ लिया।

मूल्य :-

समाज विज्ञान की विषयों को मानवीय मूल्यों और आदर्शों से दूर

रखना सही नहीं है इसीलिए मानव जिस परिवेश में रहता है वह उस परिवेश में विद्यमान समस्याओं से वह दूर नहीं जा सकता है। अतः समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे की भावना, न्याय तक सब लोगों की पहुँच होनी चाहिए। यह आदर्श समाज का निर्माण करने के मूल्यों से दूर नहीं हो सकता। इसीलिए परंपरागत प्रशासन के मूल्य विहीन उपागम को त्याग कर मूल्य सापेक्ष स्वरूप को अपनाया गया।

सामाजिक समानता :-

सामाजिक समता नवीन लोक प्रशासन का लक्ष्य बनाया गया है परंपरागत प्रशासन का सामाजिक समानता से कोई लेना-देना नहीं था विकास की अंधाधुन प्रक्रिया में समाज के सदस्यों के बीच रंग संपत्ति जाति धर्म वर्गों को लेकर से समानता का स्तर बहुत बढ़ गया इसीलिए नवीन लोक प्रशासन ने सामाजिक समानता भाईचारे की भावना को अपना लक्ष्य बनाया अब वह सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील बन गया है।

परिवर्तन :-

परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव होता है ठीक उसी तरह से नवीन लोक प्रशासन में भी यथास्थिति को त्याग कर नवीन स्वरूप को अपनाने पर बल दिया गया परिवर्तन के बिना विकास बेईमानी होता है बदलते वैश्विक परिदृश्य में सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का दूत नवीन लोक प्रशासन को बनाया गया है प्रशासन की स्वयं को परिस्थितियों के अनुरूप बदलते बदले तभी वह प्रासंगिकता और महत्व को बनाए रख सकता है।

ग्राहक उन्मुखी :-

नवीन लोक प्रशासन की मान्यता है कि प्रशासन के लिए आमजन एक ग्राहक के समान है। प्रशासन का लक्ष्य अपने ग्राहकों की अधिकतम संतुष्टि होना चाहिए। उसे अपने नागरिकों या ग्राहकों को वस्तुओं एवं सेवाओं की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करानी

चाहिए।

इस प्रकार अंततः नवीन लोक प्रशासन सही अर्थों में लोक हित के लिए प्रशासन या लोगों का प्रशासन की भावना पर केंद्रित हुआ।

नवीन लोक प्रशासन की मुख्य विशेषताएं :

1. नवीन लोक प्रशासन मानवीय दृष्टिकोण का समर्थक है। जहाँ परंपरागत प्रशासनिक मानव की धारणा को स्वीकार करता है। वही नवीन लोक प्रशासन उसे सामाजिक प्राणी मानता है।
2. यह राजनीति और प्रशासन के बीच अलगाव अथवा पृथ्क्करण की धारणा का विरोध करता है तथा एक अंतर अनुशासनात्मक उपागम को आगे बढ़ाने का समर्थक है।
3. नवीन लोक प्रशासन ने निजी और सरकारी प्रशासन में पूर्ण अंतर को नहीं स्वीकार किया है अपितु दोनों को एक दूसरे का पूरक माना है।
4. नवीन लोक प्रशासन मानवीय हितकारी, सार्थक मूल्यों को स्वीकार करता है अर्थात् मुल्य निरपेक्ष नहीं अपितु मूल्य सापेक्ष उपागम है।
5. नवीन लोक प्रशासन प्रगति एवं विकास की धारणा का समर्थक है जहाँ परिवर्तनशीलता या बदलाव के प्रति उदार दृष्टिकोण रखा जाता है।
6. यह नागरिक केंद्रित या सामान्य जन हितों को केंद्र में रखता है। इसके लिए प्रशासन में नागरिक सेवा, सुशासन, संवेदनशीलता, विकेंद्रीकरण, प्रत्यायोजन का समर्थन करता है। अतः यह मूल्य उन्मुखी उपागम है।
7. यह परंपरागत प्रशासन की उत्पादकता, कार्यकुशलता, दक्षता, लक्ष्यों की अपेक्षा

सामाजिक कार्यकुशलता प्रभावशीलता व जन हितों पर ध्यान देता है।

8. नवीन लोक प्रशासन को दूसरी पीढ़ी के व्यवहारवाद के नाम से संबोधित किया है। अंत में यदि सारांश के रूप में कहे तो नवीन लोक प्रशासन उन मूल्यों, आदर्शों, सामाजिक दायित्वों की खोज है जो मानववाद, सामाजिक न्याय, प्रासंगिकता, परिवर्तन इत्यादि से जुड़ा हुआ है।

परंतु इन सबके बावजूद भी नवीन लोक प्रशासन के अनेक आधारों पर आलोचना की है। इसे प्रत्यक्षवादी प्रति सिद्धांत, प्रति प्रबंधवादी कहा गया। इसे परंपरागत प्रशासन का ही संशोधित स्वरूप बताया गया।

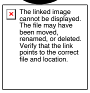

मिनोब्रुक सम्मेलन, 1968, 1988 और 2008
(Minnowbrook Conferences, 1968, 1988 & 2008)

पहला मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968 :
डी वाल्डों के द्वारा लोक प्रशासन के विकास की अवधारणा पर व्यापक बल दिया गया। 1952 में लोक प्रशासन को विज्ञान का स्वरूप देने के मन्तव्य पर साईमन एवं वाल्डों के बीच तथ्यों एवं मूल्यों के बिन्दू पर पर विवाद उत्पन्न हो गया। यद्यपि दोनों के द्वारा ही परम्परागत लोक प्रशासन की अवधारणा को अस्वीकृत किया गया था। साईमन का विचार था कि तथ्य ही लोक प्रशासन में अधिकतम दक्षता या कुशलता को प्राप्त करने का मुख्य उपकरण

था लेकिन वाल्डों की मान्यता थी कि हम मूल्यों के महत्व को नकार नहीं सकते है। 1968 के प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन का आयोजन **वाल्डोनियन परिप्रेक्ष्य के निर्देशन** में ही हुआ जब इस समय अमेरिकी समाज के लोग अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना कर रहे थे तथा अमेरिकी समाज अशान्त था विशेषतया अफ्रीकन अमेरिकी लोग यहाँ की संस्थाओं में विश्वास खो चुके थे। लोक प्रशासन की सामाजिक उपादेयता को खतरा उत्पन्न हो गया था। मैक्सवेल स्कूल की मिन्नोब्रुक परम्परा को वाल्डों के द्वारा प्रोत्साहित किया गया जो कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में आत्म मूल्यांकन एवं आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य के लिए दूनियाभर में प्रसिद्ध रही है। **मिन्नोब्रुक सिराक्यूज विश्वविद्यालय में सम्मेलन का एक बहुत ही छोटा सा सेण्टर था।** वास्तव में यह एक ब्रुक था जिसे मिन्नोब्रुक के नाम से पुकारा जाता था। इस कॉन्फ्रेंस सेण्टर की क्षमता इतनी ही थी कि इसमें केवल 28 कमरे थे जहाँ पर 58 लोगों के ठहरने की व्यवस्था थी। सिराक्यूज विश्वविद्यालय के मैक्सवेल स्कूल का यह छोटा सा हिस्सा एण्डीरोण्डक पहाडी के रूप में अमेरिका के न्यूयार्क शहर में अति सुन्दर केन्द्र है। **डी वाल्डों के द्वारा जॉर्ज फ्रेडिक्शन** के सहयोग से **अमेरिका के न्यूयार्क शहर में सिराक्यूज विश्वविद्यालय के मैक्सवेल स्कूल के सान्निध्य में सितम्बर, 1968** ई. में प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन का आयोजन किया गया तथा इसमें दूनियाभर से लोक प्रशासन के युवा शोधार्थियों को आमंत्रित किया गया जिनकी आयु 35 वर्ष से कम हो।इस सम्मेलन की मुख्य थीम 'सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं के वितरण की प्रणाली में सामाजिक समता के महत्व को समझना और लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली में स्पष्टता लाना।' **डी वाल्डों ने स्वंय को 'मिन्नोब्रुक दर्शक' (Minnowbrook Voyeur) घोषित किया** तथा इसके संचालन के समस्त दायित्व अपने कनिष्ठ या अनुज सहकर्मियों को सौंप दिए। वाल्डों ने इस सम्मेलन के आयोजन में अपने अनुसंधान कोष का उपयोग किया या खर्च किया। इसमे निः

सन्देह नागरिकों तक सेवाओं के वितरण में मानववादी दृष्टिकोण को अपनाने एवं सामाजिक समस्याओं के निदान में बोल्ड निर्णयन की बात पर बल दिया गया।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन प्रथम के प्रमुख चार ध्येय : इस सम्मेलन के चार प्रमुख ध्येय प्रासंगिकता, मूल्य, समता एवं परिवर्तन थे अर्थात्

1. प्रासंगिकता (Relevance) : परम्परागत लोक प्रशासन केवल दक्षता एवं आर्थिक प्रणाली पर ही बल दे रहा था और जनता की वास्तविक समस्याओं से अनभिज्ञ था इसलिए शास्त्रीय प्रशासन के प्रति लोगों में जबरदस्त नाराजगी उभर कर सामने आयी। मानव के सामाजिक-आर्थिक परिवेश में उदित होने वाली समस्याओं का समाधान केवल वैज्ञानिक प्रबंधन के द्वारा नहीं किया जा सकता है। परम्परागत प्रशासन का मुख्य केन्द्र केवल नीति उन्मुख सार्वजनिक प्रशासन को रखा गया था ताकि यह प्रबंधन अभिविन्यास के मानक पहलुओं और नीति प्रणाली के सम्पादन में सक्षम हो सके। मानवीय जीवन में आने वाली कठिन समस्याओं के संबंध में लोक प्रशासन के अध्ययन को अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए सम्मेलन में पधारे विद्वानों ने इस विषय के पाठ्यक्रम में बदलाव का सुझाव दिया। प्रासंगिकता किसी देश, क्षेत्र, संस्कृति या समाज विशेष तक के मुद्दों को अभिव्यक्त या सन्दर्भित करती है। इसका मतलब यह है कि अगर इन विशेष सन्दर्भों या लक्षणों के अनुसार लोक प्रशासन में परिवर्तन नहीं किया गया तो यह बदलाव उन लोगों तक नहीं पहुँचेंगा जो कि अब तक परम्परागत प्रशासन में वंचित रहे है।

2. मूल्य (Values) : लोक प्रशासन में लंबे समय से व्यवहारवादियों और राजनीतिक वैज्ञानिकों के द्वारा मूल्य निरपेक्षता को स्वीकार किया जा रहा था लेकिन मिन्नोब्रुक प्रतिभागियों ने इस दृष्टिकोण की आलोचना की

और मानवीय जीवन से जुडे मूल्यों न्याय, स्वतंत्रता, समानता और नैतिकता के मुद्दों को लोक प्रशासन के दायरे या विषय क्षेत्र में शामिल करने की सलाह दी। निकोलस हेनरी ने स्वीकार किया कि नवीन लोक प्रशासन संस्थान अपने विषय के प्रति चिंतित थे और वे वरिष्ठ विचारकों का सम्मान करते थे लेकिन वे इन तत्वों को शामिल करके लोक प्रशासन को नैतिक स्वर प्रदान करना चाहते थे ताकि प्रशासक जनहितों की पूर्ति करने के उद्देश्यों के प्रति स्वयं की प्रतिबद्धता को महसूस कर सके।

3. **सामाजिक समानता** (Social Equity) : परम्परागत प्रशासन के स्वरूप के कारण राष्ट्र में सामाजिक और आर्थिक असमानता विद्यमान थी इसलिए लोगों में इस असमानता के दृष्टिकोण के प्रति एक सामान्य प्रतिरोध विद्यमान था। अतः इस सम्मेलन के विद्वानों ने वितरणात्मक न्याय एवं समता के दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर सहमति बनाई। सामाजिक सौहार्द या समरसता की अवधारणा से वंचित अल्पसंख्यकों के विषय के प्रस्ताव पर चिंता या तनाव विद्यमान था। नवीन लोक प्रशासकों के द्वारा सार्वजनिक संगठनों में समता के अधिकतमकरण के व्यवहार को सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर केन्द्रित करने की बात कही गई तथा संगठनों के भीतर एवं बाहर लोगों को जीवन को खुशहाल बनाने के अवसर प्रदान करने पर बल दिया गया।

4. **परिवर्तन**(Change) : जैसा कि वेबर के द्वारा अभिव्यक्त किया गया कि शास्त्रीय लोक प्रशासन पहले से विद्यमान या यथास्थिति का समर्थक था लेकिन मिन्नोब्रुक विद्वान चाहते थे कि लोक प्रशासन को परिवर्तन और नवाचार या नवप्रर्वतन के माध्यम से प्रासंगिकता, सामाजिक समता और मूल्यों का पालन करना चाहिए। यथास्थिति सदैव अपने हितों के लिए काम करती है और इस यथास्थिति के कारण से प्रशासक अंततः दमनकारी बन जाते हैं। वे स्वयं को बदलाव के

अभिकर्ता या एजेण्ट के रूप में स्थापित कर लेत है और ऐसा करके वे परिवर्तित परिवेश को अवशोषित कर लेते और बदलावों के अनुरूप स्वंय को ढ़ाल लेते है लेकिन लोगों की सहायता के लिए या समस्याओं के समाधान के लिए यर्थाथवादी निर्णयों की आवश्यकता होती है। कार्यप्रणाली का लचीलाचपन एवं संगठनात्मक अनुकूलनशीलता किसी भी प्रशासनिक प्रणाली का अभिन्न हिस्सा होने चाहिए ताकि बदलाव किया जा सके।

आलोचनाएं :

इस मिन्नोब्रुक सम्मेलन प्रथम के आयोजन के पश्चात् इसके सन्दर्भ में आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया। सम्मेलन की विषय वस्तु के बारे में और निर्णयों के बारे में फ्रैंक मरिन ने अपनी पुस्तक ;(Towards a New Public Administration, 1971AD) के अन्तर्गत सारांश के रूप में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। उसने नवीन लोक प्रशासन में उक्त सम्मेलन में व्यक्त चार लक्ष्यों में एक नवीन आयाम के रूप में 'ग्राहक उन्मुखी' (Client-Focus) तत्व को जोड़ने का सुझाव दिया। गोलम्ब्यूसकी के अनुसार इस सम्मेलन की तीन आधारों पर आलोचना की गई अर्थात् इसे प्रबन्धन विरोधी, सिद्धान्त विरोधी और सकारात्मकता विरोधी बताया गया।

सापेक्षता विरोधी :

सापेक्षता विरोधी के रूप में गोलेम्ब्यूसकी ने मूल्यनिरपेक्षता, तार्किकतावाद एवं नीतिविहीनता के तत्वों के आधार पर आलोचना की गई। वे कहते है कि राजनीति विज्ञानियों या व्यवहारवादियों के द्वारा पिछले दो दशकों में प्रचारित किये गए मूल्यनिरपेक्षता के स्वरुप को लोक प्रशासन में कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसका अभिप्राय यह था कि मूल्यविहीन लोक प्रशासन को स्वीकार नहीं किया जा सकेगा। इसी के साथ शास्त्रीय स्कूल पूर्ण तार्किकतावाद पर आधारित था लेकिन वास्तव में मानव सदैव तार्किक नहीं होता है। अतः तार्किकतावाद की आलोचना की गई।

नीति विहीनता के उपागम की आलोचना की गई अर्थात् राजनीति एवं प्रशासन के विभाजन के उपागम को पूर्णतया लागू करना सही न था।

तकनीक विरोधी : नव लोक प्रशासन ने वैज्ञानिक तकनीक एवं मशीन के नियंत्रण वाले परम्परागत दृष्टिकोण को नजरअदांज कर दिया। नव लोक प्रशासन मशीनी उपागम के स्थान पर मानवीय उपागम को प्रोत्साहित करता है।

नौकरशाही विरोधी : नवीन लोक प्रशासन नौकरशाही या पदसोपानीय व्यवस्था विरोधी था क्योंकि यह अनुदारवादी उच्चस्थ से अधिनस्थ के प्रतिमान के स्थान पर विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को स्थापित करने का आग्रह करता है।

यथास्थितिवाद : गोलेम्ब्यूसकी ने इसे क्रान्ति या परिवर्तनवादी के रूप में अभिव्यक्त किया है अर्थात् इस स्वरूप में यह सम्मेलन आंशिक स्वरूप में सफल हुआ। अभी भी इसकों ओर अधिक स्पष्ट करने एवं इसके लक्ष्यों को निर्धारित करने की आवश्यकता थी।

सामाजिक समता के बारे में संदेहास्पद स्थिति : यदि सामाजिक समता के साथ में आर्थिक प्रणाली, दक्षता एवं प्रभावशीलता को संयोजित करने के बाद सामाजिक समता स्थापित हो पायेगी। इस पर संदेह था।

विषय क्षेत्र की मांग : नवीन लोक प्रशासन राजनीतिक संस्थाओं, राजनीतिक प्रक्रियाओं और राजनीतिक नेतृत्व को अपने विषय क्षेत्र में शामिल करने की मांग कर रहा था। इसके अलावा इस सम्मेलन पर आर्थिक साहित्य की उपेक्षा करने का भी आरोप लगाया गया।

इन सबके बावजूद भी इस प्रथम सम्मेलन ने लोक प्रशासन को उभरते विषय के रूप में विकास के नवीन आयाम उपलब्ध कराये।

दूसरा मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988 : प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन के लगभग 20 वर्षों के बाद 1988 में उसी स्थान पर दूसरे सम्मेलन का आयोजन हुआ। प्रथम सम्मेलन के अन्तर्गत डी वाल्डों ने केवल 35 वर्ष से कम आयु के युवा शोधार्थियों को ही निमंत्रण दिया जिस कारण से लोक प्रशासन के वरिष्ठ विद्वान एवं सिद्धान्तकार बहुत नाराज हुए और उन्होंनें इस सम्मेलन के बाद नव लोक प्रशासन को विकसित करने में बहुत कम सहयोग किया तथापि प्रथम सम्मेलन ने लोक प्रशासन के विकास में एक नवीन लहर उत्पन्न कर दी तथा इसकी गतिशीलता के लिए एक गंभीर चिंतन को प्रस्तुत किया। 1970 व 1980 के दशक में इस सम्मेलन के बाद लोक प्रशासन में आधारभूत बदलाव दिखायी देने लगे तथापि वे बदलाव बहुत कम थे जिनकी परिचर्चा प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन में की गई थी। राजनीतिक रूप से एक नौकरशाही एवं सरकार विरोधी वातावरण बना हुआ था। प्रेस, राजनीतिक नेतृत्व एवं सिविल सोसायटी यह महसूस कर रहे थे कि नौकरशाही उनके इस उपागम का समर्थन नहीं कर रहे है। यह एक प्रगतिशील युग था जिसमें नौकरशाही को सीमित करने के लिए अनके विकास कार्यक्रम आरम्भ किये गए, उन्हें लागू किया गया और विकास की प्रणाली में अनेक सुधार किए गए। केन्सास विश्वविद्यालय के **प्रोफेसर जॉर्ज फ्रेड्रिकसन** ने उसी स्थान पर दूसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988 का **आयोजन किया** जो कि पहले सम्मेलन में मुख्य सहयोगी भी थे। इस सम्मेलन में प्रतिभागियों की संख्या में महिला एवं पुरूष चिंतकों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया तथापि इसमें केवल **50 प्रतिशत ही युवा लोक प्रशासक शामिल थे** क्योंकि बाकी आधे मूल मिनोवर्स या मिन्नोवासी थे। इसमे लगभग 60 प्रतिभागियों ने भाग लिया। इनमें **14 महिला प्रतिभागी भी थी जिनकी संख्या प्रथम सम्मेलन में**

केवल एक थी। इस सम्मेलन की ख़ास बात यह थी कि अनुशासन को एकीकृत स्वरूप प्रदान करने के लिए विविध क्षेत्रों जैसे कि राजनीति विज्ञान, कानून और प्रबंधन, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र इत्यादि से प्रतिभागियों को भी आमंत्रित किया गया। यह एक अन्तः क्रियात्मक एवं संवादपूर्ण सम्मेलन था जिसमें सामाजिक समानता एवं विविधता के सन्दर्भ में बुनियादी मान्यताओं के निर्धारण हेतु आदर्शवादियों और व्यवहारवादियों के बीच व्यापक बहस हुई। उन्होंने सिद्धांत और व्यवहार को एक दूसरे के समीप लाने के ध्येय से सरकार को नौकरशाही के साथ जोड़ने की संभावना पर परिचर्चा की। दूसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन को संभवतया कम प्रभावी और कम विवादास्पद माना गया क्योंकि लोक प्रशासन विषय ने स्वयं को राजनीतिक विज्ञान अलग कर लिया था। दूसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन ने प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन के प्रभाव का मूल्यांकन किया तथा लोक प्रशासन विषय को एक विस्तृत विषय के रूप में **'लोक प्रशासन एवं लोक नीति'** के रूप में स्थापित किया।

प्रथम व द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन के बीच की अवधि के दौरान ही एक ओर बदलाव देखने को मिला। इस बदलाव में वह लोक प्रशासकों का एक हिस्सा था जो कि लोक प्रशासन से दूर जा रहा था और उसके स्थान पर लोक नीति के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करने में लगा हुआ था। **वाइल्डवस्की** ने कहा कि लोक प्रशासन की विफलता की आशंका के कारण **1960 के दशक में लोक नीति अध्ययन उपागम विकसित** हुआ। नए लोक प्रशासन को वामपंथी अर्थात् लोक पशासन का बदले हुए या नवीन स्वरूप के रूप में देखा गया और नीति अध्ययन को लोक प्रशासन के दक्षिणपंथी अर्थात् जो कि लोक प्रशासन को पुनः राजनीति विज्ञान के समीप स्थापित करने का प्रयास कर रहा है अर्थात् यथास्थिति को पुनः स्थापित करना चाहता है। उन्होंने विषय के लिए दर्शन और प्रणालियों की परवाह नहीं की। उन्होंने व्यावहारिक सवाल पर ध्यान केंद्रित किया कि सरकार मौजूदा

राजनीतिक और संस्थागत प्रणालियों की सीमाओं के भीतर क्या हासिल कर सकती है। लोक प्रशासन के व्यवहारिक स्वरूप पर बल दिया जाने लगा।
इसी के साथ में **लोक चयन सिद्धान्त या पब्लिक चोईस थ्योरी** का उदय हुआ जिसने मुक्त बाजार प्रणाली को संचालित करने के लिए राज्य के हस्तक्षेप को सीमित करने की बात पर बल दिया। इसने सरकार को सार्वजनिक संसाधनों पर अपने संसाधनों को अधिक सीमा तक खर्च करने की बात को सामने रखा। इसी के समानान्तर **उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की अवधारणा** ने अनुशासन की पहचान को बनाए रखने के लिए निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों को मजबूत करने की वकालात की।

इस सम्मेलन के अन्तर्गत अनेकानेक निर्णायक एवं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक विषयों पर परिचर्चा की गई जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित थे :

सामाजिक समानता :
सामाजिक समानता का विषय दोनों ही मिन्नोब्रुक सम्मेलनों में एक समवर्ती विषय था जो कि सामुदायिक साझा प्रयासों के ध्येय से पारस्परिक व्यक्तिगत मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करने के साथ-साथ व्यक्तिगत लाभांशों को कम करने बल देता है। इस सम्मेलन के प्रतिभागियों ने यह महसूस किया कि सामाजिक समता के लक्ष्य को प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन में शुरु किया गया था और सरकारों ने इसके महत्व को भी स्वीकार किया।

लोकतांत्रिक मूल्य :
यह लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने और उन्हें लोक प्रशासन के द्वारा पूरा करने के लिए एक मजबूत आह्वान था। अब लोक प्रशासन नैतिकता, जवाबदेयता और नेतृत्व के मुद्दों का सामना करेगा। इसमें संस्थाओं की निष्पादन क्षमता या प्रदर्शन को लोक प्रशासन के केंद्र मे रखने का सुझाव दिया गया।

आदर्शवादियों और व्यवहारवादियों के बीच बहस की निरंतरता :

आदर्शवादी और व्यवहारवादियों के बीच की बहस प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन से अब तक निरंतन बनी रही। यह एक विज्ञान है या दर्शन इसकी निरंतरता अभी भी बनी रही।

सामाजिक विविधता का स्वरूप : इस सम्मेलन में जो चौथा विषय उभर कर सामने आया वह था, प्रत्येक समाज के भीतर की विविधता का एक भिन्न स्वरूप। इसमें तीन मुख्य विविधता वाले समूह थे सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ ; जाति, नृजातीय समूह और लिंग तथा जेण्डर।

खण्डविहीन सामाजिक अभियांत्रिकी : सार्वजनिक प्रशासन के अल्पकालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विखण्डित सामाजिक अभियांत्रिकी या इंजीनियरिंग को एक कदम आगे बढ़ाने का सुझाव दिया गया। सर कार्ल पॉपर द्वारा प्रस्तावित खण्डविहीन सोशल इंजीनियरिंग उपागम के अनुसार तेजी से बदलती परिस्थितियों के कारण दीर्घकालिक योजनाओं की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इसलिए विज्ञान की प्रयोगशालाओं में किये जाने वाले अनुप्रयोगों के समान सामाजिक अभियांत्रिकी के विशेषज्ञों की सलाह के अनुरूप हमें छोटे पैमाने पर योजनाएं बनानी चाहिए।

अंतर-अनुशासनात्मक : लोक प्रशासन विषय को अन्य विषयों के प्रति सहिष्णुता के दृष्टिकोण को विकसित करने की आवश्यकता है क्योंकि यह शून्य की स्थिति में काम नहीं कर सकता है लेकिन इस तरह के रवैये का विरोध सम्मेलन के दौरान अनेक बार परिचर्चाओं के दौरान देखा गया।

पूंजीवाद और लोकतंत्र : लोक प्रशासन निर्धारित किए गए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लाभ और गैर-लाभकारी क्षेत्रों का समन्वय कर सकता है क्योंकि पूंजीवाद और लोकतंत्र के बीच दरार एक वास्तविकता थी।

कार्मिक प्रणाली : कोई भी संगठन अच्छी कार्मिक व्यवस्था के बिना काम नहीं कर सकता है। इसलिए सर्वश्रेष्ठ लोगों को भर्ती करने या काम पर रखने, उन्हें प्रशिक्षित करने और उन्हें प्रेरित करने के लिए तथा उत्पादकता बढ़ाने के लिए पूरी तरह से एक अलग विज्ञान है।

प्रौद्योगिकी : इस समय अमेरिकी समाज एवं कार्यालयों में कंप्यूटर अपना स्थान बना रहा था। सार्वजनिक नीति में इस तकनीक को लागू किया जाना था लेकिन इसके प्रति उनमें आरंभिक स्तर पर बहुत हिचकिचाहट थी। यद्यपि आज यह वैश्विक समाज की कार्य प्रणाली एवं जीवन व्यवस्था का मुख्य आधार बन गया है।

लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र पर बहस : लोक प्रशासन के क्षेत्र और अध्ययन पद्धतियों के बारे में फिर से बहुत बहस हुई।

संक्षेप में यह सम्मेलन के बाद निजीकरण और आउटसोर्सिंग की ओर एक बदलाव हुआ। सामाजिक मूल्यों ने उन पर अधिक जोर दिया। महत्वपूर्ण बात यह थी कि लोक प्रशासन का विषय पहले सम्मेलन से ही उदित हुआ था। दूसरा सम्मेलन व्यवहारवाद के लिए अधिक स्वीकार्य था। नौकरशाही की अपेक्षा सार्वजनिक एजेंसियों में विश्वास अधिक था। इसी के साथ नागरिक सहभागिता और मानवीय समाज के पारस्परिक मूल्यों को ध्यान में रखा गया।

लोक प्रशासन और सरकारी कार्मिकों की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि के बीच विद्यमान दूरी को समाप्त करने की आवश्यकता महसूस की गई। इसमें न केवल निजी संगठनों के लिए बल्कि सार्वजनिक संगठनों के बीच एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के वातावरण को निर्मित करने पर बहुत अधिक जोर दिया गया। इन सब निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए लोक नीति उपागम का विकास करना अनिवार्य था।

आलोचनाएं :

इस सम्मेलन की सबसे पहले इस आधार पर आलोचना की गई कि वह लोक प्रशासन के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सका। इस सम्मेलन में अनेक शोध पत्रों का वाचन किया गया तथा बहुत से साहित्य उपलब्ध था लेकिन सिद्धान्तों एवं मौलिक विचारों की कमी रही। दूसरा सम्मेलन पहले मिन्नोब्रुक सम्मेलन की अपेक्षा तुलनात्मक रूप से कम विवादास्पद था। **फ्रेडरिकसन इस सम्मेलन के बारे में टिप्पणी करते हुए कहते है कि पहला तो यह अधिक तकनीकी ; दूसरा अधिक व्यक्तिवादी; तीसरा आयु व लैंगिक दृष्टि से अधिक सामाजिक समता; चौथा उत्पादकता और प्रदर्शन या निष्पादन के माप के बारे में नवीन एवं उभरता हुआ परिप्रेक्ष्य; और पाँचवां मुख्यधारा और सकारात्मकता या साइमन के परिप्रेक्ष्य में अधिक जुड़ाव** प्रमुख थे। इस सम्मेलन में नवीन लोक प्रबन्धन के परिप्रेक्ष्य में सरकार के विषय क्षेत्र के बारे में कोई परिचर्चा नहीं की गई। न ही उन्होंने तकनीकी-नौकरशाही प्रणालियों के संबंध में किसी भी भावी एजेंडे पर चर्चा की गई। एक और मुद्दा जो प्रतिभागियों के लिए जटिल साबित हुआ, वह था सरकारी नौकरशाही की दक्षता का अध्ययन करना।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 2008 :

तीसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन के शीर्षक के रूप में समग्र विश्व मे **'लोक प्रशासन, लोक प्रबन्धन एवं लोक सेवा का भविष्य'** का प्रयोग किया गया। दूसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन के आयोजन को लगभग 20 वर्ष का समय पूर्ण हो गया था। इस अवधि के दौरान अर्थात् 1988 से 2008 के बीच लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र में व्यापक अभिवृद्धि हुई। लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र में लोक मामले या विषय, लोक प्रबन्धन, लोक वित और बजट, लोक नीति विश्लेषण, गैर लाभकारी प्रबन्धन तथा स्थानीय स्वशासन जैसे

विषय शामिल हो किये गए। यह अब इस नवीन विषय सामग्री के साथ ओर अधिक वैज्ञानिक, तार्किक एवं सकारात्मक बन गया।

तीसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन का आयोजन : तीसरे सम्मेलन के आयोजन के पूर्व का वातावरण बड़ा ही अशान्त था क्योंकि इसमें जॉर्ज डब्ल्यू बुश की विवादास्पद अध्यक्षता, इराक और अफगानिस्तान में युद्ध, 9/11 का हमले, कैटरीना तूफान, इंटरनेट विस्फोट और 2008 की वैश्विक आर्थिक मंदी इत्यादि से सम्बन्धित विषयों ने इसे विवादों में खडा कर दिया। इसी के साथ नौकरशाही के वातावरण में भी क्रमिक परिवर्तन हुए क्योंकि अमेरिकी प्रशासन में प्रदर्शन आधारित कार्यप्रणाली को अपनाया गया। सार्वजनिक सेवा वितरण में हर स्तर पर निजीकरण में वृद्धि ने भी इसमे योगदान दिया। युवा एवं वरिष्ठ प्रशासनिक चितंकों के पारस्परिक अहंवाद की भावना ने इसे ओर अधिक विवादास्पर बना दिया जिसके कारण इसका आयोजन दो अलग-अलग चरणों में किया गया।
तीसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन का **आयोजन** 3 से 7 सितम्बर, 2008 को सिराक्यूज विश्वविद्यालय के मैक्सवेल स्कूल में फ़ैनस्टील चेयर की महिला प्रोफेसर और **संचालनकर्ता रोज़मेरी ओ लेरी (Rosemary O Leary) के द्वारा** किया गया। उसने अपने वरिष्ठ समकक्षों तथ युवा विद्वानों के बीच के विवादास्पद मुद्दे के समाधान हेतु कॉन्फ्रेंस या सम्मेलन को दो भागों या चरणों में संचालित किया।

तीसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन का प्रथम चरण : सम्मेलन के प्रथम भाग या चरण को सम्मेलन पूर्व कार्यशाला या 'प्री-कॉन्फ्रेंस वर्कशॉप' का नाम दिया गया तथा इस चरण में केवल युवा विद्वानों एवं उन युवा शोधार्थियों को शामिल किया गया जिनकों शोध उपाधि या पी. एचडी की उपाधि प्राप्त किये हुए 8 वर्ष से अधिक का समय नहीं हुआ था। फ्रेड, लैम्ब्राइट और रोजमेरी ओ'लेरी ने इस चरण की सम्पूर्ण कार्यवाही का शान्ति से निरीक्षण किया। इस चरण में लगभग 56 आलोचनात्मक शोध

पत्र प्रस्तुत किये गए। ये सभी शोध पत्र अन्ततः विविध पाठ्यक्रमों एवं भावी परिचर्चाओं के मुख्य भाग के रूप में स्वीकार किये गए। संस्थागत और व्यक्तिगत बाधाओं के संबंध में पूर्व-सम्मेलन कार्यशाला में नव लोक प्रशासन के विद्वानों द्वारा उठाए गए पाँच मुद्दे संक्षेप में इस प्रकार थे :

1. संस्थाओं के कार्यकाल एवं पदोन्नति के क्षेत्र में प्रोत्साहन को शामिल करना।
2. अन्तः अनुशासनात्मक अनुप्रयोग को जोड़ने के साथ ही विषय क्षेत्र को इस तरह से व्यापक स्वरूप प्रदान किया जाए कि विषय क्षेत्र में नौकरशाही के समावेशन को भी प्रोत्साहित किया जा सके।
3. सार्वजनिक मुद्दों के बारे में एक मानक स्तर के निर्धारण हेतु बहस और सतत् रूप से तार्किक संपादकीय और समीक्षा बोर्ड का गठन करना।
4. लोक प्रशासन के अनुसंधान का समर्थन करने के लिए ओर अधिक धन की आवश्यकता पर बल दिया गया।
5. अंतरराष्ट्रीय और प्रतिस्पर्धी लोक प्रशासन अनुसंधान को बढ़ावा देना।

युवा शोधार्थी समूह की लोक प्रशासन के विकास लिए प्रतिबद्धता :

नवीन लोक प्रशासन के युवा विद्वानों ने लोक प्रशासन की विकास प्रक्रिया में सहायता करने का वादा किया तथा उन्होंने निम्न बिन्दुओं के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की अर्थात्

1. लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र का विस्तार करना।
2. अनुसंधान को प्रोत्साहित करने परिवेश का निर्माण करना।

3. अनुसंधान प्रविधियों एवं प्रारूप की सीमाओं का निर्धारण एवं स्वीकृति।
4. कक्षा अध्यापन के क्षेत्र में अनुसंधान का अनुप्रयोग करना।
5. लोक प्रशासन विषय के प्रकाशन को प्रासंगिक बनाना, अन्तः अनुशासनात्मक पद्धतियों का प्रयोग करना तथा प्रकाशन की समीक्षा करना।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन का दूसरा चरण : तीसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन के दूसरे चरण में 13 देशों के 200 विद्वानों ने भाग लिया। इस चरण में सभी उम्र के उन 30 विद्वानों ने भी भाग लिया था जो कि पहले और दूसरे मिन्नोब्रुम सम्मेलन में प्रतिभागी थे। इन कुल 200 प्रतिभागियों के द्वारा 12 विषयों पर शोध पत्र प्रस्तुत किये गए जो कि निम्न विषयों या थीम से सम्बन्धित थे :

अकादमिक एवं अभ्यासकर्ताओं के संबंध ; लोकतांत्रिक निष्पादन प्रबन्धन ; वित्तीय प्रबंधन ; वैश्वीकरण और तुलनात्मक दृष्टिकोण ; सूचना तकनीक और प्रबंधन ; कानून, राजनीति और लोक प्रशासन ; नेतृत्व ; अनुसंधान प्रविधि और अंतर-अनुशासनात्मक अनुसंधान ; नेटवर्क ; लोक प्रशासन सिद्धांत और मूल्य ; सामाजिक समता और न्याय ; पारदर्शिता और जवाबदेयता।

उपयुर्क्त विषयों से अनेक प्रश्न उदित हुए जिन पर परिचर्चा की गई अर्थात्

1. 1968 से 2008 तक लोक प्रशासन विषय कैसे विकसित हुआ?
2. 30 वर्षीय पुराने व नव लोक प्रबंधन के बारे में सैद्धांतिक और अनुभवात्मक निष्कर्ष क्या हैं?

3. अंतःविषय विद्वानों के इनपुट के कारण, क्या लोक प्रशासन पर्याप्त सैद्धांतिक आधार से दूर या निकट है?
4. नेटवर्क प्रशासन और सहयोगी लोक प्रबंधन किस तरह से लोक प्रशासन, लोक प्रबंधन और लोक सेवा को प्रभावित कर रहे हैं और उनके अनुसार अनुशासन कैसा होना चाहिए?
5. वैश्वीकरण ने संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक प्रबन्धन, लोक सेवा और लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र को तथा विकसित, विकासशील और संक्रमणकालीन देशों को किस तरह से प्रभावित किया है?

सम्मेलन के मुख्य बिन्दू :
इस सम्मेलन के अन्तर्गत निम्नलिखित बिंदु उभर कर सामने आए है :

1. **लोक प्रशासन का सुधार :** लोक प्रशासन में मानवीय संबंधों को बढ़ावा देने के लिए सहयोगी सम्बन्धों, संवाद और कार्यवाही की सामाजिक प्रक्रिया के रूप में विकसित किया गया। इसका तात्पर्य यह है कि यह व्यक्ति विरोधी है जो कि सभी के लिए एक स्वस्थ सम्बन्धों की परम्परा को विकसित करने के लिए दूसरों के सहयोग से काम करता है।
2. **तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया गया** : उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के उद्भव के कारण किसी भी देश की प्रशासनिक प्रणाली का अलगाव में रखकर अध्ययन नहीं किया जा सकता है इसीलिए लोक प्रशासन को

विभिन्न देशों के लोक प्रशासन का तुलनात्कमक अध्ययन एवं अनुसंधान करना चाहिए जिससे कि इस तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से वे उपयोगी निष्कर्षों पर पहुँचा जा सकें।

3. **क्रियात्मक अनुसंधान एवं अनुसंधान प्रविधियों की बहुलता पर बल :** सार्थक अनुसंधान के लिए अनुसंधान प्रविधि उपकरणों एवं तकनीकों का अनुप्रयोग करना आवश्यक होता है। अतः इस सम्मेलन में सार्थक अनुसंधान के लिए अनेक शोध प्रविधियों के उपयोग पर बल दिया गया।

तीन मिन्नोब्रुक सम्मेलनों का तुलनात्मक विवेचन निम्न तालिका के अन्तर्गत प्रस्तुत है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

तीन मिन्नोब्रुक सम्मेलनों का तुलनात्मक विवेचन

पुराने लोक प्रशासन और नव लोक प्रशासन के बीच का अंतर यह था कि नव लोक प्रशासन ने सामाजिक मूल्यों के बदलाव के लिए नए तरीके लागू किए। अब मुख्य प्रश्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के लिए अनुकूलनशीलता और जवाबदेयता का है। 2010 में रोजमेरी ओ लेरी, डेविड वेन स्लाकी और किम के द्वारा सम्पादित पुस्तक “The Future of Public Administration Around the World: The Minnowbrook Perspective”में दोनों चरणों में प्रस्तुत शाध पत्रों को प्रकाशित किया गया।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

सामाजिक समानता और नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा

(Social Equity and NPA)

सामाजिक समानता पर मूल निबंध का शीर्षक **“एक नवीन लोक प्रशासन की ओर**“ था न कि सामाजिक समानता तथापि यह स्पष्ट रूप से एक नवीन विषय था। लोक प्रशासन में सामाजिक समानता के सम्बन्ध में पहला आलेख 1969 मारिनी के द्वारा लिखा गया जो कि 1971 में प्रकाशित हुआ। लोक प्रशासन में सामाजिक समानता पर मूल निबंध निम्नलिखित है (मारिनी 1971)। यह दावा करने वाला वह पहला व्यक्ति है जिसने कहा कि सामाजिक समानता को लोक प्रशासन के मानक आधार का हिस्सा बनाना चाहिए। लोक प्रशसन के अन्तर्गत पहली बार सामाजिक समानता की वकालात करने वाला आलेख **’’टूवर्ड ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : द मिनोब्रुक पर्सपेक्टिव’’ (मारिनी**

1971) शीर्षक से लिखा गया था। मूल मिनोब्रुक सम्मेलन को कवर करने वाली यह पुस्तक दूसरे मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988 से पहले लिखी गई थी। यहां प्रस्तुत निबंध सम्मेलन के आयोजकों (एच. जॉर्ज फ्रेडरिकसन, डब्ल्यू. हेनरी लैंब्राइट और फ्रैंक मारिनी) के उन तीन निबंधों में से एक है जो सम्मेलन के बाद लिखे गए थे। एक प्रसिद्ध नवीन अनुशासन के रूप में नया लोक प्रशासन बड़े हिस्से में प्रचारित नहीं हुआ क्योंकि यह बहुत व्यापक और बहुत उत्तेजक था। 1980 के दशक के मध्य तक "नवीन लोक प्रशासन" वाक्यांश पाठ्यपुस्तकों के बाहर शायद ही कभी सुना जाता था।

संगठन सिद्धांत और नवीन लोक प्रशासन में सामाजिक समता का स्वरूप :

किसी भी घटना को समझने के लिए उस घटना को भागों में विभाजित करना और प्रत्येक भाग की विस्तार से जांच करना आवश्यक होता है। सरकार को समझने में यह राजनीति विज्ञान के पारंपरिक क्षेत्र को अभिव्यक्त करता है। लोक प्रशासन, विधायी व्यवहार, सार्वजनिक कानून, और आगे अन्य संस्थानों को प्रभावित कर सकता है या यह अलगाव मुख्य रूप से वैचारिक या सैद्धांतिक हो सकता है जैसे सिस्टम सिद्धांत, निर्णय सिद्धांत, भूमिका सिद्धांत, समूह सिद्धांत इत्यादि। नया लोक प्रशासन घटना को उप-विभाजित करने के एक अलग तरीके की मांग करता है ताकि इसे बेहतर ढंग से समझा जा सके। यह विश्लेषक सुझाव देता है कि सार्वजनिक संगठनों में चार बुनियादी प्रक्रियाएं काम करती हैं जो कि सामाजिक समानता को स्थापित करने में आधारभूत धूरी के रूप में कार्य करते है। इसी के साथ ये चारों प्रक्रियाएं लोक प्रशासन को समझने के लिए और उसमें निरंतर सुधार करने दोनों के लिए उपयुक्त हैं। नवीन लोक प्रशासन एवं सामाजिक समता की चार सुझाई गई प्रक्रियाएं निम्नलिखित है अर्थात्

1. **वितरण प्रक्रिया** (The Distributive Process) **;**
2. **एकीकृत प्रक्रिया** (The Integrative Process) **;**
3. **सीमा-विनिमय प्रक्रिया** (Boundary-Exchange Process) **; और**
4. **सामाजिक-भावनात्मक प्रक्रिया** (Socio-Emotional Process) **।**

1. वितरण प्रक्रिया एवं सामाजिक समता : नवीन लोक प्रशासन वितरण के पैटर्न पर अत्यधिक ध्यान किन्द्रित करता है। सार्वजनिक रूप से प्रशासित कार्यक्रमों के संचालन के परिणामस्वरूप होने वाले लाभों के संदर्भ में इसका संबंध विशेष श्रेणियों के व्यक्तियों को किये जाने वाले वस्तुओं और सेवाओं के बाहरी वितरण से है। वितरण प्रक्रिया के परिणामों को समझने के लिए लागत-उपयोगिता या लागत-लाभ विश्लेषण मुख्य तकनीक है। विश्लेषण का यह रूप विशेष सार्वजनिक कार्यक्रमों के व्यक्तियों के लिए उपयोगिता को मापने के लिए अपनाया जाता है। चूंकि यह संभावित लागतों और वैकल्पिक कार्यक्रमों के लाभों को प्रोजेक्ट करने का प्रयास करता है, इसलिए यह नए लोक प्रशासन का एक बहुत ही केंद्रीय हिस्सा है। यह मुख्य रूप से केंद्रीय है क्योंकि यह समानता के प्रश्न को **"प्राप्त"** करने के प्रयास के लिए एक वैज्ञानिक माध्यम प्रदान करता है। यह पुनर्वितरण के लिए एक सुविधाजनक या उत्कृष्ट लोक प्रशासन का औचित्य भी प्रदान करता है। **"कार्यक्रम-नियोजन-बजट प्रणाली"** इसी का एक आधार तत्व है।

वाइल्डाव्स्की और लिंडब्लोम ने तर्क दिया है कि **तर्कसंगत या लागत-उपयोगिता विश्लेषण** यदि असंभव नहीं है तो अलग पंथ है। लागत-लाभ विश्लेषण एक प्रभावी साधन हो सकता है जिसके द्वारा असमानताओं का प्रदर्शन किया जा सकता है। यह एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा विधायिका और मजबूत नौकरशाही

सार्वजनिक रूप से अपने वितरण निर्णयों का बचाव कर सकती हैं। निष्कर्ष यह है कि यह स्पष्ट असमानताओं के बारे में जनता को सूचित कर परिवर्तन की मांग उत्पन्न करता है। एक अधिकार क्षेत्र के भीतर सरकारी सेवाओं के वितरण में समानता पर और इस तरह के प्रश्न पूछता हैः क्या एक स्कूल बोर्ड अपने अधिकार क्षेत्र में स्कूलों और स्कूली बच्चों को समान रूप से अपने धन का वितरण करता है, और यदि नहीं, तो सुविधा या वंचितों की दिशा में असमानता है? क्या स्वच्छता सेवाएं शहर के सभी मोहल्लों में समान रूप से वितरित की जाती हैं, और यदि नहीं तो असमानता किस दिशा में बढ़ती है और इसे कैसे उचित ठहराया जाता है? क्या राज्य और संघीय सहायता समान रूप से वितरित की जाती है और यदि नहीं तो असमानताएं कैसे न्यायसंगत हैं? आंतरिक-संगठन भी वितरण के पैटर्न संगठन सिद्धांत का एक पारंपरिक हिस्सा हैं। नए लोक प्रशासन में **आंतरिक वितरण प्रक्रिया में वृद्धिशील समझौते या "सौदेबाजी"** और कुछ हद तक "प्रशासनिक टकराव" करने के लिए कुछ हद तक कम तत्परता शामिल होने की संभावना है। यदि नए लोक प्रशासक कार्यपालिका की स्टाफ एजेंसियों में स्थित हैं, जिसकी अत्यधिक संभावना है, तो वे निस्संदेह अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में काफी अधिक दृढ़ होंगे। एक ऐसे सिद्धांत को विकसित करने की आवश्यकता है जो सार्वजनिक प्रशासकों की उपस्थिति के लिए पर्याप्त रूप से कम सौदेबाजी के इच्छुक और राजनीतिक और प्रशासनिक जोखिम लेने के लिए अधिक इच्छुक हो।
सामान्य लोक प्रशासकों के होने के संभावित परिणामों की भविष्यवाणी करना कठिन है जो सामाजिक समानता के आधार पर अपने पदों और निर्णयों को युक्तिसंगत बनाने के लिए तैयार हैं। प्रशासनिक सिद्धांत तर्क के रूप में दक्षता, अर्थव्यवस्था या अच्छे प्रबंधन के उपयोग के परिणामों की अपेक्षाकृत अच्छी तरह से व्याख्या करता है जैसा कि हम जानते हैं कि ये तर्क उन वर्षों में विशेष रूप से प्रेरक हैं जिनमें विधायिका और निर्वाचित

कार्यपालिका कर नहीं बढ़ाना चाहती हैं लेकिन हम यह भी जानते हैं कि वस्तुतः कुछ भी "अच्छे प्रबंधन" के तहत उचित ठहराया जा सकता है। जब लोक प्रशासक इस बयानबाजी के सुरक्षित ठिकाने को छोड़ देते हैं, तो क्या हो सकता है? सबसे अच्छा अनुमान लक्ष्यों या उद्देश्यों के बुनियादी मुद्दों पर अधिक खुला षडयंत्र है। कुछ प्रशासकों की जीत होगी, लेकिन बहुमत नहीं होगा; क्योंकि व्यवस्था उन लोगों के खिलाफ काम करती है जो बदलाव चाहते हैं और इसके लिए जोखिम उठाने को तैयार हैं। इसका परिणाम अत्यधिक गतिशील और अपेक्षाकृत अस्थिर मध्यम स्तर की सिविल सेवा होने की संभावना है। फिर भी, एक बड़े झटके के बाद सिस्टम से वास्तविक वापसी या निष्कासन को नए सार्वजनिक प्रशासकों द्वारा मानसिक वापसी के लिए पसंद किया जा सकता है जो अब प्रशासकों के बीच आम है।
उदाहरण के लिए, कोई कल्पना कर सकता है कि एक नगर कार्मिक निदेशक नए गश्ती दल के लिए पात्रता मानकों के प्रश्न पर पुलिस प्रमुख और पुलिस नौकरशाही का सामना करने के लिए तैयार है। वह तर्क दे सकता है, काफी डेटा के साथ समर्थित, कि गश्ती दल की ऊंचाई और वजन नियम अवास्तविक हैं और वंचित अल्पसंख्यकों के खिलाफ व्यवस्थित रूप से भेदभाव करते हैं। वह यह भी तर्क दे सकता है कि नाबालिगों द्वारा दुर्व्यवहार की सजा से वयस्कों को गश्ती दल बनने से नहीं रोकना चाहिए। यदि यह एक खुला विवाद था, तो यह संभवतः नगर परिषद के बहुमत के खिलाफ अल्पसंख्यकों को वंचित कर देगा, संभवतः मेयर के खिलाफ, और निश्चित रूप से प्रमुख और उनके आदमियों के खिलाफ (यूनियनों) जबकि नया लोक प्रशासक इस तरह के टकराव में शामिल जोखिम उठाने के लिए पूरी तरह से तैयार हो सकता है, वर्तमान सिद्धांत आम तौर पर राजनीतिक व्यवस्था के लिए इसका अर्थ अच्छी तरह से समायोजित नहीं करता है।

2. एकीकृत प्रक्रिया एवं सामाजिक समता : प्राधिकरण का पदानुक्रम अथवा पदासोपानीय संरचना प्राथमिक

साधन हैं जिसके द्वारा सार्वजनिक रूप से प्रशासित संगठनों में कार्मिकों के कार्यों का समन्वय किया जाता है। औपचारिक पदानुक्रम स्थायी और चलायमान संगठन का सबसे स्पष्ट और आसानी से पहचाना जाने वाला भाग है। लोक प्रशासक को आमतौर इस स्वरूप में देखा जाता है कि जो पदानुक्रम के माध्यम से संगठन का निर्माण और रखरखाव करता है। वह औपचारिक-अनौपचारिक संबंधों, स्थिति, राजनीति और सत्ता पदानुक्रम में शक्ति को समझने का प्रयास करता है।
नए लोक प्रशासन को शायद सबसे अच्छी तरह से आधुनिक पदानुक्रमित प्रणालियों की वकालत करने के रूप में समझा जाता है। पारंपरिक पदानुक्रमों को संशोधित करने के लिए सिद्धांत और व्यवहार दोनों में कई साधनों का उपयोग किया जाता है। पहली और शायद सबसे अच्छी **ज्ञात परियोजना या मैट्रिक्स तकनीक** है (क्लीलैंड और किंग 1968, 1969; स्टेनर और रयान 1968; बॉमगार्टनर 1963)। यह परियोजना निश्चित रूप से अस्थायी है। प्रोजेक्ट मैनेजर और उसके कर्मचारी एक टीम हैं जो एक चल रहे संगठन में नियमित रूप से स्थापित पदानुक्रमों की सेवाओं का उपयोग करने का प्रयास करते हैं। परियोजना की अवधि के लिए, प्रबंधक को संगठन के तकनीकी पदानुक्रम से अपनी तकनीकी सेवाएं, कार्मिक एजेंसी से अपनी कार्मिक सेवाएं, बजट विभाग से अपनी बजट सेवाएं आदि प्राप्त करनी चाहिए। परियोजना तकनीक एक उपकरण के रूप में भी उपयोगी है जिसके द्वारा उद्योग के साथ सरकारी अनुबंधों की निगरानी और समन्वय किया जा सकता है। पदानुक्रमों को संशोधित करने की अन्य प्रक्रियाएँ सर्वविदित हैं और इसमें **समूह-निर्णय लेने वाला मॉडल, लिंक-पिन फ़ंक्शन और तथाकथित द्वंद्वात्मक संगठन** (लिकर्ट 1961; व्हाइट 1969) शामिल हैं। वास्तविक विकेंद्रीकरण एक मौलिक रूप से संशोधित पदानुक्रम है (कॉफमैन 1969)।नए सार्वजनिक प्रशासन द्वारा कम औपचारिक एकीकृत प्रक्रियाओं की वकालत की गई है। यद्यपि इसके साथ समस्याएं है तथापि

उनका निदान किया जा सकता है। इस प्रकार से नया लोक प्रशासन ऐसे साधनों की खोज करता है जिसके द्वारा संगठन के निचले स्तर और कम शक्तिशाली अल्पसंख्यकों का पक्ष लिया जा सके।

3. सीमा-विनिमय प्रक्रिया एवं सामाजिक समता : सीमा-विनिमय प्रक्रिया सार्वजनिक रूप से प्रशासित संगठन और उसके संदर्भ समूहों और ग्राहकों के बीच सामान्य संबंधों का वर्णन करती है। इनमें विधायिका, निर्वाचित कार्यपालक, सहायक कर्मचारी संगठन, ग्राहक (संगठित और व्यक्तिगत दोनों) और संगठित हित समूह शामिल हैं। सीमा-विनिमय प्रक्रिया संघीय व्यवस्था में सरकार के स्तरों के बीच संबंधों के लिए भी जिम्मेदार है क्योंकि सार्वजनिक रूप से प्रशासित संगठन खुद को एक प्रतिस्पर्धी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक वातावरण में रखते हैं तथा वे समर्थन प्राप्त करना चाहते हैं। यह एक ऐसे ग्राहक को तैयार करके किया जाता है जो विधायिका के साथ एक मजबूत वकालत की भूमिका निभा सकता है फिर एजेंसी और प्रमुख समितियों या विधायिका के सदस्यों के बीच एक सहजीवी संबंध विकसित करके एक स्थायी संगठन का निर्माण और रखरखाव कर सकता है। वितरणात्मक और एकीकृत प्रक्रियाएँ नए लोक प्रशासन में सीमा विनिमय का संचालन करने की परिवर्तित अवधारणाओं के लिए वकालात करती है। सामान्यतया भविष्य के संगठन सिद्धांत को सीमा विनिमय के निम्नलिखित पैटर्न को समायोजित करना होगा। सबसे पहले, उन अल्पसंख्यकों की ओर से काफी अधिक ग्राहक भागीदारी आवश्यक है जो अब तक इसमें शामिल नहीं हुए हैं। (यह मानना अनुचित है कि अल्पसंख्यक पहले से ही ग्राहक के रूप में शामिल नहीं हैं; किसान, बैंकर और भारी उद्योग अल्पसंख्यक हैं और वे अत्यधिक सहभागी ग्राहक हैं। इस अर्थ में सभी सार्वजनिक संगठन "ग्राहक" उन्मुख हैं।) यह परिवर्तन शायद एक अलग तरह की भागीदारी का मंत्र है।

इस तरह की भागीदारी का एक संस्करण अब हमारे कुछ शहरों में उग्रवाद और सामुदायिक-कार्य कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप और कुछ विश्वविद्यालयों के परिसरों में देखा जा रहा है। वंचित-अल्पसंख्यक-ग्राहक भागीदारी का एक पसंदीदा रूप विकेन्द्रीकृत संगठनों के साथ संचार के नियमित पैटर्न होंगे जो वंचित अल्पसंख्यकों के हितों का समर्थन करने वाले वितरण निर्णय लेने में सक्षम हैं, भले ही इन निर्णयों को दक्षता के संदर्भ में उचित ठहराना मुश्किल हो । स्थानीय बहुलवादी अभिजात वर्ग द्वारा विकेन्द्रीकृत परियोजनाओं को अपने कब्जे में लेने की प्रवृत्ति में खतरा होगा। यू.एस. सेलेक्टिव सर्विस इस तरह के अधिग्रहण का एक उदाहरण है। इस प्रवृत्ति को दूर करने के लिए उच्च स्तर के वंचित-अल्पसंख्यक-ग्राहक भागीदारी आवश्यक है। फिर भी नए नियंत्रित अल्पसंख्यकों को पुराने नियंत्रित अल्पसंख्यकों के खिलाफ व्यवस्थित भेदभाव से रोकना कठिन होगा। उच्च ग्राहक भागीदारी का अर्थ है, पहला, जहां संभव हो वहां वंचितों का रोजगार; दूसरा, ग्राहक समीक्षा बोर्डों या समीक्षा एजेंसियों का उपयोग; और तीसरा, न्यू यॉर्क सिटी बोर्ड ऑफ एजुकेशन विकेंद्रीकरण विवाद में ब्राउनहिल स्कूल डिस्ट्रिक्ट द्वारा मांगी गई विकेंद्रीकृत विधायिका। सीमा विनिमय के इस पैटर्न का विकास अंतर-सरकारी संबंधों जैसे कि केन्द्र-राज्य, केन्द्र-स्थानीय शासन, राज्य-स्थानीय शासन इत्यादि के नए रूप से विशेष रूप से स्केल संबंधों के संभावित विकास को दर्शाता है। स्थानीय सरकारों की राजस्व क्षमता की मूलभूत कमजोरी को दूर किया जाना चाहिए।

4. सामाजिक भावनात्मक प्रक्रिया एवं सामाजिक समता : यहाँ लोक प्रशासन को व्यक्तिगत और समूह दोनों की विशेषताओं की आवश्यकता होगी जो वर्तमान में दिखायी देने वाली विशेषताओं से भिन्न हैं। संवेदनशीलता प्रशिक्षण, टी तकनीक, या “संगठनात्मक विकास“ का व्यापक उपयोग नए लोक प्रशासन के

अनुकूल है। इन तकनीकों में पदानुक्रम पर किसी व्यक्ति की निर्भरता को कम करना, उसे संघर्ष और भावनाओं को सहन करने में सक्षम बनाना, और वास्तव में कुछ परिस्थितियों में उनका स्वागत करना और उसे अधिक जोखिम लेने के लिए तैयार करना इत्यादि शामिल है। सामाजिक-भावनात्मक प्रशिक्षण तकनीक प्रशासनिक परिवर्तन के लिए मौलिक उपकरण हैं। अब तक इन तकनीकों का उपयोग मुख्य रूप से चल रही और स्थापित नौकरशाही को मजबूत या पुनर्निर्देशित करने के लिए किया गया है। भविष्य में यह उम्मीद की जाती है कि विकेंद्रीकृत और संभवतः परियोजना-उन्मुख संगठनात्मक मोड के विकास में सहायता के लिए समान तकनीकों का उपयोग किया जाएगा।

क्रिस आर्गिरिस के निर्देशन में संगठनात्मक सामाजिक-भावनात्मक प्रक्रियाओं पर नवीन लोक प्रशासन के संभावित प्रभाव पर यू.एस. डिपार्टमेंट ऑफ स्टेट का मूल्यांकन इसका सबसे प्रभावी उदाहरण है। आर्गिरिस ने निष्कर्ष के रूप में बताया कि **"राज्य" एक सामाजिक व्यवस्था** है जो व्यक्तिगत रूप से पारस्परिक विभिन्न पंथों से और पारस्परिक संघर्ष से अलग होने; न्यूनतम पारस्परिक खुलापन, समता और विश्वास; आक्रामकता और घिनौनेपन से पीछे हटना; यह विचार कि भावनात्मक होना अप्रभावी या तर्कहीन है; अधीनस्थों पर नेताओं का वर्चस्व; दूसरों पर नेताओं के व्यक्तिगत प्रभाव की अनभिज्ञता; और जोखिम लेने या जिम्मेदारी लेने के निम्न स्तर के साथ मिलकर बहुत उच्च स्तर की अनुरूपता इत्यादि। इन संगठनात्मक "विकृतियों" अथवा बुराईयों को ठीक करने के लिए **क्रिस आर्गिरिस (Chris Argyris)** ने निम्नलिखित अनुशंसाएं की है :

1. राज्य विभाग की जीवन प्रणाली को बदलने के लक्ष्य के साथ एक दीर्घकालीन परिवर्तन कार्यक्रम निर्धारित किया जाना चाहिए।

2. परिवर्तन कार्यक्रम के पहले चरण में राज्य विभाग के भीतर सबसे वरिष्ठ प्रतिभागियों के व्यवहार और नेतृत्व शैली पर ध्यान देना चाहिए।
3. इसके साथ ही शीर्ष की भागीदारी के साथ, किसी भी उप-भाग में समान परिवर्तन गतिविधियों को शुरू किया जाना चाहिए जो परिवर्तन के लिए तैयार होने के संकेत देता है।
4. संगठनात्मक परिवर्तन और विकास की जो प्रक्रियाएं बनाई जाती हैं, उनमें उसी व्यवहार और दृष्टिकोण की आवश्यकता होनी चाहिए जिसे हम सिस्टम में शामिल करना चाहते हैं (अधिक पहल करें, जिम्मेदारियों को बढ़ाएं, जोखिम उठाएं)।
5. चूंकि संगठनात्मक विकास गतिविधियां उच्च स्तर के नेतृत्व कौशल का उत्पादन करती हैं और पारस्परिक संबंधों के क्षेत्र में सिस्टम की सुरक्षा को कम करना शुरू कर देती हैं, प्रतिभागियों को राज्य विभाग की कुछ औपचारिक नीतियों और गतिविधियों की पुनः जांच शुरू करने में मदद की जानी चाहिए जो वर्तमान में संगठनात्मक प्रभावशीलता (कर्मचारी मूल्यांकन और रेटिंग, पदोन्नति प्रक्रिया, निरीक्षण) के अवरोधक के रूप में कार्य कर सकते हैं। आंतरिक या बाहरी सलाहकारों की मदद से लाइन के अधिकारियों के निर्देशन में पुनः परीक्षा आयोजित की जानी चाहिए।
6. प्रशासन और सबस्टेंस आवश्यकताओं के बीच समानता और अन्योन्याश्रयता को अधिक स्पष्ट और अधिक व्यापक रूप से स्वीकृति देना।

7. व्यवहार-विज्ञान आधारित ज्ञान के नए क्षेत्रों में राज्य विभाग की आंतरिक क्षमता तत्काल बढ़ाई जाए।
8. कूटनीति के संचालन के लिए व्यवहार संबंधी विषयों के संभावित मूल्य की खोज करते हुए दूर दृष्टिता के अनुसंधान कार्यक्रम विकसित किए जाने चाहिए।

यह कहना बडे दुख की बात है कि राज्य विभाग की विशेषताएं सार्वजनिक रूप से प्रशासित संगठनों के लिए आम हैं जबकि आग्रेरिस की सिफारिशें सभी अत्यधिक आधिकारिक पदानुक्रम-आधारित संगठनों के लिए प्रासंगिक हैं, विशेष रूप से "राज्य" के लिए हैं।
जबकि नया लोक प्रशासन व्यापक सामाजिक समानता के लिए प्रतिबद्ध है, पूर्वगामी को यह स्पष्ट करना चाहिए कि एक अधिक न्यायसंगत आंतरिक संगठन भी एक उद्देश्य है।

निष्कर्ष :

सामाजिक समानता की खोज लोक प्रशासन को वास्तविक मानक आधार प्रदान करती है। नया लोक प्रशासन अच्छे, या संभवतः ईश्वर के साथ एक संरेखण है। ऐसे नियामक आधार से काम करने वाले लोक प्रशासन के संभावित परिणाम क्या हैं? यदि नया लोक प्रशासन सामाजिक समानता के आधार पर अपने रुख को सही ठहराने या युक्तिसंगत बनाने का प्रयास करता है, तो उसे वंचित अल्पसंख्यकों के समर्थन से अपने पारंपरिक स्रोतों से समर्थन बढ़ाना पड़ सकता है। नए लोक प्रशासन के लिए शिक्षित और मुखर लोगों से समर्थन प्राप्त करना जारी रखना संभव हो सकता है यदि हम यह मान लें कि यह सामाजिक वर्ग उन सार्वजनिक कार्यक्रमों के लिए अधिक प्रतिबद्ध हो रहा है जो इक्विटी बढ़ाने वाले हैं और जो नहीं हैं उनके लिए कम प्रतिबद्ध हैं।

मात्रात्मक रूप से इच्छुक सार्वजनिक-संगठन सिद्धांतकारों के कल्याणकारी अर्थशास्त्र की ओर बढ़ने या कम से कम व्यापक रूप से पढ़ने की संभावना है। वास्तव में यह कल्पना करना संभव है कि इन सिद्धांतकारों ने सामाजिक समानता के मॉडल या प्रतिमान को पूरी तरह से अर्थशास्त्री के बाजार मॉडल के रूप में मजबूत किया है। सामाजिक समानता को सर्वोच्च उद्देश्य तक ले जाने के साथ, जिस तरह से अर्थशास्त्र में लाभ का व्यवहार किया जाता है, मॉडल निर्माण अपेक्षाकृत सरल है। उदाहरण के लिए, हम इक्विटी अधिकतमकरण, लंबी और छोटी दूरी की इक्विटी, इक्विटी लोच, और इसी तरह के सिद्धांतों को विकसित कर सकते हैं। पब्लिक चॉइस जर्नल में रिपोर्ट किया जा रहा सिद्धांत और शोध इस संभावित विकास की झलक प्रदान करता है। यह काम वर्तमान में मुख्य रूप से अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जा रहा है, जो मुख्य रूप से, बाजार मॉडल या व्यक्तिगत-उपयोगिता अधिकतमकरण की धारणाओं में भिन्नता विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं। सामाजिक-समानता प्रतिबद्धताओं वाले सार्वजनिक संगठन सिद्धांतकार बाजार के वातावरण या व्यक्तिगत-उपयोगिता अधिकतमकरण पर कम मॉडल के निर्माण और विभिन्न समूहों या लोगों की श्रेणियों द्वारा सार्वजनिक और निजी दोनों वस्तुओं के समान वितरण और पहुंच पर अधिक योगदान दे सकते हैं। यदि एक पूर्ण विकसित इक्विटी मॉडल विकसित किया गया था तो वैकल्पिक नीतियों के संभावित परिणामों का सटीक रूप से आकलन करना संभव हो सकता है।

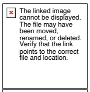

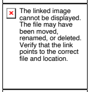

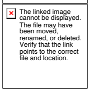

तुलनात्मक लोक प्रशासन

(Comparative Public Administration- CPA)

तुलनात्मक लोक प्रशासन भी नवीन लोक प्रशासन या प्रबंधन के समान एक नवीन अवधारणा है जिसका विकसित स्वरूप दूसरे महायुद्ध के पश्चात ही दिखाई देता है। इससे पूर्व इससे संबंधित कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं था। यह इस महायुद्ध एवं इस दौरान उत्पन्न दशाओं का ही परिणाम है कि लोक प्रशासन एक नई दिशा की ओर अथवा एक विकसित विषय की ओर कदम बढ़ाता है। इस समय लोक प्रशासन के सामने दो प्रमुख चुनौतियां उभरकर सामने आयी। पहली **हर्बर्ट साइमन एवं वाल्डो** के द्वारा साहित्य से अधिक प्रशासन की वैज्ञानिक व्याख्या की आवश्यकता पर बल देना और दूसरी चुनौती के रूप में लेखकों ने लोक प्रशासन में अंतर अनुशासनात्म विश्लेषण पर बल दिया। कोई भी सरकार एक भिन्न आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य में रहकर कार्य करती है। सर जाना गॉस के अनुसार किसी भी प्रकार के प्रशासनिक व्यवहार के पीछे राजनीतिक वातावरण का केन्द्रीय तत्व के रूप में योगदान होता है। **वेबर ने अपने कार्य 'आर्थिक एवं सामाजिक संगठन के सिद्धान्त'** के अन्तर्गत बताया कि किसी भी प्रकार का प्रशासनिक व्यवहार उस राज्य के राजनीतिक वातावरण का ही कार्य होता है। यह एक नये विचार का उदय था। रोबर्ट ने कहा कि जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होता तब तक इसे विज्ञान मानने का दावा खोखला ही साबित होगा।
द्वितीय महायुद्ध के कारण उत्पन्न दशाओं ने लोक प्रशासन के परंपरागत स्वरूप में व्यापक परिवर्तन कर दिया। इसीलिए इस समय को लोक प्रशासन के परंपरागत एवं नवीन साहित्य के बीच की विभाजन रेखा के रूप में माना जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन का एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकास करने में आरंभिक स्तर पर डी वाल्डो, साइमन, रिग्स इत्यादि का महत्वपूर्ण

योगदान रहा है। इसे विकास की गति देने में अग्रिम भूमिका का निर्वहन ***Fred Riggs, Ferrel Heady, Richard Gable, Edwin A. Bock, Milton J. Esman, John D. Montgomery, Edward Weidner, Dwight Waldo, Alfred Diamant*** जैसे विचारकों ने किया।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास एवं उसके उत्तरदायी घटक :

लोक प्रशासन के पिता वुडरों विल्सन ने भी विकसित प्रशासनिक सिद्धान्तों के तुलनात्मक अध्ययन को स्वीकार किया था। 20 वी सदी में आदर्श प्ररूप वाली नौकरशाही के जनक मैक्स वेबर के द्वारा राजनीतिक अधिसता को तीन स्वरूपों अर्थात् परम्परागत, करिश्माई एवं कानूनी व तर्कसंगत में विभाजित कर तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में ही एक कदम बढ़ाया था। तुलनात्मक लोक प्रशासन भी लोक प्रशासन की एक शाखा है जो कि प्रशासनिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं के तुलनात्मक विश्लेषण पर अपने अध्ययन को केन्द्रित करती है। इसे ही तुलनात्मक लोक प्रशासन के नाम से स्वतंत्र एवं स्वायत पहचान मिली। दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके पश्चात उत्पन्न परिस्थितियों की परिणाम स्वरूप तुलनात्मक लोक प्रशासन का उदय हुआ है अब अमेरिका और अन्य विकसित राज्यों के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के अध्ययन के पाठ्यक्रमों में इसे शामिल किया गया सर्वप्रथम डि वाल्डों ने कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में तुलनात्मक लोक प्रशासन विषय की शुरुआत 1948 में की। वाल्डों अमेरिकी लोक प्रशासन के प्रमुख संस्थापक, अग्रणी चिंतक एवं नेता थे। 1952 में अमेरिका में पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन क्लीयरिंग हाउस ने प्रिंसटन में तुलनात्मक लोक प्रशासन सम्मेलन का आयोजन किया। 1955 में मैट्रिक स्टीरियो ने कंपैरेटिव गवर्नमेंट नामक आलेख में तुलनात्मक राजनीति और प्रशासन के संबंध में तर्कपूर्ण व्याख्यान प्रस्तुत किया। रिग्स ने भी 1953 में अमेरिकी राजनीति विज्ञान संघ के सम्मेलन में तुलनात्मक लोक प्रशासन से संबंधित

शोध पत्र प्रस्तुत किया। 1956 में तुलनात्मक राजनीतिक व्यवस्थाएं विषय पर अपना आलेख लिखा। प्रशासनिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन तथा राजनीतिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन मूलतः तुलनात्मक राजनीति के साथ-साथ विकसित हुआ। इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन राजनीति विज्ञान और लोक प्रशासन को एक दूसरे के अधिक समीप ले आया। अमेरिकी लोक प्रशासन संस्थान के द्वारा यह एक एक उपसमिति के रूप में 1960 में अमेरिकन सोसायटी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के रूप में स्थापित हुआ लेकिन वितीय संसाधनों के अभाव में कोई विशेष कार्य करने में सक्षम नहीं हुआ परन्तु आगे चलकर इसे फोर्ड संस्थान के द्वारा वितीय सहायता मिली। 1963 इसका नाम **तुलनात्मक प्रशासनिक समूह (Comparative Administration Group- CAG)**रखा गया। इसका मुख्य कार्य शिक्षण एवं अनुसंधान को बढ़ाना एवं विषय सामग्री का संकलन और इसे प्रचारित करना था। रिग्स ने 1963 से 1970 तक अर्थात् लगभग 7 वर्षों तक अध्यक्ष के पद पर कार्य किया। कैग ने फोर्ड फाउंडेशन द्वारा प्रस्तुत आर्थिक सहायता से अनुसंधान के कार्य का प्रचार प्रसार करता रहा परंतु बाद में इस समूह को दिया जाने वाला अनुदान बंद कर दिया गया। इसके बाद आय या वित के नवीन स्रोत खोजे गए। इस समूह के प्रथम अध्यक्ष फ्रेंडरिग रिग्स थे जो 1970 तक इस पद पर बने रहे। रिग्स के बाद इस समूह के अध्यक्ष का कार्यभार रिचर्ड गेबल ने संभाला। अब फोर्ड फाउंडेशन की अनुदान की शर्तों के अनुसार ही इस समूह ने विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक समस्याओं को अपने अध्ययन का केंद्र बिंदु बनाया। इसने प्रशासनिक समस्याओं को उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक पर्यावरण के व्यवस्थित संदर्भ में देखा। तुलनात्मक प्रशासनिक समूह के द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को प्रसारित करने हेतु त्रिपक्षीय कार्यक्रम तैयार किया गया। इसके अंतर्गत तुलनात्मक लोक प्रशासन से संबंधित अनुसंधान को बढ़ावा देना, विशेष क्षेत्र

को अध्यापन के रूप में विकसित करना तथा तुलनात्मक प्रशासन के विकास के क्षेत्र में अधिक प्रभावी लोकनीति के निर्माण को प्रोत्साहित करने पर विशेष बल देना। इस समूह के द्वारा अनुसंधान गोश्ठियों, सम्मेलनों, अध्यापन सामग्री को श्रेष्ठ बनाने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर तक कार्य किया गया। यह तीसरी दुनिया के देशों और यूरोपियन प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में सक्रिय रहा। इस समूह की निगरानी में क्षेत्र, दृष्टिकोण और सिद्धांतों के विकास के आधार पर 11 समितियों का गठन किया गया जिन्होंनें एशिया, अफ्रीका, लेटिन अमेरिका, यूरोप के राष्ट्रीय नियोजन, तुलनात्मक नगरीय प्रशासन, राजनीतिक संगठन के सिद्धांतों, अंतर्राष्ट्रीय प्रशासन, तुलनात्मक विधि निर्माण, तुलनात्मक शिक्षा प्रशासन, व्यवस्था सिद्धांत इत्यादि पर कार्य किया। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन पर यह समूह सराहनीय अनुसंधान पूर्ण कार्य कर रहा है। इसी के साथ त्रैमासिक पत्रिका जनरल ऑफ कंपैरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन 1967 के प्रकाशन के द्वारा भी पर्यवेक्षण, अनुसंधान और अध्यापन के क्षेत्र को विस्तृत स्वरूप दिया गया। प्रशासनिक व्यवस्था और उसके परिवेश के संबंधों के अध्ययन ने इसे बहुमुखी स्वरूप प्रदान किया। तुलनात्मक लोक प्रशासन आंदोलन का अंतिम उद्देश्य प्रशासनिक विश्लेषण के संबंध में एक सर्वव्यापक और सहमति वाले ज्ञानात्मक मूल्यों को स्थापित करना है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के उदय के पीछे अनेकानेक कारक उतरदायी रहे हैं जिन्हें निम्नलिखित स्वरूपों में स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. दूसरे महायुद्ध की दौरान और उसके बाद जब पश्चिमी दुनिया के देशों का विकासशील राष्ट्रों से संपर्क हुआ तो नवीन और अप्रत्यक्ष रूप देखने को मिला जिसने अमेरिकी शोधार्थियों की मन में जिज्ञासा उत्पन्न की।

2. विज्ञान एवं तकनीकी विकास की गति का प्रशासनिक संगठनों और उनकी क्रियाओं पर व्यापक प्रभाव अभिलक्षित होने लगा। इसने तुलनात्मक लोक प्रशासन की ओर ध्यान दिया गया।
3. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अनेक नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय हुआ। तीसरी दुनिया की शासन व्यवस्थाओं को समझने के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन की आवश्यकता महसूस हुई।
4. इस समय लोक प्रशासन के शोधार्थियों को एक नवीन स्वरूप दिखाई देने लगा जिसमें लोक प्रशासन के अध्ययन को वैधानिक, औपचारिक दृष्टिकोण से हटाकर प्रशासनिक संगठनों में मानव के प्रशासनिक व्यवहार के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करने पर विचार किया गया।
5. राजनीति विज्ञान के व्यवहारवादी आंदोलन से प्रेरणा प्राप्त कर तुलनात्मक राजनीति के समकक्ष पहुंचने की लालसा ने तुलनात्मक लोक प्रशासन जैसे नवीन विषय को विकसित करने में सहायता प्रदान की।
6. दूसरे महायुद्ध के दौरान या बाद में अमेरिकी प्रशासन द्वारा पिछड़े देशों में अनेकाने आर्थिक सुधार कार्यक्रम चलाए गए थे उन्हें तकनीकी सहायता भी दी गई परंतु यह देखने में आया कि वहां के नौकरशाही ढांचे में परंपरागत स्वरूप विद्यमान था इसलिए उनकी आवश्यकता ही कुछ ओर थी। अतः विकासशील देशों में शोधार्थियों को प्रशासन का परिवेश केंद्रित अध्ययन करने पर ध्यान देने की बात कही गई जो की निश्चित रूप से तुलनात्मक लोक प्रशासन के आगमन का प्रतीक था।

7. इन सबके अलावा तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकसित करने की प्रबल इच्छा ने भी इसके विकास में अपना योगदान दिया।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ और परिभाषा : तुलनात्मक लोक प्रशासन बीसवीं सदी के नवीनतम अवधारणा है तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ है कि एक से अधिक प्रशासनिक इकाइयों, अभिकरणों अथवा संगठनों के बीच समानता और असमानताओं या विभिन्नताओं का उनके सांस्कृतिक या पारिस्थितिकीय परिवेश के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन तुलनात्मक पद्धति से करना। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अनुसार समूह के अनुसार लोक प्रशासन का सिद्धांत जो विविध संस्कृतियों एवं राष्ट्रों के परिवेश पर लागू होता है और तथ्यों पर आधारित आंकड़ों का समूह जिसके माध्यम से इसका परीक्षण और अनुसंधान किया जाता है। उसे तुलनात्मक लोक प्रशासन कहते हैं।
रमेश अरोड़ा के अनुसार तुलनात्मक लोक प्रशासन सही अर्थों में विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का, उनके पर्यावरण के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन है।
रिग्स के शब्दों में 'तुलनात्मक शब्द का प्रयोग केवल अनुभवमूलक विधि संबंधी अध्ययनों के लिए ही किया जाना चाहिए। रिग्स ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन की तीन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है अर्थात
आदर्श मूलक दृष्टिकोण से अनुभव मूलक दृष्टिकोण की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति ;
भाव चित्र विषयक दृष्टिकोण या व्यक्तिगत दृष्टिकोण से विधि संबंधी या सर्वव्यापी दृष्टिकोण की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति ; पर्यावरणीय उपागम से पारिस्थितिकीय उपागम की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति।

तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व : तुलनात्मक लोक प्रशासन के संबंध में यहाँ पूर्ण विवेचन करना संभव नहीं है। यहाँ केवल संक्षिप्त जानकारी का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक लोक प्रशासन आज एक स्वतंत्र विषय के रूप में उदित हो चुका है। इसने लोक प्रशासन के क्षेत्र को विस्तृत एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है। यद्यपि इसमें अभी भी अनुभवमूलक पद्धतियों की कमी बनी हुई है। तुलनात्मक लोक प्रशासन ने राजनीति और प्रशासन को पुनः निकट लाने का कार्य किया है। इसका ही योगदान है कि अंतर अनुशासनात्मक उपागम के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय उनका अंतर प्रावधान किया जाने लगा है। इसी के माध्यम से सामाजिक विश्लेषण का क्षेत्र अधिक व्यापक बन गया है। इसने प्रांतवादिता या क्षेत्रवाद की संकीर्णता को समाप्त कर विश्व पर्यावरण की बात को आगे बढ़ाया है। यद्यपि इसमें अभी भी निरंतर सुधार की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

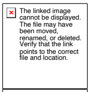

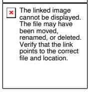

संदर्भ :

H. George Frederickson and Kevin B. Smith, 'Public Administration Theory Primer' Rawat Publications, Jaipur, 2008

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

H. George Frederickson, 'Social Equity and Public Administration' M E Sharpe, Londan, 2010

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, 'Public Administration : An Introduction' PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

Felix A. Nigro, 'Modern Public Administration' Harper and Row, New York, 1970

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, 'Public Administration : An Introduction' PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

Felix A. Nigro, 'Modern Public Administration' Harper and Row, New York, 1970

W.J. Siffin, 'Towards the Comparative Study of Public Administration' Indian University Press, Bloomington, 1959

F. W. Riggs, 'Administration in Developing Countries - The Theory of Prismatic Society' Houghton Miffen Co., Boston, 1964

F. W. Riggs, 'The Ecology of Administration' IIPA, New Delhi, 2011

Ferrel Heady and Sybil L. Stokes (eds.), 'Papers in Comparative Public Administration' Institute of Public Administration, and University of Michigan, USA, 1962

W. Robson (ed.): 'Civil Service in England and France' Hogarth, 1956

Gabriel Almond and G. B. Powell, 'Comparative Politics : A Developmental Approach' Oxford & IBH Pub Co New Delhi, 1976

Ferrel Heady, 'Public Administration-A Comparative perspective' Foundation of Public Administration Series, Prentice Hall, 1966

Preston le Breton, 'Comparative Administrative Theory' University of Washington Press Seattle,1968

R. K. Arora: Comparative Public Administration Associated Publishing House, New Delhi, 2010

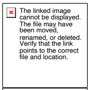

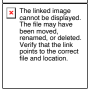

नवीन लोक प्रबन्धन की अवधारणा

(The Concept of New Public Management)

आधुनिक राष्ट्र राज्यों की सरकारों को 20 वी सदी में अनेक वैश्विक बदलावों का सामना करना पड़ा जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका नस्लवाद का मुद्दा और 1960 के दशक में मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में नागरिक अधिकार आंदोलन उदय हुआ। उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की लहर ने आर्थिक,

राजनीतिक और सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश किया जिसके परिणामस्वरूप मानव व्यवहार और क्रिया को आकार देने में बाजार संचालित गणनाओं का महत्व बढ़ गया तथा इसने सार्वजनिकता को प्रतियोगिता के प्रतिमान में बदल दिया। इस कारण से पूरी दूनिया में सार्वजनिक क्षेत्र व उसकी कार्यप्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगाए गए। कल्याणकारी राज्य की नीतिक को फिर से सीमित राज्य या पुलिस राज्य का स्वरूप अपनाने पर बल दिया जाने लगा। बाजार शक्तियों ने राज्य के संचालन को भी प्रभावित किया। शीत युद्ध के अन्त और सोवियत संघ के पतन ने एकधुरवीय व्यवस्था को जन्म दिया जिसके परिणाम स्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका दुनिया की एक महाशक्ति बन गया। सभी लोक प्रशासनों द्वारा यह देखा गया कि सरकार बहुत अधिक और शासन बहुत कम थौ नौकरशाही के गैर-देखभाल और अहंकारी रवैये से यह समस्या बढ़ रही थी। सार्वजनिक सेवा वितरण पर अधिक जोर देने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी जिसमें सरकारें विफल रही। अतः एक नवीन धारणा का उदय हुआ जिसने **पोस्ट-वेबेरियन और विल्सनियन युग के प्रशासन की अवधारणा एंव शब्द को प्रतिस्थापित कर दिया** और इसे ही **नवीन लोक प्रबन्धन** के नाम से जाना जाता है।

एनपीएम या नवीन लोक प्रबन्धन की धारणा का विकास : 1980 के दशक में एनपीएम में वृद्धि हुई क्योंकि नवीन लोक प्रशासन अब मान्य नहीं था। 1988 में जब दूसरा मिनोब्रुक सम्मेलन आयोजित हुआ तो यह स्पष्ट हो गया कि नवीन लोक प्रशासन सभी राष्ट्रों की सरकारों पर लागू नहीं था जिसके परिणामस्वरूप एनपीएम के रूप में एक नवीन प्रतिमान का उदय हुआ। यह मुख्य रूप से **यूके में मार्गरेट थैचर के प्रधानमंत्रित्व काल में, कैलिफोर्निया के नगर निगमों में और बाद में न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया में शुरू** हुआ। थैचर ने सक्रिय रूप से एक नीति उद्यमी होने की भूमिका निभाई और चुनौती को स्वीकार किया।

उन्होंने संगठनात्मक तरीकों, सिविल सेवा, श्रम संबंधों, व्यय योजना, वित्तीय प्रबंधन आदि के क्षेत्रों में सार्वजनिक प्रबंधन नीति में सुधारों को आगे बढ़ाया। वाल्डो के द्वारा 1969 में कार्यक्रम नियोजन और बजट प्रणाली का प्रचार किया गया। यह सूक्ष्म आर्थिक निर्णयों और कार्यप्रणाली को लागू करने के लिए योजना और कार्यक्रमों पर आधारित एक बजट प्रणाली थी। 1970 के दशक के अंत में पूंजीवादी विचारधारा से एक नव-उदारवादी विचारधारा में बदलाव देखा गया जिसने कल्याणकारी राज्य, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों और नौकरशाही को बदनाम किया। साइमन ने 1976 में वैज्ञानिक प्रबंधन सिद्धांतों का खंडन किया और मूल्य आधारित निर्णयों से तथ्यों के अलगाव का समर्थन किया। उन्होंने व्यवहार, निर्णयों और संगठन के पक्ष में अपनी आलोचना को आधार बनाया और बताया कि लोक प्रशासन का मुख्य लक्ष्य सार्वजनिक हित होना चाहिए। 1980 का दशक में ब्रिटिश प्रधानमंत्री जॉन मेजर ने अपनी पहल को आगे बढ़ाते हुए मार्गरेट थैचर के काम को जारी रखा और नागरिक चार्टर, गुणवत्ता प्रतिस्पर्धा, संसाधन लेखांकन और बजट और निजी वित्त पहल शुरू करने के लिए 'नेक्स्ट स्टेप्स इनिशिएटिव' का गठन किया। इसी समय **आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (OECD)** द्वारा सार्वजनिक प्रबंधन का प्रस्ताव दिया गया और **'लोक प्रबंधन समिति और सचिवालय' (PMCS)** का गठन किया गया। 1986 में जेम्स बुकानन और वारेन नट्टर द्वारा सार्वजनिक पसंद सिद्धांत प्रस्तावित किया गया जो कि अपने सार्वजनिक सेवा प्रदाताओं का चयन करने और राज्य की भूमिका को कम करने के विकल्प के लिए व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार को आक्रामक रूप से ढालकर कार्यप्रणाली व्यक्तिवाद पर आधारित था। सार्वजनिक पसंद सिद्धांतकारों के अनुसार साइमन द्वारा व्यक्तिगत तर्कसंगतता स्वीकार्य नहीं थी क्योंकि एक व्यक्ति ने अपने हित में काम किया और तर्कसंगतता नहीं। 1989 में क्रिस्टोफर हुड ने मंदी

को रोकने या अत्यधिक सार्वजनिक खर्च के मामले में सरकार के विकास की रणनीति को बदलने के लिए एनपीएम की वकालता की और अन्ततः 1990 के दशक में राष्ट्रपति क्लिंटन ने सार्वजनिक प्रबंधन का समर्थन किया और 'राष्ट्रीय भागीदारी' की शुरुआत की और 'सरकारी प्रदर्शन और परिणाम अधिनियम' कानून पारित किया और इसके बाद यह आंदोलन धीरे धीरे अन्य विकसित देशों जैसे जापान, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया और अन्य विकासशील एशियाई और अफ्रीकी देशों में फैल गया। सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न स्वायत्त एजेंसियों को अपशिष्ट प्रबंधन, सड़क रखरखाव और इसी तरह के मुद्दों से निपटने के लिए एक 'निष्पादन या कार्यपरिणाम अनुबंध नीति' तैयार की गई और अपनाई गई। इस तरह से नवीन लोक प्रशासन के स्थान पर नवीन लोक प्रबन्धन की अवधारणा का विकास हुआ।

एनपीएम प्रतिमान में हुड की भूमिका अथवा योगदान :

एनपीएम मॉडल शुरू में क्रिस्टोफर हुड और माइकल डब्ल्यू जैक्सन के द्वारा 1991 में दिया गया था। उन्होंने विश्वास और अविश्वास के अलग-अलग डिजाइनों के साथ सार्वजनिक जवाबदेही की एक नई धारणा की कल्पना की और परिणामस्वरूप लेखांकन की एक भिन्नता का निर्माण किया। उन्होंने प्रगतिशील लोक प्रशासन के बुनियादी नियमों को विपरीत क्रम में प्रस्तुत किया अर्थात् सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच के अंतर को कम करना या समाप्त करना तथा प्रक्रिया जवाबदेही को परिणाम आधारित जवाबदेही की ओर हस्तांरित करना। बाजार एवं निजी व्यापार के बाजार प्रबन्धन में उच्च विश्वास तथा बजट के अधिकतमकरण की विफलता के रूप में सार्वजनिक अधिकारियों अथवा नौकरशाही में निम्न विश्वास के रूप में मूल तत्व को अभिव्यक्त किया है। उनके कार्यो की लेखांकन तकनीकों का उपयोग करके सटीक लागत और मूल्यांकन के साथ सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। एनपीएम के सिद्धांत आर्थिक तत्वों से इस हद तक जुड़े हुए थे कि इसमें अनेक

अर्थशास्त्री और लेखाकार शामिल थे। नवीन राजनीति, नए अधिकार और नवीन औद्योगिक राज्य जैसी सभी धारणाओं ने नव लोक प्रबन्ध को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया गया। पुराने लोक प्रशासन का एनपीएम में स्थानांतरण काफी सुचारू रूप से हुआ और पुराने संस्करण को इसके बारे में कोई चिंता नहीं थी।

एनपीएम के सैद्धांतिक आधार : किसी भी प्रतिमान या उपागम को व्यावहारिक रूप से काम करने के लिए सैद्धांतिक आधारों की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न सिद्धांतकारों और लोक प्रशासकों ने सरकार के उत्तरदायी शासन के उपकरण के रूप में एनपीएम के अनेक प्रतिमान दिए हैं। नीचे दी गई प्रमुख 6 विशेषताएं नव लोक प्रबन्धन को अनेक सैद्धांतिक आधार प्रदान करती हैं :

1. बजट में कटौती करना : सभी आधुनिक सरकारें बजटीय समस्याओं का सामना कर रही हैं क्योंकि उनकी गतिविधियों में वृद्धि हुई है और संसाधनों की कमी है। अपनी सरकारों के व्यय को पूरा करने के लिए वे घाटे के बजट के लिए जाते हैं और घाटे के चक्रीय दबावों में समाप्त हो जाते हैं। बजट में कटौती और अर्थव्यवस्था के दम पर ही अर्थव्यवस्था को हासिल किया जा सकता है। पीटर एफ. ड्रकर और कई सार्वजनिक पसंद सिद्धांतकारों द्वारा सुझाया गया रास्ता निजीकरण है क्योंकि इससे सरकारी खर्च और संबंधित कार्यों में कमी आएगी।

2. प्रावधान और उत्पादन का पृथक्करण : मजबूत सामुदायिक संगठनों के निर्माण के लिए सार्वजनिक वस्तुओं के प्रावधान और उनके उत्पादन को अलग किया जा सकता है। ऐसा करने का एक प्रभावी तरीका ओस्ट्रोम द्वारा अपनी 'पॉलीसेंट्रिक एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम' में दिया गया अनुबंध है। सरकार को आर्थिक प्रतिबंधों और प्रभावों से मुक्त करने के लिए

सार्वजनिक पसंद सिद्धांतकारों द्वारा भी इसका समर्थन किया गया था।

3. उपयोगकर्ता पर शुल्क :
भले ही सार्वजनिक पसंद सिद्धांतकारों द्वारा उपयोगकर्ता शुल्क की वकालत की गई थी फिर भी इसे तर्कसंगत प्रबंधन विचारकों द्वारा शुरू किया गया था। बुनियादी ढांचे के लिए 'बिल्ड ऑपरेट ट्रांसफर' (बीओटी) की योजना इसी सैद्धांतिक आधार का परिणाम है। यह बुनियादी ढांचे के विकास के लिए संसाधनों को खोजने के लिए सरकार को बचा सकता है। 'वाउचर' की अवधारणा भी मार्केटिंग मॉडल से 'उपयोगकर्ता शुल्क' के सैद्धांतिक आधार से ली गई है।

4. प्रतिस्पर्धा :
एक बेहतर बाजार अर्थव्यवस्था के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) को निजी व्यापार क्षेत्र के साथ प्रतिस्पर्धा करने की आवश्यकता है ताकि लोगों को यह तय करने का विकल्प मिल सके कि क्या खरीदना है और किस कंपनी से खरिदना है। निधियों को स्थानांतरित करने के लिए विभागों के बीच आंतरिक प्रतिस्पर्धा भी पैदा की जा सकती है। प्रदर्शन को प्रेरित करने का एक अन्य तरीका प्रबंधकों को स्वतंत्र रूप से काम करने के लिए अधिक विवेक और लाभ देना है। इस उत्तोलन के साथ विकेंद्रीकरण की अवधारणा आती है जो शास्त्रीय लोक प्रशासन और सार्वजनिक पसंद सिद्धांत के लिए सामान्य थी। कार्य पिष्पादन मापन की प्रदर्शन तकनीकों को बढ़ावा देने के लिए एनपीएम ने खुद को एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में जवाबदेही पर आधारित किया। प्रदर्शन संकेतक और लेखांकन का उपयोग जवाबदेही और प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए किया जाता है।

5. राजनीति और प्रशासन का पृथक्करण :
एनपीएम में राजनीति और प्रशासन के अलगाव पर जोर दिया गया

था क्योंकि यह प्रभावी प्रबंधन के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन और एनपीए पर केंद्रित था। वित्तीय प्रबंधन और प्रदर्शन लेखांकन की दो महत्वपूर्ण तकनीकें हैं जिन्हें आसानी से बढ़ाया जा सकता है। योजना, प्रोग्रामिंग और बजट प्रणाली (पीपीबीएस) और परिणाम बजट सरकारी खर्च को सुव्यवस्थित करने में मदद करते हैं।

6. रणनीतिक नियोजन एवं प्रबन्धन :
लोक प्रबंधन में तर्कसंगत नौकरशाही दृष्टिकोण से मानवीय प्रबंधन शैलियों में बदलाव के लिए रणनीतिक योजना और प्रबंधन विधियां शामिल हैं। मानव संसाधन प्रबंधन और क्षमता निर्माण एक कारण और कथन संबंध रखने के लिए दो प्रहरी हैं। यदि हमारे पास पहला है तो हमारे पास आवश्यक प्रदर्शन का सही स्तर हो सकता है।

विकास की गति के साथ पारदर्शिता प्राप्त करने के लिए उपरोक्त सभी सैद्धांतिक आधारों को सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) के साथ संयोजित किया जाना चाहिए। अगर समय बचाया जा सकता है तो लागत भी स्वचालित रूप से कम हो सकती है। एनपीएम के अग्रदूत **क्रिस्टोफर हुड ने 'द आर्ट ऑफ द स्टेट' नामक पुस्तक** लिखी और इस पर एक व्यापक दृष्टिकोण दिया। उन्होंने इसे 'सार्वजनिक सेवाओं को डिजाइन और संचालित करने की समस्या और कार्यकारी सरकार के विस्तृत कार्य' के रूप में परिभाषित किया। लोक प्रशासन का नाम बदलकर 'लोक प्रबंधन' कर दिया गया है जिसमें सरकारी 'व्यवसाय' संचालित करने के लिए नए विचारों, अवधारणाओं और पद्धतियों को शामिल किया गया था जिसे पहले 'प्रशासन' या सरकारी गतिविधियों के रूप में जाना जाता था। सार्वजनिक प्रबंधन शब्द सभी को पसंद है क्योंकि पहला शब्द 'जनता' उन विचारकों को आकर्षित करता है जो इसे सरकार की गतिविधियों से संबंधित

मानते हैं जबकि दूसरा शब्द 'प्रबंधन' प्रबंधन तकनीकों के अनुप्रयोग से संबंधित है।

नव लोक प्रबन्धन के प्रमुख सिद्धान्त : क्रिस्टोफर हुड के अनुसार सार्वजनिक प्रबंधन विषयों जैसे नियंत्रण और विनियमन डिजाइन, प्रबंधन के प्रकारों का पृथक्करण और इन विषयों की विफलताओं का विश्लेषण करने के लिए समूह-ग्रिड सांस्कृतिक सिद्धांत का उपयोग किया गया। हुड के एनपीएम के मॉडल को अपनाने से पहले ग्रिड-समूह सांस्कृतिक सिद्धांत को संक्षेप में समझना आवश्यक है।

ग्रिड-समूह सांस्कृतिक सिद्धांत : ग्रिड-समूह सांस्कृतिक सिद्धांत मैरी डगलस, माइकल थॉम्पसन और स्टीव रेनर द्वारा विकसित किया गया था। आरोन वाइल्डवस्की और रिचर्ड एलिस ने भी इस सिद्धांत में योगदान दिया। यह दर्शाता है कि आधुनिक समाज के व्यवहार और तरीकों के लिए देशी परंपराएं और प्रथाएं कैसे महत्वपूर्ण हैं। इस मॉडल में दो बुनियादी मानदंड हैं जो सामाजिकता को दर्शाते हैं अर्थात् :

समूह : हालांकि रेखाएं व्यक्तिपरक और विवेकाधीन हैं फिर भी 'समूह' आयाम उस स्तर की पहचान करता है जिस पर लोग एक-दूसरे के साथ जुड़ते हैं। क्षैतिज अक्ष के एक छोर पर अलग-अलग व्यक्ति होते हैं जो निम्न स्तर पर एक साथ बंधे होते हैं और दूसरे छोर पर ऐसे लोग होते हैं जो एक दूसरे के साथ व्यक्तिगत लगाव के कारण एक दूसरे के साथ बंधन करते हैं जो एक दूसरे को लंबे समय तक स्थापित करने के लिए अधिक समय देते हैं। संबंधों में समूह आयाम उस डिग्री को मापता है जिस तक लोगों के जीवन को उस समूह द्वारा आकार दिया जाता है और नियंत्रित किया जाता है जिसमें वे रहते हैं। यह उस समूह के साथ खुद को संरेखित करने के कारण किसी व्यक्ति पर लगाए गए सभी प्रतिबंधों को प्रभावित करता है।

ये सामूहिक बाधाएं एक नियंत्रण कारक के रूप में कार्य करती हैं और एक व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करती हैं। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति यदि यह कार्य-उन्मुख था तो इत्मीनान से गतिविधियों पर जितना समय बिताता है वह विशेष रूप से समूह की गतिशीलता पर निर्भर करता है। पंक्ति के एक छोर पर जो लोग सप्ताहांत में अवकाश पर समय व्यतीत करते हैं वे उस समूह में आराम से रहते हैं और दूसरे छोर पर वे लोग होंगे जो अपना समय बर्बाद करना पसंद करते हैं और समाज में योगदान नहीं करना चाहते हैं। अंततः उसे समूह से बहिष्कृत कर दिया गया। इसलिए जब व्यक्ति एक समूह में शामिल होते हैं तो नियम और नियंत्रण प्रभावी कानूनों में परिवर्तित हो जाते हैं जिन्हें प्रभावी ढंग से लागू किया जाता है। वही सिद्धांत जब प्रबंधन पर लागू होता है तो यह प्रदर्शित करता है कि एक निम्न समूह संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए नहीं होता है जबकि एक उच्च समूह करता है।

ग्रिड :

ग्रिड आयाम एक ऊर्ध्वाधर अक्ष पर दिखाया गया है जो एक समूह के लोगों में विभिन्न भूमिकाओं को अपनाने के लिए उनकी पसंद में भिन्नता को दर्शाता है। धुरी के एक तरफ ऐसे व्यक्ति होंगे जो अपनी क्षमताओं में अधिक समरूप हैं, वे कार्य जो वे कर सकते हैं और जिस आसानी से वे एक-दूसरे की भूमिकाओं को स्वैप कर सकते हैं, इस प्रकार अन्योन्याश्रयता बढ़ रही है। धुरी के दूसरे छोर पर, उन व्यक्तियों को एक पद मिलता है जिनकी अलग-अलग स्तर की जवाबदेही के साथ विशिष्ट और विशिष्ट भूमिकाएँ होती हैं। उनके पद और पद इस प्रकार हैं कि उनके कार्य विनिमेय नहीं हैं, लेकिन एक साथ साझा और व्यवस्थित कर सकते हैं। प्रबंधन के क्षेत्र में, एक कम ग्रिड जरूरतों का प्रबंधन नहीं करता है जबकि उच्च ग्रिड करता है।

इस मॉडल में चार प्रकार की संस्कृति है :

1. भाग्यवाद (Fatalism) : भाग्यवादी संस्कृति अपनी व्यक्तिगत भिन्नताओं के कारण निम्न स्तर पर एक साथ बंधती है और समाज के निचले तबके की देखभाल करने के अपने कर्तव्य को महसूस नहीं करती है। ग़रीब अपनी किस्मत को जहाँ कहीं भी ले जाता है, चाहे वह नकारात्मक हो या सकारात्मक, अपनी रक्षा खुद कर लेता है। समय के साथ, वे बाहरी उत्तेजनाओं के प्रति उदासीन और अनुत्तरदायी हो जाते हैं और अपनी या दूसरों की मदद नहीं करते हैं। समूह के इस वर्ग में से, यदि वे सफल होते हैं, तो वे खुद को उन लोगों के विपरीत सफल मानते हैं जो नहीं हैं और उन्होंने इसे अपने दम पर हासिल किया है। ऐसा भाग्यवादी समूह जरूरतों या संसाधनों का प्रबंधन नहीं करता है। उदासीन होने के कारण शक्ति का असंतुलन होता है और इसलिए इसे 'पृथक' भी कहा जाता है। उनके पास एक निरंकुश नेता है जिसमें कोई सांस्कृतिक नायक नहीं है।

2. सामूहिकता (Collectivism) **:** व्यक्तिगत भिन्नताओं के अलावा, एक सामूहिक संस्कृति में व्यक्तियों और संस्थानों, पदानुक्रमों और कानूनों के विकास के बीच मजबूत बंधन होता है। कानून लोगों को नियंत्रित करते हैं और कल्याणकारी गतिविधियों में शामिल होते हैं। एक सामूहिक संस्कृति में उप-समूह शामिल हो सकते हैं जो समग्र कानूनों का पालन करेंगे लेकिन आंतरिक नियम भी हो सकते हैं। इसे 'स्थितिगत' या 'पदानुक्रमित' संस्कृति भी कहा जाता है जो पदानुक्रम और मजबूती को दर्शाती है। आज्ञाकारिता जन्मजात होती है और उनका सांस्कृतिक नायक एक नौकरशाह होता है और जरूरतों के बजाय संसाधनों का प्रबंधन करता है।

3. व्यक्तिवाद (Individualism) **:** संस्कृति के इस समूह में व्यक्ति एक जैसे होते हैं लेकिन एक-दूसरे से संबंधित नहीं होते हैं। एक-दूसरे के प्रति कोई कर्तव्य नहीं

दिखाते हैं या किसी केंद्रीय प्राधिकरण के प्रति निष्ठा नहीं रखते हैं और एक-दूसरे की परवाह नहीं करते हैं। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे का फायदा उठाने का डर होता है और परिणामस्वरूप, शक्ति के स्तरों में भिन्नता के कारण व्यक्तिवाद भाग्यवाद में बदल सकता है। इस प्रकार की संस्कृति को 'बाजार' के रूप में भी जाना जाता है और व्यावहारिक भौतिकवाद के साथ एक अहस्तक्षेप बाजार में प्रतिस्पर्धा से संबंधित है। यह अवसरों को हथियाने पर आधारित है और स्व-नियमन में विश्वास करता है। इसका सांस्कृतिक नायक इसका अग्रणी है और जरूरतों के साथ-साथ संसाधनों का प्रबंधन करता है।

4. समतावाद (Egalitarianism) **:** इस प्रकार की संस्कृति को 'एन्क्लेव', 'सामुदायिक' या 'संप्रदायवाद' के नाम से भी जाना जाता है। यह समानता और कम्यून के आधार पर आधारित है जहाँ समूह कम केंद्रीय है, जिसमें व्यक्तियों को कानूनों से अधिक मूल्यों और नैतिकता के आधार पर एक दूसरे की मदद करने की आवश्यकता होती है। मूल्य-कमी होने पर ही कानूनों का सहारा लिया जाता है। चूंकि व्यक्ति इस संस्कृति में काफी समान हैं, वे समान मूल्यों को आत्मसात करते हैं और एक व्यक्ति पर आदर्श-निर्धारित तरीके से व्यवहार करने के लिए समूह दबाव के रूप में कार्य करता है। समूह समुदायवादी विशेषताओं को प्रदर्शित करने वाले भटके हुए व्यक्ति को ठीक करने के लिए प्रवृत्त होता है। सांस्कृतिक नायक आमतौर पर एक करिश्माई पवित्र व्यक्ति होता है। यह जरूरतों का प्रबंधन करता है लेकिन संसाधनों का नहीं।

क्रिस्टोफर हुड का एनपीएम प्रतिमान : क्रिस्टोफर हुड की सार्वजनिक प्रबंधन की अवधारणा को ही हुड का एनपीएम प्रतिमान कहा जाता है। उन्होंने लोक प्रबंधन के निम्नलिखित सात प्रस्तावों की पहचान की हैं :

1. ग्रिड-ग्रुप सांस्कृतिक सिद्धांत : इस सिद्धांत में सरकार और सार्वजनिक सेवाओं के वितरण में संगठनात्मक मुद्दों से संबंधित सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिचर्चाओं में की विविधताएं शामिल हैं।

2. सांस्कृतिक सिद्धांत ढांचा : सार्वजनिक वितरण प्रणाली में कमियों का विश्लेषण, नियामक तंत्र और उन्हें दूर करने के लिए सार्वजनिक प्रबंधन तकनीकों को सांस्कृतिक सिद्धांत के अनुप्रयोग के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

3. सार्वजनिक सेवाओं का आयोजन : सांस्कृतिक सिद्धांत के माध्यम से सार्वजनिक सेवाओं को व्यवस्थित करने के तरीकों को सांस्कृतिक सिद्धांत की चार ध्रुवीय श्रेणियों से सहसंबंधित करने के व्यापक अध्ययन द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

4. प्रति प्रभाव : भले ही सांस्कृतिक सिद्धांत में सार्वजनिक सेवाओं के प्रभावी वितरण के लिए निश्चित संगठनात्मक डिजाइन हैं फिर भी अन्य तरीके भी हो सकते हैं जिनके नकारात्मक या विपरीत प्रभाव हो सकते हैं।

5. प्रभावीता की सीमाएं : यदि एक प्रणाली का पालन किया जाना है तो भले ही वह विश्व स्तर पर अपनायी जाने वाली प्रबन्धन प्रणाली हो तो भी एक प्रभावी सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संगठनात्मक तरीकों की अपनी सीमाएं हैं।

6. सांस्कृतिक सिद्धांत के आयाम : सांस्कृतिक सिद्धांत एनपीएम में अध्ययन किए जा सकने वाले

विभिन्न स्तरों पर लागू होने के लिए अलग-अलग आयामों की खोज करता है।

7. सांस्कृतिक विविधता को समझना : सांस्कृतिक सिद्धांत का उद्देश्य 'अच्छे प्रबंधन तकनीकों' पर पहुँचने के लिए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ सांस्कृतिक भिन्नता को समझना है। इसमें सार्वजनिक प्रबंधन के मॉडल का खंडन करने की क्षमता का निर्माण भी शामिल है यदि वे व्यावहारिक हैं। 1991 में डनलीवी के साथ क्रिस्टोफर हूड ने एक व्यावहारिक पेशेवर प्रबंधन प्रस्तुत किया जिसमें इकाइयों को अर्ध-संविदात्मक या अर्ध-बाजार रूपों में विभाजित करने के लिए एक आदर्श बदलाव दिखाया जो कि निम्न पाँच स्वरूपों में प्रस्तुत किया गया है :

1. सार्वजनिक क्षेत्र में 'कॉन्ट्रैक्टिंग आउट' का उपयोग करके उच्च स्तर की प्रतिस्पर्धा और मिश्रित वितरण के माध्यम से बदलाव करना।
2. निजी क्षेत्र प्रबंधन तकनीकों को सार्वजनिक क्षेत्र में लागू करने पर ध्यान केन्द्रित करना।
3. निर्गत नियंत्रण पर बल देना।
4. प्रदर्शन या निष्पादन माप के विकास पर ध्यान देना।
5. लेखांकन पारदर्शिता प्राप्त करने के लिए आर्थिक और उदार संसाधनों और बजट सुधार पर बल देना।

पोलिट का एनपीएम प्रतिमान :

पोलिट ने तर्क दिया कि सार्वजनिक सेवाओं में राजनीतिक, नैतिक, संवैधानिक और सामाजिक कोण होते हैं जो उन्हें निजी वस्तुओं से

अलग करते हैं। पोलिट ने एनपीएम के बारे में कुछ अवलोकन किए जो इस प्रकार हैं :

सार्वजनिक प्रबंधन सुधार की प्रकृति : सार्वजनिक प्रबंधन सुधार अधिकांश सरकारों में उनके पार्टी घोषणापत्र, सरकारी योजनाओं और परियोजनाओं में एक बढ़ती हुई चिंता के रूप में उभरा है। यह अपने आप में एक संगठन बन गया है, जिसमें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क और एजेंसियां, सिविल सेवक, विद्वान, राजनेता और प्रबंधन सलाहकार शामिल है।

सरकार एक व्यवसाय के रूप में : एनपीएम दृष्टिकोण सरकार को एक व्यावसायिक चिंता के रूप में मानता है और इसे उसी के अनुसार चलाया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण राष्ट्रों में सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों का एक हिस्सा बन गया है।

एनपीएम पर कोई अभिसरण नहीं : एनपीएम दृष्टिकोण सार्वजनिक सुधारों का एकमात्र अभिसरण मॉडल नहीं है। हालाँकि, इसे क्षेत्रों और राष्ट्रों में परिवर्तनशीलता के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों को प्राप्त करने के लिए एक मॉडल के रूप में माना जा सकता है।

कार्यान्वयन के संबंध में अंतर : एनपीएम पर चर्चा और उनके कार्यान्वयन के बीच व्यापक अंतर है। चर्चा के चरण को आत्मसात करने और कार्यान्वयन के साथ इसे सहसंबंधित करने की आवश्यकता है।

लोक प्रबंधन सुधारों का आकलन (पीएमआर) : विभिन्न देशों में, जो पीएमआर लाने की कोशिश कर रहे हैं, मूल्यांकन स्पष्ट या विश्वसनीय नहीं रहा है। यहां तक कि

विश्वव्यापी सुशासन संकेतक भी अस्पष्टता की इस समस्या का समाधान नहीं कर पाए हैं।

पीएमआर मूल्यांकन :

यह देखा गया है कि पीएमआर मूल्यांकन में चक्रीय संशोधन शामिल हैं, उदाहरण के लिए, केंद्रीकरण तंत्र का उपयोग करने की अवधि के बाद विकेंद्रीकरण तंत्र को प्राथमिकता दी जाती है। कभी-कभी, निचले स्तर के प्रदर्शन मापन और ऑडिटिंग को प्राथमिकता दी जाती है ताकि सेक्टरों को सख्त ऑडिटिंग और माप के साथ बढ़ने दिया जा सके।

संक्षेप में, पोलिट ने दावा किया कि दुनिया भर में सार्वजनिक प्रबंधन में कोई स्थिर पैटर्न या डिजाइन नहीं था। उस देश के लिए विशिष्ट कारकों के आधार पर भिन्नताओं का पालन किया जा रहा था। दूसरी ओर, जो देखा गया है वह व्यावहारिक रूप से सैद्धांतिक आधार भी रखता है क्योंकि एक आकार सभी में फिट नहीं होता है।

कुछ प्रबंधन तकनीकों जैसे टीक्यूएम ने एक स्थिर पैटर्न दिखाया है जिससे मूल्यांकन संबंधी संदर्भों का निर्माण किया जा सकता है। इसलिए, उन्होंने देश के लिए विशिष्ट मॉडल तैयार करने का सुझाव दिया, जिन्हें स्थानीय कारकों को ध्यान में रखते हुए डिजाइन किया जा रहा है, जिसमें क्षेत्रीय और कार्य अंतर शामिल हैं। विचार करने के लिए एक और चर यह है कि उस देश की राजनीति कैसे काम करती है ताकि प्रबंधकीय डिजाइन उसके अनुसार बनाया जा सके। पीएमआर की योजना बनाते समय निहित स्वार्थ और पीएमआर की पुनरावृत्ति विशेषता दो तरीके हैं।

फेर्ली एट अल का एनपीएम प्रतिमान :

फेर्ली एट अल के अनुसार, एनपीएम को प्रबंधकीय विचार या एक वैचारिक विचार के रूप में देखा जाता है। उन्होंने निम्नलिखित क्षेत्रों

में सार्वजनिक क्षेत्र की बदलती राजनीतिक अर्थव्यवस्था की पहचान की है :

सार्वजनिक क्षेत्र के संघों में गिरावट : वेतन के सामूहिक सौदेबाजी की पारंपरिक प्रणाली से अनुबंध के कानूनी ढांचे में बदलाव के कारण 1980 के दशक में सत्ता में बदलाव के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र की यूनियनों में अनुबंध करने से भारी गिरावट आई। प्रदर्शन आधारित वेतन प्रणाली एक आदर्श बन गई और एक नई राजनीतिक अर्थव्यवस्था का उदय हुआ।

व्यावसायिक स्वायत्तता में कमी : उच्च अनुसंधान और शैक्षिक पेशेवरों को कठोर प्रबंधकीय अल्पसंख्यक के अधीन किया गया और उनकी स्वायत्तता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यह स्वीकार किया जाता है कि पेशेवर फिर से संगठित हो सकते हैं और मुख्य कार्यों में स्वायत्तता की मांग करने के लिए संगठित हो सकते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधक : 'प्रबंधन अवश्य प्रबंधित करें' के सिद्धांत ने सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधकों के एक लाभप्रद समूह को जन्म दिया है जो प्रबंधकीय सुधारों को लागू करने के लिए जिम्मेदार हैं। वित्त, लेखा परीक्षा और सूचना जैसे कार्यों के पुनर्वर्गीकरण के संबंध में प्रबंधकीय पदों में वृद्धि हुई है।

गैर-निर्वाचित अभिजात वर्ग का उदय : सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसई) ने नई सार्वजनिक सेवाओं के वितरण के प्रबंधन के लिए कार्यकारी निदेशकों के बजाय अपने बोर्डों में प्रबंधकों की नियुक्ति देखी है। इस नए समूह को बनाने के लिए निजी क्षेत्रों के कुशल गैर-निर्वाचित कुलीन प्रबंधकों को सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में शामिल किया गया है जो सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों को विकसित करने में सहायक होंगे।

लोकतांत्रिक घाटा : एनपीएम मॉडल विकसित करने में, उपयोगकर्ता कम महत्वपूर्ण होता जा रहा है और एक लोकतांत्रिक घाटा पैदा कर रहा है, हालांकि एनपीएम के समर्थकों का तर्क है कि उपयोगकर्ता नए बाजार तंत्र में बड़ी संख्या में विकल्पों के लिए योग्य होगा। सार्वजनिक जवाबदेही प्रतिष्ठान एनपीएम के लिए एक चुनौती हो सकती है। फेर्ली एट अल ने 1996 में एनपीएम में शामिल किए जाने वाले पहलुओं का एक समूह विकसित किया जो इस प्रकार से है :

1. एम सभ्य, संगठनात्मक बंडलिंग, निदेशक मंडल की तरह कॉर्पोरेट शासन के नए रूप।
2. बड़े संचालन के मुख्य दायरे की पहचान।
3. एम सार्वजनिक क्षेत्र के लिए उपयुक्त निधियों के लिए अर्ध-बाजार तंत्र विकसित करना।
4. एम सार्वजनिक वित्तीय आवंटन और निजी सेवा वितरण के बीच अलगाव।
5. सेवा प्रदाताओं और गुणवत्ता के साथ उनकी उपयोगकर्ता-प्रतिक्रिया पर ध्यान दें।
6. पारदर्शिता तंत्र के माध्यम से प्रदर्शन मूल्यांकन।
7. दक्षता के साथ मूल्य-प्रति-धन पर बल।
8. अर्थव्यवस्थाओं के लिए संगठनों का आकार घटाना और कुशल होना।
9. श्रम बाजार का विनियमन।

बोरिन्स, कर्नाघेन और मार्सन (1984) का प्रतिमान : कनाडा के संबंध में बोरिन, कर्नाघन और मार्सन द्वारा नए सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधन के लिए तीन प्रकार के दृष्टिकोण विकसित किए गए हैं :

1. राज्य की भूमिका को कम करना :

उन्होंने निजीकरण, विनियमन और अनुबंध के माध्यम से समाज में राज्य की भूमिका में कमी की वकालत की।

2. संगठनात्मक संरचना : एक आवश्यकता महसूस की गई कि सरकारी संगठनों को सर्वोत्तम प्रबंधन प्रथाओं का पालन करके पुनर्गठित किया जाना चाहिए।

3. क्षमता निर्माण : सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों की क्षमता निर्माण के विशेष संदर्भ में सार्वजनिक क्षेत्र के सुधारों को लागू किया जाना चाहिए ताकि उन्हें भागीदारी निर्णय लेने के साथ सशक्त बनाया जा सके। इसलिए उन्होंने निम्न मान्यताओं पर ध्यान केंद्रित किया है :

1. सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तांतरण और भागीदारी निर्णय प्रणाली का विकास करना।
2. नौकरशाही को कम करके दक्षता बढ़ाने के लिए जिसके परिणामस्वरूप केंद्रीय एजेंसी पर नियंत्रण कम होता है।
3. प्रतिस्पर्धा संचालित बाजार की स्वीकृति और सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र द्वारा की जाने वाली गतिविधियों के अलगाव की ग्रहणशीलता।
4. सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बीच संबंध स्थापित करना।
5. सेवा उपयोगकर्ताओं को ग्राहकों के रूप में माना जाएगा और गुणवत्ता सेवाएं प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा।
6. संगठन और उनके कर्मचारियों का प्रदर्शन आधारित मूल्यांकन।
7. प्रबंधकों को उनके प्रदर्शन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त मानव और तकनीकी संसाधन उपलब्ध कराना।

सार्वजनिक प्रबंधन का ओसबोर्न मॉडल : डेविड ओसबोर्न और टेड गेब्लर नामक शोधार्थियों का तर्क है कि औद्योगिक युग के बाद उभरी शासन प्रणाली अब काम नहीं करती थी। सरकारी बजटों में वित्तीय बाधाओं ने बढ़ी हुई जटिल सरकारी गतिविधियों को कवर करने के लिए इसे और भी कठिन बना दिया है क्योंकि समाज एक नागरिक-केंद्रित संगठन के रूप में विकसित हुआ है जो गुणवत्ता के एक मानक के साथ सेवाओं की मांग करता है। ओसबोर्न ने 'उद्यमी सरकार' का सुझाव दिया जिसमें परिणामों के पहलुओं, प्राधिकरण के विकेंद्रीकरण और नौकरशाही के आकार में कमी शामिल थी।
यह सरकार के भीतर और साथ ही बाहर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है और नागरिक सर्वर के लिए पर्याप्त विकल्प वाले ग्राहक हैं। तब प्रपत्र प्रतिस्पर्धा, मिशन-उन्मुखीकरण और कमाई उद्यमिता द्वारा सरकार के पुनर्निर्माण पर थे। उन्होंने दस मूल सिद्धांत तैयार किए जो सार्वभौमिक रूप से लागू होंगे, हालांकि उस पहलू को गंभीर रूप से चुनौती दी गई है क्योंकि स्थानीय कारक प्रणाली को प्रभावित करते हैं।

ओसबोर्न मॉडल में शामिल प्रमुख तत्व हैं :

1. निजी क्षेत्र के प्रबंधन सिद्धांतों और तकनीकों को सीखा जाना चाहिए और सरकारी क्षेत्र के प्रबंधन में शामिल किया जाना चाहिए।
2. 'हैंड्स-ऑन' प्रबंधन और 'आर्म्स-लेंथ' संगठनों की दो अवधारणाएं नीति निर्माताओं से अलग नीति के कार्यान्वयन को बढ़ावा देंगी।
3. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को उद्यमशीलता नेतृत्व की संस्कृति को विकसित करना चाहिए।
4. प्रदर्शन प्रबंधन और लेखा परीक्षा की सहायता से इनपुट और आउटपुट के मूल्यांकन पर ध्यान दें। लागत प्रबंधन को लागू करने के लिए सार्वजनिक

सेवाओं को उनके सबसे बुनियादी तत्वों में विभाजित करना। सार्वजनिक क्षेत्र में संसाधन आवंटन और सेवा वितरण को लागू करने के लिए अनुबंध, प्रतिस्पर्धा और निजी क्षेत्र के बाजार।

ओसबोर्न और गैबलर की कार्य योजना : एक सफल संगठन के लिए एनपीएम मॉडल की कार्य योजना के मुख्य सिद्धांत हैं :

1. कोर : वांछित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए संगठन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।
2. परिणाम : कर्मचारियों की कार्रवाई का परिणामों के साथ संबंध होना चाहिए और किसी संगठन के समूह का नागरिकों पर प्रभाव डालने के लिए वांछित परिणाम प्राप्त करने चाहिए।
3. ग्राहक : ग्राहक को यह समझने के लिए ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक सेवा देने का मुख्य उद्देश्य उस तक पहुँचना है।
4. नियंत्रण : लोगों की समस्याओं को कम करने के लिए कर्मचारियों, एजेंसियों और समाज को सशक्त बनाने के लिए नियंत्रण का विकेंद्रीकरण किया जाना चाहिए।
5. संस्कृति : नागरिकों के मानवीय मूल्यों को जीतने के लिए सार्वजनिक एजेंसियों के नौकरशाही मॉडल को बदलना होगा।

आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) एनपीएम के सिद्धांत : ओईसीडी ने चार सिद्धांत स्थापित किए जिन्हें एंटरप्राइज परफॉर्मेंस मैनेजमेंट (ईपीएम) के रूप में भी जाना जाता है। इसने प्रत्येक राज्य को अपने तरीके से प्रबंधित करने के लिए एनपीएम

को अपने तरीके से परिभाषित करने की बात कही है। इसके द्वारा प्रतिपादित चार सिद्धांत संक्षेप में निम्न हैंः

1. विश्वसनीयता और पूर्वानुमेयता : सार्वजनिक सेवाओं का वितरण किसी भी अस्पष्टता से रहित होना चाहिए क्योंकि उन्हें किसी न किसी तरह से दिया जाना चाहिए। इस सिद्धांत में संवैधानिक ढांचे के भीतर सटीक और उचित प्रक्रियाओं और व्यावसायिकता के साथ सार्वजनिक एजेंसियों का संचालन शामिल है।

2. खुलापन और पारदर्शिता : ओईसीडी ने दूसरे सिद्धांत को खुलेपन और पारदर्शिता के रूप में विकसित किया ताकि सरकारी संगठन विधायी नियंत्रण एजेंसियों के माध्यम से एजेंसियों के लिए अपनी प्रक्रियाओं और प्रक्रियाओं के बारे में खुला रहे।

3. जवाबदेही : ओईसीडी द्वारा जवाबदेही के तीसरे सिद्धांत को 'अन्य प्रशासनिक, विधायी या न्यायिक अधिकारियों के प्रति अपने कार्यों के लिए जवाबदेह' के रूप में परिभाषित किया गया है। यदि जवाबदेही तय की जा सकती है तो सभी क्षेत्रों में संगठनों के प्रदर्शन में सुधार होता है।

4. लोक प्रशासन का आउटपुट : लागत-लाभ अनुपात को कानून द्वारा पहचाने गए लक्ष्यों को प्राप्त करने में आउटपुट को प्रभावी और प्रभावी के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

ओईसीडी सिद्धांतों में भागीदारी के माध्यम से नागरिकों का सशक्तिकरण शामिल नहीं है क्योंकि वे एनपीएम के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं हैं कि पुरुष स्वार्थी हैं और अपने हित में काम करते

हैं और मूल्य और प्रोत्साहन द्वारा शासित बाजार में विश्वास करते हैं।

आलोचनात्मक सिद्धांत : फ्रैंकफर्ट स्कूल ऑफ थिंकर्स जैसे **मैक्स होर्खाइमर, थियोडोर एडोर्नो और उनके अनुयायियों द्वारा** आलोचनात्मक सिद्धांत प्रस्तावित किया गया था। वे प्रशासनिक सुधारों को एक भौतिक और नैतिक आधार प्रदान करते हैं। नौकरशाही की समस्याओं और राज्य और समाज के नौकरशाहीकरण पर जोर दिया गया था। वेबर ने तर्क दिया कि नौकरशाही तार्किक तार्किकता का एक आदर्श प्रतीक थी। उन्होंने नौकरशाही को सर्वोच्च संगठन माना जो सटीकता, गति, स्पष्टता, निरंतरता आदि का प्रतीक है। आलोचनात्मक सिद्धांतकारों द्वारा तीन प्रकार की तर्कसंगतता को परिभाषित किया गया हैः

1. वाद्य युक्तिसंगतता : इसमें मानव और भौतिक प्रकृति को नियंत्रित करने के लिए यूरोपीय संघ की सीमाओं के भीतर अनुभवजन्य विश्लेषणात्मक विज्ञान, सामाजिक प्रबंधन प्रौद्योगिकियां, लोक प्रशासन और नियामक प्रभाव आकलन (आरआईए) शामिल है।

2. व्याख्यात्मक (व्याख्यात्मक) तर्कसंगतता : इसका मूल उद्देश्य लिखित दस्तावेजों की व्याख्या करना है ताकि उनमें किसी भी अस्पष्ट घोंसले या गर्भपात को हटाया जा सके। इसका इस्तेमाल शुरू में बाइबल की सही तरीके से व्याख्या करने के लिए किया गया था।

3. महत्वपूर्ण (मुक्तिकारक) तर्कसंगतता : इसमें विकृत संचार का उन्मूलन शामिल है- प्रशासनिक सुधारों की समस्याओं को हल करने के लिए एक भौतिक और नैतिक आधार प्रदान करता है। यह लोक प्रशासन के अभ्यास के पारंपरिक वैज्ञानिक और कानूनी सिद्धांत से खुद को अलग करता है।

इंस्ट्रूमेंटल रेशियो-नैलिटी में क्षमता बढ़ाने के लिए डाउनसाइज़िंग, टैक्स में कमी और निजीकरण के तत्व शामिल हैं। इस प्रकार से नव लोक प्रबन्धन की अवधारणा ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में एक नवीन किर्तीमान स्थापित किया है। 1980 के दशक में एनपीएम में वृद्धि हुई क्योंकि नवीन लोक प्रशासन अब मान्य नहीं था। 1988 में जब दूसरा मिनोब्रुक सम्मेलन आयोजित हुआ तो यह स्पष्ट हो गया कि नवीन लोक प्रशासन सभी राष्ट्रों की सरकारों पर लागू नहीं था जिसके परिणामस्वरूप एनपीएम के रूप में एक नवीन प्रतिमान का उदय हुआ।

संदर्भ :

Mahajan, A. P. 'Public Administration' Pearson India Education Services, Pvt. Ltd, Noida, UP, 2019

C.S.R. Prabhu, E-governance: Concepts and Case Studies, Printice Hall of India, New Delhi, 2004

Pankaj Sharma, E-government: From vision to implementation, Sage Publication, New Delhi, 2004

Subhash Bhatnagar, E-governance: Concepts and Case Studies, Printice Hall of India, New Delhi, 2004

Special Number on IT and Indian Administration, IJPA, July -September, 2000

Mohit Bhattacharya, "Public Administration: Today & Tomorrow", IJPA, Vol. XLIII, No.3 July-Sept. 2001

Mohit Bhattacharya "Globalization, Governance and Development ", IJPS, Vol.62, No.3, Sept. 2001

N.K. Kulshrestha, "Management in Public Administration, IJPA, Vol. XL, No.1, January-March, 1994 1. E. Lindblom Charles, The Policy Making Process, Englewood Cliffs, NJ Prentice Hall Incorporation, 1968

Paul H. Appleby, Policy and Administration, The University of Albara Press, 1940

Jones Charles O., An Introduction to the Study of Public Administration Policy, Brooks Cole Pub. Co., Monetary California, 1986

O. Pardeep Sahni, Public Policy, Conceptual Dimension, Allahabad, Kitab Mahal, 1987

R.B. Jain, Policy and Parliament in India, Indian Institute of Public Administration, New Delhi, 1983

James F. Anderson, Public Policy Making, Preager, New York, 1979

Yehezkel Dror, Design for Policy Sciences, American Elsevier Publishing Company, New York, 1971

Annual Report, 2004-05, Department of Information Technology, Government of India

Cabinet Office, 1999, Modernising Government, Cm 4310, Stationery Office, London

Chatillon, G., 2004, Electronic Government in France, in Martin Eifert and Jan Ole Puschel, (eds.), National Electronic Government, Routledge, New York

Comptroller and Auditor General, 2002, Better Public Services through E-Government, Report submitted to House of Commons in Session 2001-02: 4 April 2002, The Stationery Office, London

Dror, Y., 1990, Democratic Reformcraft, Working Paper, European Institute of Public Administration, Maastricht, Netherlands

Dubey, M., 2003, Less Paper Governance, Paper Presented at EROPA Conference, New Delhi

Halachmi, Arie, E-Government Theory and Practice: The Evidence from Tennessee USA, in Marc Holzer, Mengzhong Zhang, and Keyong Dong, (eds.), Frontiers of Public Administration, The American Society for Public Administration, New York

Government of India, Information Technology Act, 2000 (No. 21 of 2000)

http://www.worldbank.org/publicsector/egov/definition.htm

http://egov.mitgov.in/bground1.htm

Office of the E-Envoy, 2000, E-Government: A Strategic Framework for Public Services in the Information Age, Stationery Office, London

Planning Commission of India, 2001, Report of the Working Group on Convergence and E-governance 2002-07 for Tenth Five-Year Plan

OECD. (2008). Public–Private Partnerships: In the pursuit of Risk Sharing and Value for Money. Paris: OECD Publications

Yescombe, E.R. (2011). Public–Private Partnerships Principles of Policy and Finance. Netherlands: Elsevier Publications

3

विकास प्रशासन

विकास प्रशासन

(Development Administration)

विकास प्रशासन शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें एक है विकास और दूसरा है प्रशासन। प्रशासन कार्यों को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप में संपादित करने के कौशल से जुड़ा हुआ है। जहाँ तक विकास का संबंध है, तो वह एक बहुमुखी प्रक्रिया एवं बहुआयामी अवधारणा है जिसके भीतर अनेक आयाम अंतर्निहित होते हैं और वह समाज विज्ञान के विविध विषयों के साथ भिन्नतापूर्ण अर्थ रखती है। सामान्यतया उसका संबंध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी, संचार, पर्यावरण या अन्य क्षेत्रों में सकारात्मक परिवर्तन से होता है। विकास की परिभाषा और स्वरूप देश, काल व दशाओं पर निर्भर है। अतः वह किसी एक के लिए विकास तो दूसरे के लिए शोषण का माध्यम हो सकता है। पश्चिमी साम्राज्यवाद एक चर्चित अवधारणा रही है। जहाँ तक वृद्धि और विकास का संबंध है तो उनमें भी अंतर पाया जाता है। वृद्धी मूल रूप से विकसित राष्ट्रों के साथ जुड़ी हुई अवधारणा है जो कि अल्पकालीन, संकुचित और सीमित स्वरूप में होती है तथा वह केवल मात्रात्मक परिवर्तन को अभिव्यक्त करती है जबकि विकास पिछड़े राज्यों का प्रथम लक्ष्य होता है और वह दीर्घकालिक, व्यापक तथा बहुमुखी प्रक्रिया और बहुआयामी अवधारणा है जिसमें मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन दोनों ही शामिल होते हैं। विकास लोक प्रशासन के विकास का अन्तिम पडाव है। विकास की धारणा सामान्यतया सरकार और उसकी विकास नीतियों की प्रकृति पर निर्भर करता है। विकास प्रशासन एक बौद्धिक आयाम है जिसमें प्रशासन के द्वारा सुपरिभाषित लक्ष्यों को अर्जित किया जाता है। विकास के कार्यक्रम, योजनाएं, नीतियां और परियोजनाएं सरकार की प्रकृति को अभिलक्षित करते है।

विकास प्रशासन की अवधारणा का स्वरूप : विकास प्रशासन बीसवीं शताब्दी की नवीन अवधारणा है जिसका इतिहास उसके उदय के कारणों में ही अंतर्निहित है। यह उदारवादी, पूंजीवादी राज्यों की कमजोरियों से संबंधित अवधारणा है। विकास प्रशासन आधारभूत रूप से निम्न मुद्दों से सम्बन्ध रखती है :-

1. राष्ट्रीय विकास के **कार्यक्रमों, योजनाओं, नीतियों व परियोजनाओं (Programmes, Policies, Plans and Projects)** से सम्बन्धित है।
2. यह राष्ट्रीय विकास पर केन्द्रित अवधारणा है।
3. **'लक्ष्य उन्मुखी' और 'कार्य उन्मुखी' (Goal and Action Oriented)** प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना करती है।
4. यह विकासशील समाजों के **'सामाजिक बदलाव'** से जुडी हुई धारणा है।
5. यह प्रशासकों को सामाजिक बदलाव के अभिकर्ता की भूमिका प्रदान करती है।
6. यह पिछडे समाजों के विकास के लिए **प्रतिबद्ध नौकरशाही** का समर्थन करती है।

1917 की रशियन समाजवादी क्रांति जार निकोलस द्वितीय बनाम व्लादिमीर इलीयच लेनिन के पश्चात् आर्थिक नियोजन और सामाजिक विकास राज्य का उद्देश्य घोषित किया गया। राबर्ट ए डाहल ने अपने आलेख ''दि साइंस ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : थ्री प्रोब्लमस''1947 के अंतर्गत विकास की भूमिका में लोक प्रशासन की विफलता को उजागर किया है। इस अध्ययन से प्रशासन के माध्यम से राष्ट्र के विकास की रणनीति उभर कर सामने आई।

विकास प्रशासन **शब्दावली का सर्वप्रथम प्रयोग** भारतीय लोक सेवा के सदस्य **यू एल गोस्वामी ने 1955** में अपने शोध पत्र **''दि स्ट्रक्चर आफ डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया''** के अंतर्गत किया यह आलेख **'दी इंडियन जनरल ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' में 1955** में प्रकाशित हुआ। गोस्वामी ने विकास प्रशासन शब्द का प्रयोग नेहरू द्वारा संचालित **1952 के उस ''सामुदायिक विकास कार्यक्रम''** ग्रामीण विकास हेतु संचालित की **असफलता के संदर्भ में किया** गया जो कि नौकरशाही के असहयोग पूर्ण मानस के कारण असफल हो गया था। इसके विकास के अग्रिम चरण 1960 के दशक में **जॉर्ज जेण्ट(G. F. Gant) डोनाल्ड सी स्टोन, रिग्स (F.W. Riggs) विडनर (Edward W. Weidner) जोसेफ ला पोलम्बरा, मिल्टन जे एसमास, अल्बर्ट वाटरसन, ल्यूसन पाई, विलियम जे सोफिन, डियामाण्ट, हैडी, हान बीन ली** इत्यादि विचारकों ने सराहनीय भूमिका का निर्वहन किया। अमेरिकी विचारक **जॉर्ज जेण्ट (G. F. Gant) ने अपनी कृति 'डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन : कंसेप्ट गोल्स एंड मेथड्स'1979** ***(Development Administration : Concepts, Goals and Methods 1979AD)*** के अंतर्गत इस शब्द का प्रयोग किया है। अतः कुछ पश्चिमी विचारक इनको **'विकास प्रशासन का पिता'** भी मानते हैं। इनके प्रमुख सहयोगी डोनाल्ड सी स्टोन थे परंतु विकास प्रशासन की अवधारणा का वास्तविक प्रणेता अमेरिकी विचारक ई डब्ल्यू विडनर को माना जाता है जिन्होंन विकास प्रशासन को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान किया है।

विकास प्रशासन की अवधारणा के उदय के कारक : विकास प्रशासन बीसवीं शताब्दी की मध्यकालीन नवीन अवधारणा है जिसके उदय के पीछे अनेक कारक उत्तरदायी रहे हैं। इन कारकों को अधोलिखित बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है :

1. परंपरागत प्रशासन अथवा विकास रहित प्रशासन के द्वारा लक्ष्यों की अपेक्षा उनको प्राप्त करने के साधनों पर अधिक ध्यान दिया गया जिससे उसकी प्रासंगिकता खतरे में पड़ गई।
2. समाजवादी क्रांति 1917 के पश्चात् **सोवियत संघ गणराज्य रूस** ***(USSR- Union of Soviet Socialist Republics)*** के द्वारा सामाजिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन का सफल प्रतिमान अपनाया गया।
3. 1929 से 1933 की 4 वर्षीय वैश्विक महामंदी के कारण पूंजीवादी या स्वतंत्र बाजार प्रणाली का प्रतिमान की विफल हो गया। अतः जे एम कींस ने परम्परागत अर्थशास्त्रियों के अदृश्य हाथ की अवधारणा के स्थान पर अदृश्य हाथ की अस्वीकृति या दृश्य हाथ की स्वीकृति या आर्थिक हस्तक्षेप के सिद्धांत का समर्थन किया, राज्य के साथ न्यू डील या नवीन समझौता, सरकार द्वारा आर्थिक विकास का कार्य करने कि वैश्विक सहमति ने विकास प्रशासन के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।
4. दूसरे महायुद्ध के कारण उत्पन्न आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं, युद्ध के पश्चात् उत्पन्न शीत युद्ध के भयपूर्ण वातावरण ने और इस दौरान मार्शल प्लान, ट्रूमैन सिद्धान्त तथा अन्य योजनाओं के माध्यम से पश्चिमी यूरोपीयन देशों में संचालित आर्थिक पुनरुत्थान कार्यक्रमों तथा लोकतंत्र के आगमन इत्यादि ने विकास प्रशासन को आमंत्रित किया।
5. 1945 से 1960 के काल में साम्राज्यवाद का लबादा क्रमबद्ध रूप से एक एक करके उतार फेंक

दिया गया। इससे नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों का जन्म हुआ और उनके लिए विकास की धारणा प्रमुख लक्ष्य बन गई।

6. महायुद्ध के पश्चात नवोदित राज्यों के राष्ट्र निर्माण व उनके संचालन में पश्चिमी या उदारवादी प्रतिमान क विफल हो गया। तीसरी दुनिया के राष्ट्रों की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं का समाधान और प्रगति के पथ को खोजने के लिए विकास प्रशासन की धारणा का उदय हुआ।
7. इनके अलावा संयुक्त राष्ट्र संघ के अंतर्गत संचालित वित्तीय और तकनीकी कार्यक्रमों 1960 ने विकास प्रशासन की धारणा को प्रेरणा प्रदान की ।
8. **तुलनात्मक प्रशासन समूह,1963** ***(The Comparative Administration Group or CAG)*** की स्थापना और भूमिका। विकास प्रशासन में सराहनीय भूमिका का निर्वहन करने वाले इस आंदोलन की बागडोर डी वाल्डों, रिग्स और विडनर के द्वारा संभाली गई। रिग्स 1967 से 1971 तक इसके अध्यक्ष भी रहे। इस दौरान विकास प्रशासन के अध्ययन, अनुसंधान एवं कार्यक्रमों को बढावा देने के लिए अमेरिका के फोर्ड फाउण्डेशन के द्वारा वितीय सहायता प्रदान की गई। सीएजी समूह के द्वारा तीसरी दूनिया के देशों में गहन एवं व्यापक अध्ययन किया गया तथा वहाँ पर सामाजिक पुनरूत्थान के कार्यक्रम संचालित करने हेतु प्रेरित करने वाले असंख्य आलेखों का प्रकाशन किया। इस समूह का मूल चिंतन ’विकासशील देशों में प्रशासनिक समस्याएं’ पर

केन्द्रित था। इसी के साथ लोक प्रशासन के’ नवीन आयाम विकास प्रशासन’ का उद्भव हुआ।

विकास प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा : सामान्य रूप से विकास प्रशासन से हमारा अभिप्राय है राज्य प्रशासन के द्वारा जनहित में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, तकनीकी, सांस्कृतिक, पारिस्थितिकीय क्षेत्र की संरचना के समावेशी व सुस्थिर विकास की धारणा को बढ़ावा देना। विकास प्रशासन प्रमुखतया विकासशील देशों से जुडी हुई धारणा है। विकास प्रशासन ’कल्याणकारी राज्य’ की स्थापना व उसके विस्तार से संबन्धित धारणा है। जहाँ पर जनहित के कार्यों, वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, वंचित समूहों के सशक्तिकरण, दीर्घकालिक विकास परियोजनाओं, सुस्थिर विकास और समावेशी विकास की रणनीतियों का निर्माण और आमजन की शिकायतों के निवारण, सामाजिक व आर्थिक संरचना का विकास करने इत्यादि पर बल दिया जाता है। यद्यपि इनकी गणना करना संभव नहीं है तथापि यह जनहित में अधिकाधिक कार्य करने वाला राज्य होता है। विकास प्रशासन तुलनात्मक लोक प्रशासन की देन या उसका उप उत्पाद है। रिग्स कहते है कि विकास प्रशासन तीसरी दूनिया के देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन को केन्द्रित करने के कारण तुलनात्मक लोक प्रशासन का पर्याय बन गया है। विकास प्रशासन विकास के ध्येय के लिए प्रशासन है। इसे विकासशील देशों के लिए प्रशासन के नाम से भी जाना जाता है। यह विकासशील देशों विशेषतः एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमिरिकी देशों के परिवेश के अनुकूल प्रशासनिक समूह की स्थापना एवं संचालन से जुडी हुई धारणा है। **जीएफ गैंट(G. F. Gant)** के अनुसार, ’’यह विकासात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सार्वजनिक अभिकरणों को इस तरह से आकर्षक एवं संभव बनाना है कि सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति

हो सके।''
डोनाल्ड सी स्टोन (Donald Stones) के अनुसार, ''राष्ट्रीय विकास के लक्ष्य को पूरा करने के लिए भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का पूर्ण और कुशलतम उपयोग ही विकास प्रशासन है।''
''विकास प्रशासन राष्ट्रीय विकास के लिए **योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं (P4)** का क्रियान्वयन है।''
एडवर्ड डब्ल्यू विडनर (E.W. Weidner) के अनुसार, ''विकास प्रशासन कार्य उन्मुखी और लक्ष्य उन्मुखी प्रशासनिक व्यवस्था है जो राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए संगठन का मार्गदर्शन करती है।''
रिग्स (F.W. Riggs)के अनुसार, ''विकास प्रशासन संगठित प्रयास है जो विकास के उद्देश्यों की प्राप्ति में लगा रहता है।''
''विकास प्रशासन वस्तुतः विकास के प्रशासन का मतलब है विकास के कार्यकर्मों, योजनाओं, नीतियों और परियोजनाओं को लागू करना ;(Administration of Development - Implementation of development programmes, Plans, Policies and Projects) और प्रशासन के विकास का अर्थ है प्रशासनिक कार्य क्षमताओं में अभिवृद्धि करना (Development of Administration - Improvement of administrative capabilities) इन दोनों की समन्वित प्रक्रिया ही विकास प्रशासन है। ''
रिग्स के अनुसार, ''विकास प्रशासन और प्रशासनिक विकास के बीच पारस्परिकता की दो परतों के रूप में **'चिकन और अण्डे'** का करणीय सम्बन्ध होता है। परिवेश की आधारभूत संरचनाओं में परिवर्तन के बिना प्रशासनिक सशक्तिरण नहीं हो सकता है अर्थात उसमें प्रभावशीलता नहीं होगी और इसी तरह से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में प्रशासन के विकासशील स्वरूप के बिना बदलाव नहीं आ सकता है।
हेरी जे फ्रैडमैन (H.J. Friedman) के अनुसार, ''यह राष्ट्र

निर्माण की प्रगति का निर्देशन एवं सामाजिक, आर्थिक प्रगति का क्रियान्वयन है जिसके साथ नौकरशाही अद्यतन रहती है।" विकास प्रशासन के संदर्भ में उल्लिखित परिवारों को सारांश के स्वरूप में देखा जाए तो हम कह सकते हैं कि आधुनिकीकरण, सामाजिक व आर्थिक विकास, संस्थाओं का निर्माण इत्यादि विकास प्रशासन के अनिवार्य घटक होते हैं। यह सामाजिक अभियांत्रिकी है जो सामाजिक प्रगति चाहता है। यह लोक प्रशासन द्वारा राष्ट्र निर्माण की एक बहुमुखि या बहुआयामी प्रक्रिया है जिसका उदय 1950 और 1960 के दशक में विकासशील देशों से संबंधित अवधारणा के रूप में हुआ। यह विकास के साथ-साथ एवं प्रशासन के विकास से भी जुड़ी हुई है। विकास प्रशासन कार्यमुखी, लक्ष्यमुखी परिवर्तन तथा परिणाम उन्मुखी एवं ग्राहक उन्मुखी दृष्टिकोण पर बल देता है। वस्तुतः विकास के उद्देश्य के लिए प्रशासन जहाँ इनोवेशन स्ट्रेटजी या नवप्रवर्तन की रणनीति पर ध्यान दिया जाता है ताकि सीमित संसाधनों का कुशल और प्रभावी उपयोग किया जा सके।

विकास प्रशासन की विशेषताएं *(Characteristics of Development Administration)* :

विकास प्रशासन विकास राष्ट्रों के विकास के लिए प्रतिबद्ध अवधारणा है जिसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

1. परिवर्तन उन्मुखी *(Change Oriented)* :

विकास प्रशासन का मूल उद्देश्य ही सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में बदलाव से होता है। यह परंपरागत प्रशासन की यथास्थितिवाद की अवधारणा के विपरीत बदलाव का समर्थन करता है। यह परिवर्तन विकास की अवधारणा को प्रभावित करने वाले सभी क्षेत्रों में होता है तभी तो विकास प्रशासन के ध्येय को प्राप्त किया जा सकता है। यह प्रशासनिक व्यवहार में भी परिवर्तन का पैरोकार या पक्षधर है। इस परिवर्तन से ही लोगों के सामाजिक, आर्थिक जीवन की दशा में सुधार लाया जा सकता है।

पाई पानंदीकर (Pai Panandikar) के अनुसार नियोजित परिवर्तन का प्रशासन समय विशेष में विशिष्ट परिणाम देता है।

2. लक्ष्य और परिणाम उन्मुखी *(Goal and Result Oriented)* :

विकास प्रशासन एक नियोजित प्रक्रिया होती है जहाँ निश्चित समयावधि में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु संसाधनों का पूर्ण एवं कुशलतम उपयोग करना होता है ताकि परिणामों तक पहुँचना संभव हो सके। यह कार्य के परिणामों पर विशेष बल देता है जिससे कि विकास के ध्येय को पूर्ण किया जा सके।

3. विकास की वचनबद्धता *(Commitment to Development)* :

विकास प्रशासन का केंद्र बिंदु ही राष्ट्र का विकास है। अतः सभी संगठनों से यह अशा की जाती है कि वे आर्थिक एवं सामाजिक बदलाव के साथ निश्चित समयावधि में अपने लक्ष्य को प्राप्त करने, कार्यक्रमों को पूर्ण करने के प्रति वचनबद्ध रहेंगें। प्रशासन जनहित कार्यक्रमों, योजनाओं से भावनात्मक रूप से लगाव रखें, उन्हें केवल औपचारिकता नहीं माने।

4. ग्राहक उन्मुखी *(Client Oriented)* :

यह ग्राहक केन्द्रित प्रशासनिक अवधारणा है जिसमें नागरिकों के साथ एक दुकानदार व उपभोक्ता के मध्य के व्यापारिक सम्बन्धों की तरह व्यवहार किया जाता है। ग्राहक की संतुष्टी उसका मुख्य ध्येय होना चाहिए।

5. प्रशासन में नागरिक भागीदारी *(Citizen Participation in Administration)* :

नागरिक भागीदारी भी विकास प्रशासन का मुख्य ध्येय होता है। यह नागरिक सेवा के लिए प्रशासन ही विकास प्रशासन होता है। अतः विकास की प्रक्रिया में नौकरशाही के साथ जनता की सक्रिय सहभागिता अपरिहार्य होती है। लोक एवं प्रशासन के बीच निकटता विकास प्रशासन का अनिवार्य घटक होता है। निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में नागरिकों की निर्णायक भूमिका होती है।

6. कालिक आयाम या समय उन्मुखी अवधारणा *(Time Oriented)* :

विकास प्रशासन समय उन्मुखी है। जहाँ परिवर्तित समय के अनुरूप सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में बदलाव होता है। निर्धारित समय में पूर्ण होने वाली योजनाएं व कार्यक्रम अपने वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं।

7. एकीकृत और समग्र प्रक्रिया *(Integrated and Holistic Process)* :

विकास प्रशासन ऐकाकी प्रक्रिया नहीं है अपितु यह अंतर संबंधित और समग्र प्रक्रिया होती है। इसी के साथ यह विकासशील देशों की सरकारों के संगठन, संरचना और व्यवहार से भी प्रभावित होता है। सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया किस तरह से संचालित होती है। यह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी बदलाव की समग्र प्रणाली है।

8. द्विआयामी विकास प्रक्रिया *(Two Dimensional Process)* :

विकास प्रशासन दोहरे स्वरूप में संचालित होने वाली प्रणाली है। जहाँ एक तरफ विकास के कार्यक्रमों, योजनाओं, नीतियों व परियोजनाओं का संचालन प्रशासन के द्वारा विकास प्रशासन के रूप में किया जाता है तो वहीं दूसरी तरफ इसमें प्रशासन का विकास भी शामिल रहता है अर्थात प्रशासन की क्षमताओं में भी वृद्धि की जाती है।

9. प्रशासन का लोकतांत्रिकीकरण *(Democratisation of Administration)* :

यह निर्णय निर्माण प्रक्रिया में नागरिकों को निर्णायक भूमिका प्रदान करता है। निर्णयन प्रक्रिया का संचालन लोकतंत्र के सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। सिटीजन चार्टर, शिकायत निवारण सेल, ग्राम सभा की भूमिका इत्यादि इसी के परिणाम है।

10. अन्य विशेषताएं :

उल्लिखित विशेषताओं के अलावा भी कुछ विचारको ने निम्नलिखित विशेषताएं बतायी हैं जैसे कि प्रशासनिक

विकेंद्रीकरण, नवपर्वतनकारी प्रशासन, प्रभावी समन्वय, पारिस्थितिकी परिवेश का निर्माण इत्यादि।

विकास प्रशासन के प्रमुख उपागम : विकास प्रशासन, प्रशासन के माध्यम से विकास के तरीके अथवा विकास कैसे किया जाए? ताकि विकासशील देश विकसित राज्य बन सके और उस देश के नागरिकों का जीवन भी विकसित देशों के नागरिकों के समान आसान, सरल और सुलभ बन सके। इस धारणा को लेकर विकास के कुछ मॉडल या प्रतिमान व्यापक रूप से चर्चित रहे हैं। तीसरी दुनिया के राज्यों के लिए पश्चिमी दुनिया के द्वारा प्रतिपादित उपागमों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात् आरंभिक या परंपरागत विकास उपागम तथा समकालीन या आधुनिक विकास प्रशासन के उपागम।

1. **उदारवादी या पूंजीवादी सिद्धांत** : इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थक अर्थशास्त्र के जनक या आधुनिक अर्थशास्त्र के पिता एडम स्मिथ, जे एस मिल, माल्थस, रोस्टोव इत्यादि हैं। इस उपागम के आधार पर अमेरिका और ब्रिटेन जैसे राज्यों ने विकास के लक्ष्यों को अर्जित किया है।

2. **समाजवादी सिद्धांत या उपागम :** इस सिद्धांत की मान्यता है कि विकास प्रशासन का लक्ष्य व्यक्तिगत इकाई न होकर सामाजिक इकाई होता है अथवा समाज को एक इकाई के रूप में स्वीकार किया जाता है। सभी नागरिकों के हित को ध्यान में रखकर ही विकास प्रक्रिया को सफल बनाया जा सकता है। इस प्रतिमान के मुख्य समर्थक कार्ल मार्क्स, लेनिन, स्टालिन और फिदेल कास्त्रो इत्यादि रहे हैं।

3. **विसरण या मिश्रित उपागम :** यह उपागम पूंजीवादी एवं समाजवादी उपागम का मिश्रित स्वरूप है। यह उपागम दोनों के सहअस्तित्व को स्वीकार करता है। इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थक एवरेस्ट रोजर व आर एस भंडारी हैं। इस उपागम की मान्यता है कि विकसित देशों के द्वारा पिछड़े देशों को

विकास हेतु सहायता करनी चाहिए। भारत जैसे विकासशील देशों ने विकास प्रशासन के इसी उपागम को अपनाया है।

4. गांधीयन प्रतिमान या गांधीवादी उपागम : यह सामाजिक - आर्थिक पुनर्निर्माण का समर्थन करने वाला सिद्धांत है जो विशेष रूप से समानता और न्याय के दृष्टिकोण पर बल देता है। इस प्रतिमान में न केवल मानवीय विकास को केंद्र में रखा गया है वरन् प्रकृति के साथ या सान्निध्य में मानवीय विकास की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। यह एक ऐसा संतुलित दृष्टिकोण है जो ऐसे विकास प्रशासन का समर्थन करता है। जहाँ समावेशी, सुस्थिर, पारिस्थितिकीय और समग्र विकास को केंद्र में रखा गया है। भुटान, नार्वे, स्वीडन जैसे देशों में विकास प्रशासन के इसी प्रतिमान को स्वीकार किया गया है। वर्तमान में वैश्विक समुदाय को विकास के स्वरूप को बनाए रखने या प्राप्त करने के लिए इसी उपागम की सर्वाधिक आवश्यकता है।

5. निर्भरता अथवा पराश्रितता का सिद्धांत : यह मुख्यतः राजनीतिक विकास की धारणा से संबंधित उपागम है। यह उपागम विकसित देशों द्वारा प्रदत विकास प्रतिमान को शोषणकारी मानता है क्योंकि विकासशील देशों का विकास विकसित देशों की आर्थिक वृद्धि का अनिवार्य घटक बन जाता है तथापि पिछड़े देशों का विकास न होकर अल्प विकास होता है जिसके परिणामस्वरूप तीसरी दुनिया के देशों की विकसित देशों के ऊपर निर्भरता केंद्र व धूरी के रूप में निरतंर बनी हुई है। पिछड़े देशों का सामाजिक व आर्थिक विकास तभी संभव हो सकता है जब इस निर्भरता का विखण्डन कर दिया जाए।

6. ब्लूप्रिंट उपागम और अधिगम प्रक्रिया सिद्धांत : ब्लूप्रिंट उपागम विकास प्रशासन के लिए पूर्व निर्धारित उपागम होता है जिसमें प्रशासनिक संगठन पूर्व निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप लक्ष्यों को अर्जित करने के लिए कार्य करता है। इस वैज्ञानिक सिद्धांत में जनता की भागीदारी की उपेक्षा की जाती है यहांँ **'जनता के लिए' (For the people)** सूत्र को केंद्र में रखा

जाता है।
ब्लूप्रिंट उपागम में बीच में कोई बदलाव नहीं किया जा सकता है जबकि अधिगम उपागम एक समकालीन सिद्धांत है जिसके प्रतिपादक अरविंद सिंघल हैं। उन्होंने 1970-80 के दशक में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया। यह सही अर्थ में जनता के प्रशासन की धारणा में विश्वास करता है। इस सिद्धांत का सूत्र **'लोगों के साथ' (With the People)** होता है अर्थात् जिनके लिए विकास की रचना की जाती उनको विकास की निर्णयन की प्रक्रिया में सक्रिय और निर्णायक भागीदार बनाया जाना चाहिए। अधिगम उपागम एक लचीला और उदारवादी सिद्धांत है।

7. उत्पादन केंद्रित और जनपुंज केंद्रित सिद्धांत : उत्पाद केंद्रित सिद्धांत न्यूनतम लागत और अधिकतम लाभ के सिद्धांत पर कार्य करता है। यह एक मशीनी उपागम है जो औद्योगिक और शहरी विकास पर बल देता है जबकि जनपुंज उपागम एक मानवीय सिद्धांत है जिसका केंद्र बिंदु लोकहित होता है। इसके अनुसार मानव का विकास ही विकास प्रशासन है। इस प्रकार विकास प्रशासन की एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसे पिछड़े देश अर्जित करना चाहते हैं।

8. रिग्स का प्रिज्मेटिक प्रतिमान *(Rigg's Prismatic Model)* :
रिग्स ने 1961-1970 के वर्षो में तुलनात्मक प्रशासनिक समूह के अध्यक्ष के उतरदायित्वों का निर्वहन किया। इसी दौरान 'तुलनात्मक प्रशासनिक समूह' के सदस्य विद्वानों ने विकास प्रशासन के वैकल्पिक उपाकम की खोज करने की मांग रखी। उनकी इस मांग का परीक्षण करने के लिए रिग्स ने लोक प्रशासन और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिवेश के बीच के सम्बन्धों का अध्ययन करना आंरम्भ किया। अन्य शब्दों में लोक प्रशासन अब 'पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य में दिखायी देने लगा। फ्रेड रिग्स इस उपागम के सुविख्यात प्रतिपादक है। उसने विकासशील समाजों के विकास की अवधारणा को समझने के

लिए वहाँ की प्रशासनिक प्रणाली या लोक प्रशासन और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के बीच के सम्बन्धों के रूप में **’संयलित-सांक्षेत्रिक-विचलित’** ***(Fused-Prismatic-Diffracted)*** उपागम का प्रतिपादन किया। स्वंय रिग्स के विचारों में **’मैं इसे ’प्रिज्मेटिक प्रतिमान’** ***(Prismatic Model)*** **के नाम से पुकारता हूँ।’’**
लोक प्रशासन के **पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य** ***(Ecological Perspective)*** को रिग्स के द्वारा अपनी रचनाओं **’दि इकोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन’ 1962** ***(The Ecology of Public Administration, 1962)*** तथा **’एडमिनिस्ट्रेशन इन डवलपिंग सोसायटिज’ 1964** ***(Administration in Developing Countries, 1964AD)*** में स्पष्ट किया गया है। यद्यपि इन पुस्तकों से पुर्व रिग्स का एक आलेख ’***(The Agraria and Industria : Toward a Typology of Comparative Administration, 1955AD)***प्रकाशित हो चुका था।
रिग्स का यह उपागम आमण्ड-पॉवेल के ’संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम’ को अपने आधार के रूप में स्वीकार करता है। रिग्स के अनुसार समाजों को तीन आदर्श श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात् **परम्परागत कृषि समाज** ***(Fused Society)*** उच्च रूप से **विकसित पश्चिमी औद्योगिक समाज** ***(Diffracted Society)*** तथा इन दोनों के बीच **’संक्रमणकालीन समाज** ***(Prismatic Society)***होता है। प्रिज्मेटिक समाज इन दोनों समाजों के बीच सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के अधीन गमन कर रहा है। रिग्स ने विकासशील देशों को इसी श्रेणी में सम्मिलित किया है। तीनों ही समाजों की अपनी अपनी विशेषताएं होती है। प्रत्येक समाज का अपना-अपना भिन्न स्वरूप वाला सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश होता है। इस उपागम की मान्यता है कि तीनों समाजों अर्थात परम्परागत कृषि समाजों, उच्च विकसित औद्योगिक

समाजों और विकासशील समाजों के बीच संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक भिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार की संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक विशेषताओं को रिग्स ने स्पैक्ट्रम के माध्यम से जैविक उपागम के द्वारा विश्लेषित किया है।

Prismatic Model

उपयुर्क्त रेखाचित्र में एक सफेद बीम जो कि संयलित समाज का प्रतिनिधित्व करती है। इसमे सभी रंग मिले हुए रहते है। जहाँ एक ही संरचना के द्वारा अनेक प्रकार्यो का निष्पादन किया जाता है। प्रिज्म के बाहर यह सफेद प्रकाश की किरण विवर्तित होकर अनेक रंगों में फैल जाती है जैसे कि इन्द्रधनुष जो कि विकसित औद्योगिक समाज का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ पर विशिष्ट प्रकार्यो का निष्पादन करने के लिए विशिष्ट संरचनाएं विद्यमान रहती है अर्थात् संरचनात्मक विभेदीकरण पाया जाता है। प्रिज्म के

बीच का क्षेत्र प्रिज्मेटिक समाज के स्वरूप को दर्शाता है। जहाँ निर्णयन प्रक्रिया या प्रशासनिक प्रणाली में परम्परागत संरचनाएं भी प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है अथवा परिवेश का प्रशासन पर प्रभाव रहता है। यद्यपि यह कृषि समाज से कम होता है परन्तु विकसित समाजों की तरह न्यूनतम या नगण्य नहीं होता है।

इसी के साथ रिग्स ने विकास की प्रक्रिया को समझाने के लिए दो आयामों का भी सहारा लिया है अर्थात् **संरचनात्मक विभेदीकरण और एकीकरण (Structural Differentiation and Integration)** जो कि भिन्न समाजों के स्तर को व्यक्त करते है। संयलित समाज में विशेषीकरण या विशेषज्ञता की कोई भूमिका नहीं होती है। यह समाज अविकसित समाज होता है क्योंकि यहाँ पर संरचनात्मक विभेदी करण का निम्न स्तर और एकीकरण का सामान्य स्तर होता है जबकि विचलित समाज विकसित होते है क्योंकि यहाँ पर उच्च स्तर का संरचनात्मक विभेदीकरण और एकीकरण का सामान्य या संचार स्तर होता है। प्रिज्मेटिक समाज इन दोनों अवस्थाओं के बीच की स्थिति को दर्शाता है। वह इन दोनों के बीच की श्रेणी का प्रतिनिधित्व करता है। वह विकासशील समाज है क्योंकि यहाँ पुरानी संरचनाओं के साथ संरचनात्मक विभेदीकरण की गति एकीकरण की तुलना में तेज होती है। तीसरी दूनिया के देश इसी श्रेणी में सम्मिलित है।

रिग्स के अनुसार इस प्रित्मेटिक समाज को तीन लक्षणों के साथ वर्णित किया जा सकता है अर्थात् **औपचारिकतावाद *(Formalism)***जो कि मानक एवं यथार्थ में दूरी को बताता है ; **अतिव्यापी या परस्पर व्यपगत *(Overlapping)*** जो कि गैर प्रशासनिक नजरिये से प्रशासनिक व्यवहार का विस्तार करता है तथा **विविधता या विषम जातियता *(Heterogeneity)*** जो कि परम्परागत एवं नवीन मूल्यों का मिश्रण है। अतः **प्रिज्मेटिक साला उपागम *(Prismatic-Sala Model)*** परिवेश के प्रभाव को

अभिव्यक्त करता है। यह बताता है कि किस तरह से प्रशासनिक व्यवस्था पर पर्यावरणीय प्रभाव प्रिज्मेटिक समाज में औपचारिकतावाद, अतिव्यापी एवं विजातीयता की विशेषताओं को विकसित करता है। रिग्स के अनुसार ये तीनों ही विकास प्रशासन की महत्वपूर्ण विशेषताएं है। रिग्स का यह प्रतिमान यर्थाथ समाजों में तेज गति से हो रहे सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक परिवर्तनों को समझने में निर्णायक भूमिका का निर्वहन करता है। यह उपागम विकासशील देशों में विद्यमान स्थानीय परिस्थितियों में उनकी प्रषासनिक समस्याओं को समझने में बहुत ही उपयोगी है।

अतः हम सारांश में कह सकते है कि विकास प्रशासन के अनेक उपागमों ने विकास प्रशासन की नवीन अवधारणा के विकास को गति प्रदान की है। इन सबका ही परिणाम था कि अब लोक प्रशासन में 1970 के दशक के पश्चात् लोक चयन सिद्धान्त, नवीन लोक प्रशासन, नवीन लोक प्रबन्धन, लोक नीति उपागम इत्यादि का आगमन संभव हो सका।

विकास प्रशासन के विकास में विडनर का योगदान *(Role of Weidener)* :

अमेरिकी चिंतक विडनर ने विकास प्रशासन की धारणा का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार विकास प्रशासन विकास के लिए अधिकतम नवोचारों का निर्धारण है। यह दो विपरीत परंतु संबंधित प्रशासनिक विचारधाराओं का दार्शनिक स्वरूप है। परंपरागत या प्रशासनिक विचारधारा का उदय 19 वीं सदी के अंत में प्रशासनिक सुधार आंदोलन अथवा वैज्ञानिक प्रशासन के रूप में अमेरिका में हुआ। इसके द्वारा प्रशासनिक कौशल पर विशेष बल दिया गया और इसे ही साध्य और साधन मान लिया गया। इससे भी आगे साधनों पर इतना अधिक ध्यान केंद्रित किया गया कि लक्ष्य भूल ही गए या विस्मृत हो गए। बचत, कार्यकुशलता और उत्पादन को केंद्र बिंदु बना लिया गया जिस कारण एक रिक्तता की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस रिक्तता की पूर्ति करने के लिए एक

नवीन अवधारणा का उदय हुआ है जिसे ही विकास प्रशासन के नाम से जाना जाता है।
विकास प्रशासन की यह धारणा राष्ट्रीय नियोजन एवं सरकारी हस्तक्षेप से जुड़ी हुई थी जो बीसवीं सदी के चौथे दशक की 'आर्थिक महामंदी, पूंजीवाद की विफलता, द्वितीय महायुद्ध, आर्थिक पुनर्निर्माण कार्यक्रम, तीसरे देशों की स्वाधीनता और राजनीतिक स्वायत्तता के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई। अतः विकास प्रशासन प्राधिकृत रूप से निर्धारण की प्रक्रिया है जो संगठन के प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मार्गदर्शन करती है। विकास प्रशासन कार्य उन्मुखी व लक्ष्य उन्मुखी प्रशासनिक व्यवस्था है। यह नवप्रवर्तन, राष्ट्र निर्माण एवं सामाजिक बदलाव की दिशा में नियोजित प्रक्रिया है।

विकास प्रशासन के विकास में रिग्स का योगदान : रिग्स ने विकास प्रशासन को संगठित प्रयासों के रूप में परिभाषित किया है जो उन कार्यों और परियोजनाओं को लागू करते हैं जिनका निर्धारण विकास के उद्देश्यों की सेवा में कार्यरत लोगों ने सोचा होता है। विकास प्रशासन मूलतः विकास की नीतियों को लागू करने से संबंधित है। विकास प्रशासन का क्षेत्र उचित रूप में विकासशील एवं विकसित राज्यों से जुड़ा हुआ है। यह इन देशों में गरीबी के दुष्चक्र, भूखमरी और दुर्गति की विरुद्ध संघर्ष है। रिग्स ने 'तुलनात्मक प्रशासनिक समूह' के अंतर्गत विकासशील समाजों की समस्याओं को समझने हेतु प्रिज्म मॉडल अर्थात् संयलित एवं साला मॉडल,1964 का प्रतिपादन किया है जो कि मूलतः पारिस्थितिकीय उपागम है। रिग्स ने विकास प्रशासन को विकास का प्रशासन अर्थात् नीतियों कार्यक्रमों का क्रियान्वयन और प्रशासन का विकास अर्थात् प्रशासन की क्षमताओं में अभिवृद्धि दोनों का सामूहिक स्वरूप बताया है। अतः विकास प्रशासन का ध्येय केवल भौतिक, मानवीय और सांस्कृतिक परिवेश को बदलने वाले कार्यों को ही लागू करना नहीं है अपितु ऐसी प्रगति में शामिल होने वाले प्रशासन की क्षमताओं को भी बढ़ाने से है। वर्तमान

उदारीकरण के दौर के परिणामस्वरूप इसमें काफी हद तक परिवर्तन आया है। मानवीय आवश्यकता आधारित उपागम, सुस्थिर उपागम, समावेशी उपागम, लोक चयन सिद्धान्त जैसे उदाहरणों के साथ इस क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित हुए हैं।

विकास प्रशासन और प्रशासनिक विकास *(Development Administration and Administrative Development)* : रिग्स के अनुसार, ''विकास प्रशासन और प्रशासनिक विकास के बीच पारस्परिकता की दो परतों के रूप में 'चिकन और अण्डे' का करणीय सम्बन्ध होता है। परिवेश की आधारभूत संरचनाओं में परिवर्तन के बिना प्रशासनिक सशाक्तिरण नहीं हो सकता है अर्थात उसमें प्रभावशीलता नहीं होगी और इसी तरह से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में प्रशासन के विकासशील स्वरूप के बिना बदलाव नहीं आ सकता है। विकास प्रशासन और प्रशासनिक विकास की अवधाणाओं के बीच निम्नलिखित अन्तर सम्बन्ध विद्यमान है :-

1. दोनों एक दूसरे से संबंधित और विभिन्न विभिन्न पहचान रखने वाले उपागम है।
2. विकास प्रशासन, प्रशासन द्वारा लोगों की क्षमताओं, योग्यताओं को बढ़ाने से संबंधित है जबकि प्रशासन के विकास का संबंध खुद प्रशासन की क्षमता में अभिवृद्धि से होता है।
3. विकास प्रशासन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, पारिस्थितिकी, तकनीकी और संस्कृति के क्षेत्र का विकास है जबकि प्रशासन का विकास विकास प्रशासन का ही एक अभिन्न हिस्सा होता है।
4. विकास प्रशासन का क्षेत्र बहुत व्यापक है जबकि प्रशासनिक विकास सीमित और संकीर्ण होता है।

परंपरागत प्रशासन और विकास प्रशासन में अंतर :

1. परम्परागत प्रशासन यथास्थितिवाद का समर्थक है जबकि विकास प्रशासन परिवर्तन उन्मुखी है।
2. परम्परागत प्रशासन केवल प्रशासनिक विकास का समर्थक है जबकि विकास प्रशासन का सम्बन्ध प्रशासनिक विकास एवं विकास दोनों से है।
3. परम्परागत प्रशासन केवल आर्थिक विकास का समर्थक है परन्तु विकास प्रशासन सामाजिक एवं आर्थिक विकास दोनों पर ध्यान देता है।
4. परम्परागत प्रशासन विकसित देशों से सम्बन्धित है जबकि विकास पशासन विकासशील देशों को केन्द्र में रखता है।
5. परम्परागत प्रशासन आर्थिक मानव की धारणा में विश्वास करता है जबकि विकास प्रशासन सामाजिक मानव के स्वरूप को भी स्वीकार करता है।

सन्दर्भ :

George F. Grant, 'Development administration : Concepts, Goals and Methods' The University of Wisconsin Press, Wisconsin, 1979

Lucian W. Pye, 'Aspects of Political Development' Amerind Pub Co Ltd., New Delhi, 1966

Faisal S. A. Al-Salem, 'The ecological dimension of development administration' Associated Publishing House, New Delhi, 1977

Sukhamoy Chakravarty, 'Development Planning : The Indian Experience' Oxford University Press, New Delhi, 1987

R. K. Sapru, 'Development Administration' Sterling Publishers Pvt. Ltd, New Delhi, 1994

S.P. Verma and S.K.Sharma (ed.), 'Development Administration' New Delhi, IIPA

C.N. Bhalerao (ed.), Administration, Politics and Development in India, Lal Pani Publishing House, Bombay, 1972

S.K.Sharma (ed.), 'Dynamics of Development' (Two volumes), Concept Publishing House, New Delhi, 1998

Irwing, Swndlow (ed.), 'Development Administration : Concepts and Problems' NY Syracuse University Press, 1963

H. George Frederickson and Kevin B. Smith, 'Public Administration Theory Primer' Rawat Publications, Jaipur, 2008

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

https://www.google.com/urlsa=i&url

M. R. Minto, Management Thinkers, New Delhi, Allied Pub. Ltd., 1989.

Shyam Sirsath, Jitendra Wasnik & Bhagwansingh Bainade, Prashashkiya ani Vavashtapan

Vicharvant, Vidya Books, Aurangabad, 2011, (Marathi).

F.W, Taylor, Scientific Management, Harper & Brothers Pub., New York, 1947.

Henri Fayol, General and Industrial Management, Sir Isaac Pitman & Sons Ltd., London, 1959.

Chester Barnard, The functions of the executive, Cambridge, Massachusetts Harvard University

Press, USA, 1972.

Herbert Simon, Administrative Behaviour, The Free Press, New York, 1976.

4

प्रशासन के सिद्धांत

प्रशासन के सिद्धान्त

(Theories of Administration)

थ्योरी यूनानी भाषा के **थ्योरिया** ***(Theoria)*** शब्द से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है संगठित अथवा केंद्रित मानसिक दृष्टिकोण। अतः प्रशासन के सिद्धांतों से हमारा अभिप्राय है

व्यवस्थित कार्यों संबंधी संगठित मानसिक दृष्टिकोण। सामान्यतया सिद्धांत शब्द का प्रयोग समाज विज्ञानों में प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा शिथिल या उदार अर्थ में ही किया जाता है। यही कारण है कि यहाँ पर उपागम, दृष्टिकोण, स्कूल, संप्रदाय, पद्धति और प्रतिमान जैसे शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है । इसका आभास हमें जी ई केडन (G.E. Caiden) के कथन से भी होता है कि ''लोक प्रशासन में सिद्धान्त होते है परन्तु लोक प्रशासन में सामान्य सिद्धान्त नहीं होते है।'' फिर भी यदि सिद्धांत को संक्षिप्त रूप में परिभाषित किया जाए तो हम कह सकते हैं कि सिद्धांत के साथ 4 तरह की अपेक्षाएं जुड़ी हुई होती हैं जैसे कि सिद्धांत समझ को विकसित करता है; सिद्धांत में विवेचन अथवा वर्णन की क्षमता होती है; सिद्धांत व्याख्या की क्षमता को बढ़ाता है; और सिद्धांत निर्णय की क्षमता भी रखता है अर्थात् समझ, वर्णन, व्याख्या और निर्णय निर्माण। फ्रिडक्शन और स्मिथ के शब्दों में, ''किसी भी सैद्धांतिक आयाम की धारणा की वैधता उसकी वर्णन, व्याख्या और पूर्वानुमान की क्षमता पर निर्भर करती है।''
लोक प्रशासन भी समाज विज्ञान की ही एक शाखा है इसलिए इन शब्दावलियों का प्रयोग स्पष्ट और भिन्न अर्थ में नहीं किया जा सकता है।
प्रशासन के सिद्धांतों अथवा संगठन के सिद्धांतों को समझने से पूर्व हमें प्रशासन, प्रबंधन और संगठन की अवधारणा के बारे में जानना होगा। प्रबंधकीय दृष्टिकोण के समर्थक तीनों ही अवधारणाओं को एक दूसरे के समकक्ष अथवा पर्याय के रूप में देखते हैं जबकि एकीकृत दृष्टिकोण के समर्थक प्रशासन, प्रबंधन और संगठन तीनों में भिन्नता को स्वीकार करते हैं। उनकी मान्यता है कि भले ही तीनों एक दूसरे से अन्तः सम्बन्धित होते है तथापि वे अपनी स्वतंत्र पहचान भी रखते है।
विलियम शूल्ज (Wiliam Shulj) के अनुसार 'प्रशासन एक विस्तृत नजरिया है जो प्रबंधन के माध्यम से संगठन को चलाता

है। प्रशासन नीति निर्माण और निर्णयन का कार्य करता है जबकि प्रबंधन कार्य की तकनीक या शैली है और संगठन समान उद्देश्यों की प्राप्ति के किया जाने वाला एक सामूहिक प्रयास होता है।" लोक प्रशासन के सिद्धांतों को लेकर प्रशासनिक चिंतकों के बीच सर्वसम्मति नहीं है तथापि प्रशासन के सिद्धांतों को सामान्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **परंपरागत या शास्त्रीय अथवा प्रतिष्ठित सिद्धांत** ***(Classical or Traditional Theory)***
2. **आधुनिक अथवा व्यवहारवादी अथवा मानव संबंध उपागम** ***(Modern or Behaviouralism Theory)***
3. **उत्तर आधुनिक अथवा समसामयिक सिद्धांत अथवा नव शास्त्रीय सिद्धांत** ***(Post Modern or Neo Classical or Contemporary Theory)***

1. शास्त्रीय या परंपरागत प्रशासनिक सिद्धांत ***(Classical Theory of Administration)*** **:**
प्रशासन के प्राचीनतम सिद्धांतों के अंतर्गत आदर्शवादी, ऐतिहासिक, कानूनी एवं औपचारिक उपागमों को शामिल किया जाता है जो गैर मानवीय अथवा तकनीकी या मशीनी सिद्धांत होते हैं। इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थकों में लुई ब्रेबीज, चार्ल्स मेटकॉफ, गेलब्रेथ, थाम्पसन, वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के पितामह एफ डब्ल्यू टेलर, नौकरशाही सिद्धान्त के जनक जर्मन चितंक मैक्स वेबर, प्रशासनिक सिद्धान्त के जनक हेनरी फयोल, लूथर गुलिक, उर्विक, जेम्स मूनै, ए रैले, मैरी पार्कर फॉलेट, शेल्टन इत्यादि है। परम्परागत सिद्धांतों को अनेक उप नामों से भी जाना जाता है जैसे कि मशीनी सिद्धांत, यांत्रिक उपागम, औपचारिक, संरचनात्मक, परंपरागत, शास्त्रीय, प्रतिष्ठित, मितव्ययतावादी, कुशलतावादी, गैर मानवीयवादी, पुरातनवादी इत्यादि। साइमन और मार्च ने इसे

'प्रशासनिक प्रबंधन सिद्धांत' ***(Administrative Management Theory)*** कहकर संबोधित किया है। **परंपरागत सिद्धांतों की प्रमुख मान्यताएं :**

1. इन शास्त्रीय सिद्धांतों का उदय 18 वीं सदी के अंत में और 19वीं शताब्दी के आरंभ में हुआ है।
2. यह सिद्धांत कार्मिकों की आर्थिक विवेकशीलता अथवा उपभोक्ता की विवेकशीलता पर आधारित हैं।
3. परंपरागत सिद्धांतों की प्रमुख विशेषता है कि व्यक्ति एक आर्थिक प्राणी होता है। अर्थात् ये सिद्धान्त एडम स्मिथ की आर्थिक मानव की संकल्पना को स्वीकार करते है। इनका विश्वास है कि आर्थिक तत्वों से ही व्यक्ति कार्य के लिए प्रोत्साहित होता है।
4. किसी भी संगठन के द्वारा आर्थिक प्रोत्साहन को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है।
5. शास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार अतार्किक भावनाओं को आर्थिक विवेकशीलता से दूर रखा जाता है और कार्मिकों के तार्किक व्यवहार पर नियंत्रण रखा जाता है।

परंपरागत प्रशासनिक सिद्धांतों को विकसित करने में हेनरी फेयोल, मैक्सवेबर और टेलर के द्वारा प्रतिपादित उपागमों की निर्णायक भूमिका रही है। तीनों ही सिद्धान्त परम्परागत सिद्धान्तों की मान्यताओं पर आधारित गैर मानवीय उपागम है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि परम्परागत सिद्धान्तों के तीन प्रमुख भाग हेनरी फेयोल, मैक्सवेबर और टेलर से जुडे हुए है अर्थात् हेनरी फेयोल का प्रशासनिक सिद्धांत, मैक्स वेबर का नौकरशाही सिद्धांत और टेलर का वैज्ञानिक प्रबंधन सिद्धांत।

हेनरी फेयोल का प्रशासनिक सिद्धांत *(Fayol's Administrative Theory)* : यह शास्त्रीय सिद्धांत का महत्वपूर्ण भाग है जो प्रशासन के संचालन के संबंध में यथास्थिति पर बल देता है। इसका प्रमुख उद्देश्य मितव्ययता और कुशलता के माध्यम से संगठन को लाभ पहुँचाना होता है।

यही कारण है कि यह सिद्धांत संगठन में कुशलता, लाभांश मितव्ययता, दक्षता तथा उत्पादन पर विशिष्ट बल देता है।

इस सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएं :

1. यह कार्मिकों के कार्यों और उत्तरदायित्वो का संगठन में स्पष्ट रूप से विभाजन करता है।
2. यह सिद्धांत संगठन के लिए पदसोपानीय व्यवस्था को अपरिहार्य मानता है।
3. इस सिद्धांत का प्रमुख उद्देश्य प्रशासन में कार्यकुशलता और मितव्ययता और उत्पादकता को बढ़ाना या लागत को न्यूनतम करना है।
4. यह सिद्धांत व्यवस्थापन एवं समन्वय की प्रक्रिया पर अधिक बल देता है।
5. यह सिद्धांत सार्वजनिक और निजी प्रशासन में कोई अंतर नहीं मानता है।
6. इस सिद्धांत में संगठन की संरचनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है।
7. इस सिद्धांत का केंद्र बिंदु **'आर्थिक मानव'** ***(Economic Man)*** होता है
8. यह सिद्धांत दार्शनिक स्वरूप में आण्विकता, यांत्रिकता, गतिहीनता और स्वैच्छिक तार्किकता का समर्थन करता है।

हेनरी फेयोल की भूमिका *(Role of Henry Fayol)* : फ्रांसीसी खान अभियंता हेनरी फेयोल को प्रशासनिक सिद्धांत का

जनक या पिता माना जाता है। उन्होंने इस सिद्धांत का विवेचन अपनी तीन महत्वपूर्ण रचनाओं **जनरल प्रिंसिपल्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन 1908 (General Principles of Administration, 1908AD) जनरल एंड इंडस्ट्रियल एडमिनिस्ट्रेशन (General and Industrial Administration, 1916AD) तथा दी एडमिनिस्ट्रेटिव थ्योरी ऑफ द स्टेट (The Administrative Theory of the State, 1923AD)** के अंतर्गत किया है। फेयोल ने अनेक उद्योगों के अंतर्गत अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक संगठन सामान्यतया 6 प्रकार के प्रकार्यो या गतिविधियों को संपादित करता है। संगठन के इन कार्यों को निष्पादित करने के लिए प्रशासन के पास 5 तरह की तकनीक अथवा तत्व होते हैं। किसी भी प्रकार के संगठन के सफल संचालन के लिए 14 सार्वभौमिक प्रशासनिक सिद्धान्त होते है। फेयोल के अनुसार सरकारी और निजी संगठनों में कोई अंतर नहीं होता है क्योंकि अब हमारे सामने अनेक प्रशासनिक विज्ञान नहीं है अपितु केवल एक ही प्रकार का विज्ञान है जिसे प्रशासन का विज्ञान कहा जाता है। प्रशासन का यह विज्ञान सरकारी और निजी क्षेत्र में दूनियाभर में समान रूप से लागू होता है। इन सार्वभौमिक प्रशासनिक सिद्धान्तों के आधार पर किसी भी संगठन का संचालन किया जा सकता है। भले ही वह राज्य रूपी संगठन हो अथवा अन्य कोई संगठन।

फेयोल के अनुसार प्रत्येक संगठन के द्वारा छः आधारभूत प्रकार्यों का सम्पादन किया जाता है जो कि निम्नलिखित है :-

1. **तकनीकी गतिविधियाँ** ***(Technical Activities)***
2. **व्यापारीक गतिविधियाँ** ***(Commercial Activities)***
3. **वितीय गतिविधियाँ** *(Financial Activities)*

4. **रक्षात्मक गतिविधियाँ** ***(Securities Activities)***
5. **लेखांकन गतिविधियाँ** ***(Accounting Activities)***
6. **प्रबन्धकीय गतिविधियाँ** ***(Managerial Activities)***

हेनरी फयोल के अनुसार प्रशासन या प्रबंधन के पांच तत्व ***(POCCoC)*** अथवा तकनीक निम्नलिखित होती है :-

1. **नियोजन** ***(Planning)***
2. **संगठन** *(Organising)*
3. **आदेश** *(Commanding)*
4. **समन्वय** ***(Coordinating)***
5. **नियंत्रण** ***(Controlling)***

गुलिक ने प्रशासन अथवा संगठन के संचालन से संबंधित प्रशासन के 14 सूत्री सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। गुलिक के अनुसार अब हमारे सामने केवल एक ही प्रशासनिक विज्ञान है सभी प्रकार के संगठनों के संचालन में इन सार्वभौमिक सिद्धांतों को अपनाया जा सकता है। फेयोल के अनुसार प्रशासन के 14 सार्वभौमिक सिद्धांत निम्नलिखित हैं :-

1. **सत्ता और उत्तरदायित्व** ***(Authority and Responsibility)***
2. **आर्थिक प्रतिफल अथवा मजदूरी** ***(Remuneration)***
3. **केंद्रीयकरण** *(Centralisation)*
4. **श्रम का विभाजन** ***(Division of Labour)***
5. **अनुशासन** ***(Discipline)***
6. **समानता अथवा क्षमता** ***(Equity)***

7. **सहयोग और सौहार्द की भावना** ***(Esprit de Corps)***
8. **कार्मिकों का स्थाई या सुनिश्चित कार्यकाल** ***(Fixed Term)***
9. **सामान्य हित** (General Interest)
10. **पदसोपान** (Hierarchy)
11. **प्रोत्साहन या पहल** (Initiative)
12. **व्यवस्था** (Order or System)
13. **आदेश की एकता** (Unity of Command)
14. **निर्देश की एकता** (Unity of Direction)

लूथर गुलिक और उर्विक का योगदान (Role of L. Gullick and Lyndall Urwick) : हेनरी फेयोल के विचारों की अग्रिम पंक्ति में लूथर गुलिक एवं उर्विक ने प्रशासनिक सिद्धान्त के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होनें अपनी पुस्तक **'पेपर ऑन द साइंस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (Papers on the science of Administration, 1937AD)** के अंतर्गत प्रशासनिक सिद्धांतों का विश्लेषण किया है। यद्यपि इनके द्वारा भी संगठन की संरचना पर व्यापक बल दिया गया है परंतु मानवीय तत्व यहाँ भी उपेक्षित रहे है। लूथर गुलिक के अनुसार प्रत्येक प्रकार के संगठन के द्वारा आठ तरह के प्रकार्यो का सम्पादन किया जाता है और उनको निष्पादित करने की आठ तकनीके होती है। गुलिक के द्वारा प्रतिपादित कार्यों को और तकनीकों को अथवा प्रशासनिक तत्वों को संक्षिप्त स्वरूप में **पोस्डकॉर्ब (POSDCoRB)** के नाम से जाना जाता है जिसका प्रत्येक अक्षर या वर्ण एक सांगठनिक प्रकार्य और उसकी तकनीक का प्रतिनिधित्व करता है। अर्थात्

1. **नियोजन** (Planning)
2. **संगठन** (Organising)
3. **कार्मिक** (Staffing)

4. **निर्देशन** (Directing)
5. **समन्वय** (Coordinating)
6. **प्रतिवेदन** (Reporting)
7. **बजट ;**(Budgeting)

1971 में गुलिक के द्वारा इसमें **एक नया तत्व मूल्यांकन (Evaluation, It means POSDECoRB)** भी शामिल किया गया।
फेयोल के विचारों से प्रभावित होकर गुलिक ने भी संगठन के संचालन हेतु 10 सार्वभौमिक प्रशासनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है अर्थात लूथर गुलिक के अनुसार प्रत्येक संगठन के द्वारा आठ प्रकार्यों तथा 10 प्रशासनिक सिद्धांतों का निर्वहन किया जाता है। गुलिक के इन दस सिद्धान्तों को प्रशासनिक सिद्धांत या संगठन के सिद्धांत भी कहा जाता है जो कि निम्नलिखित हैं :-

1. **विभागीयकरण का सिद्धांत (Theory of Departmentalisation or Functionalism) इसे श्रम विभाजन या विशेषीकरण का सिद्धान्त भी कहते है।**
2. **विकेंद्रीकरण का सिद्धांत** (Theory of Decentralisation)
3. **प्रत्यायोजन का सिद्धांत** (Theory of Delegation)
4. **आधार का सिद्धान्त** (Theory of Base or Basics) **गुलिक ने संगठन के चार आधार बताए है जिनमें उधेश्य** (Purpose) **प्रक्रिया** (Process) **व्यक्ति** (Person or People) **और स्थान** (Place) **प्रमुख है। इन्हें** 4Ps **की धारणा भी कहा जाता है।**
5. **पदसोपानीय समन्वय का सिद्धान्त** (Coordination via Hierarchy)

6. **समिति समन्वय का सिद्धांत** (Coordination through Committees)
7. **चेतनशील समन्वय का सिद्धांत** (Coordination via Conscious)
8. **आदेश की एकता का सिद्धांत** (Theory of Unity of Command)
9. **स्टाफ और लाइन का सिद्धांत**(Theory of Staff and Line)
10. **नियंत्रण के क्षेत्र का सिद्धांत** (Theory of Span of Control)

इसी तरह से उर्विक ने भी आरंभ में प्रशासन के आठ सिद्धांतों का उल्लेख किया परन्तु बाद में फेयोल, मूनै, रैले, टेलर इत्यादि के सिद्धान्तों को मिलाकर अपनी पुस्तक एलीमेण्टस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (Elements of Administration, 1943AD) के अन्तर्गत इनकी संख्या 29 बतायी है। **उर्विक के अनुसार प्रशासन के 8 सिद्धांत निम्नलिखित होते है :-**

1. **उद्देश्य का सिद्धांत**(Principles of Purpose)
2. **तदनुरूपता का सिद्धान्त** (Principles of Correspondence)
3. **उत्तरदायित्व का सिद्धांत** (Principles of Responsibility)
4. **पदसोपान का सिद्धांत** (Principles of Hierarchy)
5. **नियंत्रण के क्षेत्र का सिद्धांत** (Principles of Span of Control)
6. **विशेषज्ञता का सिद्धांत** (Principles of Specialisation)

7. **समन्वय का सिद्धांत** (Principles of Coordination)
8. **परीभाषाओं का सिद्धांत** (Principles of Definitions or Define)

मुनि और रैले का योगदान (Role of Mooney and Reiley) :
अमेरिकी प्रशासनिक चिंतक मुनै और रैले मशीनी सिद्धांत के प्रणेताओं में से प्रमुख हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक ऑनवार्ड इंडस्ट्री (Onward Industry, 1931AD) जो बाद में 1939 में दी प्रिंसिपल से ऑर्गेनाइजेशन (The Principles of Organisation, 1939AD) के नाम से प्रकाशित हुई। मुनै व रैले ने संगठन के संचालन हेतु चार प्रमुख सिद्धांत बताए है जो कि निम्न है :-

1. **समन्वय का सिद्धांत** (Theory of Coordination)
2. **पदसोपान का सिद्धांत** (Theory of Hierarchy)
3. **श्रम विभाजन का सिद्धांत** (Theory of Division of Labour or Functionalism)
4. **सूत्र और अभिकरण का सिद्धांत** (Theory of Staff and Line)

मेरी पार्कर फोलेट की भूमिका ***(Role of Mery Parker Follett)*** **:**
शास्त्रीय संगठन सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादकों में से एक है मेरी पार्कर। एक राजनीति विज्ञानी के रूप में मेरी पार्कर फोलेट के द्वारा संगठन की सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का स्पष्टीकरण किया गया है। उन्होंने अपने पूरे अकादमिक कैरियर में संगठन की संघर्ष और एकीकरण की समस्या पर अनुसंधान

किया और इस समस्या के निदान के लिए एक नवप्रवर्तन अथवा इनोवेटिव आइडिया खोजा जिसे **कंस्ट्रक्टिव कनफ्लिक्ट्स** ***(Constructive Conflict)*** के नाम से जाना जाता है। मेरी पार्कर फॉलेट कहती है कि संघर्ष प्रत्येक प्रकार के संगठन में सामाजिक अंतः क्रिया के रूप में सामान्य और अपरिहार्य परिणाम या नतीजा है। इसलिए इसे **असमानताओं का पश्चिमी उत्पाद (*Westfull outbreak of Incompatibilities)*** नहीं मानना चाहिए अपितु इसे एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में हमें देखना होगा जो कि सामाजिक मूल्यों की विभिन्नताओं को अभिव्यक्त करता है। मेरी पार्कर कहती है कि प्रत्येक प्रकार के संगठन संघर्ष की अप्रयुक्त क्षमता को और बेहतर करने के लिए कार्य करें। उसके विचारों में 'सभी प्रकार के चमत्कार घर्षणा या संघर्ष के द्वारा ही संभव होते है। जैसे कि हमने सितार या वाईलिन के घर्षण या रगड़ से संगीत को इजाद किया है, यदि हम आग के बारे में विचार करे तो वह भी आदिमकाल में घर्षण के माध्यम से ही खोजी गई है।' इसी के साथ मेरी पार्कर ने संगठन के भीतर व्यैक्तिक अनामता का समर्थन किया है। जहाँ किसी भी प्रकार के व्यक्तिवाद या भाई भतीजावाद को कोई स्थान नहीं मिलेगा। संगठन पैत्रिकशाही या पितृशाही से मुक्त रहेगा।

परम्परागत प्रशासनिक सिद्धांत की आलोचनाएं (Critiques of Fayol's Theory) : संगठन या प्रशासन की पुरातन अवधारणा की अनेक आलोचनाएँ की गई है जो कि निम्नलिखित है :-

1. यह सिद्धांत संगठन के औपचारिक स्वरूप एवं संरचना पर अधिक बल देता है।
2. यह एक मशीनी उपागम है जिसमें मानवीय तत्वों की उपेक्षा की गई है।
3. यह एक संकुचित दृष्टिकोण है।
4. यह सिद्धांत गतिहीनता या स्थिरता का प्रतीक है।

उपयुक्त आलोचनाओं के पश्चात् भी निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भले ही हर्बर्ट साइमन ने शास्त्रीय सिद्धांतों को लोकोक्ति अथवा मुहावरे कहकर इनका मजाक उड़ाया है तथापि प्रशासनिक सिद्धांतों की सबसे बड़ी भूमिका यह रही है कि उनके माध्यम से ही लोक प्रशासन में प्रमुख सिद्धांतों की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ अथवा हम कह सकते हैं कि प्रशासनिक सिद्धांतों की नींव रखने का कार्य परम्परागत सिद्धांतों के अंतर्गत किया गया है। इनके द्वारा आगामी अनुसंधान को आधार उपलब्ध कराया गया है।

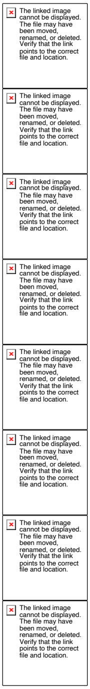

नौकरशाही सिद्धांत

(Bureaucratic Theory)

आधुनिक राज्य जिन्हें लोककल्याणकारी और प्रशासकीय राज्य के नाम से जाना जाता है। ऐसे राज्यों में नौकरशाही एक विशाल एवं प्रभावी संगठन के रूप में विद्यमान है। नौकरशाही अपने आप में एक संगठन है। नौकरशाही के बिना किसी भी संगठन का अस्तित्व नहीं हो सकता है। यर्थाथ में प्रत्येक सामुहिक प्रयास नौकरशाही संरचना की मांग करता है। आधुनिक संगठनों के लिए नौकरशाही एक अनिवार्य और सार्वभौमिक परिदृश्य है। यद्यपि सामान्य जन जब इस शब्द अर्थात् नौकरशाही का प्रयोग करता है तो वह इसे एक बुरे स्वरूप वाले संगठन के रूप में देखता है क्योंकि वह नौकरशाही का अभिप्राय एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था से लेता है जिसमें सामान्यतया लालफीताशाही, भाई भतीजावाद, भ्रष्टाचार, अकुशलता, अकर्मण्यता, असंवेदनशीलता इत्यादि अवगुणों के संदर्भ में ही देखता है। यहाँ नौकरशाही में नौकर की अपेक्षा रॉयल या शाही प्रभाव प्रबल रूप में अभिव्यक्त होता है अर्थात् यह समूह जनता या राज्य के नौकर या सेवक के रूप में जन समस्याओं का निदान करने की अपेक्षा उनके साथ राजा या राजदरबारी या मालिक के जैसा व्यवहार करता है। ऐसा माहौल सामान्यतया पिछडे समाजों या विकासशील राज्यों में परिलक्षित होता है। जैसे कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी नौकरशाही। नौकरशाही सिद्धान्त भी परम्परागत प्रशासनिक चिंतन का ही एक अभिन्न हिस्सा है जिसका उदय 20 वी सदी के आरंभ में हुआ। इसका श्रेय मैक्स वेबर को जाता है जिन्होंने नौकरशाही की अवधारणा का पहली बार व्यवस्थित स्वरूप में अध्ययन किया। मैक्स वेबर ने नौकरशाही की उत्पति, प्रकृति, विकास एवं अनिवार्यता का विश्लेषण इसके सामाजिक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में किया है। जर्मन समाजशास्त्री और दार्शनिक चिंतक मैक्स वेबर (1864 -1920AD) ने ब्यूरोक्रेसी को अन्य संगठनों की तरह ही एक सामाजिक संगठन के रूप में अभिव्यक्त किया है। यह संगठन सभी प्रकार के राज्यों भले ही पूंजीवादी राज्य हो या समाजवादी राज्य, सभी में विद्यमान होता

है। वेबर (Max Weber) के अनुसार नौकरशाही नियुक्त कार्मिकों का एक समूह होता है जो तकनीकी कुशलता से प्रशासनिक उद्देश्यों की पूर्ति एक सामाजिक संगठन के रूप में करता है। नौकरशाही संगठन अन्य संगठनों से भिन्न होता है क्योंकि इसके साथ शक्ति, सत्ता और वैधता(Legitimacy) अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई रहती है। मैक्स वेबर ऐसे प्रथम समाजशास्त्री और दार्शनिक चिंतक हैं जिन्होंने नौकरशाही अथवा अधिकारी तंत्र का पहली बार व्यवस्थित अध्ययन किया है। मैक्स वेबर ने नौकरशाही को लोक सेवा का पर्यायवाची नहीं माना है तथापि वह आधुनिक समय में किसी भी संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अनिवार्य आवश्यकता के रूप में दिखाई देती है।

नौकरशाही के उदय के कारण :
एक अनुशासन या सिद्धान्त के रूप में भले ही नौकरशाही 20 वीं सदी में उदित हुई हो अथवा इस शब्द का प्रयोग 18 वी सदी के मध्य में किया गया हो तथापि एक क्रिया के रूप में यह सभ्यताओं की उत्पति के साथ ही जुडी हुई अवधारणा है। चीन, मिस्त्र और प्रशा की सभ्यताकालीन नौकशाही विश्वप्रसिद्ध रही है। चीन में 165 ईसा पूर्व (165BC) से ही प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से प्रशासकों का चयन किया जाता रहा है। **सेन पु हाई (Shen Pu hai, 337BC)** के लेखन में भी नौकरशाही के बारे में जिक्र किया गया। मैकियावली के द्वारा भी प्रतियोगी मंत्रियों के चयन की बात कही गई थी। अतः नौकरशाही एक प्राचीनतम अवधारणा है जिसका विवेचन भारतीय राजनीतिक चिंतन में कौटिल्य के अर्थशास्त्र और शुक्र की शुक्रनीति सार में विस्तार से किया गया है। यह अपने वर्तमान स्वरूप में यूरोपीयन चिंतन अथवा पश्चिमी राजनीतिक चिंतन में बीसवीं सदी के आरंभ में उभर कर सामने आई है जिसके उदय के पीछे निम्नलिखित कारण उत्तरदायी माने जाते हैं :-

1. **स्वतंत्र बाजार प्रणाली का उदय और विकास** ***(Emergence and Development of Capitalist Market Economy)***
2. **पूंजीवाद का विस्तार और स्वभाव** ***(Nature and Expansion of Capitalism)***
3. **औद्योगीकरण** ***(Industrialisation)*** **नौकरशाहीकरण** ***(Bureaucratisation or Expansion of Bureaucracy)*** **और तर्कोउन्मुखीकरण** ***(Rationalisation)*** **की प्रक्रिया।**
4. **जटिल प्रशासनिक समस्याओं का उदय** ***(Emergence of Complex Administrative Problems)***
5. **बड़े स्तर पर जन लोकतंत्र की मांग** *(Demand of Mass Democracy)*

नौकरशाही का अर्थ और परिभाषा ***(Meaning and Definitions of Bureaucracy) :*** नौकरशाही को अधिकारीतंत्र अथवा कार्मिक समूह के नाम से भी जाना जाता है। आंग्ल भाषा के **ब्युरोक्रेसी (Bureaucracy)** शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **जैक्स क्लाउड मेरी विसेंट डी गोर्नी** ***(Jacques Claude Marie Vincent De Gournay)*** के द्वारा **1745 ईस्वी** में किया गया। गोर्नी ने इसका प्रयोग उस संदर्भ में किया था जब फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था असफल हो गई और इसका प्रमुख कारण ब्यूरोमेनियां (Bureau-mania) बीमारी को माना गया अर्थात नौकरशाही एक बीमारी के रूप में (We have an illness in France; This illness is called Bureaumania ; Bureaucracy as a Disease) फ्रांसीसी शब्दकोश के अनुसार ब्यूरोक्रेसी का अर्थ है शासकीय कार्यालयों के अध्यक्षों एवं कार्मिकों की शक्ति और प्रभाव। अतः

यह दो अर्थों को अभिव्यक्त करता है अर्थात् प्रशासन के कार्य और उसकी पद्धतियाँ तथा प्रशासकों का समूह। **ब्यूरोक्रेसी (Bureau and Cracy)** शब्द दो शब्दों **फ्रांसीसी शब्द (Bureau) यूनानी शब्द (Kratein)** से मिलकर बना है। जहाँ पहले शब्द का अर्थ **दफतर या कार्यालय या डेस्क** ***(Office or Desk)*** *से* है जबकि दूसरा शब्द पकडे रहने या मजबूती ***(Hold On)*** के अर्थ को अभिव्यक्त करता है। अतः ब्यूरोक्रेसी का शाब्दिक अर्थ है सशक्त कार्यालय या मजबूत डेस्क जिसे लोकप्रिय रूप में ***कार्यालयों की सरकार (Official's Government)*** भी कहा जाता है।

ई एन ग्लेडेन के अनुसार, "कार्यालयों की सरकार ही नौकरशाही होती है।"

मार्शल ई डिमॉक के अनुसार, "नौकरशाही का अर्थ होता है विशेषीकरण, पदसोपानीय व्यवस्था और दीर्घकालीन संप्रेषण।"

मैक्स वेबर के अनुसार नौकरशाही का अभिप्राय : यद्यपि वेबर ने स्पष्ट रूप से कदापि नौकरशाही को परिभाषित नही किया। वह **नौकरशाही** ***(Bureaucracy)*** शब्द के स्थान पर **ऑफिसियलडोम या नौकरशाही** ***(Officialdom)*** का प्रयोग करता है। वेबर ने नौकरशाही को **दो स्वरूपों पैत्रिक एवं तार्किक नौकरशाही** ***(Patrimonial and Rational Bureaucracy)*** में वर्गीकृत किया है। पितृशाही नौकरशाही परम्परागत एवं करिश्मात्मक अधिसताओं में पायी जाती है जबकि कानुनी तार्किक नौकरशाही अधिसता के केवल कानुनी स्वरूप में ही निहित होती है। वेबर के अनुसार **पितृशाही नौकरशाही** ***(Patrimonial Bureaucracy)*** को प्राचीन मिस्त्र, रोमन साम्राज्य और बेजांटिन साम्राज्य के इतिहास में देखा जा सकता है जबकि आधुनिक राज्यों में विशुद्ध नौकरशाही पायी जाती है। पैत्रिक नौकरशाही, तार्किक नौकरशाही से मौलिक रूप में भिन्न होती है क्योंकि यह अनुबन्ध के आधार पर नियुक्त अधिकारियों की अपेक्षा स्वतंत्र अधिकारियों पर निर्भर होती है।

वेबर ने सभी कार्मिकों को नौकरशाही में सम्मिलित नहीं किया है। वह केवल नियुक्त कार्मिकों *(Appointed officials)* को ही इसका हिस्सा मानता है, **चयनित या निर्वाचित अधिकारियों** *(Elected and Selected officials)* को नहीं। अतः नियुक्ति नौकरशाही अधिकारियों की अनिवार्य विशेषता है। ऐसा कहकर उसने नौकरशाही के सामान्य अर्थ को व्यक्त किया है। परन्तु वह तकनीकी एवं सामान्य सन्दर्भ में नौकरशाही के भिन्न अर्थ को बताता है।

''नौकरशाही का मतलब नियुक्त कार्मिकों की प्रशासनिक व्यवस्था से है।'' *(Bureaucracy is meant "An Administrative body of appointed officials")* ''यह एक प्रशासनिक व्यवस्था होती है जिसे विशेषज्ञता, निष्पक्षता व अमानवीयता की विशेषताओं से जोड़ा जा सकता है।''

मैक्स वेबर के अनुसार अधिसत्ता या शक्ति का स्वरूप एवं वर्गीकरण :

वेबर की नौकरशाही की अवधारणा उसके अधिसता की वैधता के विचार के साथ निकटता से जुडी हुई है। वेबर ने वैधता के विचार को संगठनों के वर्गीकरण के लिए एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किया है। उसके अनुसार विश्वास के भिन्न आधार सता के अलग अलग स्वरूपों को अभिव्यक्त करते है। वैधता का स्वरूप भिन्न अधिसता, संरचना और संगठन का प्रतिनिधित्व करता है। नौकरशाही सर्वव्यापक, अतिप्रगतिशील एवं आधुनिक स्वरूप वाला संगठन है जो कि बौद्धिक-कानूनी वैधता पर आधारित है। अतः वेबर के नौकरशाही प्रतिमान को समझने के लिए संस्थागत शक्ति के इस स्वरूप और उसके प्रकारों के बारे में जानना अति आवश्यक है। इसके अभाव में वेबेरियन प्रतिमान वाली **आदर्श नौकरशाही** *(Ideal Type Bureaucracy)* को समझना मुश्किल होगा। उसने बाध्यकारी या संस्थागत शक्ति को अधिसत्ता का पर्याय बताया है। अतः अधिसत्ता आदेश देने और

पालन करवाने वाली शक्ति होती है। वेबर के अनुसार इस सत्ता के साथ अधीनस्थों की स्वाभाविक सहमति जुड़ी रहती है। अधिसता को प्राप्त होने वाली वैधता या विश्वास के आधार पर इसके तीन प्रकार होते है।

1. करिश्माई अथवा चमत्कारी अधिसत्ता ***(Charismatic Authority)*** :

यह अधिसता का प्रथम प्रकार है। यह सता मौलिक रूप से पारिवारिक या सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र से जुडी होती है। इस अधिसत्ता के आदेश के पीछे आज्ञा देने वाले का चमत्कारी व्यक्तित्व होता है जिसके कारण उसके अनुयायियों के द्वारा आंखें मूंदकर आदेश की अनुपालना की जाती हैं। अनुयायी अपने नेता के पीछे चलते रहते हैं और उसके लिए अपना जीवन भी न्यौछावर कर सकते है। जैसे कि लोकदेवता, धर्मो के पैरोकार, विवेकानंद, गांधी, नेहरू, अंबेडकर, पटेल, वॉशिंगटन, माओ, लेनिन, बिस्मार्क इत्यादि इसी अधिसता के उदाहरण रहे है।

2. परंपरागत अधिसत्ता ***(Traditional Authority)*** :

वेबर के अनुसार यह सता का दूसरा प्रकार है जो कि स्वाभाविक रूप से सामन्तशाही और पितशाही व्यवस्था से जुडा होता है। सत्ता का यह स्वरूप सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों, मौखिक नियमों पर आधारित होता है। अधिनस्थों के द्वारा बिना बाध्यकारी शक्ति के आदेशों की अनुपालना की जाती है। यह परम्पराओं, रीति रिवाजों एवं अभिसमयों पर आधारित वैधता है। इस अधिसता पर सांस्कृतिक पर्यावरण या परिवेश का व्यापक प्रभाव रहता है। जैसे कि बच्चों द्वारा माता-पिता व बड़ों का आदर करना। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में विद्यमान अनेक अच्छाईयों व बुराइयों या शोषण पर आधारित प्रथाओं और परंपराओं का बिना किसी प्रतिरोध के अनुपालन करना।

3. तार्किक-वैधानिक अधिसत्ता ***(Rational - Legal Authority)*** :

यह सता का तीसरा प्रकार है। कानूनी अधिसता में वेबर के द्वारा

एक नया वर्ड तार्किकता जोडा गया है। अतः अब इस अधिसता को कानूनी और तर्कशक्तिपूर्ण शक्ति कहा जाता है। आदेश देने वाला कानून की शक्तियाँ रखता है और उसे ऐसी शक्तियाँ बुद्धि या तर्क शक्ति के कारण प्राप्त होती है। आधुनिक नौकरशाही इसी पर आधारित शक्ति या सता है। इसके पीछे बाध्यकारी सता होती है।

वैधता की पाँच अवधारणाएं *(The five Conceptions of Legitimacy)* : वेबर के अनुसार नौकरशाही संगठन अन्य संगठनों की अपेक्षा भिन्न होता है क्योंकि उसके पास तार्किक-वैधानिक अधिसता होती है। परन्तु लागों के द्वारा इस बौद्धिक-तार्किक अधिसता के आदेशों की अनुपालना क्यों की जाती है? इसके पीछे संगठन के सदस्यों की स्वाभाविक सहमति होती है जिसे वैधता कहा जाता है। मैक्स वेबर ने कानूनी अधिसत्ता की वैधता के पाँच आधार बताए हैं जिन्हें वैधता की पाँच अवधारणाए अथवा नौकरशाहीरूपी संगठन के पाँच आधार भी कहा जाता है जो कि निम्नलिखित हैं :-

1. नौकरशाही संगठन के द्वारा एक **कानूनी संहिता *(Legal Code)*** की स्थापना की जाती है जिसके आधार पर संगठन के सदस्यों से उसकी आदेश की अनुपालना का दावा किया जा सकता है।
2. **अमूर्त नियमों (Abstract Laws)** की व्यवस्था होती है जिनको विशेष मामलों (Special Cases) में लागू किया जा सकता है और प्रशासन संगठन के हित में ऐसी नियमों की सीमाएं भी निर्धारित कर सकता है।
3. प्राधिकार का उपयोग करने वाली अधिसत्ता या सर्वोच्च सताधारी को भी **अवैयक्तिक आदेश**

(Impersonal Command) की अनुपालना करनी होती है

4. केवल योग्य सदस्यों के द्वारा ही **कानून के आदेश की अनुपालना** *(Obeys of law by Qua members)* सदस्य के रूप में की जाती है अर्थात् सत्ता आदेश का पालन क्षमता के अनुसार किया जाता है।
5. **आदेश की अनुपालना** *(Obedience of Command of Chair or Post)* इसलिए नहीं की जाती है कि कोई व्यक्ति आदेश देता है अपितु यह उस आदेश की अनुपालना है जिसके कारण वह **प्राधिकारी आदेशनुमा प्रस्थिति** को प्राप्त करता है अर्थात् यहाँ व्यक्ति के आदेशों की अनुपालना नहीं होती अपितु कुर्सी या पद की अनुपालना होती है।

मैक्स वेबर के द्वारा अधिसत्ता की उपयुर्क्त पाँच अवधारणाओं के आधार पर कानूनी अधिसत्ता संरचना के 8 प्रस्ताव भी बताए हैं जिन्हें सत्ता के 8 सूत्र या सिद्धान्त अथवा तार्किक नौकरशाही के आठ लक्षण भी कहा जाता है।

1. संगठन के अंतर्गत कार्मिकों के द्वारा **निरंतरता** *(Continuity)* **और नियमतता** *(Regularity)* के आधार पर आधार पर कार्य किए जाते हैं।
2. सभी कार्यों का प्रकार्यात्मक विभाजन *(Functionally Division)* किया जाता है
3. कार्मिकों के पदों को पदसोपानीय स्वरूप में व्यवस्थित किया जाता है।
4. नियमों का निर्माण कार्य की प्रकृति के आधार पर किया जाता है अर्थात तकनीकी या कानूनी दोनों

ही संदर्भ में प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

5. संगठन के संसाधनों का व्यक्तिगत या निजी और सदस्य के रूप में स्पष्ट विभाजन होता है।
6. कार्यालय धारक अपने कार्यालय की सराहना या प्रशंसा नहीं कर सकता है।
7. प्रशासन लिखित दस्तावेजों के आधार पर संचालित होता है और यह प्रवृत्ति कार्यालय को आधुनिक संगठन का केंद्र (Hub) बनाती है।
8. वैधानिक अधिसता प्रणाली के अनेक रूप हो सकते हैं लेकिन यह विशुद्ध रूप में नौकरशाही प्रशासनिक कार्मिकों में ही दिखाई देती है।

वेबेरियन नौकरशाही या वेबर की आदर्श प्ररूप नौकरशाही की विशेषताएँ ***(Feature of Weberian or Ideal Type Bureaucracy)*** :

मैक्स वेबर ने नौकरशाही को एक सामाजिक संगठन के रूप में देखा है। मूलतः नौकरशाही सामूहिक गतिविधियों को कानूनी तर्कसंगत ठहराने की सामाजिक अवधारणा है। यह तार्किक-कानूनी प्राधिकार के द्वारा कार्यों के निष्पादन की व्यवस्था है। वेबर की प्रसिद्ध रचनाओं में ***Economy and Society (Published in 1922AD) General Economic History, and Protestant Ethic and Spirit of Capitalism' (1904)*** सम्मिलित है। वेबर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'थ्योरी ऑफ सोशल एंड इकोनामिक ऑर्गेनाइजेशन अथवा इकोनामी एंड सोसायटी'** (The Theory of Economic and Social Organisation or Economy and Society, 1922AD) के अंतर्गत एक **आदर्श प्रारूप वाली (Ideal Type Bureaucracy)** नौकरशाही को चित्रित किया है जिसे नौकरशाही का **'वेबेरियन प्रतिमान'** ***(Weberian Model of Bureaucracy or Rational or Pure Bureaucracy)***

भी कहा जाता है। मैक्स वेबर के अनुसार आदर्श प्रारूप वाली नौकरशाही के 10 लक्षणों को कार्मिकों या कार्यालयों की विशेषताओं (Features of Officials) के नाम से भी जाना जाता है ***(As per Martin Albrow)*** जो कि निम्नलिखित होती हैं :-

1. सभी कार्मिक व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र होते है और उनका मूल्यांकन केवल उनके कार्यालय के द्वारा प्रदत दायित्वों के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है अर्थात् यह **कार्यालय और कर्तव्य** ***(Desk and Duties)*** से जुड़ी हुई अवधारणा है।
2. यह स्पष्ट रूप से अधिकारियों के पदानुक्रम की व्यवस्था होती है।
3. सभी अधिकारियों के कार्य स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट होते हैं अर्थात् यह कार्य, सत्ता और उत्तरदायित्व के स्पष्ट विभाजन की व्यवस्था है।
4. अधिकारियों की नियुक्ति अनुबंध के आधार पर की जाती है।
5. अधिकारियों का चयन पेशेवर योग्यता के आधार पर किया जाता है। आदर्श रूप से वे परीक्षा के माध्यम से चयनित होते हैं।
6. वे पैसे के रूप में वेतन प्राप्त करते हैं और सामान्यतया पेंशन का अधिकार भी रखते हैं। उनके वेतन में बढ़ोतरी पद के अनुसार होती है। वह हमेशा ड्यूटी पर होते हैं और विशिष्ट परिस्थितियों में उन्हें सेवा से बर्खास्त भी किया जा सकेगा।
7. कार्मिकों का पद ही उनके लिए एकमात्र आजीविका या व्यवसाय होता है।
8. यह यह कैरियर उन्नति की संरचना होती है और संभवत उनकी पदोन्नति मेरिट के आधार पर अथवा

वरिष्ठता के आधार पर तथा उच्च अधिकारियों कि निर्णय के अनुसार होती है।

9. पदाधिकारियों के द्वारा न तो पद के लिए और न ही इसके साथ जुड़े हुए संसाधनों की सराहना की जाएगी।
10. वह एक **एकीकृत नियंत्रण** ***(Integrated Control)*** और अनुशासनात्मक (Disciplinary) प्रणाली होती है।

मैक्स वेबर के द्वारा जिस तार्किक नौकरशाही या विशुद्ध नौकरशाही की उपयुक्त विशेषताओं का विवेचन किया गया है। इन सभी विशेषताओं वाली नौकरशाही व्यावहारिक स्वरूप में किसी भी देश में पूर्ण स्वरूप में दिखाई नहीं देती है। हालांकि अंशतः वह विकसित देशों में जरूर पाई जाती है।

नौकरशाही की सीमाएं ***(The Limits over Bureaucracy)*** : मैक्स वेबर को यह है पक्का यकीन था कि तार्किक नौकरशाही इसके महत्व को बढ़ाने के लिए बाध्य थी। आधुनिक संगठनों के विकास की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप राज्य का कार्य क्षेत्र विविध दिशाओं में बढ गया जैसे कि चर्च, सेना, राजनीतिक दल, अर्थव्यवस्था, दबाव समूह, स्वैच्छिक संगठन, दानदात्री संस्थाएं इत्यादि। इन सबके विकास ने नौकरशाही अथवा नौकरशाही प्रशासन में निरंतर वृद्धि की है। मैक्स वेबर ने अनेक अवसरों पर यह अभिव्यक्त किया कि नौकरशाही करण एक अटल प्रक्रिया थी। यहाँ नौकरशाहीकरण से मैक्स वेबर का मतलब था शुद्ध या तार्किक नौकरशाही की विशेषताओं में बढोतरी होना। परंतु वास्तव में नौकरशाहीकरण को नौकरशाही के दुष्प्रभाव के रूप में माना गया जो कि **लालफीताशाही और अकुशलता** ***(Red-Tape and Inefficiency)*** को बढ़ावा देती है। इनको नौकरशाही के अवगुणों या अयोग्यता के जाता है। वेबर के

अनुसार ये नौकरशाही की विशेषता नहीं होती है। वेबर नौकरशाही की इस अकुशलता को कम से कम करना चाहता है। इसलिए उसने नौकरशाही की शक्ति को एक समस्या के रूप में व्यक्त किया है। वस्तुतः नौकरशाहीकरण पदाधिकारियों की शक्ति में अभिवृद्धि के साथ जुड़ी हुई अवधारणा ही है। अतः यह कहा जा सकता है कि मैक्स वेबर ने न केवल आदर्श प्रारूप वाली नौकरशाही के प्रतिमान का विवेचन किया है अपितु नौकरशाही में उदित होने वाली बुराइयों को भी **नियंत्रित करने के उपाय** ***(Few Defence Mechanism)*** बताए है अथवा मैक्स वेबर के शब्दों में यदि नौकरशाही में बुराइयों की अधिकता हो जाए या जब नौकरशाही में शाही तत्व नौकर की अपेक्षा अधिक प्रबल हो जाए तो उसको नियंत्रण में करने के लिए **नियंत्रण तंत्र** ***(Control Mechanisms)*** का सहारा लिया जा सकता है। वेबर के विस्तृत आलेख या निबन्ध पार्लियामेंट एंड गवर्नमेंट इन दी न्यूली ऑरगेनाईजड जर्मनी, (Parliament and Government in the Newly Organised Germany, 1918AD) में इस नियामकीय तंत्र का विवेचन किया गया है। वेबर के सैद्धान्तिक वक्ता या पैरोकार ब्रिटिश समाजशास्त्री **मार्टिन एल्ब्रों** ***(Martin Albrow)*** ने अपनी पुस्तक ब्यूरोक्रेसी ***(Bureaucracy, 1970AD)*** में इन वेबेरियन नियमों या नियामकीय तंत्र के घटकों का उल्लेख किया है। नियंत्रण तंत्र को मुख्य रूप से पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया है जो कि निम्नलिखित है :-

1. सामूहिकता सहभागिता ***(Collegiality)*** : एकाधिकृत नौकरशाही (Monocratic Bureaucracy) की शक्तियों को सीमित करने के लिए निर्णयन प्रक्रिया में सामुहिक उतरदायित्व या सामुहिकतावाद की धारणा को अपनाया जाता है। यह नौकरशाही की निर्णय प्रक्रिया में मानोपोली का प्रतिरोध है। वेबर ने इसकी उपलब्धता को रोमन परिषद, ब्रिटिश कैबिनेट और संसदीय व्यवस्था अथवा सीनेट में देखा था। सामुहिक उतरदायित्व के कारण निर्णय की सता केवल एक व्यक्ति के पास

नहीं रहती है। यद्यपि इसके कारण निर्णय की गति और उतरदायित्व में अवगुण उत्पन्न हो जाते है।

2. शक्तियों का पृथक्करण ***(Separation of Powers)*** : मोंटेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था के कारण कार्यों एवं उतरदायित्वों का दो या अधिक निकायों में स्पष्ट विभाजन हो जाता है। कोई भी एक अधिक शक्तियों का प्रयोग नहीं कर पाता है। एक के द्वारा दूसरे पर नियंत्रण रखने या रोकने की व्यवस्था होने के कारण नौकरशाही ताकतवर नहीं हो पाती है। यह **निर्णय की एकाधिकार** ***(Monopoly of Decision)*** प्रवृति पर रोक लगाने की व्यवस्था है।

3. अपरिपक्व प्रशासन ***(Amateur Administration)*** : वेबर के अनुसार पेशेवर नौकरशाही (Professional Bureaucracy) उसे अधिक शक्तिशाली बनाती है। अतः इसके स्थान पर सामान्य स्वरूप वाली नौकरशाही को भर्ती करने से उसे नियंत्रित किया जा सकता है।

4. प्रत्यक्ष लोकतंत्र ***(Direct Democracy)*** : प्रत्यक्ष स्वरूप वाले लोक़तंत्र की स्थापना नौकरशाही को सीमित करती है क्योंकि नौकरशाही जनता के प्रति उतरदायी और जवाबदेय जनसभा या सदन के द्वारा निर्देशित होती है। अस्थिर या लघु कार्यकाल और पुनः बुलाने की व्यवस्था, जनसभाएं, जनमत संग्रह इत्यादि प्रत्यक्ष लोकतंत्र के प्रतिमान नौकरशाही को नियंत्रित करते है। वेबर की मान्यता है इस नियंत्रण तंत्र का उपयोग स्थानीय स्वशासन अथवा छोटे संगठनों में ही संभव है।

5. प्रतिनिधित्व ***(Representation)*** : निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के साथ नौकरशाही की सता को साझा करके भी इसकी अधिसता को नियंत्रित किया जा सकता है। यद्यपि इसमें भी इस बात की संभावना रहती है कि जनप्रतिनिधि नौकरशाहीकरण के प्रभाव में आ जाते है। फिर भी नौकरशाही को सीमित स्वरूप में या जननियंत्रण में रखने का यह सबसे कारगर

उपाय है जैसा कि विकासशील राज्यों के संगठनों में दिखायी भी देता है।

नौकरशाही के वेबेरियन प्रतिमान की आलोचनाएँ *(Criticism of Weberian model of Bureaucracy)* : यद्यपि वेबर का नौकरशाही सिद्धान्त निश्चित रूप से परम्परागत प्रशासनिक उपागम का केन्द्र बिन्दु रहा है तथापि वेबर के सिद्धांत की अनेक आधारों पर आलोचना की गई है। आदर्श नौकरशाही की तार्किकता की अवधारणा, प्रशासनिक कुशलता, औपचारिकतावाद, सीमाओं इत्यादि के आधार पर आलोचनाएं की गई है। आलोचकों ने इसको लालफीताशाही, यसमैन की अवधारणा असंवेदनशीलता, भाई-भतीजावाद भ्रष्टाचार आदि अवगुणों से संबंधित माना गया है। कहा है।

1. राबर्ट मर्टन (Robert Merton) एवं अन्य समाजशास्त्रियों ने वेबरीयन नौकरशाही की तार्किकता की आलोचना करते हुए कहा कि उसकी पदसोपानीय संरचना एवं नियमों की बाध्यता प्रशासनिक अकुशलता को जन्म देती है। यह कठोर (Rigid) लालफिताशाही (Red Tapism), स्थिर (Static), अनुदारवादी (Inflexible), परिवर्तन विरोधी होती है। फिलिप सेल्जनिक व मर्टन के अनुसार औपचारिक संगठन की संरचना यह बताने में असक्षम होती है कि नौकरशाही कैसे व्यवहार करना चाहिए।
2. समाजशास्त्री टेल्काट पार्संस के द्वारा वेबर नौकरशाही संगठन की आन्तरिक स्थिरता पर प्रश्न उठाया है। यह हमेशा संभव नहीं है कि प्रशासनिक कार्मिक आदेश देने के प्राधिकार के बराबर ही

तकनीकी कुशलता रखते हो अथवा उनका पेशेवर दक्ष कार्मिकों के साथ ही मेलजोल रहे।

3. एलविन गोल्डनेर (Alvin Gouldner) के अनुसार प्रशासनिक कार्मिकों का व्यवहार परिवेश के तत्वों से भी प्रभावित होता है जिसे वेबर ने नजरअदांज किया है। वेबर के जीवनी लेखक बेंडिक्स इस विश्वास के विरुद्ध है कि कार्मिक सामान्य सामाजिक एवं राजनीतिक मुल्यों के प्रभाव के बिना कानुन की अनुपालना करते है। इसी तरह से रूडोल्फ ने भी यह सवाल उठया है कि प्रशासन एक मशीन थी और प्रशासक इसके तकनीकी कार्मिक थे।

4. जोसेफ ला पालाम्बोरा के विचारों में गैर पश्चिमी समाजों के लिए मानवीय व्यवहार से दूर वेबर का नौकरशाही प्रतिमान उनके अनुकूल नहीं है। इन समाजों के लिए रशियन और चाईनीज नौकरशाही प्रतिमान वेबर उपागम की अपेक्षा अधिक प्रभावी है। राबर्ट प्रेस्थस के अनुसार 'पश्चिमी संस्कृति के उत्पाद के रूप में वेबर की नौकरशाही विकासशील देशों के अनुकूल नहीं है।' इन देशों में तेज गति से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन होते है जिसके लिए उदार, परिवर्तनशील, लचीली एवं नवप्रर्वतनकारी नौकरशाही की आवश्यकता होती है।

5. साईमन एवं बर्नाड ने यह साबित किया है कि वेबर का संरचनात्मक प्रतिमान (Weber's Structural Model)प्रशासनिक कुशलता को कम करेगा क्योंकि संगठन में औपचारिक अभ्यासों की अपेक्षा अनौपचारिक सम्बन्धों के माध्यम से दक्षता को बढाना संभव होता है। साईमन एवं मार्च ने गुलिक व उर्विक की तरह ही वेबर की गणना

परम्परागत उपागम के समर्थकों में की है क्योंकि वेबर ने भी संगठन में मानवीय व्यवहार को नकारा है।

6. **थॉमस कार्लायल** ने नौकरशाही को **'महाद्वीपीय जंजाल' कॉल जे फैडरिक ने 'दुर्भाग्यपूर्ण' डेवी ने 'व्यावसायिक मनःसंताप' वारनारट ने 'पेशेवर विकृति'** तथा **विक्टर थॉमसन ने 'ब्यूरोपैथोलॉजी' वेब्लेन ने 'प्रशिक्षित अयोग्यता के समुह'** के रूप में आलाचित किया है।
7. **मिशेल क्रोजियर (Michel Crozier)** के शब्दों में 'नौकरशाही एक कठोर संगठन है जहाँ गलतियों से भी सीखकर अपने व्यवहार में सुधार नहीं किया जा सकता है।' **'ब्यूरोक्रेट्स भूलकर भी शिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं।'**
8. नियमबद्धता, नियमितता, निरन्तरता, औपचारिकता और अनामता के कारण नौकरशाही लोहे की पिंजरे में बंद प्राणी की तरह हो जाती है।

वेबर के नौकरशाही प्रतिमान की प्रासंगिकता *(Relevance)* :
यद्यपि वेबरीयन नौकरशाही की अनेक आधारों पर आलोचना की गई है तथापि वेबर ही वह प्रथम चिंतक था जिसके द्वारा पहली बार व्यवस्थित एवं विस्तृत स्वरूप में नौकरशाही का सामाजिक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक अध्ययन किया गया। यह वर्तमान नौकरशाही के परिप्रेक्ष्य को समझने में भी सहायक है। इसके अलावा अभी तक भी नौकरशाही के अध्ययन का हमारे सामने कोई वैकल्पिक प्रतिमान उपलब्ध नहीं है। यह बडे स्तर के संगठनों के प्रबन्धन में बहुत ही उपयोगी है। राज्य का भी स्वरूप भले ही कैसा ही क्यों न हो वहाँ पर नौकरशाही की विद्यमानता अपरिहार्य है। वेबेरियन प्रतिमान प्रशासन में पक्षपात

(Favouritism) एवं भाई-भतीजावाद (Nepotism) को नकारकर व्यावसायिकतावाद (Professionalism) को स्थापित करने में सहायक है। वेबर ने नौकरशाही संगठन को मजबूत सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया है। अतः इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी वेबर का अविस्मरणीय योगदान रहा है।

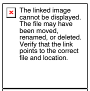

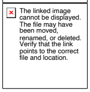

वैज्ञानिक प्रबंधन सिद्धांत

(Scientific Management Theory)

जिस प्रकार सूचना क्रांति ने पूरी दुनिया में परिवर्तन की लहर उत्पन्न की, ठीक उसी तरह से प्रबंधन के क्षेत्र में एक नया बदलाव आया है। जिसे प्रबंधन की क्रांति के नाम से जाना जाता है। इस क्रांति का आगाज अमेरिका के औद्योगिक संगठनों में सुधारवादी आंदोलन के रूप में हुआ। जिसके प्रणेता एफ डब्ल्यू टेलर थे। यह संगठन के प्रबंधन संबंधी प्रथम अवधारणा है। बीसवीं सदी के आरंभ में उद्योगों में एक ऐसी अनियोजित विचारधारा पनप रही थी जिसके कारण संगठन अपने लक्ष्यों से दूर हो रहे थे। इस अनियोजन, अकुशलता और बोझिलपूर्ण प्रबंधन की बुराई को दूर करने का प्रयास सर्वप्रथम 1910 ई में लुई ब्रेंडिस के द्वारा किया गया। यद्यपि इसे पूर्ण एवं व्यवस्थित स्वरूप देने वाले प्रथम विचारक टेलर ही थे। उसने स्पष्ट किया कि प्रबंधन एक सुनिश्चित एवं नियोजनकारी प्रबंधकीय अवधारणा है। टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंधन को एक मानसिक क्रांति के रूप में अभिव्यक्त किया है जो संगठनों के स्वामियों को अधिकतम लाभ प्रदान करने के साथ-साथ मजदूरों की समृद्धि का भी समर्थन करती है। अतः उनके नाम के अनुरूप वैज्ञानिक प्रबंधनवाद को टेलरवाद के नाम से भी जाना

जाता है। टेलर ने प्रमुख रूप से कार्यकुशलता अथवा दक्षता पर और मितव्ययता पर ध्यान केंद्रित किया है। टेलर की प्रमुख रचनाओं में । A Piece Rate System, 1895AD, Shop Management, 1903AD, Art of Cutting Mettals, 1906 and Principles of Scientific Management, 1911AD इत्यादि है। टेलरवाद के पमुख समर्थक एस एल जैण्ट, एच इमरसन, फ्रैंक, गिलब्रेथ और थाम्पसन इत्यादि है।

टेलरवाद अथवा वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त की मुख्य मान्यताएं :

वैज्ञानिक प्रबंधन सिद्धांत तीन प्रमुख मान्यताओं पर आधारित है।

1. वैज्ञानिक पद्धतियों की सहायता से संगठन की कार्यप्रणाली को उन्नत बनाया जा सकता है।
2. प्रत्येक मनुष्य एक आर्थिक प्राणी होता है क्योंकि वह आर्थिक कारकों से अवश्य ही प्रभावित होता है।
3. एक अच्छा श्रमिक वह नहीं जो कार्य शुरू करता है अपितु वह होता है जो प्रबंधन के निर्देशों का पालन करता है।

टेलरवाद की विशेषताएं :

1. वैज्ञानिक प्रबंधन का सिद्धांत श्रम विभाजन और विशेषीकरण की धारणा पर आधारित हैं।
2. यह सीमित संसाधनों के पूर्ण एवं कुशलतम उपयोग का तथा लाभांश के वैज्ञानिक आवंटन का समर्थन करता है।
3. यह तथ्यों, सिद्धांतों व वैज्ञानिक पद्धतियों को अपना केंद्र बिंदु मानता है।
4. टेलरवाद पारस्परिक संघर्ष की अपेक्षा सहयोग पर बल देता है।

5. यह सिद्धांत अर्थशास्त्र की नियोजन प्रणाली का समर्थन करता है।
6. यह सिद्धांत कार्य के अनुरूप मजदूरी या प्रतिफल के नियम पर कार्य करता है।

टेलरवाद के आधारभूत सिद्धांत : टेलर के द्वारा इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन से पूर्व चार अन्य भिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था जिन्हें दैनिक स्पष्टीकरण, कार्य दशाओं की उपयुक्तता के निर्धारण, सफलता के लिए ईनाम और असफलता के लिए जुर्माने की व्यवस्था के नाम से जाना जाता था लेकिन जब टेलर ने स्वयं ने यह महसूस किया कि वे सिद्धान्त अपूर्ण है तो फिर से इनमें संशोधन कर निम्न चार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

1. सच्चे प्रबंधन एवं कार्य विज्ञान का विकास : टेलर की मान्यता थी कि वैज्ञानिक प्रबंधन सिद्धांत का मूल उद्देश्य कार्यकुशलता व दक्षता से उत्पादकता में वृद्धि करके, मजदूर व मालिक दोनों के हितों की पूर्ति करना है। यह सच्चे प्रबंधन, यथार्थ प्रबंधन और कार्य विज्ञान की अवधारणा पर आधारित है। जहाँ प्रबंधन केवल अपने हितों के लिए ही कार्य नहीं करता है वरन् सबके हितों को ध्यान में रखता है, चाहे वह मजदूर हो अथवा मालिक। इसी के साथ यह कार्य पर भी सर्वाधिक बल देता है।

2. **वैज्ञानिक चयन का सिद्धांत :** यह इस मान्यता पर आधारित है कि केवल योग्य, प्रशिक्षित, कर्मठ और दक्ष लोगों का ही चयन किया जाता है। चयन प्रक्रिया में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रहनी चाहिए अथवा कोई समझौता नहीं होना चाहिए क्योंकि इसी पर संगठन की उत्पादकता का स्तर निर्भर करता है। इसी के साथ संगठन को सदैव अपने कार्मिकों की पदोन्नति या उन्नति के लिए भी अवसर उपलब्ध कराने चाहिए अथवा इसके लिए कार्य करना चाहिए।

3. सामूहिकता की भावना के विकास या सहयोग का सिद्धांत : वैज्ञानिक प्रबंधन सिद्धांत वस्तुतः जैसा कि टेलर ने कहा है कि वह एक मानसिक क्रांति की धारण है जो कार्मिकों और प्रबंधकों के मानसिक स्तर में सकारात्मक बदलाव लाती है। जिसके परिणामस्वरुप प्रबंधक एवं मजदूर दोनों मिल-जुलकर समग्र रूप से आगे बढ़ते हैं। उनके बीच किसी प्रकार का विरोधाभास या संघर्ष नहीं पाया जाता है।

4. कार्य विभाजन और उत्तरदायित्व का सिद्धांत : यह टेलरवाद का चौथा आधारभूत सिद्धांत है। यह सिद्धांत प्रबंधक एवं कर्मचारियों सबके लिए निश्चित कार्यों और उत्तरदायित्व के विभाजन की बात करता है। प्रबंधक व मजदूर दोनों ही जिम्मेदार कार्मिक होने चाहिए और सब ईमानदारी से अपनी क्षमताओं का उपयोग अधिकतम उत्पादन में करेंगें। यह सिद्धांत अंगूठे के नियम की अपेक्षा विज्ञान पर ध्यान देता है। सामंजस्य न की कलह, सहयोग न की व्यक्तिवाद, अधिकतम उत्पादन न की सीमित उत्पादन तथा अधिकतम कार्यकुशलता और समृद्धि में विश्वास रखता है।

इसी के साथ टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंधन के दर्शन को केवल यंत्रवाद न मानकर उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण माना है।

टेलर की पद्धति अथवा तकनीक : टेलर ने अपने सिद्धांत को साकार रूप देने के लिए अनेक वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग भी किया है जैसे कि समय की तकनीक का अध्ययन, गति का अध्ययन, थकान का अध्ययन विशेषीकरण, मानकीकरण, नियोजन, स्लाईड नियम, काम आधारित वेतन व्यवस्था, माल और औजार वर्गीकरण तथा मूल्य मापन की आधुनिक व्यवस्था इत्यादि। इस प्रकार टेलर का मूल उद्देश्य मजदूरों के प्रति प्रबंधक की सहानुभूति को दर्शाना एवं वैज्ञानिक तरीकों एवं मशीनों का उपयोग करके उत्पादन को अधिकतम

करना था। अतः टेलर ने समग्र व्यवस्था का समर्थन किया है। इसलिए उसे मानसिक बदलाव या क्रांति का सिद्धांत कहा गया है।

टेलरवाद की प्रमुख आलोचनाएं :
टेलरवाद वस्तुतः शास्त्रीय सिद्धांत की मान्यताओं पर ही आधारित है। अतः उसे भी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा।
यह मानवीय समाज को भी मशीन बनाने पर बल देता है जो कि अनुचित है।
यह सिद्धांत मजदूर को विवेकशील आर्थिक प्राणी के रूप में देखना चाहता है जो कि गलत है। वह एक सामाजिक प्राणी भी होता है।
यह सिद्धांत श्रमिकों का शोषण करने का एक नया मशीनी जंजाल है जहाँ श्रमिकों को गुमराह करने का प्रयास किया जाता है।
यह एक भौतिक संगठन का सिद्धांत है जिसका एकमात्र उद्देश्य उत्पादन है।

इन सब आलोचनाओं के बावजुद भी प्रबंधन के क्षेत्र में टेलर को पितामाह के रूप में देखा जाता है। भले ही आधुनिक युग में विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र ने कितनी ही उन्नति कर ली हो परन्तु आज भी संगठन उत्पादन पर अधिक केंद्रित होते हैं।

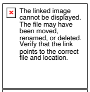

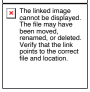

मानव संबंध उपागम

(Human Relations Approach)

इस मानवीय सिद्धांत का उदय शास्त्रीय सिद्धांत की परंपरागत मान्यताओं एवं कमियों के प्रतिक्रियास्वरूप 1920 ई. के बाद संगठन में अनौपचारिक सम्बन्धों के विवेचन के लिए हुआ है।

परंपरागत सिद्धांतों में केवल गैर मानवीय तत्व अथवा तकनीक या मशीन अथवा यंत्र पर विशेष बल दिया गया। यही कारण है कि **शास्त्रीय सिद्धांतों को यांत्रिक अथवा मशीनी सिद्धांत** के नाम से पहचाना गया। मानव संबंध सिद्धांत को मानवीय व्यवहार पर बल देने के कारण **मानववादी उपागम** अथवा प्रबन्धक और श्रमिकों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों की व्याख्या पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण **अनौपचारिक उपागम अथवा आर्थिक-सामाजिक सिद्धांत अथवा डॉक्टर सिद्धांत** इत्यादि उपनामों से भी जाना जाता है। यह उपागम एक संगठन में वैधानिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष से सम्बन्धित है। इस सिद्धांत के आर्थिक-सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक सुधारों पर बल दिया गया है। अतः इसे **नव शास्त्रीय सिद्धान्त (New Classical Theory)** कहा जाता है। यह सिद्धान्त 1930 के दशक में व्यवहारवादी क्रांति के काल में उदित हुआ। इस सिद्धांत का प्रतिपादन ऑस्ट्रेलियन मूल के मनोवैज्ञानिक **जॉर्ज एल्टन मेयो (George Alton Mayo)** के द्वारा किया गया है। मेयो ने 1911 से 1923 ई. तक क्वींसलैण्ड विश्वविद्यालय, ब्रिस्बेन में मोरल फिलोसोफी और सायकोलॉजी के प्राध्यापक रहे हैं। 1923 से 1926 ई. तक वे पेंसीवेलनिया यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर रहे तथा 1926 से 1947 ई. तक हावर्ड बिजनेस स्कूल में औद्योगिक समाजशास्त्र के प्रोफेसर रहे हैं।

मेयो की तीन प्रमुख पुस्तकों में **द ह्यूमन प्रॉब्लम्स ऑफ एंड इंडस्ट्राइलाइजेशन (The Human Problems of an Industrial Civilisation, 1933AD) दी सोशल प्रॉब्लम ऑफ एंड इंडस्ट्रियल सिविलाइजेशन 1945 (The Social Problems of an Industrial Civilisation, 1945AD) दी पॉलीटिकल प्रॉब्लम्स ऑफ एंड इंडस्ट्रियल सिविलाइजेशन 1947 (The Political Problems of an Industrial Civilisation, 1947)** प्रमुख है।

यह सिद्धांत संरचना एवं संगठन की अपेक्षा सामाजिक, मानवीय

और नैतिक घटकों पर अधिक ध्यान देता है। मनुष्य को यहाँ आर्थिक प्राणी नहीं अपितु सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्त किया गया है।

लॉर्ड मेयो के प्रमुख सहयोगी विचारकों में अमेरिका के **रोथलिस बर्जर, मेरी पार्कर फॉलेट, विलियम जे डिकिंसन तथा वार्नर (F. J. Roethlisberger, William J. Dickson, T. North Whitehead, E Warne, W. Lloyd and L. J. Henderson.)** इत्यादि थे।

मानववादी सिद्धान्त के उदय के प्रमुख कारक : वैज्ञानिक प्रबन्धन जैसे परम्परागत सिद्धान्तों के परिणामस्वरूप सभी संगठनों में कार्मिकों को केवल उत्पादन के एक साधन के रूप में उपयोग में लिया जाने लगा। ऐसे औद्योगिक संगठपनों के वातावरण में कम मजदूरी, कार्य के अधिक घण्टे, प्रतिकुल कार्य दशाएँ तथा श्रमिकों के शोषण के अतिरिक्त कुछ भी दिखायी नहीं देता था। इन परम्परागत सिद्धान्तों के कारण समस्त मानवीय संस्कृति भौतिक एवं मशीनी परिवेश से प्रभावित हुई। व्यक्ति को संगठन के ध्येय को प्राप्त करने वाला केवल एक आर्थिक उपकरण मान लिया गया। इन निजी और सार्वजनिक संगठनों में मानवीय आवश्यकताओं और भावनाओं को कोई महत्व नहीं दिया गया। इन संगठनों के लिए अब श्रम केवल एक वस्तु (Commodity) और मानव **पहिया का कगुरा (Cog in the Wheel)** बन गया। इसी के साथ विज्ञान एवं तकनीक ने व्यावसायिक एवं शिक्षित मजदूरों की आवश्यकता ने श्रमिकों को अपने हितों एवं अधिकारों के प्रति जागरूक बना दिया। इसके परिणामस्वरूप बड़े स्तर पर औद्योगिक श्रमिक संगठनों के द्वारा आंदोलनों व हडतालों का सहारा लिया गया। मेयो व उसके साथियों के द्वारा इन संगठनों का अध्ययन भौतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य के स्वरूप में किया गया और इन सबका एक ही निष्कर्ष था **'मानव सम्बन्ध' को महत्व देना।**

इस सिद्धांत के उदय के पीछे अनेक कारण उत्तरदाई रहे हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित है :-

1. **विश्व स्तर पर उत्पन्न औद्योगिक अशांति का वातावरण।**
2. **प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात का उत्पन्न वातावरण।**
3. **1929 से 1933 की अवधि की वैश्विक महामंदी।**
4. **औद्योगिक उत्पादकता में लगातार कमी होना ।**
5. **प्रबंधन का तीव्र गति से व्यवसायीकरण होना ।**
6. **शास्त्रीय सिद्धांत की विशेष कमियाँ जो टेलरवाद और वेबेरियन प्रतिमान में दिखाई देती है।**
7. **1917 ई. में रूस में समाजवादी आंदोलन की सफलता।**

इस उपागम ने औद्योगिक क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न कर दी। पहली बार संगठन में कार्मिकों के मानवीय व्यवहार पर अध्ययन कर उसे प्रभावित करने वाले अनार्थिक तत्वों का पता लगाया गया। व्यक्ति के तौर पर श्रमिक एवं उसके कार्य समूह के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्षों का अध्ययन किया गया। मानव संबंध उपागम संबंधी अध्ययन के लिए **हयुगों की साइकोलॉजी एंड एफिशिएंसी 1913** (Psychology and Industrial Efficiency, 1913AD) **गार्डनर एवं मूरे की हयूमन रिलेशन इन इंडस्ट्री 1950** (Human Relations in Industry, 1950AD) डेविस की (Human Relations in Business, 1957AD) सी आई बर्नार्ड की दी फंक्शन ऑफ एग्जीक्यूटिव (The Function of the Executive, 1938AD) प्रसिद्ध रहे हैं।

एल्टन मेयो का हॉर्थोन प्रयोग (Hawthorne Experiments of Mayo) **:**

लॉर्ड मेयो के द्वारा अपने वैज्ञानिक अध्ययन में जो अनुप्रयोग किए गए उन्हें हॉर्थोन प्रयोग कहा जाता है। मेयों के नेतृत्व में हावर्ड बिजनेस स्कूल द्वारा अमेरिका की जनरल इलेक्ट्रॉनिक कंपनी के अधीन शिकागो के पास स्थित वेस्टर्न इलेक्ट्रॉनिक कंपनी (This Plant is a Branch of General Electronic Company) के हॉर्थोन प्लांट में अनुसंधान कार्य शुरू किया। इस प्लांट के निर्देशक जॉर्ज पिनॉक (G. A. Pennok) थे। इस प्लांट में टेलिफोन व टेलिफोनिक उपकरण बनाने का कार्य किया जाता था। इस अनुसंधान के मुख्य प्रेरक नेशलन रिसर्च कौंसिल आफॅ दि नेशलन एकेडमी आफॅ सांईसेज व पिनाक थे। इसमें कार्यरत मजदूरों पर अनुसंधान का कार्य किया गया। मेयो के प्रमुख सहयोगी जॉर्ज पिनॉक और विलियम जे डिकिंसन, हैरोल्ड राइट, हेण्डरसन इत्यादि थे। हॉर्थोन प्रयोगों का विस्तार से विवेचन रोथलिस बर्जर और विलियम जे डिकिन्सन के द्वारा लिखित पुस्तक मैनेजमेंट एंड दि वर्कर्स (Mamagement and the Workers, 1939AD) में किया गया है। इन अनुसंधानों का मुख्य ध्येय कामगारों की कुशलता एवं उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारकों को समझना (To know and understand the factors affecting efficiency and productivity of workers)था। इन प्रयोगों ने 'कार्य की दशाओं एवं उत्पादकता' के बीच के संबंधों को खोजकर औपचारिक संगठन और आर्थिक धारणा में हलचल उत्पन्न कर दी।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Airplane View of Hawthorne Works, ca. 1925

मेयो के चार हॉर्थोन प्रयोग *(Four Hawthorne Experiments of Mayo)* :

1 महाप्रकाश अनुप्रयोग *(The Great Illumination Experiment 1924-1927AD)* :

इसी प्रकाश प्रभाव प्रयोग अथवा लाइट टेस्ट एक्सपेरिमेंट भी कहा जाता है। इस प्रयोग का उद्देश्य **प्रकाश के स्तर** ***(Level of Illumination)*** *अर्थात्* कार्य की दशाओं और उत्पादकता के बीच के संबंधों का अनुसंधान करना था। नवंबर 1924 से अप्रैल 1927 अर्थात लगभग साढे 3 वर्ष तक 6-6 महिला श्रमिकों के दो समूह बनाए गए और इन समूहों पर दो अलग-अलग कार्य कक्षों में एक समान टास्क या कार्य देकर नियंत्रित प्रयोग किया गया। अन्य बातें स्थिर रखकर केवल लाइट को कम या अधिक करके इसका प्रभाव उत्पादकता पर देखा गया। प्रकाश को कम या ज्यादा करने से उत्पादकता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

2 जांच कक्ष प्रयोग ***(Test Room Experiments, 1927-1928AD)*** **:**
यह प्रयोग मूलतया प्रकाश प्रयोग का ही दूसरा भाग या हिस्सा है। जब प्रकाश प्रयोग का कोई सार्थक परिणाम नहीं मिला तो प्रकाश तत्व के अलावा अन्य कारकों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए (The Relay Assembly Department Room) टेस्ट रूम प्रयोग किया गया। इस प्रयोग के अंतर्गत अन्य बातों को स्थिर रखकर **श्रम की अवधि** ***(Hours, Days and Week)*** को कम करना, आराम के समय को बढाना, कॉफी और सूप के साथ भोजन की सुविधाएं श्रमिकों को निःशुल्क रूप से उपलब्ध कराई गई। अलग-अलग कार्यशाला कक्षों में पृथ्थक-पृथ्थक श्रमिक समूहो का गठन कर इस परीक्षण को अंजाम दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन अतिरिक्त सुविधाओं की देयता से उत्पादन में पहले धीरे-धीरे तथा बाद में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। उत्पादकता में वृद्धि के पीछे दो कारण उत्तरदाई माने गए। पहला कारण श्रमिकों को इस अनुप्रयोग के बारे में ज्ञान हो जाना था तथा दूसरा कारण श्रमिकों के द्वारा अनौपचारिक सामाजिक समूहों का गठन कर लेना। अतः इस प्रयोग का निष्कर्ष था कि उत्पादकता अनार्थिक तत्वों से भी प्रभावित होती है अर्थात् सामाजिक एवं मानवीय घटक भी उत्पादकता को प्रभावित करते हैं।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Women in the Relay Assembly Test Room, ca. 1930
Western Electric Company Hawthorne Studies Collection
© 2007 President and Fellows of Harvard College; all rights reserved.

अतः इसे **हॉर्थोन प्रभाव** ***(Hawthorne Effect)*** अथवा **कृत्रिम प्रतिबंधित निर्गत** ***(Artificial Restrictions of Out Put)*** भी कहा जाता है। इसने आर्थिक मानव की संकल्पना को सामाजिक मानव की धारणा में परिवर्तित कर दिया। इस सिद्धान्त ने वैज्ञानिक प्रबन्धन उपागम की मान्यता का विखण्डन कर दिया कि श्रमिक केवल आर्थिक कारकों से ही प्रभावित होते है। अतः संगठन द्वारा अपने मजदूरों को प्रेरणा देने हेतु ऐसा अवसर दिया जाना चाहिए।अनुसंधान टीम किसी सर्वमान्य निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी तो जॉर्ज पिनाक ने मेयो को आमंत्रित किया। मेयो ने इन सबके पीछे श्रमिक वर्ग की **मानसिक अभिवृति** ***(Mental Attitude)*** को उतरदायी कारक के रूप में देखा परन्तु यह प्रयोग वास्तविक कारकों का पता लगाने मे पूर्णतया सफल नहीं माना गया। इसलिए प्रयोग को आगामी चरण के ओर बढा दिया गया।

3 साक्षात्कार प्रयोग ***(Interview Experiments, 1928-1931AD)*** : अध्ययन का अग्रिम चरण 1928 से 1931 की समयावधि में आयोजित किया गया जिसे साक्षात्कार प्रयोग अथवा मानवीय अभिवृत्ति एवं भावना प्रयोग ***(The Human Attitudes and Sentiments Experiment)*** के नाम से भी जाना जाता है। मेयों व उसकी अनुसंधान टीम ने संगठन की नीतियों और कार्यक्रमों, सांगठनिक व्यवहार तथा प्रबन्धन एवं पर्यवेक्षण के सन्दर्भ में श्रमिकों की मानवीय अभिवृतियों और भावनाओं के बारे में श्रमिकों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के माध्यम से अध्ययन करना आंरभ किया। इस प्रयोग में दो सूचियों का निर्माण किया गया। एक प्रत्यक्ष प्रश्नावली अनुसूची और दूसरी अप्रत्यक्ष प्रश्नावली

अनुसूची। सभी श्रमिकों को ऐसा अवसर दिया गया कि वे स्वतंत्र होकर प्रबन्धन और संगठन तथा व्यवहार के सन्दर्भ में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त कर सके। लगभग 21000 हजार (21126) से अधिक श्रमिकों पर अध्ययन किया गया। साक्षात्कार पद्धति मूलतः मनोवैज्ञानिक परीक्षण पद्धति कहलाती है जिसका उपयोग कार्मिकों की भावनाओं या मनोविज्ञान को समझने हेतु किया जाता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

CaptionCord Finishing Department, ca. 1925

इस परीक्षण के बाद कार्मिकों की मानसिक अभिवृति में एक सकारात्मक परिवर्तन देखा गया। वे पहले से बेहतर महसूस करने लगे यद्यद्यि पर्यावरण में न तो कोई भौतिक बदलाव किया गया था और न ही कोई वास्तविक सुधार किया गया था। उनकी शिकायते दो प्रकार थी एक **प्रकट विषय सामग्री से सम्बन्धित** ***(The Manifest Material)*** और दूसरी **मनोवैज्ञानिक अव्यक्त** ***(Psychological Latent)*** तथापि अध्ययन के आंकडों ***(Datas)*** के विश्लेषण से मालूम होता है कि तथ्यों और शिकायतों की प्रकृति (The Nature of Complaints and The Facts) के बीच किसी प्रकार का **सहसम्बन्ध (Correlation)** नहीं था। श्रमिकों की शिकायतें वास्तविक तथ्यों का प्रतीक होने के बजाय उनके छिपे हुए दुःख या दर्द को अभिव्यक्त करती है। श्रमिकों की व्यक्तिगत समस्याएँ उत्पादन को प्रभावित करती है। अतः अध्ययन दल ने यह पाया कि मानवीय व्यवहार और मनोविज्ञान का भी उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि इस कार्यप्रणाली से उत्पादकता में आंशिक वृद्धि हुई परन्तु वास्तव में श्रमिकों को कुछ नहीं मिलता है। यहाँ श्रमिकों से अच्छी बातें तो की जाती है परंतु उनकी समस्याओं का कोई समाधान नहीं निकलता है। इसीलिए मेयों के द्वारा इसे **'निराशावादी ख्याली पुलाव या सपना' (Pessimistic Reveries)** कहा है। फिर भी समग्र रूप में यह अनुप्रयोग श्रमिकों और प्रबन्धन के मनोविज्ञान एवं अभिवृतियों को समझने में सहायता करता है।

4 बैंक वायरिंग प्रयोग ***(The Bank Wiring Experiment, 1931-1932 AD)*** :

यह मेयो व उसकी टीम के अध्ययन की अंतिम अवस्था थी जिसे सामाजिक संगठन-प्रयवेक्षणात्मक अध्ययन (Social Organisations - Observational Studies) के नाम से भी जाना जाता है। मेयो व उसकी टीम के द्वारा चौथा और अंतिम

हॉर्थोन प्रयोग आर्थिक कारकों के प्रभाव के अधीन श्रमिकों के समुह के व्यवहार अथवा सामुहिक मनोविज्ञान का अध्ययन करने के लिए किया गया। यह प्रयोग 14 पुरुषों के ऐसे समूह पर किया गया जिसको सामूहिक कार्य के बदले सामूहिक आर्थिक प्रतिफल देने का निर्णय किया गया। समुह के सभी सदस्यों में इस सामुहिक आर्थिक मजदूरी का बटवारा या आंवटन उनके समुह के द्वारा उत्पादित कुल निर्गत के आधार पर किया जाना निर्धारित किया गया। अतः इसे समूह व्यवहार विश्लेषण या सामाजिक संगठन अनुप्रयोग भी कहा जाता है। इस समूह के तीन अलग-अलग उप समूह बनाए गए जिनके कार्य अन्तः निर्भर प्रकृति के थे अर्थात् एक समूह को सोल्डर करने का कार्य (To Solder) अर्थात जोड़ना, दूसरे समूह को टर्मिनल का कार्य (To fix the Terminals) अर्थात तारों को लपेटना और तीसरे समूह को बंडल बनाने व उनकी गिनती का कार्य (To finish the wiring) दिया गया है। अध्ययन दल ने पाया कि इस समूह ने प्रबन्धक के निर्गत लक्ष्य से ठीक नीचे के स्तर पर उत्पादन या निर्गत का एक मानक स्तर निर्धारित कर लिया गया। समुह के सदस्यों के बीच मजबूत सामाजिक संबंधों का गठन हो जाता है अर्थात् सबने मिलजुल कर कार्य संबंधी अनौपचारिक नियमों या आचार संहिता (Code of Conduct) का निर्माण कर लिया। इस समूह के द्वारा निर्मित अनौपचारिक नियमों के चार स्वरूप सामने आए अर्थात् :

1. यह समुह **एक घनिष्ठ समुह (Closely knit Group)** के रूप में परिवर्तित हो गया किसी भी कार्मिक को साथियों से सामाजिक दूरी नहीं रखनी है। समूह का कोई भी साथी यदि पदोन्नत होकर निरीक्षक बन जाता है तो साथियों के कार्यों का परीक्षण करते हुए अतिपदक्षमता या असामाजिकता या गैर मिलनसारता का व्यवहार नहीं करे अन्यथा वह समाज से दूरस्थ हो जाएगा।

2. **शेखीचोर के नियम** का निर्माण अर्थात् किसी भी श्रमिक को निर्धाकर मानक से अधिक कार्य नहीं करना है। यदि कोई अन्य साथियों से अधिक काम (Who does too much work) करता है तो उसे **शेखीचोर (Rate Buster)** के नाम से पहचाना जाएगा और उसे बाकी लोग खनन अयस्क के ढेर पर धमाचौकड़ी की सजा देंगें।
3. किसी भी **कार्मिक को कम कार्य नहीं** करना है। समूह का कोई भी साथी कार्मिक एक निर्धारित स्तर से कम कार्य नहीं करेगा। यदि कोई मानक से कम कार्य (Who does too little work) करता है तो ऐसा करता है तो उसे स्वार्थी या **धोखेबाज (Chiseler)** के नाम से जाना जाएगा।
4. **भेदिया** (Squealer) या जासूसी का नियम अर्थात् समूह का कोई भी व्यक्ति अपने साथियों की सूचना पर्यवेक्षक तक नहीं पहुँचाएगा और न ही चुगली या आलोचना या बुराई या परनिंदा करेगा। यदि कोई श्रमिक समुह की निर्धारित सूचनाओं को पर्यवेक्षक तक पहुँचाता है तो उसे उसे भेदिया (Who communicates detrimental information about others to supervisor) **मुखबिर, जासूस या कबूतर का बच्चा (Squealer)** कहा जाएगा।

मेयो व उसकी टीम का यह अध्ययन टेलरवार की मान्यताओं के विपरीत परिणामों को दर्शाता है।

लॉर्ड मेयो के दो अतिरिक्त प्रयोग : प्रथम जांच-पड़ताल प्रयोग 1923 *(The First Enquiry Experiments, 1923AD)* :
इसे मेयो का **पहला प्रयोग** तथा **डॉक्टर प्रयोग (The Clinical Approach)** कहा जाता है। मेयों के द्वारा पेंसिलवेनिया

यूनिवर्सिटी के अधीन फिलाडेल्फिया में स्थित वस्त्र मिल में अपना पहला प्रयोग किया गया। इस अनुप्रयोग से इस बात की जानकारी मिली कि उस मील का मालिक एक सेवानिवृत्त सैन्य अधिकारी था तथा उस कंपनी के अधिकांश श्रमिक भी सेना से रिटार्यड सैनिक थे। अतः अधिक कठोर अनुशासन की अनुपालना के कारण सैनिकों के पैरों में पीड़ा होने पर भी वे इसे अभिव्यक्त नहीं कर सके। मेयों के द्वारा नर्स के माध्यम से यह जानकारी जुटाई गई और उनकी समस्या का समाधान किया गया जिसके बाद देखा गया कि उत्पादन का जो स्तर लगातार घट रहा था। वह बड़ी मात्रा में पुनः बढ गया। इस तरह मशीनी सिद्धांत की असफलता सिद्ध हुई और मानवीय कारकों का महत्व स्थापित हुआ। इसे डॉक्टर विधि प्रयोग अथवा मेयो का पहला प्रयोग भी कहा जाता है।

उद्योगों में अनुपस्थितिवाद का प्रयोग, 1943 (The Absenteeism in Industries, 1943AD): यह मेयो का अंतिम प्रयोग था जो कि हार्थोन प्रयोगों के अनुभव के आधार पर किया गया। इस प्रयोग में द्वितीय महायुद्ध के दौरान हवाई जहाजों का सामान बनाने वाली फाउंड्री (Manufacturing important components for Aircrafts) में मजदूरों की लगातार अनुपस्थित होने की समस्या के बारे में अध्ययन किया गया। उद्योगों में अनुपस्थिति के मुख्य कारण अनौपचारिक समुह की कमी होना, श्रमिकों का नेतृत्व करने वाले एक टीम लीडर का नहीं होना, श्रमिकों की अदला बदली, द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न हुए वातावरण इत्यादि थे। अतः मेयो ने निष्कर्ष के रूप में बताया कि श्रमिकों को अनौपचारिक समुह बनाने का अवसर दिया जाए तथा उनकी समस्याओं का मानवीय आधार पर समाधान खोजा जाए।

मेयोवादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ ***(The Major Features of Mayo's Theory)*** : हॉर्थोन प्रयोगों ने मानववादी आंदोलन को विकसित करने में निर्णायक एवं प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया। परंपरागत सिद्धांत में मानवीय सुधार किया गया जिसके पश्चात् इसकी

आधारभूत मान्यताएं स्थापित हुई। संगठनों के मानवीय व्यवहार के अध्ययन क्षेत्र में इस उपागम ने नवीन प्रतिमानों को स्थापित किया। इन अनुप्रयोगों के आधार पर मेयो के मानव आंदोलन की निम्नलिखित विशेषताएं अभिलक्षित होते हैं :

1. मानवीय घटक का महत्व (Importance Human Factor) :
मानवीय संबंध उपागत की सबसे बड़ी विशेषता उद्योग जगत में मानव तत्व के महत्व को उजागर करना है। यह मनुष्य को एक मशीन के रूप में नहीं बल्कि एक जीवित और संवेदनशील इकाई के रूप में अभिव्यक्त करता जिसके पास स्वंय का विवेक या चिंतन होता है। मेयो से पहले, श्रमिकों को पहिये के कंगूरे के रूप में माना जाता था या एक मशीन के रूप में तथा श्रम को वस्तु या गैर-जीवित उत्पादन के साधन के रूप में देखा जाता था। इस उपागम ने प्रबंधकों की इन मान्यताओं का खंडन करते हुए औद्योगिक दूनिया में मानवीय कारक को पुनर्स्थापित किया। मेयों ने श्रमिकों की जरूरतों, आकांक्षाओं और भावनाओं पर जोर देकर मानवीय संबंधों को महत्व देने वाले उपागम का प्रतिपादन किया।

2. मानवीय और सामाजिक घटकों की भूमिका (Role of Social and Human Factor) :
संगठन में कार्यरत श्रमिकों की सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं उत्पादकता को प्रभावित करती हैं। मानव संबंध उपागम के समर्थकों की मान्यता है कि उत्पादन तकनीकी और भौतिक घटको के साथ-साथ सामाजिक और मानवीय कारकों से प्रभावित होता है। हॉथोर्न प्रयोगों से पहले, उत्पादकता पर केवल तकनीकी और भौतिक परिवर्तनों के प्रभाव पर ही विचार किया गया था। लेकिन मेयो के प्रयोगों ने यह साबित कर दिया कि औद्योगिक उत्पादन पर भौतिक एवं तकनीकी कारकों की अपेक्षा मानवीय और सामाजिक कारकों का प्रभाव अधिक होता है। यद्यपि इसके लिए उच्च मनोबल, सौहार्दपूर्ण

संबंध, मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति और मानव प्रबंधन की आवश्यकता होती है।

3. मानव एक सामाजिक प्राणी है (Human is a Social Creature) : मानव एक यंत्र या उपकरण अथवा मशीन की तरह आर्थिक उपकरण नहीं होता है अपितु वह एक सामाजिक प्राणी होता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, मनुष्य केवल एक 'आर्थिक प्राणी' नहीं है जो केवल भौतिक लाभों और पुरस्कारों के लिए ही काम करता है। मेयो ने बताया कि मनुष्य की कुछ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ भी होती हैं जैसे कि सामाजिक प्रतिष्ठा, प्रशंसा, सहानुभूति, काम की पहचान इत्यादि, जो कि उसे कार्य के लिए प्रेरित करती है। इसलिए मेयो ने यह सुझाव दिया कि प्रबंधकों को उचित मजदूरी के अलावा श्रमिकों की व्यक्तिगत और सामाजिक आवश्यकताओं पर भी ध्यान देना चाहिए। हॉर्थोन प्रयोगों से यह मालूम होता है कि केवल भौतिक प्रतिफल श्रमिकों को कार्य के लिए प्रोत्साहित करने में अपर्याप्त हैं अपितु गैर-वित्तीय प्रोत्साहन जैसे कि प्रबंधन में भागीदारी, सेवा की सुरक्षा, कार्य की स्वतंत्रता इत्यादि श्रमिकों को कार्य के लिए अधिक प्रेरणा प्रदान करते हैं। वास्तव में, मानवीय संबंध दृष्टिकोण 'सामाजिक मानव' (Social Man) की अवधारणा में विश्वास करता है न कि आर्थिक मानव (Economic man) की धारणा में।

4. अनौपचारिक समुहों की पहचान (The Identification of Informal Groups) : मानवीय संबंध उपागम का मूल केन्द्र बिन्दु ही यह है कि वह संगठनों में अनौपचारिक समूहों और श्रमिकों के अनौपचारिक सम्बन्धों के बारे में अध्ययन किया जाना चाहिए। एक साथ कार्य करने वाले श्रमिकों के बीच अनेक छोटे-छोटे अनौपचारिक समूह बन जाते हैं। श्रमिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से इन समूहों के सदस्य बन जाते हैं और कार्यस्थल के भीतर और बाहर

उनकी सामाजिक गतिविधियाँ जारी रहती हैं। ये समूह श्रमिकों की गतिविधियों, व्यवहार और दृष्टिकोण पर सामाजिक नियंत्रण रखते हैं। इसके अलावा, ये समूह कार्य, नियमों और सिद्धांतों के अपने मानक निर्धारित करते हैं जो पूरे कार्यस्थल के वातावरण को प्रभावित करते हैं। सामाजिक दबाव का उपयोग अनौपचारिक समूहों द्वारा अपने काम के मानक को पूरा करने के लिए किया जाता है। सामाजिक प्राणी के रूप में श्रमिक एक उद्यम और सामग्री पुरस्कार के लक्ष्यों की तुलना में इन समूहों को अधिक महत्व देते हैं। मेयो ने देखा कि चूंकि ये समूह काम के माहौल को बहुत प्रभावित करते हैं, इसलिए प्रबंधकों को उन्हें मान्यता देनी चाहिए और प्रबंधन प्रणाली में उनका उपयोग करना चाहिए। इन समुहों का श्रमिकों के मनोबल एवं उत्पादन पर बहुत अधिक प्रभाव पडता है। उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि सामाजिक अनौपचारिक समूहों के सदस्य बनने से, संस्था के प्रति श्रमिकों का दृष्टिकोण बेहतर हो जाता है जो प्रबंधन के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध विकसित करने में मदद करता है। इसके अलावा, इन समूहों के माध्यम से प्रभावी नेतृत्व और संचार प्रणाली स्थापित की जा सकती है।

5. प्रबन्धन में श्रमिकों की सहभागिता (Labour's Participation in Management) : यह दृष्टिकोण श्रमिकों की भागीदारी या समूहिक प्रयास को महत्व देता है। मेयो का विचार था कि समूह प्रयासों के आधार पर ही प्रबंधन के प्रयास सफल होंगे। इसके अलावा, श्रमिकों का रचनात्मक सहयोग प्राप्त करने के लिए, योजना, संगठन और नियंत्रण में उनकी भागीदारी होनी चाहिए। कार्मिक संगठन के सहभागीदार होते हैं अतः उनका शोषण नहीं किया जा सकता है। इसलिए प्रबंधकों को श्रमिकों के सहयोग के आधार पर एक नवीन सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए।

6. संगठन एक सामाजिक प्रणाली के रूप में (Organisation as a Form of Social Systems) : मानवीय संबंध दृष्टिकोण औद्योगिक उपक्रमों को सामाजिक

संबंधों द्वारा गठित सामाजिक प्रणाली के रूप में देखता है जहाँ व्यक्ति सामाजिक समुह के रूप में कार्य करते है। वह वास्तव में एक सामाजिक प्रणाली का संचालन कर रहा है। यह उपागम संगठन को एक अनौपचारिक संरचना के रूप में देखता है। इसके अनुसार, कार्य स्थल एक जटिल सामाजिक संरचना है - अनौपचारिक संचार की एक प्रणाली। इसके आंदोलन की मान्यता के अनुसार कार्य स्थल अनौपचारिक सम्बन्धों की एक जटिल सामाजिक संरचना के समान होते है। इसलिए, यह प्रबंधकों के बीच तकनीकी कौशल के साथ-साथ 'दक्षता के तर्क (Logic of Efficiency) एवं भावनाओं के तर्क (Logic of Sentiments) के बीच संतुलन को स्थापित करने पर बल देता है।

7. कामगारों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर बल (Emphasis of Psychological Needs of Workers) : यह उपागम श्रमिकों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं जैसे कि मान्यता, आत्म-प्राप्ति और मनोबल इत्यादि की पूर्ति पर बल देता है। मेयो ने अपने प्रयोगों के दौरान कहा कि अमेरिकी उद्योगों में काम करने का मतलब था तिरस्कार। यह सिर्फ यांत्रिक, थकाऊ, महत्वहीन और गैर-महत्वपूर्ण नियमित गतिविधियों का प्रदर्शन था। यह वास्तव में श्रमिकों के व्यक्तित्व और उनकी क्षमताओं को व्यक्त करने और विकसित करने के अवसरों की अनुपलब्धता थी। इस प्रकार के नीरस वातावरण में श्रमिकों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए कोई गुंजाईश नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों के बीच तनाव, निराशा और चिंता की भावना जैसी स्थिति उत्पन्न होती है जिसके लिए मेयो ने (Anomic Situation) टर्म का प्रयोग किया अर्थात् ऐसी स्थिति जिसमें व्यक्तिगत या समुहिक रूप में नैतिकता या सामाजिक स्तर की अनुपस्थिति रहती है। उनके अध्ययनों ने यह साबित किया कि श्रमिकों के मनोबल या कार्य करने की प्रेरणा को उनके कार्य को

पहचान देकर, आत्मसम्मान और आत्म-संतुष्टि के अवसर प्रदान करके बढ़ाया जा सकता है।

8. अन्य विशेषताएं (Other Features) : इन लक्षणों के अलावा मानव सम्बन्ध आंदोलन के अन्तर्गत इस तथ्य पर भी बल दिया गया है कि कार्मिक, प्रबंधक तथा अन्य साथी कार्मिकों के बीच मानवीयतापूर्ण सम्बन्ध होने चाहिए। प्रबन्धक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक श्रमिक का अपनी संस्कृति, अपने विश्वास, मानक और जीवन का एक तरीका होता है। इसलिए औद्योगिक संगठन को श्रमिकों को काम देते समय ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को नजरअदांज नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त संगठन औपचारिक और अनौपचारिक दोनों स्वरूपों में हो तथा औद्योगिक संगठनों में मानवाधिकार सुनिश्चित होने चाहिए।

मानव संबंध सिद्धांत के आधारभूत तत्व : मेयो का सिद्धान्त आधारभुत रूप से तीन तत्वों पर केंद्रित रहा है व्यक्ति, निजी या व्यक्तिगत और सहभागिता। इसे पी3 की अवधारणा (Person, Personal and Participation it means P3) भी कहा जाता है।

1. **व्यक्ति (Person)** : यहाँ व्यक्ति मानववाद की अवधारणा का प्रतीक है जिसने व्यक्ति की विवेकशीलता एवं स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है। रोथलिसबर्जर के शब्दों में 'हर व्यक्ति में अद्वितीय क्षमता होती है, आवश्यकता उसे पहचानने की होती है। प्रत्येक को अपनी कार्य स्थिति से कुछ आशा, विश्वास और उम्मीदें रहती हैं''।
2. **निजी तत्व** (Personal) : व्यक्तिगत अथवा निजी कारक संगठन के अनौपचारिक स्वरूप को अभिव्यक्त करता है क्योंकि औपचारिकता में अलगाववाद, अवैव्यक्तिता, नियमबद्धता होती है।

रोथलिसबर्जर ने अपनी पुस्तक मैनेजमेंट एंड वर्कर्स (Management and The Workers, 1939AD) में लिखा है कि मानवीय समस्याओं का गैर मानवीय साधनों और गैर मानवीय सूचनाओं के आधार पर समाधान करने का प्रयास व्यर्थ होता है। इसीलिए हमें मानवीय समस्याओं का निदान मानवीय साधनों और मानवीय सूचनाओं के आधार पर करना चाहिए। मजदूर या कार्मिक एक सामाजिक मानव होता है जैसा कि मेयो के इस कथन से भी परिलक्षित होता है कि ''यदि तकनीकी कौशल के साथ सामाजिक कौशल होता तो द्वितीय महायुद्ध ही नहीं होता।''

3. **सहभागिता का तत्व** (Participation) : मेयोवादी सिद्धांत का तीसरा महत्वपूर्ण घटक या तत्व भागीदारीपूर्ण प्रबंधन अथवा प्रबंधन में मजदूरों की सहभागिता है। सहभागिता तत्व नेतृत्व की लोकतांत्रिक शैली का प्रतिनिधित्व करता है। मानव संबंध उपागम ने यहाँ पर टेलरवाद की इस अवधारणा कि ''प्रबंधन का कार्य केवल कुछ व्यक्तियों के द्वारा ही किया जाता है।'' के विपरीत कार्य की दशाओं संबंधी अथवा निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में मजदूरों और श्रमिकों की भागीदारी या सहभागिता को स्वीकृति प्रदान की है। अतः संगठन के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी उसे सामाजिक और मानवीय, लोकतांत्रिक संगठन का स्वरूप प्रदान करती है।

मेयो ने इन घटकों या तत्वों के माध्यम से **रेबल परिकल्पना (Rabbel Hypothesis)** को नकार दिया है और उसके स्थान पर हर्ड परिकल्पना को स्थापित कर दिया है। रेबल परिकल्पना

का प्रतिपादन डेविड रिकार्डो ने किया था जिसमें भीड़ या असंगठित समूह या अनौपचारिक समूह की तुलना जानवरों के झुंड से की गई है जो कि केवल अव्यवस्था और अराजकता फैलाने का कार्य करते हैं। यह स्वार्थ से संचालित उन भेडों का झुंड है जो एक के पीछे एक कुएं में गिर सकती है।
मेयों ने इसका विखण्डन किया और सामाजिक व संगठित समूह को **हर्ड परिकल्पना (Herd Hypothesis)** का नाम दिया। उद्योगपतियों या प्रबंधकों के द्वारा मशीनों की अपेक्षा मजदूरों या कार्मिकों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इस अवधारणा को **समाजवाद शब्द के प्रथम प्रयोगकर्ता और समाजशास्त्री रॉबर्ट ओवेन** के द्वारा सर्वाधिक महत्व दिया गया था।

आधुनिक प्रबन्धन में ''हॉथोर्न प्रभाव'' की प्रासंगिकता या उपयोग :
1966 में, रोथ्लिसबर्गर और विलियम डिकसन ने काउंसलिंग को एक संगठन में प्रकाशित किया, जिसमें प्रयोगों से प्राप्त अध्यायों का पुनरीक्षण किया गया। रोथ्लिसबर्गर ने "हॉथोर्न प्रभाव" को

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Completion of Counseling in an Organization, December 6, 1966

उस घटना के रूप में वर्णित किया जिसमें व्यवहार संबंधी अध्ययनों में विषय अवलोकन के जवाब में उनके प्रदर्शन को बदलते हैं। कई आलोचकों ने अध्ययन को पद्धतिगत और वैचारिक दृष्टिकोण से फिर से परिभाषित किया है; दूसरों को समय के अतिव्यापी सवाल मिलते हैं और समय के सिद्धांत सहयोगी प्रबंधन पर वर्तमान फोकस के प्रकाश में नई प्रासंगिकता रखते हैं। प्रयोग शोधकर्ताओं और उसके बाद के विद्वानों के एक मामले का अध्ययन बताते हैं जो अपने समय और विशेष रूप से पूर्वाग्रह के लेंस के माध्यम से डेटा की व्याख्या करते हैं।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Paul R. Lawrence, ca. 1960

मेयो और रोएथलीसबर्गर ने एक नए पाठ्यक्रम फोकस को परिभाषित करने में मदद की, जिसमें क्षेत्र आधारित अनुभवजन्य अनुसंधान के माध्यम से सामाजिक और औद्योगिक मुद्दों को संबोधित करने की डीन डोनहम की इच्छा के साथ गठबंधन किया गया। हॉथोर्न प्रयोगों में हार्वर्ड की भूमिका ने सामाजिक विज्ञान के आधुनिक अनुप्रयोग को संगठन जीवन के लिए प्रेरित किया और मानवीय संबंधों आंदोलन और संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र (सामाजिक प्रणालियों के रूप में संगठनों का अध्ययन) के लिए नींव रखी, जो जॉर्ज लोम्बार्ड, पॉल लॉरेंस द्वारा अग्रणी थे। और दूसरे।

"मशीन 'के उपांग के रूप में श्रमिकों का इलाज करने के बजाय," जेफरी सोननफेल्ड ने अध्ययन के अपने विस्तृत विश्लेषण में नोट किया है, नागफनी प्रयोगों ने प्रेरक प्रभावों, नौकरी की संतुष्टि, परिवर्तन के प्रतिरोध, समूह के मानदंडों, कार्यकर्ता की भागीदारी से संबंधित विचारों को प्रकाश में लाया। ये 1930 के दशक में जमीनी अवधारणाएं थीं। आज के नेतृत्व की दृष्टि से, लोगों 'और' सांस्कृतिक 'चर पर पर्याप्त ध्यान न देने वाले संगठन लगातार काम करने वालों की तुलना में कम सफल होते हैं। आज के नेतृत्व के दृष्टिकोण से, ऐसे संगठन जो लोगों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते हैं और उन्हें जोड़ने वाली गहरी भावनाएं और रिश्ते उन लोगों की तुलना में लगातार कम सफल होते हैं। उन्होंने कहा, " आप और आपके सहयोगी जिस बदलाव के लिए काम कर रहे हैं वह यांत्रिक नहीं बल्कि मानवीय होगा

मानव सम्बन्ध आंदोलन में चेस्टर आई बर्नार्ड का योगदान

(The Role of Bernard in Human Relations Movement):

बर्नार्ड मानव सम्बन्ध उपागम का दूसरा महत्वपूर्ण प्रतिपादका या व्याख्याकार है। चेस्टर आई बर्नार्ड के अनुसार संगठन एक आंगिक या जैविक (Organic)और विकसित सामाजिक प्रणाली है जिसमें व्यक्तिगत एवं सहकारी क्रियाएं निष्पादित होती हैं। बर्नार्ड

को सामाजिक प्रणाली विचारधारा का आध्यात्मिक पिता माना जाता है। व्यवहारवादी आंदोलन के अग्रणी विचारकों में बर्नार्ड प्रशासन एवं प्रबंधन में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष को प्रभावी और निर्णायक मानते हैं क्योंकि प्रशासन भी एक सहकारिता पर आधारित सामाजिक प्रणाली है। इसे बर्नाड का संगठन का सिद्धान्त(Barnard's Theory of Organisation)भी कहा जाता है। बर्नार्ड ने लम्बे समय तक अमेरिकी प्रशासन के अन्तर्गत कार्य किया था अतः उसका यह उपागम सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा व्यवहारिक पक्ष पर अधिक आधारित था।

बर्नार्ड ने अपनी पुस्तक द फंक्शन ऑफ दी एग्जीक्यूटिव (The Function of The Executive, 1938AD) अंतर्गत संगठन के संदर्भ में निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है :

1. एक संगठन सहकारिता या सहयोगी व्यवस्था (Organisation as a Cooperative System) के रूप में होता है। किसी भी संगठन में विषयों के प्रबन्धन की सामाजिक एवं भौतिक रूप में व्यक्तिगत सीमाएँ होती है अतः प्रत्येक संगठन सहयोग की मांग करता है। इसीलिए सहकारिता के प्रारूप को संगठन का हृदय कहा जाता है।
2. किसी भी संगठन की सफलता के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक ;(Formal and Informal Organisation) स्वरूप दोनों अनिवार्य होते है। अतः संगठन को औपचारिक एवं अनौपचारिक संरचना में संतुलन बनाए रखना चाहिए।
3. बर्नार्ड ने संगठन की तीसरी विशेषता सता के सहमति सिद्धान्त या सता के स्वीकृति सिद्धान्त (Consent or Acceptance Theory of Authority) के रूप में अभिव्यक्त की है। वह

सता के परम्परागत स्वरूप की अपेक्षा सता के आधार के रूप में अधीनस्थों की स्वाभाविक सहमति या स्वीकृति को मानता है। बर्नार्ड के अनुसार किसी संगठन में अधिसता की प्रभावशीलता (Effectiveness of Authority) अधिनस्थों के आदेश अनुपालना की इच्छा से निर्धारित होती है। बर्नार्ड ने सता स्वीकृति के पीछे चार अपरिहार्य पूर्व शर्तों (Four Essential Preconditions) का उल्लेख किया है अर्थात् आदेश की बोधगम्यता (Intelligibility), संगठन के लक्ष्यों की स्पष्टता (Clarity),अपने व्यक्तिगत हितों की अनुकूलता (Compatibility) आदेश अनुपालना की मानसिक एवं शारीरिक क्षमता तथा उसकी इच्छा। बर्नार्ड के अनुसार कार्यकारी को केवल वे ही आदेश जारी करने चाहिए जिनकी अनुपालना सुनिश्चित हो सके या जो कि स्वीकार्य हो। बर्नार्ड ने संगठन में उदासीनता के क्षेत्र (Zone of Indifference) की अवधारणा का भी प्रतिपादन किया जो कि अधिसता की बिना शर्तों के स्वीकृति (Unconditional Acceptance) है। यह कार्यकारी का कार्य होता है कि वह संगठन में उदासीनता के क्षेत्र की पहचान करे और उसे प्रलोभन पैकेज (Inducement Package) के द्वारा व्यवस्थित करे।

4. किसी संगठन में व्यक्ति या कार्मिक का योगदान संतुष्टि संतुलन पर आधारित होता है। इसलिए पैकेज के माध्यम से कार्यकारी को संगठन में श्रमिक के योगदान और संतुष्टि के बीच संतुलन (Equilibrium between Contribution

and Satisfaction by Inducements or Incentives) स्थापित करना चाहिए।

5. संगठन में कार्यकारी की नैतिक जिम्मेदारी महत्वपूर्ण होती है।
6. संगठन की सफलता के लिए सुचारू संचार प्रणाली की अपरिहार्यता बनी रहती है। संचार संगठन का प्राथमिक सिद्धांत होता है।
7. इसी के साथ निर्णयन एक सामाजिक प्रक्रिया है जो अवसरों के सिद्धांत पर आधारित होती है।

इस प्रकार से बर्नार्ड ने अपने संगठन के सिद्धान्त के माध्यम से मानव सम्बन्ध उपागम में प्रभावी योगदान दिया है।

मेयोवादी सिद्धांत की आलोचना या कमियां : मेयो के मानव संबन्ध उपागम की अनेक आधारों पर आलोचना की गई है : -

1. प्रबंधन चिंतन के पिता पीटर एफ ड्रकर का कहना है कि हॉर्थोन प्रयोगों में कार्य की प्रकृति को छोड़कर व्यक्ति की प्रकृति पर अधिक ध्यान दिया गया है। इसमें आर्थिक कारकों को नकार दिया गया जो कि सही नहीं है।
2. लॉरेन बारटीज (Loren Bartiz) और उसके समर्थकों की मान्यता है कि **मेयोवादी पूर्व प्रबंधक व यूनियन विरोधी** (Pro- Manager and Anti Union) है। अमेरिका में यूनाइटेड ऑटो वर्कर्स टीम ने मेयोवादियों को **'भीरू समाजशास्त्री'**;(Cow Sociologist) कहकर आलोचित किया है। उन्होंने मेयो की इस मान्यता का विखण्डन किया है कि एक संतुष्ट मजदूर एक उत्पादक श्रमिक होता है। उन्होनें कहा कि मेया एक भीरू समाजशास्त्री है जो यह विश्वास करता है कि

एक संतुष्ट गाय अधिक दुध देती है। ये लोग गाय को पुचकारने का कार्य करते हैं परंतु वास्तविक समस्याओं का समाधान नहीं करते हैं।

3. अलेक्स केरी (Alex carey) के अनुसार मेयो व उसकी टीम का अनुसंधान कार्य अवैज्ञानिक प्रकृति का था। मेयो का सैंपल सर्वे या नमूना परीक्षण अप्रभावी है और छोटे से समुह के अनुमान को सामान्यीकरण में नहीं बदला जा सकता है। यह 6 महिला मजदूरों पर किया गया एक सीमित प्रयोग था।
4. मार्क्सवादी चिंतकों की मान्यता है कि मेयोवादी अवधारणा मजदूरों के शोषण का नया पैंतरा या माध्यम है। इसने संघर्ष मुक्त समाज का निर्माण करने के लिए श्रमिक संगठनों का अन्त करने की वकालात की है।

इन सब आलचनाओं के बावजूद भी डी एस युंग ने कहते है कि मेयो उस समय के व्यवहारवादी वैज्ञानिक जब यह शब्द लोकप्रिय हुआ था। अंततः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि मेयोवादी विचारधारा की अपनी कमियाँ हो सकती तथापि औपचारिक संगठनों में मजदूर वर्ग की भूमिका को उजागर करने में मेयोवादी सिद्धांत ने निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया है।

परंपरागत और गैर परंपरागत या नवशास्त्रीय सिद्धांत में अंतर :

1. शास्त्रीय सिद्धांत संगठन के औपचारिक स्वरूप पर बल देता है जबकि आधुनिक सिद्धांतों में संगठन के अनौपचारिक स्वरूप को महत्व दिया गया है।

2. परंपरागत सिद्धांत आर्थिक मानव की संकल्पना पर केंद्रित है जबकि नवशास्त्रीय सिद्धांत सामाजिक मानव की संकल्पना पर केंद्रित है।
3. परम्परागत सिद्धांतों में संगठन की तार्किकता और अवैयक्तिकता को स्वीकार किया गया है परंतु नवशास्त्रीय सिद्धांतों में भावनात्मक और सामाजिक संगठनों को स्वीकार किया गया है।
4. शास्त्रीय सिद्धांत मशीन एवं कार्य आधारित प्रणाली में विश्वास करता है जबकि नवीशास्त्रीय सिद्धांत में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रणाली को केंद्रीय स्थान दिया गया है।
5. परंपरागत सिद्धांतों में निरंकुश नेतृत्व शैली का समर्थन किया गया है परंतु नवशास्त्रीय सिद्धांत लोकतांत्रिक नेतृत्व शैली या सहभागिता प्रबंधन को महत्व देता हैं।
6. पुराने सिद्धांतों में भौतिक पर्यावरण पर अधिक बल दिया गया है जबकि नवीन सिद्धांत सामाजिक पर्यावरण पर बल देते हैं।
7. पुरातन सिद्धांत मशीनी मानवीय स्वरूप पर आधारित है जबकि मेयावादी सिद्धांत सामाजिक मानवीय स्वरूप को सही मानते हैं।

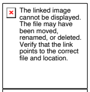

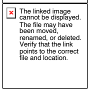

संदर्भ :

Ali Farazmand (Edited) 'Handbook of Comparative and Development Public

Administration' Second Edition, Marcel Dekker, Inc New York, 2001

Eric Edwin Otenyo, Nancy S. Lind (Edited) 'Comparative Public Administration : The Essential Readings' Jai Press Publication, New York, 2007

Avasthi and Maheshwari, 'Public Administration' Laxmi Narain Aggarwal, Agra, 2010

Mohit Bhattacharya, 'New Horizons of Public Administration' Jawahar Publishers, New Delhi, 2010

Rumki Basu, 'Public Administration-Concepts and Theories' Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 2007

H. George Frederickson and Kevin B. Smith, 'Public Administration Theory Primer' Rawat Publications, Jaipur, 2008

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, ‘Public Administration - Theory & Practice’ Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, ‘Public Administration – Theory and Practice’ Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, ‘Public Administration and Public Affairs’ Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), ‘Handbook of Public Administration’ Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, ‘Public Administration : An Introduction’ PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

Felix A. Nigro, ‘Modern Public Administration’ Harper and Row, New York, 1970

George Pennock to Dugald Jackson, October 22, 1930, quoted in Richard Gillespie, Manufacturing Knowledge: A History of the Hawthorne Experiments. Cambridge: Cambridge University Press, 1991, p. 76

Relay assembly room test operator in Jeffrey A. Sonnenfeld, "Shedding Light on the Hawthorne Studies," Journal of Occupational Behavior, Vol. 6, 1985, p. 124.

Elton Mayo, Social Problems of an Industrial Civilization. Boston: Division of Research, Graduate School of Business Administration, Harvard University, 1945, p. 64

Paul Lawrence quoted in Andrea Gabor, The Capitalist Philosophers: The Geniuses of Modern

Business"Their Lives, Times, and Ideas. New York: Random House, 1999, p. 92.

"Hawthorne Studies Research Report," 1932. Western Electric Company, Hawthorne Studies Collection, Baker Library, Harvard Business School.

Fritz J. Roethlisberger, The Elusive Phenomena: An Autobiographical Account of My Work in the Field of Organizational Behavior at the Harvard Business School. Boston: Division of Research, Graduate School of Business Administration, Harvard University, 1977, p. 238.

Fritz J. Roethlisberger, The Elusive Phenomena: An Autobiographical Account of My Work in the Field of Organizational Behavior at the Harvard Business School. Boston: Division of Research, Graduate School of Business Administration, Harvard University, 1977, p. 165

See Richard Gillespie, Manufacturing Knowledge: A History of the Hawthorne Experiments. Cambridge: Cambridge University Press, 1991, and Jeffrey A. Sonnenfeld, "Shedding Light on the Hawthorne Studies," Journal of Occupational Behavior, Vol. 6, 1985

Jeffrey A. Sonnenfeld, "Shedding Light on the Hawthorne Studies," Journal of Occupational Behavior, Vol. 6, 1985, p. 125.

Letter from Elton Mayo to George A. Pennock, October 28, 1929. Elton Mayo Papers, Box 7, Baker Library, Harvard Business School

https://www.library.hbs.edu/hc/hawthorne/intro.html#i

R. N. Singh, Management Thoughts and Thinkers, S.Chand & Co.Ltd., New Delhi, 2010.

R.K. Sapru, Theories of Administration, S.Chand & Co.Ltd., New Delhi, 1996.

S. R. Maheshwari, Administrative Thinkers, MacMillan, New Delhi, 1998.

S. R. Maheshwari, Administrative Theories, Allied Publishers, New Delhi, 1999.

Sum Sun Nisa Ali, Eminent administrative Thinkers, Associate Publishing House, New Delhi, 1990.

S. L. Goel, Administrative and Management Thinkers, Deep& Deep Publications, New Delhi,

2008.

M. R. Minto, Management Thinkers, New Delhi, Allied Pub. Ltd., 1989.

Shyam Sirsath, Jitendra Wasnik & Bhagwansingh Bainade, Prashashkiya ani Vavashtapan

Vicharvant, Vidya Books, Aurangabad, 2011, (Marathi).

F.W, Taylor, Scientific Management, Harper & Brothers Pub., New York, 1947.

Henri Fayol, General and Industrial Management, Sir Isaac Pitman & Sons Ltd., London, 1959.

Chester Barnard, The functions of the executive, Cambridge, Massachusetts Harvard University

Press, USA, 1972.

Herbert Simon, Administrative Behaviour, The Free Press, New York, 1976.

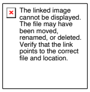

5

संगठन के सिद्धांत - I

संगठन के सिद्धांत

(Principles of Organisation)

संगठन का सामान्य अभिप्राय है कि समूह जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सामुहिक क्रियाओं को संपादित करता है। परिवार भी एक छोटा सा संगठन होता है। राज्य स्वयं एक बडा संगठन होता है। संगठन, प्रशासन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का समग्र रूप से पूर्ण एवं कुशलतम उपयोग करने वाला संगठन होता है जैसे कि ग्राम सभा, नागरिक संगठन, किसान संगठन, गैर सरकारी संगठन, दबाव समूह, राजनीतिक दल, संयुक्त राष्ट्र संघ इत्यादि। एक संगठन अनिवार्य रूप से एक समन्वित और सहकारी प्रयास में लगे लोगों का एक समूह है, जो एक सामान्य लक्ष्य की ओर काम कर रहा है। जेम्स डी मुनै के के अनुसार संगठन एक सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक मानव संघ का रूप है। यह अंतर्संबंधों के प्रारूप को संदर्भित करता है जो कि आम उद्देश्यों की खोज में लगे श्रमिकों के बीच स्थापित होता है।

मार्शल ई डिमॉक के शब्दों में ''संगठन वह माध्यम है जो प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करता है।'' अतः प्रशासन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु लोगों के द्वारा एक इकाई के रूप में कार्य करना ही संगठन है। संगठन में शक्ति होती है और वह लोगों का समग्र समूह होता है। संगठन विशिष्ट ध्येय के लिए कार्य करता है अर्थात कार्य संपादित करने के लिए व्यवस्थित नियमों, विनियमों

का स्वरूप प्रशासन होता है जबकि कार्यों को निष्पादित करने की विशिष्ट पद्धति और तकनीकों को प्रबंधन कहा जाता है। इन कार्यों को पूर्ण करने हेतु किए जाने वाले सामूहिक प्रयास या कार्य योजना को संगठन कहा जाता है। प्रबंधकीय दृष्टिकोण के अनुसार संगठन, प्रबंधन एवं प्रशासन में कोई अंतर नहीं होता है। तीनों ही एक दूसरे के पर्यायवाची होते हैं। एकीकृत उपागम के अनुसार तीनों एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। विलियम शूल्ज के शब्दों में प्रशासन बेहतर है जो प्रबंधन द्वारा संगठन को चलाता है। प्रशासन नीति निर्माण और निर्धारण का कार्य करता है और प्रबंधन व संगठन इसमें सहायता करते हैं अर्थात् प्रबन्धकीय उपागम के अनुसार :

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

ऑर्गनाइजेशन (Organisation) शब्द का निर्माण और ऑर्गनाइज्म (Organicism) से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है सामुहिक या साझा कार्यों में नियोजित परस्पर निर्भरता वाले अंगों का एक संगठित निकाय। संगठन, प्रशासन का अनिवार्य घटक होता है जिसके अभाव में प्रशासन का संचालन संभव नहीं है। लूथर उर्विक ने संगठन को ढांचे की रुपरेखा अर्थात डिजाइनिंग जैसे की कुर्सी की डिजाइन,

उसका निर्माण और निर्मित कुर्सी तीनों का अलग-अलग स्वरूप होता है। अतः संगठन शब्द का अर्थ केवल प्रशासनिक मशीन के रूपांकन से ही नहीं लिया जा सकता है।
मिलफोर्ड के शब्दों में 'संगठन कुछ नहीं वरन जिन कार्मिकों से बनता है, वे ही कार्य करते हैं।
जीडी मुनै के शब्दों में 'प्रत्येक मानवीय संस्था का रूप जो सामूहिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए होता है।
लूथर गुलिक के अनुसार ''सत्ता की औपचारिक संरचना ही संगठन है।''
एल डी व्हाईट ने संगठन के लिए तीन अनिवार्य तत्व बताए हैं अर्थात व्यक्ति, सामूहिक प्रयत्न और समान उद्देश्य।
इसी तरह बर्नार्ड ने सामान्य उद्देश्य, परस्पर संचार और सेवा की इच्छा को संगठन के तीन तत्वों में सम्मिलित किया है।
गुलिक ने संगठन के लिए चार P4 आधार बताए हैं अर्थात उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान।
उद्देश्य : यह प्रकार्य के दायित्व के अनुसार निर्धारित होता है जैसे कि रक्षात्मक उद्देश्य, सैन्य और श्रम संगठन
प्रक्रिया : जैसी की योजना, अंतरिक्ष, कानूनी विभाग का संगठन।
व्यक्ति : सेवा प्राप्त करने वाले लोगों का समूह जैसे कि आदिवासी संगठन, पुनर्वास संगठन, श्रम, कल्याण, सामाजिक न्याय और अधिकारिता विभाग।
स्थान : जैसे दामोदर घाटी निगम, रेलवे के क्षेत्रीय कार्यालय इत्यादि संगठन।
यद्यपि समाज विज्ञानों में सिद्धांत, उपागम, पद्धति, प्रतिमान इत्यादि को समान अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है तथापि इनमें आंशिक विभेद पाया जाता है।
प्रशासन के सिद्धांत (Theories of Administration) संगठन के सिद्धांत (Principles of Organisation) में आधारभूत अंतर :

1. थ्योरी शब्द यूनानी भाषा के थ्योरिया शब्द से निर्मित है जिसका अर्थ होता है सुसंगठित मानसिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण। जबकि प्रिंसिपल इसकी अपेक्षा लचीला और कम वैज्ञानिक होता है।
2. प्रशासन के सिद्धांत नवीन शोध के अनुसार परिवर्तनीय होते है परंतु संगठन के सिद्धांत निश्चित स्वरूप वाले होते हैं।
3. प्रशासन के सिद्धांत औपचारिक अथवा अनौपचारिक स्वरूप वाले होते हैं जबकि संगठन के सिद्धांत विशेषता है औपचारिक होते हैं।
4. प्रशासनिक सिद्धांत संगठन संसाधन की विधि या तकनीक को बताते हैं जबकि संगठन के सिद्धांत निश्चित नियमों का उल्लेख करते हैं।

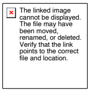

पदसोपान का सिद्धांत
(Hierarchy)

इसे पदों की श्रृंखला अथवा पदों का सोपानीय सिद्धांत भी कहा जाता है। परंपरागत सांगठनिक विचारकों ने पदसोपान को संगठन की आधारभूत या केंद्रीय विशेषता बताया है। पदसोपान प्रत्येक संगठन के संचालन का महत्वपूर्ण आधार होता है। भले ही वे संगठन निजी हो अथवा सरकारी। प्रत्येक संगठन में कार्य संचालन के लिए कार्मिकों अथवा व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। संगठन के कर्मचारी जिन विविध और विभिन्न पदों पर कार्य करते हैं। उन पदों को श्रृंखला के रूप में उत्तरदायित्व और शक्तियों के अनुरूप विभाजित करना ही पदसोपान है। अतः पदसोपान किसी भी संगठन में निम्न और उच्च पदों के समायोजन

हेतु निर्मित सिढीनुमा या सोपानीय व्यवस्था होती है। पदों की श्रृंखला के निर्धारण से उच्च एवं अधिनस्थ सत्ता का निश्चित निर्धारण हो जाता है। यह संगठन में सत्ता और उत्तरदायित्व का निर्धारण करने वाली वैज्ञानिक प्रणाली होती है। पदसोपानीय प्रणाली को संगठन के उचित माध्यम का सिद्धांत या विधि भी कहा जाता है। मैक्सवेबर के नौकरशाही उपागम में पदसोपान एक आधारभूत विशेषता के रूप में विद्यमान थी।

पदसोपान का अभिप्राय : वस्तुतः, पदानुक्रम का अर्थ है, निचले स्तर पर उच्चतर का शासन या नियंत्रण। पदानुक्रम का अर्थ है क्रमिक संगठन का क्रमिक चरण या स्तर जिसमें प्रत्येक निम्न स्तर तुरंत अगले उच्च एक के अधीनस्थ होता है और इसके माध्यम से, ऊपर तक अन्य उच्च चरणों तक।

जहाँ तक इसके शब्दार्थ की बात है तो पदानुक्रम या हायरकी आंग्ल भाषा का शब्द है जो कि यूनानी भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थात् **हाइरोस (Hieros)** और **आर्कियन (Archien)** यहाँ पर ग्रीक शब्द **हाइरोस पवित्र (Scared) सता का प्रतीक है** तथा **आर्कियन नियम या आदेश (Rule or Order)** का प्रतीक है। हायरकी धार्मिक सम्प्रदाय में विश्वास या प्रशासनिक संगठन के पौराणिक स्वरूप का प्रतीक है। अतः यह कहा जा सकता है कि हायरकी यूनानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है :- अधीनस्थों पर उच्चस्थों के नियंत्रण के नियमों की व्यवस्था। इस प्रकार से हायरकी धार्मिक संगठनों के शासकीय ढ़ांचे से आया है।

अतः यह कहा जा सकता है कि पदों का सोपान या पदों का क्रमागत स्वरूप ही पदसोपान होता है। यह पदक्रम प्रक्रिया है जहाँ सत्ता और उत्तरदायित्व के अनुरूप एक पद के पश्चात् दूसरा पद और उसके बाद क्रमशः तीसरा और अग्रिम पदों की श्रृंखलात्मक व्यवस्था स्थापित की जाती है। यह उच्च से निम्न की तरफ़ और निम्न से निम्नतर स्तर की ओर पदों की क्रमबद्ध श्रंखला होती है।

जे डी मुनै के अनुसार ''पदसोपान एक वैश्विक परिदृश्य है।''

मुनै और रैले के अनुसार ''यह सीढीनुमा प्रक्रिया जिसकी संरचना पिरामिड की तरह है।''
हेनरी फेयोल के अनुसार ''पदसोपानीय प्रणाली को क्रमबद्ध श्रृंखला (Scaler Chain) कहा जाता है। अतः जहाँ कहीं भी उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के संबंधों से निर्मित कोई संगठन होगा वहाँ पर स्केलर चेन अवश्य विद्यमान होगी।
अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार 'यह अधीनस्थ एवं उच्चस्थ के बीच रैंक या आदेश या वर्ग है।
एल डी व्हाईट के अनुसार ''पदसोपान ऊपर से नीचे तक उत्तरदायित्व के अनेक स्तरों के कारण उत्पन्न वरिष्ठ एवं अधिनस्थ का वह संबंध है जो सर्वत्र लागू होता है।''
राबर्ट प्रेस्थस के अनुसार ''पदसोपानीय प्रणाली आरोही-अवरोही की श्रृंखला होती है।''
एल डी व्हाइट के शब्दों में, "पदानुक्रम संरचना के शीर्ष से नीचे तक पहुँचने वाली जिम्मेदारी के स्तर के माध्यम से श्रेष्ठ - अधीनस्थ संबंधों के सार्वभौमिक अनुप्रयोग में शामिल हैं।
पॉल एच एप्पलबी के अनुसार "यह वह साधन है जिसके द्वारा संसाधनों का वर्गीकरण किया जाता है, कार्मिकों का चयन किया जाता है।
वेबर के अनुसार, "कार्यालयों का संगठन पदानुक्रम के सिद्धांत का पालन करता है, अर्थात, प्रत्येक निचला कार्यालय उच्च के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन है"।
इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थकों में हेनरी फेयोल, गुलिक, उर्विक, मुनै, रैले, वेबर और टेलर इत्यादि है।

पदसोपान की मुख्य विशेषताएं :

1. पदसोपान अधीनस्थों पर उच्चतर के शासन या नियंत्रण की व्यवस्था है।

2. ऐसी व्यवस्था जहाँ संगठन में पदों को एक उत्तरोत्तर क्रम के अनुसार सोपान की तरह संगठित किया जाता है अर्थात् सभी पद आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित होते हैं।
3. पदसोपानीय संगठन श्रम विभाजन या विभागीयकरण के सिद्धान्त पर आधारित होता है।
4. इसमें पदों का स्तर या लेवल प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व के अनुरूप होता है।
5. इसमें उच्चतम पदों से निम्न स्तर के पदों की ओर बढ़ने पर कार्मिकों की संख्या भी बढ़ती जाती है। इसीलिए पदसोपान व्यवस्था पिरामिड के ढ़ांचे की तरह निर्मित होती है।
6. यहाँ प्रत्येक निम्न पद या स्तर अपने से ऊपर के पद या पदों या स्तरों के अधीन होता है।
7. पदों को कार्यों की तुलना में प्राधिकार एवं उसमें निहित उत्तरदायित्व के हिसाब से श्रृंखलाबद्ध किया जाता है।
8. इस व्यवस्था में आदेश या सत्ता का प्रभाव सदैव ऊपर से नीचे की ओर अवरोही या अधोमुखी क्रम से आगे बढ़ता है। पद या स्तर को लांघ कर नहीं जबकि संचार या सूचना नीचे से ऊपर की ओर आरोही या उर्ध्वाकार या उर्ध्वमुखी के स्वरूप में क्रमागत उच्च पदों की तरफ चलती है। यहाँ भी पद या स्तर की अवहेलना नहीं की जा सकती है।
9. प्रत्येक पद या क्रम चरणबद्ध रूप से आगे बढ़कर ही किसी दूसरे उच्चस्थ या अधिनस्थ से संपर्क स्थापित कर सकता है।
10. प्रत्येक उच्च स्तर पर प्रस्थिति, सत्ता, वेतन और अन्य विशेषाधिकारों में वृद्धि हो जाती है।

11. यह उचित माध्यम के सिद्धांत, आदेश की एकता और तदनुरूपता के तीन नियमों या सिद्धान्तों पर आधारित होता है। इसे निम्न रेखाचित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :-

इस पिरामिडनुमा ढ़ांचे में पूरे संगठन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है परंतु वह अकेला इसका संचालन नहीं कर सकता है। वह अपने अधीनस्थों की सहायता से संगठन पर नियंत्रण रखता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Hierarchy Diagram

इस पिरामिडनुमा ढ़ांचे में पूरे संगठन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है परंतु वह अकेला इसका संचालन नहीं कर सकता है। वह अपने अधीनस्थों की सहायता से संगठन पर नियंत्रण रखता है।
ए का अधीनस्थ बी, बी का अधिनस्थ सी, सी का अधीनस्थ डी, डी, का अधीनस्थ ई, और ई का अधिनस्थ एफ होता है। इसी तरह से पिरामिड या त्रिभुज के दूसरे छोर पर भी ए से के तक उच्चस्थ और अधिनस्थ का सम्बन्ध होता है। संगठन की विभिन्न स्तरों पर उच्च और अधीनस्थ का संबंध बना रहता है। ए के द्वारा दिया जाने वाला आदेश एफ और एन तक पहुँचने से पूर्व ऐसा आदेश बी, सी, डी, ई के माध्यम से होकर अथवा जे, के, एल, एम से होकर गुजरता है।
इसी तरह से कोई सूचना या संचार की फाइल ए से एन तक और पुनः ए तक पहुँचने के लिए 20 स्तरों से होकर गुजरती है। इसे उचित माध्यम की विधि (Theory of Through Proper Channel) कहा जाता है। अर्थात किसी भी स्तर का या उचित माध्यम का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। संगठन में सता या संचार चैनल से होकर गुजरती है। पदसोपानीय संगठन सामान्यतः 3 सिद्धांतों या नियमों पर कार्य करता है जो कि निम्नलिखित है :-

1. समुचित माध्यम का सिद्धांत (Theory of Through Proper Channel) :
संगठन की संपूर्ण कार्य प्रणाली उचित माध्यम पर केंद्रित होती है। उच्च अधिकारियों के द्वारा दिया जाने वाला कोई भी आदेश और अधीनस्थ द्वारा प्रस्तुत कोई भी सूचना सभी चैनल से होकर आगे बढ़ती है प्रत्येक अधिनस्थ और उच्च स्तर के बीच सत्ता एवं उत्तरदायित्व का स्पष्ट विभाजन रहता है।

2. समरूपता या तदनुरूपता का सिद्धांत (Theory of Correspondence) :
संगठन के सभी स्तरों या लेवल्स पर प्राधिकार और उत्तरदायित्व का एक दूसरे के अनुरूप या अनुकूल होते है। इसके लिए यह

अतिआवश्यक है कि सत्ता एवं उत्तरदायित्व एक दूसरे की अनुकूल ही होने चाहिए। उत्तरदायित्व के बिना सत्ता विनाशकारी हो सकती है और बिना प्राधिकार या सत्ता के उत्तरदायित्व व्यर्थ होता है। इसमें प्राधिकार सदैव उत्तरदायित्व के साथ जुड़ा हुआ रहता है।

3. आदेश की एकता का सिद्धांत (Theory of Unity of Command) : पदसोपान व्यवस्था के संचालन का तीसरा नियम आदेश की एकता का सिद्धांत होता है। प्रत्येक उच्च स्तर का एक ठीक अधीनस्थ होता है अर्थात् एक अधीनस्थ और एक उच्चस्थ 'वन मैन एंड वन बॉस' प्रत्येक अधिनस्थ अपने से ठीक उच्च स्तर के अधिकारी से ही आदेश प्राप्त करता है। जैसा की रेखा चित्र में भी दर्शाया गया है। पदसोपान व्यवस्था को सामान्यतया दो भागों में विभाजित किया जाता है। प्रथम क्षैतिजीय व्यवस्था (Horizontal) और दूसरी उर्ध्वाकार (Vertical) या रेखात्मक या वास्तविक सोपान की व्यवस्था।

पदसोपान की लाभ या गुण :

1. यह सिद्धांत सत्ता एवं उत्तरदायित्व का अनेक स्तरों पर वितरण करता है जिसके परिणाम स्वरूप निर्णय निर्माण के लिए केंद्र सर्जित होते हैं। ये सब सत्ता के प्रत्यायोजन को आसान या सरल बना देते हैं।
2. यह सिद्धांत विविध इकाइयों को एकीकृत अथवा एक साथ जोड़ कर रखता है। यह उद्देश्यों की एकता और निर्धारित कार्यों के लिए उत्तरदायित्व को स्पष्ट करता है।
3. यह संप्रेषण की प्रक्रिया को सरल बनाता है। संगठन में प्रत्येक व्यक्ति अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। उसे यह मालुम होता है कि आदेश कहाँ

से आएगा? निर्देश कौन देगा और कौन किसको प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा इत्यादि।

4. संगठन की अनेक इकाइयों में श्रम का स्पष्ट विभाजन होता है जो कि संगठन के सदस्यों में विशेषज्ञता को उत्पन्न करता है और संगठन की कार्यकुशलता को बढ़ाता है।
5. यह सिद्धांत संगठन के भीतर प्रत्येक पद के उत्तरदायित्व और उसके सापेक्ष स्थिति को स्पष्ट करता है।
6. एक पदसोपानीय संगठन में नीति संबंधी निर्णय उच्चतम स्तर पर निर्धारित होते हैं। मध्यवर्ती स्तर पर उससे नीचे के स्तर का परीक्षण एवं नियंत्रण रखा जाता है और यह निश्चित किया जाता है कि इच्छुक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु कार्य करें और निम्न स्तर पर कार्यों को निष्पादित करने का कार्य किया जाता है।
7. यह सिद्धांत सत्ता एवं उत्तरदायित्व को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है जिसके परिणाम स्वरुप संगठन के सदस्यों के बीच अधिकारिता को लेकर कोई संघर्ष नहीं होता है।
8. पदसोपानीय संगठन में प्रत्येक संप्रेषण उचित माध्यम के स्थानों से होकर ही आगे बढ़ता है। यह सभी सदस्यों को सूचित करता है और समय की बचत भी करता है।
9. पदसोपानीय व्यवस्था विस्तृत रूप से कागजात या दस्तावेजों का परीक्षण करती है अथवा यह सुविधा उपलब्ध कराता है। यह कीप (Funnel) और छलनी (Filter) की तरह मुख्य कार्यकारी की सहायता करती है।

10. पदसोपानीय संगठन अनुशासन को लागू करता है। अधिकारी अपने तत्काल उच्चस्थ के आदेशों और निर्देशों की पालना करने के लिए बाध्य होते हैं। इसके कारण संगठन अनुशासित रहता है।
11. यह संगठन में आम सहमति प्राप्त करने वाले उपकरण के रूप में स्थापित होता है।
12. यह सिद्धांत संगठन में विभिन्न स्तरों पर प्रत्येक अधिकारी के कर्तव्य और उत्तरदायित्व का निश्चित करता है।

पदसोपान व्यवस्था के अवगुण :

1. एक फाइल, प्रस्ताव या संप्रेषण को सभी माध्यमों से होकर गुजरना पड़ता है। इस प्रक्रिया के कारण कार्य में दिन, सप्ताह और महीनों की देरी हो जाती है जो कि संगठन में लालफीताशाही अर्थात् कार्य में अनावश्यक देरी के अवगुण को बढ़ाती है।
2. यह संगठन के सदस्यों के बीच उच्चस्थ व अधिनस्थ के संबंधों को बढ़ावा देता है जिससे संगठन के सदस्यों में न तो टीम वर्क की भावना होती है और न ही गत्यात्मक मानवीय संबंधों का विकास होता है। यह आधारभूत रूप से नौकरशाही के दृष्टिकोण को विकसित करता है।
3. संगठन में उत्पन्न लालफीताशाही और नौकरशाही के अवगुणों के कारण संगठन में भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
4. यह संगठन में निम्न स्तर के प्रतिभागियों या कार्मिकों की पहल और प्रोत्साहन अथवा सहभागिता की भावनाओं को हतोत्साहित करता है। वे यांत्रिक तरीके से अपने से सर्वश्रेष्ठ या

उच्चस्थ के आदेशों और निर्देशों की अनुपालना ही करते हैं जिसके कारण **यस सर सिद्धांत (Theory of Yes-man)** का निर्माण होता है।

5. यह कि संगठन की लंबात्मक प्रवृत्ति के कारण उच्चतम एवं निम्नतम स्तर के कार्मिक एक दूसरे से संपर्क खो देते हैं।
6. पदसोपानीय संगठन ऊपर से नीचे तक संगठित एवं नियंत्रित होता है जिसमें सहभागी शासन को नकार दिया गया है।
7. पदसोपानीय संगठन को परंपरागत विचारको ने मशीन के रूप में स्थापित किया है जो कि मानववादी या मेयोवादी सिद्धान्त की विरुद्ध है।

गैंगप्लांक की अवधारणा (The Concept of Gangplank) :
गैंगप्लांक का शाब्दिक अर्थ है **लकड़ी का अस्थायी या उठाउ तख्त या नाव में चढ़ने-उतरने के लिए प्रयोग में लिया जाने वाला लकड़ी का तख्त।** गैंगप्लांक की अवधारणा का **प्रतिपादन हेनरी फेयोल** के द्वारा किया गया है। पदसोपान सिद्धांत के अपने अंतर्निहित अवगुण या खतरे होते हैं। इन दोषों को दूर करने के लिए अथवा समाधान के लिए फेयोल ने पदसोपानीय सत्ता की औपचारिक रेखा से दूर एक साझा पुल का निर्माण किया है अर्थात् एक विभाग, खंड या इकाई के अधीनस्थ कार्मिक अन्य विभाग, खंड या इकाई के समकक्ष अधीनस्थों के साथ प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर सकते हैं। इसे ही **गैंगप्लांक** कहा जाता है। अतः समकक्ष अधीनस्थों के बीच पुल निर्माण के द्वारा कार्य में होने वाली अनावश्यक देरी को अथवा पदसोपान के सिद्धांत के आवश्यक नियमों का उल्लंघन किए पदसोपान के अवगुणों से बचा जा सकता है। क्षैतीजीय संचार के रूप में इस तरह के पुल निर्माण को रेखाचित्र में बिंदु रेखा के रूप में एफ एवं के, के बीच

दर्शाया गया है। इसी तरह आगे बिंदुओं ई व जे, डी व आई, सी व एच तथा बी व जी के बीच पुल निर्माण किया जा सकता है। इस क्षैतीजीय संचार के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता अपने तत्काल उच्चस्थ अधिकारी से प्राधिकृत सहमति प्राप्त करना और उसे, उनके बीच होने वाले आदान-प्रदान की पूर्ण सूचना देना है। यह प्रणाली तब तक अच्छी तरह कार्य करती है जब तक अधीनस्थों की बीच परस्पर समझौता और श्रेष्ठतर का विश्वास बना रहता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Gangplank Diagram

इसके अलावा गैंगप्लांक का दूसरा उपाय स्तर लांघने का है जो कि लालफीताशाही या कार्य में अनावश्यक देरी को कम करता है। इसमें सत्ता के उर्ध्वाकार स्वरूप में एक या अधिक मध्यवर्ती चरणों को दरकिनार या नजरअंदाज किया जाता है जिससे कि संबंधित अधिकारियों से सीधा संपर्क संभव हो सके। इसके लिए भी उच्चस्थ का विश्वास एवं उनके बीच की पूर्ण जानकारी साझा करना अपरिहार्य होता है। इसमें फाइल निर्णयकर्ता के पास सीधी पहुँचती है जो कि कार्य में होने वाली देरी के अवगुण का निदान है। गैंगप्लांक का मुख्य आधार एक स्तरीय कार्मिकों के बीच पारस्परिक सहमति, उच्च कार्मिकों का अधीनस्थों पर पूर्ण विश्वास तथा अधीनस्थों द्वारा श्रेष्ठ कार्मिकों को पूर्ण सूचना प्रेषित करना है। गैंगप्लांक का प्रथम उपयोग ब्रिटिश गृहमंत्री विलियम जॉनसन हिक्स के द्वारा 1930 ई में सहायक पुलिस सचिव से संपर्क हेतु किया गया। इसके अलावा वर्तमान संगठनों का स्वरूप लचीला, बाजार आधारित, निजीकरण आधारित, सुशासन, जवाबेयता, नागरिक केंद्रित होने के कारण पदसोपान व्यवस्था का पुराना ढांचा निरंतर बदलता जा रहा है। यद्यपि पदानुक्रम सिद्धांत के अपने गुण-अवगुण दोनों ही होते हैं तथापि परंपरागत सिद्धांतों में पदानुक्रम एक चर्चित एवं व्यापक अवधारणा है। यह सिद्धांत संगठन में नियमों, उत्तरदायित्व, कर्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख करता है। पदसोपान के गुण-अवगुण के संदर्भ में फेयोल ने कहा है कि ”अनावश्यक रूप से प्राधिकार की रेखा से भटकना एक भूल है परंतु उससे भी बड़ी भूल है तब भी उससे चिपके रहना जबकि यह कार्यों के लिए नुकसानदायक होता है।” उर्विक के शब्दों में ”पदसोपान उसी तरह अनिवार्य है जैसे कि घर से गंदे पानी की निकासी के लिए निकासी मार्ग।”

मैट्रिक्स या पंखानुमा संगठन *(Matrix Organisation)* :

फेयोल के गैंगप्लांक की तरह ही अमेरिकी प्रशासनिक चिंतक और व्यापारिक सिद्धांतकार क्रिस आर्गिरिस (Chris Argyris) ने पदसोपान संगठन के अवगुणों को दूर करने या उनसे बचने के लिए पिरामिडनुमा संगठन के स्थान पर मेट्रिक्सनुमा संगठन या पंखानुमा या सदृश संगठन को स्थापित करने का समर्थन किया है। इसमें अधिकारियों के बीच सुपीरियर और सबोर्डिनेट या उच्चस्थ और अधिनस्थ का संबंध नहीं होता है। यह संगठन नेतृत्व की लोकतांत्रिक शैली का समर्थन करता है। इस संगठन में सहभागी शासन को बढ़ावा दिया जाता है। यह संगठन मुख्यतया सहभागी प्रबंध सिद्धांतकारों की देन है। यह कार्यात्मक संगठन की अपेक्षा प्रोजेक्ट संगठन को बढ़ावा देता है। क्रिस आर्गिरिस (Chris Argyris) के अनुसार पदसोपानीय संगठन चापलूसी संगठन (Flatter Organisation) होता है जबकि मेट्रिक्स ऑर्गेनाइजेशन एक गैर पदसोपानीय संगठन होता हैं निर्णयन प्रक्रिया के लिए यह संगठन स्वायत्तता और सत्ता की मांग करता है। इसे रेखा चित्र के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Matrix Organisation

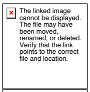

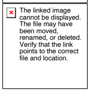

आदेश की एकता का सिद्धांत
(Theory of Unity of Command)

आदेश की एकता का सिद्धान्त पदसोपानीय संगठन के संचालन का आधारभूत नियम है। **कमांड शब्द सामान्यतया सैन्य प्रशासन** में प्रयुक्त होता है। जहाँ इसका अभिप्राय नियंत्रण अनुशासन और आज्ञा पालन से होता है। किसी कार्मिक या अधिनस्थ को एक ही उच्चस्थ या अधिकारी से आदेश मिले, एक से ज्यादा अधिकारियों से नहीं अर्थात् एक कर्मचारी और एक उच्च अधिकारी। यह वन मैन और वन बॉस के नियम पर आधारित होता है। जैसा कि लूथर गुलिक के विचार से भी परिलक्षित होता है कि ''आदेश की एकता के अन्तगर्त किसी अधिनस्थ को केवल एक ही श्रेष्ठ से आदेश मिलने से भ्रम एवं अकुशलता (Confusion and Inefficiency) की स्थिति से बचा जा सकता है। संगठन के सफलतापूर्वक संचालन के लिए यह अपरिहार्य होता है कि प्रत्येक कार्मिक को यह मालूम होना चाहिए कि उसे आदेश कहाँ से मिलेगा? आदेश कौन देगा? और वह उसकी अनुपालना में किसके प्रति उत्तरदायी है? उसे एक से ज्यादा उच्चस्थों के द्वारा आदेश नहीं दिया जाए। इससे प्रत्येक कार्मिक के कर्तव्य, सत्ता और उत्तरदायित्व का आसानी से निर्धारण हो जाता है। यद्यपि युनिटी ऑफ चेन एक प्राचीनतम उपागम है परन्तु इसे व्यवस्थित स्वरूप में 20वी सदी में फ्रांसीसी अभियंता और कार्यकारी हेनरी फेयोल और जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर के

द्वारा आदेश की एकता के सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया गया है। फेयोल ने अपनी पुस्तक जनरल एवं इण्ड्रिस्ट्रीयल मैनेजमेण्ट (General and Industrial Management, 1949AD) के अन्तर्गत संगठन के प्रबन्धन के सिद्धान्तों में इसे विस्तार से समझाया है। आदेश की एकता का सिद्धान्त हेनरी फेयोल के प्रबंधन के 14 सूत्रों में से एक है। आदेश की एकता के सूत्र के साथ ही उसका दूसरा सूत्र **आदेश की श्रृंखला** (The Scalar Chain or Chain of Command) या **प्राधिकार की रेखा** (Line of Authority) भी जुडा हुआ है। हेनरी फेयोल के प्रबंधन के इस सूत्र अर्थात् आदेश की एकता के अनुसार एक अधिनस्थ के लिए केवल एक उच्चस्थ होना चाहिए। यदि एक अधीनस्थ कार्मिक अनेक उच्च अधिकारियों के अधीन कार्य करता है तो यह स्थिति आदेश और उसकी अनुपालना में भ्रम की स्थिति उत्पन्न करती है। यह न केवल संपूर्ण संगठन की दक्षता, उत्पादकता और लाभ की प्रक्रिया को प्रभावित करती है अपितु एक कार्मिक की जवाबदेयता के बारे में भी संदेह उत्पन्न करती है। इस प्रकार आदेश की एकता के सिद्धांत का मतलब है एक अधिनस्थ कार्मिक सदैव एक उच्च अधिकारी के अधीन ही होना चाहिए। इसी तरह से स्केलर चेन या प्राधिकार की रेखा का सूत्र यह स्पष्ट करता है किसी संगठन में प्राधिकार की रेखा एक सीधी या उर्ध्वाकार रेखा के रूप में अधिसता और जिम्मेदारी या उतरदायित्व को उच्चतम बिंदु से निम्नतम बिंदु तक प्रवाहित करती है परन्तु प्राधिकार एवं जिम्मेदारी (Authority and Responsibility) का यह प्रवाह संगठन में एक समय में, एक ही स्तर पर होता है। प्राधिकार की यह लाईन संगठनात्मक पदसोपान को स्थापित करती है।

आदेश की एकता का अभिप्राय :
आदेश की एकता का मतलब है कि कार्मिक केवल निश्चित उद्देश्य से आदेश प्राप्त करता है। अन्य शब्दों में इसका मतलब है कि कोई भी कर्मचारी एक श्रेष्ठ से अधिक कोई भी आदेश प्राप्त नहीं करना

चाहिए। इस प्रकार यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक अधिकारी के सिद्धांत की मान्यता को स्वीकार करता है। आदेश की एकता शास्त्रीय लोक प्रशासन का आधारभूत सिद्धांत है। इसका मतलब है प्रत्येक अधिनस्थ एक और केवल एक ही उच्च स्तर के अधीन आदेश की अनुपालना में और उसके प्रति उत्तरदायित्व में भी एक उच्चस्थ के साथ होता है। यह सिद्धांत इस पुरानी कहावत पर आधारित है कि कोई भी व्यक्ति दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता है। यह सिद्धांत सोपानीय संगठन से प्राप्त किया गया है जो कि पूरे संगठन में श्रृंखला के रूप में संचालित होता है। पदसोपान की श्रृंखला एकीकृत आदेश को स्थापित करती है जहाँ एक मुखिया पूरे संगठन का निर्देशन करता है। इस प्रकार पदसोपान सिद्धांत में आदेश की एकता का सिद्धान्त अंतर्निहित होता है। इसके अतिरिक्त आदेश की एकता को संगठन संरचना के दो स्वरूपों में स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथम तो पदसोपान संगठन जहाँ पर आदेश की एकता का सिद्धांत संगठन के एकीकृत स्वरुप में पाया जाता है अर्थात् संगठन की इकाईया समग्र स्वरूप में होती है जहाँ मुखिया व्यक्तियों का निकाय होता है। जैसे कि राष्ट्रपति, राज्यपाल, एक केबिनेट, एक मंत्री, एक सचिव, अमेरिका में स्वतंत्र नियामकीय आयोगों का संगठन, सचिवालय का संगठन जहाँ एक व्यक्ति पूरे एकीकृत संगठन का मुखिया अर्थात् संगठन व्यक्तियों का एक निकाय होता है।

दूसरे संगठन की संरचना में संगठन का मुखिया केवल एक ही होता है और संगठन की पुरी कमान उसी के हाथ में होती है। अन्य सदस्य एक निकाय के रूप में हीं होते हैं जैसे कि निर्वाचन आयोग, भारतीय खाद्यान्न निगम, लोक सेवा आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इत्यादि।

हेनरी फेयोल के शब्दों में ''आदेश की एकता वह सिद्धांत है जो यह मानता है कि किसी कर्मचारी को केवल एक निकटतम उच्च अधिकारी के द्वारा ही आदेश दिया जाना चाहिए।'' हेनरी फेयोल

आदेश की एकता के सिद्धांत के सबसे बड़े प्रबल समर्थक थे। **प्रेस्थस** के अनुसार ''आदेश की एकता की धारणा का तात्पर्य है किसी संगठन के प्रत्येक सदस्य को एक और केवल एक नेता के प्रति ही उत्तरदायी होना चाहिए।'' **गुलीक व उर्विक** के अनुसार ''अच्छी तरह से संचालित सरकारी संगठन एक प्रशासक के अधीन कार्य करते हैं।''

आदेश की एकता सिद्धांत की विशेषताएं :

1. यह सिद्धांत पदसोपान की प्रणाली से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है।
2. यह एक व्यक्ति और एक मालिक या एक अधीनस्थ और एक उच्चस्थ के नियम पर कार्य करने वाला सिद्धांत है।
3. यह सत्ता, उत्तरदायित्व एवं नेतृत्व को स्पष्ट करता है।
4. संगठन में आदेश और कार्य में दोहराव, संघर्ष, भ्रम, आशंका, अस्पष्टता की स्थिति से बचने में सहायता करता है।
5. यह प्रशासन में कुशलता को विकसित करता है।
6. यह स्कलर प्रणाली के अनुरूप है।
7. यह उच्चस्थ और अधिनस्थ के बीच बेहतर सम्बन्धों को स्थापित करने में सहायक है।
8. इसके माध्यम से ही संगठन के विभिन्न स्तरों पर अधिसता, जिम्मेदारी एवं जवाबदेयता का निर्धारण होता है।
9. यह प्रभावी एवं कुशल अनुशासन को स्थापित करता है।
10. यह संगठन में टीम वर्क और श्रेष्ठ समन्वय को स्थापित करता है।

यद्यपि इन विशेषताओं के बावजूद भी आदेश की एकता के सिद्धांत के कुछ विरोधी विचारक भी हैं। शेटलर हडसन ने एक अधिनस्थ और अनेक उच्चस्थ की बात का समर्थन किया है।

आदेश की एकता के गुण :

1. यह प्रशासन में दक्षता को विकसित करता है और यह पदसोपान और प्राधिकार की रेखा व्यवस्था की अनुकूल है।
2. इसमें प्रत्येक कार्मिक अपनी पहचान रखता है। उसे यह मालूम होता है कि उसका बॉस कौन है और वह किससे आदेश प्राप्त करता है। इसी के साथ संगठन के सदस्यों में बनी हुए कार्य में देरी के भ्रम को भी दूर करता है।
3. आदेश की एकता सिद्धांत उच्चस्थ व अधिनस्थ के बीच स्पष्ट एवं श्रेष्ठ संबंधों को विकसित करता है।
4. आदेश की एकता का ही परिणाम होता है कि किसी संगठन में विभिन्न स्तर पर कार्यरत कार्मिकों के बीच सुसंगठित सत्ता, जिम्मेदारी एवं उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।
5. यह संगठन में अनेक स्तरों पर कार्य के दोहराव को कम करता है।
6. यह संगठन में शीघ्र निर्णय, प्रभावी एवं कार्यकुशलता, अनुशासन को बढ़ाता है।
7. यह संगठन में उच्च स्तरीय उत्पादकता को स्थापित करता है जिससे बाजार में साख का निर्माण होता है।
8. यह श्रेष्ठतम समन्वय और समूह कार्य को स्थापित करता है जिससे की नीति एवं सकारात्मक दृष्टिकोण की उर्जा मिलती है।

आदेश की एकता के अवगुण :

1. यह सिद्धांत सार्वभौमिक नहीं है। एक अधिनस्थ और एक ही उच्चस्थ का नियम सदैव लागू नहीं होता है। इस नियम की कुछ अपवाद होते हैं जैसे कि तकनीकी विशेषज्ञ इस श्रेणी के अंतर्गत नहीं आते हैं। वे अन्य विभिन्न अधिकारियों से आदेश प्राप्त करते हैं मिलेट ने दोहरे परीक्षण का सही मूल्यांकन किया है और तकनीकी एवं प्रशासनिक प्रशिक्षण का दोहरा स्वरूप व्यक्तिगत रूप से भिन्न-भिन्न निर्देशन दे सकता है। एक प्रकार का पर्यवेक्षण कार्यदक्षता से संबंधित और दूसरा मुख्यतया मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों के में रुचि रखता है।
2. यह अव्यवहारिक सिद्धांत है। आदेश की एकता का सिद्धांत परंपरागत उपागम की इस मान्यता पर आधारित है कि एक उच्चस्थ और केवल एक अधिनस्थ ही हो। यह व्यवहारिक रूप में संभव नहीं होता है। इस आधुनिक युग में विज्ञान और तकनीकी विकास के परिणामस्वरुप प्रशासन में विशेषज्ञों की संख्या बढ़ती जा रही है। इस स्थिति में केवल एक अधिकारी से ही आदेश प्राप्त करना व्यवहारिक नहीं रहा है।
3. कार्यात्मक फोरमैनशिप(Functional Foremanship) की अवधारणा की विद्यमानता :

वैज्ञानिक प्रबंधन की पितामह टेलर ने आदेश की एकता के सिद्धांत को सैन्य प्रशासन की पद्धति माना है जिसे अन्य प्रशासनिक क्षेत्रों में लागू करना ठीक नहीं है। इसके स्थान पर कार्यात्मक निर्देशन और परीक्षण को अपनाने की अनुशंसा की है।

कार्यात्मक फोरमैनशिप के अंतर्गत एक अधिनस्थ दो फोरमैनशिप से निर्देशन प्राप्त कर सकता है। एक गति के लिए और दूसरा इसकी उचित रखरखाव के लिए। टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंधन की चार तकनीके बतायी हैं जिनमें से एक है कार्यात्मक फोरमैनशिप की तकनीक।

टेलर के अनुसार आदेश की अनेकता श्रम विभाजन और विशेषीकरण की धारणा को स्थापित करती है। प्रत्येक व्यक्ति सभी क्षेत्रों का विशेषज्ञ नहीं होता है। अतः अनेक पर्यवेक्षकों की आवश्यकता होती है। एक कार्मिक इस तकनीक के अनुसार आठ पर्यवेक्षकों के निर्देशन में कार्य करता है जिसे निम्न रेखाचित्र के द्वारा स्पष्ट किया गया है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Functional Foremanship

हेनरी फेयोल ने आदेश की एकता के सिद्धांत का समर्थन करते हुए कहा है कि इसका उल्लंघन किए जाने पर प्राधिकार का उल्लंघन होता है। अनुशासन खतरे में पड़ता है, आदेश में गड़बड़ी होती है और संगठन में अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। आदेश की एकता के सिद्धांत के बारे में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह अति उपयोगी सिद्धांत है। एक अधीनस्थ को एक से ज्यादा उच्चस्थ से आदेश निर्देश देने पर भी इस नियम का तब तक उल्लंघन नहीं होता है जब तक कि एक ही मामले में दो भिन्न स्त्रोतों से आदेश प्राप्त नहीं होता है। अतः एक अच्छे प्रशासन के लिए भी आदेश की एकता का सिद्धान्त आवश्यक है। यद्यपि बदलती हुई प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुकूल उच्चस्थ की सत्ता का उल्लंघन किये बिना आदेश की एकता के सिद्धांत में लचीलेपन की भी आवश्यकता होती है।

आदेश की एकता और आदेश की श्रृंखला में अंतर *(Differences between Unity of Command and Chain of Command) :*

यूनिटी ऑफ कमांड और चैन आर्फ कमाण्ड दोनों शब्दावलीयाँ सैन्य प्रशासन से संबंधित हैं। यह वर्तमान में आधुनिक व्यवसायिक संगठनों में भी लागू की जा रही है। व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में इन दोनों सिद्धांतों के अपने-अपने फायदे होते हैं।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Unity of Command and Chain of Command

आदेश की एकता और निर्देश की एकता में अन्तर :

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Unity of Command & Unity of Direction

नियंत्रण के क्षेत्र का सिद्धांत

(Theory of Span of Control)

लोक प्रशासन एवं व्यवसायिक प्रबंधन में नियंत्रण दायरा शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से किया जाता है। यह उच्च अधिकारी के द्वारा अपने अधीनस्थ कार्मिकों के निर्देशन, नियंत्रण और निरीक्षण की व्यवस्था है। यह न केवल सिद्धांत है अपितु सामान्य सूझ-बूझ की प्रणाली पर आधारित व्यवहारिक सामान्यीकरण भी उपलब्ध कराता है। सांगठनिक सिद्धांतकार इसे निर्देशन सिद्धांत की भूमिका के रूप में विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं तथापि यह संदर्भ का ढांचा ही उपलब्ध कराता है। यह एक विवादास्पद अवधारणा है और शायद एकमात्र सिद्धांत है जिसकी चर्चा शास्त्रीय अथवा आधुनिक प्रशासनिक चिंतकों के द्वारा सर्वाधिक की गई है।

नियंत्रण के क्षेत्र का अभिप्राय : नियंत्रण का क्षेत्र यह दर्शाता है कि एक उच्चस्थ अपने अधीन कितने अधीनस्थों का प्रभावी निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण कर सकता है अर्थात् एक प्रशासक अपने अधीन कितने अधीनस्थ कार्मिक इकाइयों को व्यक्तिगत रूप से निर्देशित करने में सक्षम होता है। इससे दो तथ्य स्पष्ट होते हैं। पहला अधीनस्थों की संख्या और दूसरा उच्च स्तर की क्षमता। इन दोनों से नियंत्रण का क्षेत्र परिभाषित होता है। नियंत्रण का क्षेत्र किसी भी संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। यह उच्चस्थों व अधीनस्थों की बीच निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को दर्शाता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Span of Control

मार्शल ई डिमॉक के अनुसार ''नियंत्रण का क्षेत्र किसी उपक्रम या उद्यम के मुख्य कार्यकारी और उसके मुख्य सहयोगी अधिकारियों के बीच होने वाले व्यवहारिक संचार और संपर्कों की संख्या और क्षेत्र की सीमा को अभिव्यक्त करता है।''

लुईस एलन के अनुसार ''नियंत्रण का क्षेत्र लोगों की वह संख्या बताता है जिसका प्रबंधक पर्यवेक्षण कर सकता है।'' हेमन और स्कॉट ''अधीनस्थों की वह संख्या जिसका प्रभावी तरीके से पर्यवेक्षण और प्रबंधन किया जा सके।'' उसे नियंत्रण का क्षेत्र कहते हैं।

नियंत्रण का क्षेत्र अधिनस्थों द्वारा संपादित किए जाने वाले प्रभावी नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण की सीमा या फैलाव है। सीमित ध्यान शक्ति, सीमित समय और सीमित ऊर्जा के कारण नियंत्रण के क्षेत्र की आवश्यकता पड़ती है। इसे नियंत्रण की विस्तृत प्रबंधन का क्षेत्र या सत्ता की सीमा का क्षेत्र भी कहा जाता है। **ग्रेकुनास** के अनुसार यह **'ध्यान का दायरा' (Span of Attention)** होता है।

नियंत्रण के क्षेत्र की विशेषताएं :

1. यह सिद्धांत संगठन के पदसोपानीय सिद्धांत के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है।
2. यह आदेश की एकता के रूप में यह निर्धारित करता है कि एक उच्चस्थ कितने अधीनस्थों को आदेश दे सकता है।
3. नियंत्रण का क्षेत्र सीमित होने पर नियंत्रण अधिक प्रभावी होता है जबकि नियंत्रण का दायरा बढ़ने पर नियंत्रण कम या सीमित होता है।
4. नियंत्रण का क्षेत्र कम होने पर संगठन में स्तरों की संख्या बढ़ जाती है जबकि नियंत्रण का दायरा विस्तृत या व्यापक होने पर संगठन में स्तरों (Levels of Organisation) की संख्या कम हो जाती है।

अतः नियंत्रण के क्षेत्र का सिद्धांत एक उच्च अधिकारी कितने अधीनस्थ कार्मिकों पर प्रभावी नियंत्रण रख सकता है। इसे स्पष्ट

करता है। इसके संबंध में स्पष्ट रूप से निर्णय करना संभव नहीं है। प्रत्येक कार्मिक की अपनी-अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं और कुशलता में अंतर होता है। इस संबंध में प्रशासनिक चिंतकों का भी भिन्न-भिन्न मत है।

नियंत्रण के क्षेत्र के प्रकार : सामान्यतया नियंत्रण के दायरे को दो भागों में विभाजित किया गया है। एक नियंत्रण का व्यापक क्षेत्र और दूसरा नियंत्रण का संकीर्ण क्षेत्र।

1. नियंत्रण का व्यापक क्षेत्र (Wide Span of Control) : नियंत्रण के व्यापक क्षेत्र का मतलब है कि एक समय पर प्रबंधक बड़ी संख्या में व्यक्तियों पर प्रभावी नियंत्रण रखता है और पर्यवेक्षण कर सकता है। नियंत्रण के व्यापक क्षेत्र में अधिकतम संचार का नेतृत्व, श्रेष्ठतम पर्यवेक्षण, श्रेष्ठतम समन्वय, दैनिक एवं आसान कार्य के अनुकूल, कर्मचारी से प्राप्त प्रतिक्रिया को प्रोत्साहन, पर्यवेक्षण की न्यूनतम लागत और बदलते पर्यावरण के अनुकूल परिवर्तन की क्षमता जैसी अनेक विशेषताएं अंतर्निहित होती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि संगठन में प्रबंधन के अपेक्षाकृत कम स्तर होते हैं जो कि संगठन को **क्षैतीजीय स्वरूप** (Flat or Horizontal) प्रदान करते हैं। नियंत्रण का विस्तृत क्षेत्र संगठन के अनुकूल होता है। यदि वहाँ लोग प्रतियोगी होते हो, न्यूनतम परीक्षण में विश्वास रखते हो और उनकी चुनौतियों या कार्य में समानता हो। उच्चस्थ की स्थिति धारण करने वाला अधिकारी कम से कम 5 कार्मिकों पर नियंत्रण रखता है और पर्यवेक्षण करता है। इसे निम्न रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Wide Span of Control

यह संगठन की डेलीबरेटिव प्रोसेस को अपनाता है जिसके परिणाम स्वरूप संगठन में प्रबंधक और स्तरों की संख्या दोनों कम हो जाते हैं। यह उच्च स्तर पर संप्रेषण को सुदृढ़ कर लागत को बचाता है।

नियंत्रण का संकीर्ण क्षेत्र (Narrow Span of Control) : जब कार्य सत्ता अनेक अधीनस्थों में विभाजित होती है और प्रबंधक लोगों के छोटे समूह का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करता है तो इसे नियंत्रण का संकीर्ण क्षेत्र कहा जाता है। नियंत्रण का सीमित या संकीर्ण क्षेत्र संगठन में आदेश की उर्ध्वाकार श्रृंखला में स्तरों की संख्या को बढ़ाता है जिससे संगठन लंबात्मक स्वरूप (Vertical Structure) ग्रहण कर लेता है। यह संगठन में अनेक स्तरों और प्रबंधक के अनेक स्तरों को शामिल करता है जिसके कारण संगठन अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। नियंत्रण के संकीर्ण क्षेत्र की प्रमुख विशेषताओं में कार्य का विशेषीकरण, जटिल कार्यों का कठोर नियंत्रण और पर्यवेक्षण, संप्रेषण की कमजोरी या उसमें दूरी होना, समन्वय में कठिनाई, पर्यवेक्षण की अधिक लागत और पर्यावरणीय बदलावों का शीघ्र प्रत्युतर नहीं देना इत्यादि शामिल हैं। प्रत्येक उच्च अधिकारी जो सत्ता का निर्वहन करता है वह कम से कम 2 अधीनस्थों का पर्यवेक्षण करता है इसे नीम रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है:-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Narrow Span of Control

संगठन के इस स्वरूप में पर्यवेक्षण और नियंत्रण अप्रभावी, संप्रेषण कमजोर हो जाता है। इसी के साथ संगठन में लालफीताशाही जैसे अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं।

नियंत्रण के क्षेत्र को प्रभावित करने वाले तत्व : नियंत्रण का क्षेत्र संगठन के अनेक तत्वों से प्रभावित होता है जो कि निम्नलिखित है :-

1. कार्य की प्रकृति (Nature of Work): संगठन द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्य की प्रकृति नियंत्रण के क्षेत्र को संकीर्ण और व्यापक स्वरूप प्रदान करती है। यदि कार्य में समानता समरूपता होती है और वह दैनिक, यांत्रिक, सजातीय अथवा सामान्य प्रकृति का होता है तो नियंत्रण का क्षेत्र व्यापक और यदि कार्य की प्रकृति जटिल, विजातीय और असामान्य तथा विविधतापूर्ण स्वरूप वाली होती है तो नियंत्रण का क्षेत्र संकीर्ण होता है।

2. उच्चस्थ एवं अधीनस्थों का व्यक्तित्व (Personality of Superior and Subordinates) : अधीनस्थों की योग्यता और उच्चस्थों की क्षमता नियंत्रण के दायरे को प्रभावित करती है। यदि अधीनस्थ और उच्च अधिकारी परीक्षण की योग्यता रखते हैं, प्रतियोगिता की भावना रखते हैं , ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, जवाबदेय और स्फूर्ति रखने वाले हो तो नियंत्रण का दायरा बढ़ता है अन्यथा घट जाता है।

3. प्रबन्धन के स्तर ;(Level of Management) **:** प्रबन्धन के उच्च स्तर पर सामान्यतया नियंत्रण का दायरा अधिक रहता है जबकि संगठन के नीचे के स्तरों पर यह दायरा या क्षेत्र उसकी अपेक्षा कम हो जाता है।

4. संगठन की आयु सीमा (Age of Organisation) : संगठन का पुराना अथवा नवीन स्वरूप भी नियंत्रण के दायरे को प्रभावित करता है। पुराने संगठन में नियंत्रण का क्षेत्र व्यापक हो जाता है क्योंकि लंबे समय के कारण अनेक कार्य सम्बन्धी

परंपराओं, प्रक्रियाओं में स्थिरता और नियमितता का आगमन हो जाता है। अतः परीक्षण और नियंत्रण रखना आसान होता है। दूसरी तरफ नवीन संगठन में इन सबका अभाव होता है इसलिए वहां नियंत्रण का दायरा सीमित होता है।

5. प्रत्यायोजन का स्तर (Degree of Delegation) : एक प्रबंधक जो सत्ता का अधिक प्रत्यायोजन करता है तो उसकी अधीनस्थों की संख्या अधिक होती है। इसलिए नियंत्रण का क्षेत्र विस्तृत होता है जबकि इसे अपने पास अधिक रखता है तो दायरा संकीर्ण हो जाता है।

6. संगठन की भौगोलिक स्थिति (Geographical Dispersion):
संगठन की शाखाएं अनेक स्थानों पर फैली होती हैं तो नियंत्रण का क्षेत्र सीमित तथा एक ही स्थान पर या आस-पास हो तो नियंत्रण का दायरा विस्तृत होता है।

7. पर्यवेक्षण की तकनीक (Technique of Supervision) : पर्यवेक्षण की तकनीक जैसे कि प्रत्यायोजन, नियोजन, प्रोग्रामिंग और विषय विशेषज्ञ कर्मचारियों का उपयोग इत्यादि को अपनाया जाने पर नियंत्रण का क्षेत्र विस्तृत होता है अन्यथा संकीर्ण।

8. संप्रेषण प्रणाली एवं संप्रेषण तकनीक (Communication Process and Technique) :
संवेदनशील उचित संप्रेषण प्रणाली व सूचना प्रवाह में लेखांकन एवं कंप्यूटर टेक्नोलॉजी का उपयोग नियंत्रण के क्षेत्र को बढ़ाता है अथवा यह कम करता है।

इन उपयुक्त तत्वों के अलावा भी संगठन की वित्तीय स्थिति, प्रबंधन के स्तर, कार्मिकों की सेवाएं, आर्थिक प्रतिबंध, उच्चस्थ व अधीनस्थ के बीच संबंध, केंद्रीयकरण और विकेंद्रीकरण का स्तर, योजना और जिम्मेदारियों का स्पष्ट विभाजन इत्यादि नियंत्रण के क्षेत्र को प्रभावित करते हैं।

विवादास्पद स्थिति :
नियंत्रण का दायरा किस सीमा तक होगा और कितना अर्थात्

किस संख्या तक होगा। यह एक विवादास्पद प्रश्न है जिसका उत्तर भिन्न-भिन्न विचारको की नजर में अलग अलग होता है। सर ईयान हैमिल्टन की मान्यता है कि सैन्य अनुभव के अनुरूप एक प्रबंधक तीन से चार अधीनस्थों पर नियंत्रण रख सकता है। हेनरी फ्यूल के अनुसार अधीनस्थों की संख्या 5 से 6 हो तो नियंत्रण का क्षेत्र प्रभावी होता है। लूथर गुलिक के अनुसार यदि कार्य सरल प्रकृति का हो तो 8 से 12 तक और जटिल प्रकृति का हो तो 5 से 6 अधिनस्थों तक नियंत्रण का दायरा सुदृढ़ होता है। लॉर्ड होल्डिन और ग्राम वालास के अनुसार इनकी संख्या 10 से 12 तक हो सकती है।
अमेरिकन प्रबंधकीय संघ के अनुसार अधीनस्थों की आदर्श संख्या नौ हो सकती है।

नियंत्रण के क्षेत्र में वी ए ग्रीन कुनास का योगदान : वी ए ग्रेकुनास (Vytautas Andreus Graicunas, 1898 - 1952 AD) लिथुआनिया मूल के फ्रांसीसी गणितज्ञ और प्रबंधकीय सलाहकार थे। 1933 ईस्वी इन्होंने **'ध्यान का क्षेत्र' (Span of Attention)** की एक नवीन अवधारणा का प्रतिपादन किया जो कि लोक प्रशासन में विद्यमान नियंत्रण के क्षेत्र के सिद्धांत से संबंधित थी। ग्रेकुनास के अनुसार एक प्रबंधक सामान्य रूप से 5 से 6 अधीनस्थों का आसानी से पर्यवेक्षण, निरीक्षण और नियंत्रण कर सकता है। उसकी अवधारणा इस प्राक्कल्पना पर आधारित है कि एक ही समय में अनेक चीजें हो सकती हैं जिनकी एक सीमा होती है। उसने संबंधों की संभावित संख्याओं का विश्लेषण किया है जो कि दिए गए नियंत्रण के क्षेत्र को स्पष्ट करती हैं।
ग्रेकुनास के अनुसार जैसे ही अधीनस्थों की संख्या अंकगणितीय रूप में बढती है वैसे ही संबंधों की संख्या ज्यामितिय रूप से बढ़ जाती है (As the number of subordinates increase Arithmetically, then the numbers of relationships

increase almost Geometrically) अर्थात् ध्यान के क्षेत्र में उच्चस्थों व अधिनस्थों के बीच संख्या और सीमा क्षेत्र अर्थात संबंधों पर विचार करें तो जहाँ अधीनस्थों की संख्या अंकगणितीय अनुपात में तथा संभावित संबंधों की संख्या ज्यामितिय स्वरूप में आगे बढ़ती है अर्थात् अधीनस्थों की संख्या 2, 4, 6, 8, 10 की संख्या में समानांतर श्रेणी में बढती है जबकि संभावित संबंधों की संख्या गुणोतर श्रेणा में 2,4,8,16, 32 के क्रम बढती है। ग्रेकुनास के अनुसार उच्चस्थ-अधिनस्थ के बीच प्रत्यक्ष संबंधों के अलावा अधीनस्थों के विभिन्न समूहों के बीच अप्रत्यक्ष संबंध भी होते हैं। ग्रेकुनास का गणितीय सूत्र दि बुलेटिन ऑफ दि इंटरनेशनल मैनेजमेंट इंस्टीट्यूट के द्वारा संपादित आलेख 'रिलेशनशिप इन आर्गेनाइजेशन' (Relationship in the Organisation, March, 1930) में पहली बार प्रकाशित हुआ। गुलिक एवं उर्विक द्वारा सम्पादित 'पेपर्स ऑन दी सांईस आफॅ एडमिनिस्ट्रेशन' 1937 में भी 'रिलेनशिप इन ऑरगेनाईजेशन' के अन्तर्गत इसका विस्तार से उल्लेख किया गया है। ग्रेकुनास ने इसे मनोवैज्ञानिक के रूप में **'ध्यान का क्षेत्र'** (The Span of Attention)कहा है। ग्रेकुनास ने उच्चस्थ और अधिनस्थ के बीच (Between the Superieur and Subordinate) के सम्बन्धों को तीन स्वरूपों में विभक्त किया है। प्रत्यक्ष एकल संबंध, तिरछे संबंध और प्रत्यक्ष समूह संबंध। यदि सर्वाधिक सामान्य इकाई वाले संगठनों को उदाहरण के रूप में शामिल किया जाए तो इन तीन तरह के सम्बन्धों निम्न स्वरूपों में विवेचित किया जा सकता है :-

1. प्रत्यक्ष एकल संबंध ***(Direct Single Relationships)*** :

Direct Single Relationships

ऐसे सम्बन्ध उच्चस्थ व अधिनस्थ के बीच होते है। प्रत्यक्ष एकल सम्बन्धों को टॉम, डिक और हेरी के उदाहरण के माध्यम से समझाने पर निष्कर्ष इस प्रकार से होगा कि - टॉम के संबंध में डिक से और टॉम के संबंध में हेरी से सम्बन्धों का विश्लेषण करने पर निष्कर्ष के रूप में कहा जाएगा कि यह एक उच्चस्थ और दो अधिनस्थों के बीच प्रत्यक्ष एकल संबंध है। प्रत्यक्ष एकल संबंधों की संख्या सदैव अधीनस्थों की संख्या के बराबर ही होती है अर्थात् प्रत्यक्ष व्यक्तिगत संबंधों की संख्या में होने वाली वृद्धि अधीनस्थों की संख्या में होने वाली वृद्धि के अनुपात में बढ़ती है। यहाँ पर टॉम उच्चस्थ अधिकारी है जिसके पर्यवेक्षण में दो अधिनस्थ है। अतः इनके बीच प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्बन्धों की संख्या भी 2 अर्थात्(N=A=DSR=2) है। यदि टॉम के 06 अधिनस्थ होंगे तो प्रत्यक्ष व्यक्तिगत संबंधों की संख्या भी 06 ही होगी।

2. तिरछे संबंध ***(Cross Relationships)*** : ऐसे सम्बन्ध अधिनस्थों व अधिनस्थों के बीच होते है। तिरछे संबंध

अधीनस्थों से अधिनस्थों के बीच 2 दिशाओं में आगे बढ़ते हैं। डिक के साथ हेरी और हेरी के साथ डिक के संबंध तिरछे संबंध है।

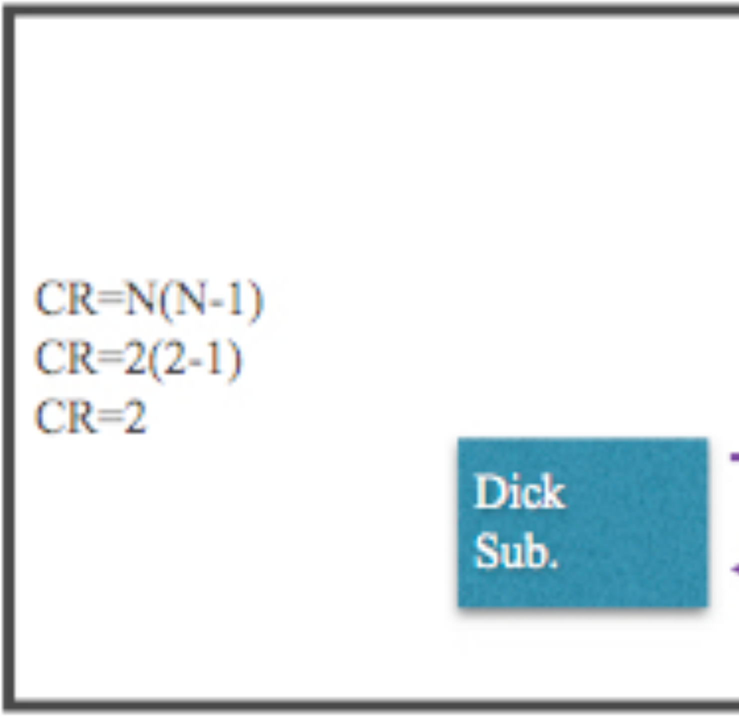

Cross Relationships

अतः अधिनस्थों की संख्या 2 होने पर तिरछे सम्बन्धों की संख्या 2 होती है।

3. प्रत्यक्ष समूह संबंध ***(Direct Group Relationships) :*** ऐसे सम्बन्ध उच्चस्थ और अधिनस्थों के समूह के बीच होते है। प्रत्येक समूह संबंध उच्चस्थ के अधीनस्थों के प्रत्येक संभावित के साथ संबंध या प्रत्येक के साथ प्रत्येक व्यक्तिगत संभावित स्थिति के साथ संबंध प्रत्यक्ष समूह सम्बन्ध होते हैं।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Direct Group Relationships

यहाँ पर टॉम के डिक के साथ सम्बन्ध (हेरी सहित) तथा टॉम के हेरी के साथ सम्बन्ध (डिक सहित) प्रत्यक्ष समूह सम्बन्धों को अभिव्यक्त करते है। यह उच्चस्थ और उसके अधीन कार्यरत सभी संभावित समन्वय वाले अधीनस्थों के समूह के साथ संबंध हैं। इन सम्बन्धों को समग्र स्वरूप में निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Types of Relations

इन संबंधों की गणना दो स्वरूपों में की जा सकती है। एक अधिकतम संभावित संबंध के रूप में जो कि तालिका 3 में प्रदर्शित है तथा दूसरा न्यूनतम संभावित संबंध के रूप में जिन्हें तालिका 4 में दर्शाया गया है। ग्रेकुनाश का फार्मूले के अनुसार इन सम्बन्धों की गणितीय स्वरूप में व्याख्या निम्न तालिका के रूप में की जा सकती है :- यहाँ पर तालिका संख्या -2 में प्रतीक एवं उनकी व्याख्या दी गई है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Symbols & Discription

अधिकतम संभावित संबंध के रूप

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

न्यूनतम संभावित संबंध के रूप

इन सम्बन्धों को एक वक्र के रूप में निम्न प्रकार से दर्शाया गया है :-

यह वक्र प्रत्यक्ष एकल, तिरछे और प्रत्यक्ष समूह सम्बन्धों तथा संभावित कुल सम्बन्धों का अभिव्यक्त कर रहा है। अतः यदि अधिनस्थों की कुल संख्या यदि 10 हो तो हम अधिकतम कुल संभावित सम्बन्धों को ग्रेकुनास सूत्र के माध्यम से ज्ञात कर सकते है अर्थात्

$$TNR = N(2n/2+N-1)$$

$$TNR= 10(512+9)$$

TNR= 10(521)

TNR= 5210

इस प्रकार से ग्रेकुनास ने गणितीय सूत्र के माध्यम से ’ध्यान के क्षेत्र’ की अवधारणा में एक उच्चस्थ के नियंत्रण में अधिनस्थों के साथ स्थापित होने वाले सम्बन्धों को विस्तार से समझाया है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Relationships

आलोचनात्मक मूल्यांकन :
यद्यपि नियंत्रण के क्षेत्र की अपनी कमियाँ और अच्छाइयाँ हैं। एक संगठन में अधिकारी आखिरकार कितने अधीनस्थों तक अपने नियंत्रण को प्रभावी एवं दक्षतापूर्ण बनाए रख सकता है। यह विवादास्पद स्थिति है तथापि जहाँ तक संगठन सफलतापूर्वक अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सके वही नियंत्रण का दायरा अनुकूल माना जाएगा। ग्रेकुनास फार्मूला भले ही पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं हो फिर भी उसका नियंत्रण के क्षेत्र में गणितीय प्रयोग उपयोगी और सार्थक है।

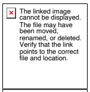

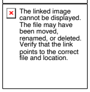

संदर्भ :

Ali Farazmand (Edited) ‘Handbook of Comparative and Development Public Administration’ Second Edition, Marcel Dekker, Inc New York, 2001

Eric Edwin Otenyo, Nancy S. Lind (Edited) ’Comparative Public Administration : The Essential Readings’ Jai Press Publication, New York, 2007

Woodrow Wilson, ‘The Study of Administration’ Source: Political Science Quarterly, Vol. 2, No. 2 (Jun., 1887), pp. 197-222 Published by: The Academy of Political Science, Stable URL: http://www.jstor.org/stable/2139277 Accessed: 24/02/2009 17:42

Avasthi and Maheshwari, 'Public Administration' Laxmi Narain Aggarwal, Agra, 2010

Mohit Bhattacharya, 'New Horizons of Public Administration' Jawahar Publishers, New Delhi, 2010

Rumki Basu, 'Public Administration-Concepts and Theories' Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 2007

H. George Frederickson and Kevin B. Smith, 'Public Administration Theory Primer' Rawat Publications, Jaipur, 2008

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, 'Public Administration : An Introduction' PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

6

संगठन के सिद्धांत - II

लाईन, स्टाफ और सहायक अभिकरण

(Line, Staff and Auxiliary Agencies)

लाइन, स्टाफ और सहायक अभिकरण सामान्य संगठन की संरचना के स्वरूप का विवेचन करते है। किसी संगठन में कार्यरत इकाइयों उनकी भूमिका, प्रस्तुति, अंतः संबंध एवं कार्य प्रणाली को स्पष्ट करने में लाइन, स्टाफ और सहायक अभिकरण की निर्णायक भूमिका होती है, वे मुख्य कार्यपालिका को उसके कर्तव्यों एवं उतरदायित्वों के निर्वहन में सहायता प्रदान करती है। सरकारी संगठनों में जहाँ तक सरकार के कार्यकारी भाग व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का संबंध है तो यह राजनीतिक कार्यपालिका को नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में सहायता करने वाले अभिकरण होते हैं जिसे स्थायी कार्यपालिका के समूह में देखा जा सकता है। लाइन, स्टाफ और सहायक अभिकरण का यह स्वरूप निजि संगठनों में भी पाया जाता है। मुख्य कार्यपालक संगठन का मुखिया होता है और सारा प्रशासनिक समय उसके अधीन लाइन, स्टाफ और सहायक के रूप में कार्य करता है। अतः मुख्य कार्यपालिका को सहायता व सलाह देने के लिए लाइन, स्टाफ और सहायक अभिकरण की आवश्यकता होती है। सरकारी संगठनों में कार्यपालिका के अनेक स्वरूप नाममात्र, वास्तविक, निर्वाचित, मनोनीत इत्यादि में अंतर होता है। अतः लाइन व स्टाफ भी उसी स्वरूप और भूमिका में कार्य करता है परंतु वह मुख्य कार्यपालक का सहयोग करने वाली इकाइयाँ हैं। मुख्य कार्यपालक प्रशासनिक संगठन का मुखिया होता है। संगठन में योजना, निर्देशन, नियंत्रण के कार्य करने वाले अभिकरण होते हैं जिनको उनके द्वारा संपादित कार्य की प्रकृति के आधार पर तीन स्वरूपों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **रेखा या पंक्ति अभिकरण *(Line Agency)***
2. **स्टॉफ अभिकरण** *(Staff Agency)*
3. **सहायक अभिकरण *(Auxiliary Agency)***

इनका विवेचन सरकार या राज्य रुपी संगठन की प्रकृति के आधार पर किया जा रहा है। इन अवधारणाओं का उपयोग **सर्वप्रथम सैन्य प्रशासन (Military Administration)** में हुआ। **सैन्य प्रशासन** में इनके बीच का विभाजन स्पष्ट रूप से पाया जाता है परंतु नागरिक या सिविल और गैर सैन्य प्रशासन में इनके कार्यों की प्रकृति पूर्णतः पथृथ्क नहीं होती है। इस कारण अनेक बार संघर्ष या विवाद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

1. रेखा या पंक्ति अभिकरण (Line Agency): सूत्र या रेखा या पंक्ति अभिकरण वह प्रशासनिक इकाई है जो सरकारी संगठन के प्राथमिक अथवा मुख्य उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्षेत्र में उपस्थित रहकर कार्य करती है। यह निर्देशन करने वाली, निर्णय लेने वाली, आदेश देने वाली और परीक्षण का कार्य करने वाली इकाई होती है। स्टाफ अभिकरण के द्वारा संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता, सहयोग और सलाह दी जाती है। भारत में सरकारी विभाग, लोक निगम और मंत्रालय सूत्र या रेखा अभिकरण के रूप में कार्य करने वाली प्रशासनिक इकाइयाँ होती हैं। जैसे कि स्वास्थ्य, रक्षा, शिक्षा, श्रम, रेलवे यातायात, सूचना, व्यापार, उद्योग इत्यादि मंत्रालय इत्यादि विभाग सूत्र अभिकरण के रूप में कार्य करते हैं। प्रधानमंत्री के सचिव से लेकर पंचायत सचिव तक के कार्मिक पंक्ति अभिकरण के रूप में भाग लेते हैं। इनके साथ योजना या नीति आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, सचिवालय, भारतीय जीवन बीमा निगम, ओएनजीसी, आइओसी इत्यादि स्टाफ अभिकरण के रूप में कार्यरत अभिकरण हैं। रेखा और स्टाफ के बीच का यह विभाजन सैन्य प्रशासन में सर्वप्रथम शुरू हुआ और इनके बीच का विभाजन यहाँ पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। कमांडर से लेकर सामान्य सैनिक तक पदों की क्रमबद्ध श्रंखला रेखा के रूप में कार्य करती है जो प्रत्यक्ष रूप से सैन्य अभियानों यानी सशस्त्र गतिविधियों का संचालन करती है। यह सीमाओं पर या अन्यत्र रक्षा में तैनात सैन्य प्रशासन है।

इसी के साथ सैन्य प्रशासन में एक दूसरा स्टाफ अभिकरण के रूप में लाइन की सहायता के लिए गोला, बारूद आपूर्ति, यातायात, रसद सामग्री, बांध, सड़क निर्माण, चिकित्सा सहायता इत्यादि उपलब्ध कराती है।
व्हाईट के अनुसार ''सूत्र अभिकरण इकाई संगठन के प्राथमिक उद्देश्य से संबंधित होती है।''
अल्बर्ट लेपास्की ''रेखा अभिकरण में सत्ता और उत्तरदायित्व की रेखाएं ऊपर से नीचे तक फैली होती हैं।''
अतः रेखा अभिकरण उन प्राथमिक या आधारभूत कार्यों का निष्पादन करती है जिनके लिए कोई संगठन अस्तित्व में आता है। रेखा अधिकरण विधायिका द्वारा स्वीकृत नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करने के लिए उत्तरदाई इकाई होती है। इन इकाइयों के द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं, नीतियों और परियोजनाओं को लागू करने हेतु क्षेत्रीय इकाइयों का निर्देशन और परीक्षण का कार्य करती हैं। लाइन अभिकरण प्रतिवेदन एवं जाँच के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर सरकारी निष्पादन प्रणाली को संचालित करती है। यह लोगों के प्रत्यक्ष संपर्क में रहती है और उनके सहयोग से संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने का कार्य करती है। लाइन के कार्मिक, प्रशासन को प्रत्यक्ष रूप से आदेश देते हैं और समन्वय तथा नियंत्रण रखते हैं। लाइन अभिकरण उचित, वैधानिक और प्रभावी प्रशासनिक कार्य प्रणाली के प्रति अंतिम रूप से उत्तरदाई होता है। भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य विभाग, भारतीय खाद्य निगम, ओएनजीसी, एलआईसी लाइन एजेंसी के रूप में कार्यरत संगठन है।

रेखा अभिकरण की मुख्य विशेषताएं *(The Major Features of Line Agency)* :

1. **मुख्य कार्यकारी का प्रत्यक्ष नियंत्रण** (Direct Control of Chief Executive) : रेखा अभिकरण मुख्य कार्यपालक के अधीन प्रत्यक्ष

रूप से आदेश की श्रृंखला में निहित होती है। वह लाइन के प्रशासन पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण रखता है। वह लाइन की योजनाओं, कार्यक्रमों, नीतियों व परियोजनाओं को लागू करने के लिए निर्देश प्रदान करता है। नीतियों व कार्यक्रमों को उनके क्रियान्वयन से प्राप्त फीडबैक के अनुसार संशोधित भी किया जाता है।

2. **जवाबदेयता** (Accountability) : रेखा अभिकरण अपने विभाग के मुखिया और विधायिका के प्रति कार्य प्रणाली के रूप में जवाबदेय और उत्तरदाई होता है। प्रशासनिक विभाग का मुखिया सचिव होता है जो कि प्रशासनिक विभाग के राजनीतिक मुखिया को सहयोग और सलाह प्रदान करता है। मंत्री, विधायिका में उस विभाग का प्रतिनिधित्व करता है और संबंधित नीति और निष्पादन के लिए उत्तरदाई होता है।
3. **लोगों के साथ प्रत्यक्ष संपर्क और नियंत्रण** (Direct Contact and Control with People) : रेखा इकाई लोगों के साथ प्रत्यक्ष संपर्क में रहती है। यह लोगों को प्रत्यक्ष रूप से सेवाएं उपलब्ध कराने और उनका संचालन करने वाली एजेंसी होती है। जैसे कि पुलिस विभाग लोगों की सुरक्षा और बचाव के लिए, शिक्षा विभाग विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए, स्वास्थ्य विभाग मरीजों के उपचार के लिए कार्य करने वाली रेखा इकाईयां है।
4. **कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं और परियोजनाओं को लागू करना** (Execution of Programmes, Policies, Plans and

Projects) : विधायिका द्वारा स्वीकृत नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए रेखा अभिकरण जिम्मेदार होता है। वह उनका उचित एवं समयबद्ध क्रियाव्यन कराती है और इसी के साथ साप्ताहिक या मासिक प्रतिवेदन तैयार करके उनकी प्रगति का मूल्यांकन भी करती है।

5. **आमजन का प्रशासन** (Administration of Mass or Administration of People) : रेखा अभिकरण को आम जनता का प्रशासन भी कहा जाता है क्योंकि वर्तमान आधुनिक प्रशासित राज्यों में जनहित में रेखा अधिकरण के द्वारा पालना गृह से लेकर शमशान घाट तक (गर्भवती महिलाओं के पंजीकरण से लेकर विवाह पंजीकरण तक तथा विवाह पंजीकरण से मृत्यु पंजीकरण तक) का कार्य किया जाता है। रेखा अभिकरण के द्वारा ही योजना, कार्यक्रमों को जन-जन तक पहुँचाया जाता है और उन्हीं कि द्वारा लागू किया जाता है। इसी के साथ अनेक प्रशासनिक अभियान भी चलाए जाते हैं। विलोबी ने इन्हें प्राथमिक या कार्यात्मक अभिकरण का नाम दिया है।

रेखा अभिकरण की मुख्य शाखाओं के अन्तर्गत विभाग, लोक निगम, स्वतंत्र नियामकीय आयोग इत्यादि सम्मिलित है जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है :-

1. विभाग (Departments) : विभागीय व्यवस्था अधिकांश विकसित और विकासशील राज्यों में पाई जाती है। विभाग मुख्य कार्यकारी के अधीन स्थापित होते हैं। विभाग प्रशासन की मूल इकाई होते हैं और सरकार के प्रमुख कार्यों को संपादित करते हैं। किसी देश के राजनीतिक वातावरण एवं प्रशासनिक प्रणाली का स्वरूप विभागीय संरचना व भूमिका

का निर्धारण करता है। जैसे कि अमेरिका में कांग्रेस इनका नियमन करती है तो भारत या ब्रिटेन जैसे संसदीय प्रणाली वाले देशों में मुख्य कार्यकारी इनका संचालन करते है जबकि रूसी संघ में इसका संवैधानिक स्वरूप होता है। सरकार के कार्यों का संचालन करने वाली सबसे पुरानी इकाई को विभाग के नाम से जाना जाता है।

विभाग भी अनेक प्रकार होते हैं :

बड़े और छोटे विभाग :
जैसे कि भारत में रेलवे, रक्षा, डाक विभाग बडे हैं जबकि स्थानीय शासन व राज्यों के विभाग छोटे-छोटे विभाग होते हैं।

एकल कार्यकारी और बहुकार्यकारी करने वाले विभागः
जैसे शिक्षा, पुलिस और रक्षा जैसे विभाग एकल प्रकृति का कार्य करने वाले संगठन होते हैं जबकि गृह विभाग बहु प्रकृति के कार्य अर्थात आंतरिक सुरक्षा, नागरिकता, भर्ती, नियुक्ति, अनुशासन इत्यादि से संबंधित बहु प्रकृति के कार्य करने वाले संगठन है।

कार्य की प्रकृति के अनुसार विभाग :
कुछ विभाग संचालन का कार्य करते हैं जैसे कि पुलिस, डाक, रक्षा आदि। परंतु कुछ विभाग केवल सामान्य और पर्यवेक्षण की प्रकृति का कार्य करते हैं जैसे कि स्थानीय स्वशासन और ब्रिटेन में ट्रेजरी विभाग।

भौगोलिक अवस्थिति के अनुरूप विभाग :
कुछ विभाग केवल मुख्यालय पर ही कार्य करते हैं। उनकी क्षेत्रीय इकाईयाँ नहीं होती हैं। जैसे कि भारत में वित्त और स्थानीय विभाग जबकि अन्य अनेक भौगोलिक इकाईयों वाले विभाग होते हैं। जैसे कि पुलिस और डाक विभाग।

2. लोक निगम(Public Corporations) :
रेखा अभिकरण का यह दूसरा स्वरूप है। लोक निगम रेखा अभिकरण का दूसरा प्रकार है। आधुनिक राज्य जो कि प्रशासन और कल्याणकारी राज्य बन गए हैं। उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों में वृद्धि और जटिलता बढ़ती ही जा रही है। लोक निगम ऐसे

संस्थान हैं जिनकी स्थापना विधायिका के द्वारा कानून द्वारा की जाती है जिसमें उनकी शक्तियों, कार्यों और सीमाओं को स्पष्ट कर दिया जाता है। रोब्सन के शब्दों में ''लोक निगम इस शताब्दी का सबसे महत्वपूर्ण संवैधानिक नवप्रर्वतन है।'' लोक निगम का सबसे प्रभावी गुण है कि इन्हें अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेप और नियंत्रण से मुक्त रखा गया है। इनके पास उच्च स्तरीय लचीलापन होता है। निगम लचीलापन और स्वायत्तता के बीच संतुलन स्थापित करने वाली काया है। इस संबंध में फंक्शन डी रूजवेल्ट ने लोकप्रिय रूप बताते हुए कहा है कि ''यह सरकार की शक्ति से पूर्ण परिधान धारण करते हैं जिनके पास लचीलापन एवं निजी क्षेत्र की तरह पहल प्रोत्साहन की भी छूट होती है।'' हरबर्ट मोरिसन ने लोक निगम को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''लोक निगम या व्यापारिक प्रबंधन लोक उत्तरदायित्व, लोकस्वामीत्व का मेलजोल है।'' इस तरह से लोक निगम प्रबंधन की औद्योगिक, व्यापारीक, वित्तीय प्रकार के कार्यों का निष्पादन करती है जिनको विधि एवं संचालन के क्षेत्र में सहायता प्राप्त होती है। लोक निगम केंद्रीय इकाई सरकार द्वारा स्थापित निकाय हैं जिसकी प्रमुख विशेषताएं वैधानिक स्वामित्व, वित्तीय स्वायत्तता, कार्मिक व्यवस्था, विधि द्वारा स्थापित, प्रबंधन की स्वायत्तता, उत्तरदायित्व प्रणाली, सरकार के प्रति उत्तरदाई इत्यादि होती हैं।

3. स्वतंत्र नियामकीय आयोग (Independent Regulatory Commissions) :

इनका उदय अमेरिका में निजी आर्थिक गतिविधियों के नियमन के लिए हुआ। 19वीं शताब्दी में बढ़ती हुई औद्योगिक गतिविधियों के कारण इनके नियंत्रण और नियमन की आवश्यकता महसूस की गई। वे राष्ट्रपति से स्वतंत्र होते हैं और इनको शासन की शीर्षविहीन शाखा के नाम से भी जाना जाता है। इनकी स्थापना कांग्रेस के द्वारा कानूनी रूप से की गई है और उनके संविधान तथा कार्यों को परिभाषित किया गया है। स्वतंत्र नियामक आयोग के कार्य प्रशासनिक और विधायी और अर्ध न्यायिक अर्थात् मिश्रित

प्रकृति के होते हैं। इनको शासन की चौथी शाखा के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि इनके कार्य शासन की 3 शाखाओं के परंपरागत कार्यों के साथ पूर्ण नहीं होते हैं। पहला स्वतंत्र नियामक आयोग अमेरिकी संघ सरकार के द्वारा 1887 ईस्वी में 'अंतर राज्य वाणिज्यिक आयोग'1887 स्थापित किया गया। आयोग मुख्य रूप से उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा करना, स्वतंत्र,निष्पक्ष, पारदर्शी, प्रतियोगी, वैश्विक उपलब्धता एवं स्वास्थ्य मानकों का निर्धारण करने का कार्य करते हैं। भारत में भी अनेक नियामनकारी संस्थाओं का गठन किया गया है जैसे कि भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण, केंद्रीय विद्युत नियामक आयोग, बीमा नियामक विकास प्राधिकरण, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस नियामक प्राधिकरण इत्यादि।

2. स्टॉफ अभिकरण *(Staff Agency) :*

रेखा अभिकरण के बाद द्वितीयक महत्व के कार्य करने वाली एजेंसी को स्टाफ अभिकरण के नाम से जाना जाता है। राज्य में संपूर्ण प्रशासनिक संरचना का मुख्य कार्यकारी अध्यक्ष होता है जिसके ऊपर संपूर्ण प्रशासन का उचित एवं बिना बाधा के संचालन करने की जिम्मेदारी होती है। इस प्रशासनिक प्रणाली में उसको प्रत्यक्ष सहायता, सलाह एवं सहयोग करने के लिए अनेक अभिकरण और कार्यालय होते हैं। उसे सहायता देने वाला एक प्रत्यक्ष अभिकरण स्टॉफ अभिकरण कहलाता है। सामान्य रूप से स्टाफ शब्द विशिष्ट महत्व का प्रतीक होता है। यह रेखा अभिकरण को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहयोग, सहायता और सलाह देता है। योजना आयोग 2015 से जिसे नीति आयोग के नाम से जाना जाता है, राष्ट्रीय विकास परिषद, मंत्रिमंडल सचिवालय इत्यादि भारत में स्टाफ अभिकरण होते हैं। जैसे कि पुलिस प्रशासन कानून और व्यवस्था को संभालता है। इस प्रक्रिया में पुलिस महानिदेशक से पुलिस कांस्टेबल तक की

श्रृंखला रेखा अभिकरण के रूप में कार्य करती है। अपने कर्तव्य संचालन में उनको हथियार, गणवेश, यातायात, पुलिस स्टेशन, प्रशिक्षण, इंटेलिजेंस, स्टेशनरी इत्यादि की आवश्यकता होती है। स्टॉफ अभिकरण के द्वारा पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, राज्य इंटेलिजेंस ब्यूरो, पुलिस भर्ती बोर्ड इत्यादि सेवाएं उपलब्ध कराई जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि द्वितीयक कार्यों का मतलब कम महत्वपूर्ण कार्यो से नहीं है। स्टॉफ अभिकरण अधिक महत्व के भी कार्य संपादित करता है जो कि सुत्र अभिकरण को प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहयोग करते हैं।

स्टाफ अभिकरण का अभिप्राय *;*(Meaning of Staff Agency) *:*

सामान्य बोलचाल की भाषा में स्टाफ का अर्थ विशिष्ट लोगों, सरकारी कार्मिकों या सत्ता के समीप रहने वाले कार्मिकों से लिया जाता है। वास्तविक जीवन में स्टॉफ और लाइन के कार्मिक एक ही स्तर के कर्मचारी होते हैं और वे रेखा के साथ पदसोपान में जुडे हुए नहीं होते है अपितु उसके साथ संलग्न होते है। लाईन अभिकरण सत्ता से दूर रहकर क्षेत्र में कार्यरत कार्मिकों का समूह होता है यद्यपि उसके कार्य प्राथमिक महत्व के कार्य होते हैं। दूसरी तरफ स्टाफ के कार्मिक क्षेत्रीय इकाई के रूप में कार्य नहीं करते हैं। वह गौण महत्व के कार्यों का निष्पादन करते हैं लेकिन वे सता या मुख्य कार्यपालक के समीप सत्ता के आँख व कान के रूप में रहते हैं। इसीलिए उनको स्टाफ कहा जाता है। स्टाफ का अर्थ किसी संगठन में कार्यरत कार्मिकों के समूह से है। वह सत्ता का प्रतीक होता है अथवा कोई अन्य अर्थ। स्पष्ट रूप से स्टाफ का अर्थ होता है लकड़ी की छड़ी जो कि चलने में सहयोग करती है या कार्मिक या कर्मचारी इत्यादि। स्टाफ अभिकरण मुख्य कार्यपालिका को आवश्यक सूचना, आंकड़े, सलाह, सहायता, सहयोग, परामर्श प्रदान करने वाली एजेंसी है जिस तरह से संगठनों का आकार बढ़ता है और जटिलता उत्पन्न होती है तो और अधिक विशेषज्ञ स्टाफ की आवश्यकता

पड़ती है अर्थात् स्टाफ वास्तव में तो कार्यपालिका के व्यक्तित्व का ही विस्तार होता है। यह योजनाओं, कार्यक्रमों, प्रोजेक्ट और परियोजनाओं में सहायता करने में कार्यपालक के हाथ, आँख व कान के समान है। स्टाफ के द्वारा विशेषज्ञ सलाह प्रदान की जाती है। स्टाफ कार्यपालक के विश्वास पर निश्चित गतिविधियों को संचालित करने वाला माध्यम होता है। यह नई योजनाओं के निर्माण की तैयारी, उनका सही विश्लेषण करने में, मुख्य कार्यपालक के लिए थिंकटैंक के रूप में कार्यरत एजेंसी है। स्टाफ मुख्य कार्यपालक की बहुप्रकृति वाले कर्तव्यों और कार्यों को संपादित कर कार्यात्मक विशेषीकरण का पर्याय बन गया है। रेखा अभिकरण प्राथमिक कार्य व स्टाफ अभिकरण गौण कार्य करता हैं। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि रेखा के कार्य, स्टाफ अभिकरण से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। स्टाफ एजेंसी प्रत्यक्ष रूप से किसी सता या शक्ति को धारण नहीं करती है और न ही वे प्रशासन को आदेश देते हैं परंतु उनके द्वारा प्रत्यायोजित सत्ता का अभ्यास किया जाता है। इस तरह से स्टाफ अभिकरण किसी देश की प्रशासनिक प्रणाली पर विस्तृत प्रभाव रखता है। हेनरी फयोल के शब्दों में ''स्टाफ अभिकरण एक सत्ता है और कर्तव्य पूर्ति में सहायक प्रबंधक का विस्तार है।'' मुनै के अनुसार ''यह मुख्य कार्यपालिका के व्यक्तित्व का ही विस्तार है।'' स्टाफ कार्यकारी के लिए योजनाओं के संचालन एवं क्रियानव्यन में ओर अधिक आँख, कान और हाथ की भूमिका का निर्वहन करता है।

स्टाफ के संदर्भ में एक ब्रिटिश कहावत है कि ''स्टाफ की सेवाएं वे खच्चर है जो युद्ध लड़ने वाले खच्चरों के लिए सामग्री ढोते हैं।'' भारत में योजना आयोग, पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में केंद्र और राज्य स्तर पर प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता है। वित्त विभाग प्रत्यक्ष रूप से वित्तीय अनुशासन को स्थापित करता है। संघ लोक सेवा आयोग स्टाफ एजेंसी है जो नागरिक सेवा संबंधी मामलों एवं कार्मिकों की भर्ती, पदोन्नति की कार्यवाही इत्यादि में

सलाह प्रदान करता है। प्रधानमंत्री सचिवालय भारत में स्टाफ और लाइन दोनों की प्रभावी शाखा के रूप में कार्य करता है। लेपास्की(Lepawsky) के शब्दों में निष्कर्ष के रूप में लाईन व स्टाफ कार्यो के संचालन में पारस्परिक पदसोपानीय संबंध नहीं रखते हैं अपितु दोनों मुख्य कार्यपालिका के अधीन सत्ता के क्षैतीजीय स्वरूप को धारण करते हैं। स्टाफ एवं लाइन एक दूसरे के अनुपूरक होते हैं।

स्टाफ अभिकरण की विशेषताएं (The Characteristics of Staff Agency) :

1. **प्रशासन के द्वितीयक कार्यों का संपादन करना** (Perform Secondary Function in Administration) : जहाँ लाइन अभिकरण प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करती है, वहीं पर स्टाफ अभिकरण संगठन के लक्ष्यों की सिद्धि के लिए द्वितीयक महत्व के कार्यों का निष्पादन करता है। इनकी मुख्य भूमिका सलाहकार और सहायक प्रकृति की होती है। वह साध्य के लिए साधन है परंतु स्वयं साध्य नहीं होते हैं।
2. **स्टाफ अभिकरण के कार्यकारी उत्तरदायित्व नहीं होते हैं**(Staff Agencies do not have Executive responsibilities) : प्रशासन के उचित, वैधानिक एवं धाराप्रवाह संचालन के लिए मुख्य कार्यकारी, मंत्री, सचिव और अन्य कार्यकारी प्रमुख उत्तरदायी होते हैं। स्टाफ अभिकरण के द्वारा इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्टाफ एजेंसी के द्वारा लाइन एजेंसी का सहयोग एवं सहायता की जाती है। स्टाफ एजेंसी शेष का पर्याय है। नीति एवं निर्णय संबंधी मामलों का निर्धारण मुख्य

कार्यकारी द्वारा किया जाता है और वह प्रशासनिक कार्य, नीति क्रियान्वयन अथवा अन्य किसी त्रुटि के लिए जिम्मेदार होता है। स्टाफ इकाइयां प्रशासन की सफलता या असफलता के लिए कदापि उत्तरदायी नहीं होती है।

3. **स्टाफ अभिकरण सत्ता एवं आदेश को धारण नहीं करती है** (Staff Agencies do not exercise authority and command) : स्टाफ अभिकरण किसी प्रकार की सत्ता को धारण नहीं करता है। इनके द्वारा प्रशासन को आदेश नहीं दिया जाता है अपितु मुख्य कार्यकारी के विश्वास संबंधित मामलों में निर्देश प्रदान करते हैं। वह किसी प्रकार का निर्णय नहीं लेते हैं परंतु प्रशासन में उनका व्यापक प्रभाव होता है। उदाहरण के लिए भारत में नीति आयोग केवल सलाहकार, परामर्शदात्री एवं संविधानेतर संस्था है परंतु भारत की आर्थिक एवं राजनीतिक प्रणाली में वह निर्णायक प्रभाव रखता है।

4. **स्टाफ अभिकरण जनता के साथ प्रत्यक्ष संबंध नहीं रखते हैं** (Staff Agencies do not directly deal with people) : रेखा एजेंसी जनता के साथ सीधे संपर्क रखती है। उसके द्वारा जनसमुदाय को अनेक प्रकार की सेवाएं उपलब्ध करायी जाती है परंतु स्टाफ अभिकरण जनता से दूरस्थ रहता है और वह जनता के प्रति उत्तरदाई नहीं होता है।

5. **स्टाफ अभिकरण आदेश या कमान की पंक्ति से दूर रेखा अभिकरण के साथ संयोजित या जुड़ी रहती है** (Staff Units are attached to line units at all levels outside the line of

command) : सरकार का प्रशासनिक ढांचा पिरामिडनुमा होता है जिसके सर्वोच्च स्तर पर मुख्य कार्यकारी होता है। सत्ता एवं आदेश इस संगठन में ऊपर से नीचे की ओर, मुख्य कार्यकारी से मंत्री, सचिव, विभाग मुखिया की ओर तथा इसी तरह क्रम से आगे बढ़ते हैं। स्टाफ व्यक्तिगत रूप से जुड़ा होता है और व्यक्तिगत स्तर पर सहयोग करता है।

स्टाफ अभिकरण के मुख्य कार्य :

1. **सहायक कार्य** (Assistance Function) : स्टाफ अभिकरण का मुख्य कार्य संगठन के मुख्य कार्यपालक एवं सूत्र अभिकरण की सहायता करना होता है। स्टाफ अभिकरण मुख्य कार्यपालिका का सहयोग सहायता करता है। यह मुख्य कार्यपालिका के लिए **छलनी और कीप** (Filter and Funnel) का कार्य करता है। इस प्रक्रिया में स्टाफ अभिकरण समय व ऊर्जा की बचत करता है जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका में व्हाइट हाउस और प्रधान भारत में प्रधानमंत्री कार्यालय।
2. **सूचनात्मक कार्य** (Information Function) : स्टाफ इकाइयों के द्वारा आवश्यक आंकड़ों एवं सूचनाओं का संग्रहण किया जाता है जिनके आधार पर मुख्य कार्यपालिका निर्णय लेती है। सूचना संग्रहण हेतु स्टाफ अभिकरण के द्वारा अनुसंधान, परीक्षण, सर्वेक्षण, अध्ययन, विश्लेषण किया जाता है। स्टाफ अभिकरण मुख्य कार्यकारी

को नवीनतम विकास और घटनाक्रम से अद्यतन रखता है।

3. **सलाहकारी कार्य** (Advisory Function) : स्टाफ अभिकरण केवल सूचनात्मक कार्य ही नहीं करता है अपितु उपलब्ध समय एवं दशाओं में निर्णय लेने के लिए लाइन अभिकरण को सलाह भी प्रदान करता है। प्रशासन की नीतियों के निर्माण में स्टाफ की प्रभावी भूमिका होती है। भारत में नीति आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, सलाहकारी स्टाफ एजेंसी है।
4. **पर्यवेक्षण संबंधी कार्य** (Supervisory Function) : मुख्य कार्यकारी के विश्वास पर पर्यवेक्षण संबंधी कार्य स्टाफ अभिकरण द्वारा किए जाते हैं। स्टाफ अभिकरण के द्वारा विभिन्न कार्यकारी एजेंसियों की कार्यप्रणाली की देखरेख की जाती है और मूल्यांकन का कार्य किया जाता है। भारत में कैबिनेट सचिवालय के द्वारा परीक्षण का कार्य किया जाता है।
5. **प्रत्यायोजित कार्य** (Delegated Function) : कभी-कभी मुख्य कार्यकारी के द्वारा विशेष उद्देश्यों के लिए स्टाफ एजेंसी को सत्ता प्रत्यायोजित कर दी जाती है। ऐसी स्थिति में स्टाफ एजेंसी स्पष्ट एवं परिभाषित सीमाओं में रहकर प्राधिकार का उपयोग करती है। जैसे कि संघ लोक सेवा आयोग के द्वारा केंद्र सरकार के विश्वास पर प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन कराया जाता है।

स्टाफ अभिकरण के प्रकार :

पिफनर (Pfiffner) के अनुसार स्टाफ अभिकरण के सामान्यतया तीन प्रकार होते है जो कि निम्न है :-

1. **सामान्य स्टाफ अभिकरण** (General Staff Agency)
2. **तकनीकी स्टाफ अभिकरण** (Technical Staff Agency)
3. **सहायक या सलाहकारी स्टाफ अभिकरण** (Auxiliary or Advisory Staff Agency)

1. सामान्य स्टाफ अभिकरण : यह सामान्य एवं दैनिक प्रकृति के कार्यों का संपादन हेतु मुख्य कार्यपालिका को सहयोग प्रदान करने वाला स्टाफ होता है। मुख्य कार्यकारी पर कार्य का अत्यधिक भार होता है और वह बहुत व्यस्त रहता है। उसके समय एवं कार्य ऊर्जा को बचाना अपरिहार्य होता है। सामान्य स्टाफ विभिन्न आयोजनों, बैठकों, कार्यक्रमों के लिए कार्मिकों को बुलाना, व्यवस्था करना, संदेश भेजना, प्राप्त करना इत्यादि कार्य करता है। यह कीप (Funnel) की तरह सभी प्रकार की सूचनाओं को संग्रहित करता है तथा उसके बाद जरूरी सूचनाओं को छलनी ;(Filter) की तरह छानकर मुख्य कार्यकारी के पास पहुँचाता है। भारत में प्रधानमंत्री सचिवालय और अमेरिका में व्हाइट हाउस इसी के उदाहरण हैं।

2. तकनीकी स्टाफ : मुख्य कार्यकारी प्रशासन के अंतर्गत अनेक तकनीकी मामलों का निर्वहन करता है। इनसे संबंधित मामलों के लिए अभियंताओं, चिकित्सकों, लेखकों, अर्थशास्त्रियों और वित्तीय क्षेत्र के विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। तकनीकी स्टाफ मुख्य कार्यकारी को तकनीकी मामलों में विशेषज्ञ सलाह प्रदान करता है।

3. सहायक स्टाफ : यह अभिकरण संस्थागत कार्यों का निष्पादन करता है जो कि सूत्र विभागों एवं खुद संगठन को बनाए रखने के लिए अपरिहार्य होते हैं। प्रशासनिक अभिकरण को भवनों का निर्माण, उनकी देखभाल, मरम्मत, कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, सामान की खरीद, कागज व उसका मुद्रण इत्यादि की आवश्यकता होती है। यद्यपि ऐसी

क्रियाएं संगठन के लिए अपरिहार्य होती हैं परंतु उनको प्राथमिक क्रियाओं में सम्मिलित नहीं किया जाता है फिर भी उनके बिना रेखा संगठन अपने प्राथमिक कार्यों का निर्वहन नहीं कर सकता है। सहायक स्टाफ संस्थागत उद्देश्यों के साथ जुड़ा हुआ रहता है। भारत में केंद्रीय वितरण अभिकरण, केंद्रीय कार्मिक अभिकरण, केंद्रीय कार्यालय, केंद्रीय लोक कार्यकारी निगम इसी के उदाहरण है। **विलाबी** ने इन्हें **गृहपालक सेवाएं** (Housekeeping Services) जबकि **व्हाईट ने सहायक सेवाएं** (Auxiliary Service) कहा है।

स्टाफ और लाइन में संघर्ष की स्थिति : उपयुर्क्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्टाफ व लाइन दोनों के द्वारा अनेक भिन्न भिन्न प्रकृति के कार्यों का निष्पादन किया जाता है जो कि इनके बीच के अंतर को अभिव्यक्त करते हैं। यद्यपि इनके बीच अंतर है फिर भी ऐसा स्पष्ट विभाजन सैन्य प्रशासन में तो उचित प्रतीत होता है परंतु सामान्य प्रशासन में इनके बीच अदला-बदली या अंतर स्थानांतरण पाया जाता है। इस कारण दोनों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। जब संगठन का आकार अधिक विस्तृत हो जाता है तो अधिक स्टाक की आवश्यकता पड़ती है। इन अभिकरणों का गठन कार्यात्मक आधार पर किया जाता है और उनकी सौंपी गए विशिष्ट कार्यों का भी संपादन करते हैं। प्रबंधन सामान्य रूप से यथासाध्य निर्णय की जिम्मेदारी लेता है। लाइन अभिकरण की यह शिकायत रहती है कि स्टाफ अभिकरण व्यवहारिक एवं नवप्रवर्तनीय विचार व योजनाएं उपलब्ध नहीं कराता है। दूसरी तरफ स्टाफ अभिकरण की यह शिकायत रहती है कि लाइन अभिकरण उनके प्रस्ताव और सुझावों को कोई महत्व नहीं देता है। इस प्रकार की स्थिति लाइन और स्टाफ के बीच संघर्ष और शंका उत्पन्न करती है। संप्रेषण प्रक्रिया के कमजोर होने एवं उत्तरदायित्व को पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं करने से इस प्रकार के संघर्ष को उत्पन्न होने का अवसर मिलता है। यदि सत्ता एवं

उत्तरदायित्व का स्पष्ट विभाजन परिभाषित कर दिया जाए तो लाइन और स्टाफ के बीच स्वस्थ परंपरा को स्थापित किया जा सकता है।

लाइन और स्टाफ में अंतर ***(Differences between Line and Staff)*** :

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Differences between Line and Staff

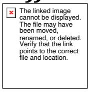

3. सहायक अभिकरण ***(Auxiliary Agency)*** **:**

सहायक एजेंसी के द्वारा अन्य सभी अभिकरणों को सामान्य, आधारभूत या गृहपालक सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। इसीलिए विलोबी ने इनको ’संस्थापक या गृहपालक गतिविधियाँ’ या क्रियाएं कहा है। प्रोफेसर एल डी व्हाईट के द्वारा इनको सहायक सेवाएं कहकर पुकारा गया है। दोनों ही विचारको ने सहायक अभिकरण को स्टाफ अभिकरण के मुख्य भाग के रूप में स्वीकार नहीं किया है क्योंकि उनके द्वारा स्टाफ अभिकरण की तरह सलाहकार एवं सहयोगी क्रियाओं का संपादन नहीं किया जाता है यद्यपि सहायक अभिकरण के द्वारा स्टाफ व लाइन दोनों को ही महत्वपूर्ण एवं संस्थागत सेवाएं उपलब्ध कराई जाती है। यह सभी विभागों में सामान्य सेवाओं की उपलब्धता कराने वाली ऐजेंसी है। स्टाफ के द्वारा मुखिया एवं लाईन को विशेषज्ञ सलाह दी जाती है जबकि सहायक एजेंसी सामान्य सेवाएं उपलब्ध कराती है।

सहायक अभिकरण का अभिप्राय ***(Meaning of Auxiliary Agency)*** : यह स्टाफ अभिकरण का तीसरा प्रकार है परन्तु सहायक अभिकरण को स्टाफ अभिकरण का मुख्य भाग नहीं माना जाता है। जैसा कि पुर्व में विदित किया है कि सैन्य प्रशासन में इन तीनों अभिकरणों के बीच के अन्तर को लगभग पृथ्थक-पृथ्थक स्वरूप में देखा जा सकता है परन्तु सामान्य या नागरिक प्रशासन में अनेक बार ये अभिकरण एक दुसरे के कार्य करते हुए दिखायी देते है जैसे कि भर्ती का कार्य स्टाफ अभिकरण और सहायक अभिकरण दोनों के द्वारा किया जाता हे। शब्दकोश के अनुसार सहायक अभिकरण का अर्थ किसी देश में युद्ध के समय सहयोग या सहायता देने वाले अतिरिक्त सैन्य दस्ते से है। जब इस शब्द का प्रयोग प्रशासन में

किया जाता है तो यह स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि सहायक सेवाएं प्राथमिक सेवाएं नहीं होती हैं अपितु वे स्वभाव से सहायक प्रकृति की होती है। सहायक अभिकरण के द्वारा रेखा या पंक्ति अथवा सूत्र अभिकरण को सहायक या गौण सेवाएं उपलब्ध कराई जाती है। रेखा संगठन के लिए बजट निर्माण, कार्मिकों की भर्ती, भवन निर्माण, मरम्मत, स्टेशनरी इत्यादि के कार्य सहायक अभिकरण के द्वारा ही सम्पादित किये जाते है।

सहायक अभिकरण की आवश्यकता :

जिस तरह से आधुनिक राष्ट्र राज्य के कार्यों में अभिवृद्धि हुई है। ठीक उसी तरह से रेखा अभिकरणों की संख्या में भी अभिवृद्धि हुई है। लाइन एजेंसी के द्वारा विविध प्रकार के कार्यों का निष्पादन किया जाता है। लाइन एजेंसी को अपने कार्यों के निर्वहन हेतु सामान्य गृहपालक सेवाओं की आवश्यकता होती है। लाइन अभिकरण की जिम्मेदारी होती है कि लेखांकन, भर्ती, आवश्यक उपकरणों और सामान की खरीददारी, बजट की तैयारी, इमारतों का निर्माण करें। इन सब कार्यों में सहयोग के लिए सहायक अभिकरण की आवश्यकता होती है। सहायक अभिकरण समय-समय पर कार्यों का उचित समाधान करती है। सहायक अभिकरण न केवल अर्थव्यवस्था एवं कार्य दक्षता को बढ़ाता है अपितु यह लाइन अभिकरण के कार्य बोझ को भी कम करता है। यद्यपि अधिकांश देशों में सहायक अभिकरण पृथ्थक रूप में स्थापित होता है। भारत में विधि विभाग, केंद्रीय लोक निर्माण विभाग, वित्त विभाग इत्यादि सहायक अभिकरण के ही उदाहरण है।

सहायक अभिकरण की विशेषताएं (The Features of Auxiliary Agency) :

1. सहायक अभिकरण के द्वारा लाइन इकाइयों को गृहपालक सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। सभी विभागों एवं संगठनों में निर्माण एवं मरम्मत के लिए सहयोग उपलब्ध कराती हैं।

2. सहायक अभिकरणों के द्वारा कार्यात्मक जिम्मेदारियों का निर्वहन किया जाता है। सहायक अभिकरण कार्यात्मक उत्तरदायित्व के रूप में भर्ती, स्टेशनरी, स्टोर जैसे कार्य करते हैं।
3. सहायक अभिकरण के द्वारा लोगों को सेवा उपलब्ध नहीं कराई जाती है अपितु लाइन अभिकरणों को गृहपालक या संस्थागत सेवाएं उपलब्ध कराते हैं।
4. सहायक अभिकरण के द्वारा सीमित वैधता का प्रयोग किया जाता है। सहायक एजेंसी मूलतः किसी सत्ता को धारण नहीं करती अपितु अपने सहायक कार्यों के रूप में ही सीमित सत्ता का प्रयोग करती है। जैसी कि वित्त विभाग के द्वारा वित्तीय अनुशासन हेतु नियमों का निर्माण करना।

स्टाफ एवं सहायक अभिकरण में अंतर :

1. स्टाफ की सेवाएं कार्यात्मक या संचालकारी जिम्मेदारी नहीं रखती हैं जबकि सहायक एजेंसी ऑपरेटिंग सेवाएं, भर्ती बोर्ड, स्टेशनरी इत्यादि का उत्तरदायित्व रखती है।
2. स्टाफ एजेंसी के द्वारा लाइन अभिकरण को सहायता व सलाह दी जाती है जबकि सहायक अभिकरण लाइन व स्टाफ एजेंसी दोनों को संस्थागत या ग्रह पालक सेवाएं उपलब्ध कराती है।
3. स्टाफ ऐजेंसी प्रमुख नीतियों के निर्माण में सहचर होती है जबकि सहायक एजेंसियां वैकल्पिक नीतियों के साथ जुड़ी रहती हैं।

4. स्टाफ अभिकरण के द्वारा निर्णयन का कार्य नहीं किया जाता है जबकि सहायक एजेंसी अपने कार्य क्षेत्र में सीमित निर्णय प्रक्रिया अपनाती है।

इस प्रकार से लाइन स्टाफ और सहायक अभिकरण के द्वारा मुख्य कार्यपालिका को कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्व के निर्माण में सहायता की जाती है। लाइन अभिकरण के द्वारा संगठन के प्राथमिक कार्यों का संपादन किया जाता है। स्टाफ इकाई के द्वारा लाइन अभिकरण को प्राथमिक कार्यों का संपादन करने में सहयोग किया जाता है। सहायक एजेंसी के द्वारा संस्थागत कार्यों का निष्पादन किया जाता है। यद्यपि तीनों के बीच विभिन्नता पायी जाती है परंतु तीनों एक दूसरे के प्रमुख सहयोगी एवं पूरक के रूप में कार्य करने वाले अभिकरण होते हैं।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण

(Centralisation and Decentralisation)

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की अवधारणा किसी संगठन के संचालन की शक्तियों के स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। राजनीति विज्ञान अनुशासन के अन्तर्गत यह राजनीतिक प्रणाली के संघात्मक एवं एकात्मक स्वरूप को दर्शाती है। इसी तरह से

लोक प्रशासन में भी किसी भी संगठन के लिए उसका केन्द्रित अथवा विकेन्द्रित स्वरूप महत्वपुर्ण होता है। परम्परागत दृष्टिकोण दक्षता और अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में संगठन में केंद्रीकरण धारणा की स्थापना का पूर्ण समर्थन करता है। केंद्रीयकरण या विकेंद्रीकरण करना किसी भी संगठन के लिए एक कठिन कार्य हो गया है फिर भले ही उस संगठन का स्वरूप सरकारी हो अथवा निजी। जहाँ एक तरफ नियोजित आर्थिक प्रणाली एवं आर्थिक रूप से राष्ट्रीय एकीकरण की रणनीति हमें केंद्रीयकरण की ओर बढने का आग्रह करती है तो वही दूसरी तरफ नियोजन का निर्धारण नीचे से उपर की ओर, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण ग्रास रूट लोकतंत्र और क्षेत्रीय स्वायत्तता संगठन को विकेंद्रीयकरण की ओर बढने के लिए प्रेरित करती है। अतः यह कहना कि संगठन के लिए केन्द्रीयकरण की नीति बेहतर है या विकेन्द्रीयकरण की नीति बडा ही कुटिल प्रश्न है तथापि दोनों ही अवधारणाओं के अपने-अपने गुण-अवगुण होते है। यह उस संगठन पर निर्भर करता है कि वह कौनसी नीति को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के अनुकूल पाता है।

केंद्रीयकरण का अभिप्राय : केन्द्रीयकरण का सामान्य अभिप्राय है कि संगठन के संचालन के लिए आवश्यक प्राधिकार की रेखा सदैव उपर से नीचे की ओर गमन करती है। ऐसा संगठन पदसोपानीय संरचना का ही प्रतिनिधित्व करता है। संगठन के मुखिया के द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों में प्राधिकार और निर्णयन दोनों की एकाग्रता होती है अर्थात् क्षेत्रीय अभिकरणों और प्राधिकारियों के पास कोई स्वायत्तता नहीं होती है। वे नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करने में उच्च अधिकारियों के आदेशों और निर्देशों पर ही निर्भर रहते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीयकरण वास्तविक अर्थों में क्षेत्रीय व स्थानीय अभिकरणों व कार्यालयों पर मुख्यालय के वर्चस्व की स्थिति को इंगित करता है। यदि संगठन में शक्तियों

का संग्रहण ही केन्द्रीयकरण है तो विकेंद्रीकरण का सार शक्ति का प्रत्यायोजन है।

हेनरी फेयोल के अनुसार “सब कुछ जो अधीनस्थ की भूमिका को बढ़ाने के लिए जाता है वह विकेंद्रीकरण है और इसे कम करने के लिए जो कुछ भी किया जाता है, वह केंद्रीयकरण है“।

केन्द्रीयकरण के गुण या लाभ :
किसी संगठन में केंद्रीकरण के निम्नलिखित गुण या लाभ होते हैः -

1. केन्द्रीयकरण किसी भी संगठन में सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र पर मुख्य कार्यकारी के प्रभावी नियंत्रण को सुनिश्चित करता है।
2. केन्द्रीयकरण के कारण ही मुख्य कार्यकारी समस्त प्रशासनिक तंत्र पर प्रभावी और सक्रिय नियंत्रण रखने में सफल हो पाता है।
3. यह प्रशासन में आर्थिक एकीकरण की धारणा को स्थापित करता है। जिससे कि बिक्री, खरीद और वितरण की एक समान आर्थिक तंत्र का निर्माण होता है जो कि संसाधनों को दुरुपयोग से बचाती है।
4. एक केंद्रीकृत संगठन के हित और उसके ध्येय के बारे में व्यापक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखती है तथा यह लक्ष्यों के कमजोर पड़ने, प्रयासों के दोहराव और परिणामों की विकृति से जुड़े जोखिमों को कम करती हैं।
5. यह संगठन में प्रशासनिक एकरूपता को स्थापित करती है जिसके माध्यम से पूरे देश में नीतियों, विधियों और तकनीकों के पालन में तथा कार्य के निष्पादन में समानता पायी जाती है।

6. एक केंद्रीकृत प्रणाली में शीर्ष प्रबंधन आवश्यक ज्ञान और परिपक्वता रखता है। इसीलिए केंद्रीकृत प्रणाली में एक परिपक्व शीर्ष प्रबंधन द्वारा प्रदान किया गया नेतृत्व उच्च गुणवत्ता वाला होता है।
7. यह संगठन के विभिन्न स्तरों पर उद्देश्यों की स्पष्टता और अधिकार की एकता को सुनिश्चित कर देता है। अतः संगठन में प्राधिकरण और निर्णय लेने के बारे में कोई भ्रम नहीं होता है।
8. एक केंद्रीकृत प्रणाली में विभिन्न इकाइयों और व्यक्तियों की गतिविधियों का समन्वय करना आसान है।
9. केंद्रीकृत प्रणाली त्वरित निर्णय लेने पर जोर देती है क्योंकि निर्णय लेने वाले निश्चित केंद्र होते हैं।
10. एक केंद्रीकृत प्रणाली व्यक्तिगत इकाइयों और भागों के संकीर्ण निहित स्वार्थ के बजाय संगठन के समग्र उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित करती है।

केन्द्रीयकरण के अवगुण :

1. यह शीर्ष स्तर पर कार्य के बोझ को बढाता है। इसमें कोई मध्य या निचला स्तर नहीं है जो शीर्ष प्रबंधन के कुछ सार्थक कार्यभार को साझा कर सकता है। नतीजतन शीर्ष प्रबंधन न तो काम की इस बड़ी मात्रा को संभाल सकता है और न ही प्रशासन पर प्रभावी नियंत्रण कर सकता है।
2. यह त्वरित निर्णय लेने और उनके कार्यान्वयन में बाधा डालता है जो लालफीताशाही और अन्य प्रशासनिक समस्याओं को जन्म देता है।
3. केंद्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली में स्थानीय स्थिति और परिस्थितियों का ज्ञान और अनुकूलन क्षमता

नहीं होती है। इसका ध्यान तो केवल एकरूपता पर है जो नीतियों के अयोग्य और दोषपूर्ण कार्यान्वयन का कारण बनता है।

4. केंद्रीकरण का अर्थ है शीर्ष पर अधिकार की एकाग्रता जो संगठन में एक कठोर, नौकरशाही और निरंकुश प्रणाली का निर्माण करती है। यह विशेष रूप से संगठन के नीचे के प्रतिभागियों के बीच पहल, उत्साह और गतिशीलता को हतोत्साहित करता है और उनकी प्रेरणा और मनोबल को गिराता है। ऐसा संगठन मानव संसाधनों का जानबूझकर उपयोग करने में विफल रहता है। यह संगठन में टीम भावना के अनुकूल नहीं है।
5. यह संगठन में तानाशाही को बढ़ावा देता है जो कि लोकतांत्रिक व्यवस्था की भावना के खिलाफ है।
6. एक केंद्रीकृत प्रणाली में बहुत से कर्मचारियों को नियंत्रण, निरीक्षण, खातों और लेखा परीक्षा के उद्देश्यों की आवश्यकता होती है जो बहुत महंगा है। केंद्रीकृत प्रणाली अर्थव्यवस्था और प्रशासन की दक्षता के लिए उपयुक्त नहीं है।

विकेन्द्रीयकरण की धारणा :
जिस तरह से केन्द्रीयकरण की अवधारणा संगठन के लिए अनेक गुणों व अवगुणों से सम्बन्धित होती है। ठीक उसी तरह से विकेन्द्रीयकरण की धारणा के भी अपने कुछ लाभ व हानियां होती है। विकेन्द्रीयकरण की धारणा किसी संगठन में लोकतंत्र को

स्थापित करने का सबसे बडा माध्यम है। यह संगठन में मानवीय सहयोग की आधारशिला होती है। इसके माध्यम से क्षेत्रीय और स्थानीय इकाईयों को निर्णयन का प्राधिकार मिलता है जो कि उनके क्षेत्रीय ज्ञान के माध्यम से समस्याओं के निदान में सार्थक भूमिका का निर्वहन करती है।

विकेंद्रीकरण का अभिप्राय :
विकेंद्रीकरण किसी व्यक्ति या इकाई के बीच प्राधिकरण के विस्तार या इसकी व्यापकता को दर्शाता है। विकेन्द्रीयकरण का अभिप्राय है स्वायत्त क्षेत्र और क्षेत्रीय कार्यालयों और निर्णय लेने की शक्तियों और कार्यकारी प्रतिनिधिमंडलों की स्थापना करना। विकेंद्रीयकरण का निहितार्थ यह है कि विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान परिस्थितियों और लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं में अंतर होता है। इसलिए यहाँ एक विकेंद्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली की आवश्यकता होती है जो क्षेत्र विशेष के लोगों की जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा कर सके।
एलेन के अनुसार, “विकेंद्रीकरण से तात्पर्य सभी स्तरों पर सभी प्राधिकरणों को निम्नतम स्तर पर सौंपने के व्यवस्थित प्रयास से है, जिसे केवल केंद्रीय बिंदुओं पर प्रयोग किया जा सकता है।
व्हाइट के अनुसार, ”विकेंद्रीकरण एक उच्च स्तर के संगठन से प्रशासनिक शक्ति के हस्तांतरण की प्रक्रिया होती है।”

विकेन्द्रीयकरण के गुण :

1. यह उच्च अधिकारियों के कार्यभार को कम करता है। अतः वे नीति व निर्णयन सम्बन्धी मामलों के लिए अधिक समय और ऊर्जा प्राप्त कर पाते है।
2. विकेंद्रीकरण क्षेत्र के अधिकारियों में निहित प्राधिकार के द्वारा कार्य के त्वरित निपटान को बढ़ावा देता है। उन्हें नियमित और विविध मामलों

के लिए उच्च अधिकारियों की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है।

3. यह प्रशासन में लोगों को भागीदारी के लिए अवसर प्रदान करता है जो लोकतंत्र को यथार्थवादी और व्यापक स्वरूप प्रदान करता है।
4. विकेंद्रीकरण प्रभावी पर्यवेक्षण और नियंत्रण को बढ़ावा देता है क्योंकि संचालन के क्षेत्र के निकट ही पर्यवेक्षण किया जाता है।
5. यह प्रशासन को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाता है। विकेंद्रीकृत प्रशासन स्थानीय लोगों की जरूरतों, आकांक्षाओं और समस्याओं को बेहतर ढंग से समायोजित कर सकता है।
6. विकेंद्रीकरण मानव और भौतिक संसाधनों के इष्टतम उपयोग की सुविधा प्रदान करता है क्योंकि यह लोगों में यह भावना पैदा करता है कि यह उनका अपना पैसा है जिसका उपयोग किया जा रहा है। यह लोगों के बीच नागरिकता और सामुदायिक कार्यों की बेहतर समझ उत्पन्न करता है।
7. यह विशेषकर निचले और मध्यम स्तर पर कर्मचारियों को अलग-अलग काम के लिए अधिकार और जिम्मेदारी सौंपकर उनके मनोबल और प्रेरणाओं को बढ़ाता है। यह उनके बीच एक टीम भावना का सर्जन करता है। यह उनके बीच नेतृत्व की भावना विकसित करता है जिससे कि उनकी प्रतिभा और कौशल का बेहतर उपयोग हो सकें।
8. यह संचार का एक बेहतर और प्रभावी सिस्टम विकसित करता है क्योंकि निर्णय उन स्तरों पर किए जाते हैं जहाँ नीतियाँ, कार्यक्रम और योजनाएं लागू होती हैं।

9. विकेंद्रीकरण प्रणाली दबावों और मतभेदों का बेहतर सामना कर सकती है। वे बेहतर स्थिति में संकट और परिस्थितियों का सामना कर सकते हैं क्योंकि वे जरूरतों और परिस्थितियों के अनुसार निर्णय ले सकते हैं।

विकेन्द्रीयकरण के अवगुण :

1. एक विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली में विभिन्न स्वायत्त इकाइयों के विविध लक्ष्यों, कार्यों और गतिविधियों का समन्वय करना मुश्किल है।
2. समान राष्ट्रीय नीति को बनाए रखना मुश्किल है।
3. स्थानीय अधिकारी राष्ट्रीय हितों की अनदेखी कर सकते हैं और व्यापक राष्ट्रीय हित और दृष्टि के बजाय क्षेत्रीय निहित समस्याओं और संकीर्ण निहित हितों को प्राथमिकता दे सकते हैं।
4. स्थानीय राजनीति विकेंद्रीकृत प्रणाली में स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप करती है जो स्थानीय प्रशासन में अक्षमता और भ्रष्टाचार पैदा करती है।

विकेंद्रीयकरण के प्रतिमान : जेम्स डब्ल्यू फस्लर ने विकेंद्रीकरण के विभिन्न दृष्टिकोणों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है।

1. **सिद्धान्तवादी या डॉक्ट्रीनल उपागम**
2. **राजनीतिक उपागम**
3. **प्रशासनिक उपागम और**
4. **दोहरी भूमिका का उपागम।**

1. विकेन्द्रीयकरण का सिद्धान्तवादी दृष्टिकोण : यह संगठनात्मक दक्षता और प्रभावशीलता प्राप्त करने के साधन

के रूप में व्यवहार करने के बजाय विकेंद्रीकरण को अपने आप में एक अंत के रूप में देखना चाहता है। यह दृष्टिकोण स्थानीय समुदायों जैसे कि कस्बे, छोटे शहर या गांव के सशक्तिकरण पर बल देता है। भारत में पंचायती राज को स्थानीय स्वायत्तता की एक प्राचीन परंपरा के रूप में माना जाता है। इस दृष्टिकोण लोगों को कार्यात्मक प्राधिकरण प्रदान करने और निर्णय लेने में सक्षम बनाकर उनका सषक्तिकरण करने के ध्येय से जुडा हुआ है। इस प्रकार से यह उपागम विकेंद्रीकरण को एक साधन के रूप में मानने के बजाय इसे अपने आप में एक साध्य मानता है।

2. विकेन्द्रीयकरण का राजनीतिक दृष्टिकोण : यह राजनीतिक स्वरूप वाला प्रतिमानर है। विकेंद्रीकृत इकाइयां बनाने और उनके स्वायत्त कामकाज के लिए उन्हें आवश्यक अधिकार प्रदान करने की इच्छा राजनीतिक रूप से तय की गई है। स्थानीय स्वशासन निकायों को स्थानीय स्तर पर स्वायत्त सरकार के रूप में स्थापित करने का प्रयास है। अतः स्थानीय सरकार बनाना और बनाए रखना एक प्रमुख राजनीतिक प्रतिबद्धता है। फेसलर ने इसे भ्रमपूर्ण विकेंद्रीकरण कहा है। उदाहरण के लिए भारत में स्थानीय निकायों को शक्ति का हस्तानान्तरण औपचारिक रूप से किया गया है, लेकिन इन निकायों को एक स्वायत्त संस्थान के रूप में काम करने के लिए आवश्यक वित, कार्य और कार्यप्रणाली प्रदान नहीं की गई है। इसी के साथ इन निकायों को संबंधित राज्य सरकारों द्वारा दृढ़ता से नियंत्रित या प्रभावित किया जाता है।

3. विकेन्द्रीयकरण का प्रशासनिक दृष्टिकोण : यह प्रतिमान कार्य व निर्णय की दक्षता और प्रभावशीलता के सिद्धांत पर आधारित है। क्षेत्रीय स्तर पर निर्णय लेने और शिकायतों के निवारण के लिए क्षेत्रीय प्रशासनिक इकाईयों की स्थापना करना विकेन्द्रीत प्रशासनिक प्रतिमान का आधार है। इस प्रक्रिया में कई प्रशासनिक इकाइयाँ स्थानीय प्रशासन और

केंद्रीय मुख्यालय के बीच स्थापित होती हैं। प्रशासन की बढ़ती जटिलता के मद्देनजर विशेष कार्यों के लिए अधिक से अधिक कार्यात्मक इकाईयों को कार्य करना होता है।

4. विकेन्द्रीयकरण की दोहरी भूमिका दृष्टिकोण : यह प्रतिमान परंपरा और परिवर्तन के बीच क्षेत्रीय प्रशासन में संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। फ़ेसलर के अनुसार मूल संघर्ष, कानून और व्यवस्था के रखरखाव के पारंपरिक कार्य और सामाजिक - आर्थिक विकास की प्रगति के बीच होता है। प्रशासनिक व्यवस्था के अधिकांश क्षेत्र का उदय उस समय हुआ जब प्रशासन का मूल उद्देश्य यथास्थिति बनाए रखना था। इस समय प्रशासन का मुख्य कार्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना तथा राजस्व संग्रहण करना हुआ करता था। हालांकि, कल्याणकारी राज्य की परिवर्तित अवधारणा ने इसकी प्रकृति को तीव्र सामाजिक-आर्थिक विकास की आवश्यकता की ओर उन्मुख कर दिया। यह प्रशासन में लोगों के सहयोग एवं सहभागिता तथा सामान्यज्ञ के साथ अधिनस्थों के कार्यात्मक प्रत्यायोजन और विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों के बीच समन्वय की धारणा को स्थापित करने की मांग करता है। इस प्रकार से यह प्रशासनिक प्रणाली को विकेंद्रीकृत, सहभागी और नवप्रवर्तनकारी स्वरूप में बदलने की तत्काल आवश्यकता पर बल देता है। प्रशासन का क्षेत्र संघर्ष समाधान के रूप में परिवर्तित परिस्थितियों में विकेंद्रीकरण के अनुकूलन की बात करता है।

विकेंद्रीकरण के प्रकार :

विकेंद्रीकरण चार प्रकार के होते हैं अर्थात्

1. **राजनीतिक,**
2. **प्रशासनिक,**
3. **राजकोषीय और**
4. **कार्यात्मक विकेंद्रीकरण।**

1. राजनीतिक विकेंद्रीकरण : राजनीतिक विकेंद्रीकरण उन प्रक्रियाओं को संदर्भित करता है जहाँ केन्द्र की राजनीतिक निर्णयन शक्ति और प्रकार्यों को सरकार के उच्च स्तर से नीचे के स्तर की ओर स्थानांतरित किया जाता है। स्थानीय लोगों के द्वारा संचालित संस्थाओ को स्थानीय शासन के लिए प्राधिकरण और कार्य सौंपे जाते हैं। ऐसा करने से स्थानीय संस्था की परिधि में रहने वाले लोगों को निर्णय लेने में अधिक भागीदारी के अवसर मिलने की संभावना रहती है। लोगों की अधिक भागीदारी से वैधता और सरकारों की राजनीतिक स्थिरता दोनों में अभिवृद्धि होती है। इसी के साथ बेहतर नीति निर्माण और संसाधनों के प्रभावी उपयोग के लिए भी जन भागीदारी आवश्यक होती है। भारत में 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन को लागू करना राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का ही भाग था।

2. प्रशासनिक विकेंद्रीकरण : जब एक राजनीतिक रूप से स्वतंत्र इकाई अपने संगठन के भीतर अधीनस्थ इकाइयों को अपनी शक्तियों और कार्यों का कुछ प्रतिनिधित्व प्रदान करती है तो उसे प्रशासनिक विकेन्द्रीयकरण कहा जाता है। प्रशासनिक विकेंद्रीकरण क्षेत्रीय अथवा कार्यात्मक दोनों स्वरूपों में हो सकता है। प्रादेशिक या क्षेत्रीय विकेंद्रीकरण का अर्थ क्षेत्रीय प्रशासनिक इकाइयों के निर्माण से जैसे कि संभाग इकाई, जिला इकाई, क्षेत्रों, जोन इकाई और वृत या सर्किल इकाईयों का निर्धारित सीमा में प्राधिकरण और जिम्मेदारी के साथ गठन करना।

3. राजकोषीय विकेंद्रीकरण : राजकोषीय विकेंद्रीकरण का अर्थ है सरकार के नीचे के स्तर तक वित्तीय शक्तियों का विचलन या हस्तानान्तरण करना। जब तक कर लगाने और राजस्व उत्पन्न या संग्रहण करने की शक्तियाँ निम्न इकाईयों को प्रदान नहीं की जायेंगी तब तक राजनीतिक

विकेंद्रीकरण केवल एक सपना ही रहेगा। स्थानीय सरकारे पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के अभाव में अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन नहीं कर सकती है। उदाहरण के लिए, स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और उनकी वित्तीय स्थिति को मजबूत करने के लिए उपाय सुझाने के लिए 73 वें और 74 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान है। भारत में पंचायती राज के सफल नहीं हो पाने के कारणों में से एक है अपर्याप्त वित्तीय शक्ति। पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों की स्वायत्तता पर स्थिति रिपोर्ट (2000) से पता चलता है कि केरल को छोड़कर, भारत के किसी भी राज्य ने अपने संबंधित कृत्यों का संचालन करते हुए वित्तीय विकेंद्रीकरण के लिए अपेक्षित स्थान नहीं दिया गया है।

4. कार्यात्मक विकेंद्रीकरण : कार्यात्मक विकेंद्रीकरण से तात्पर्य केंद्र या राज्य सरकार से स्थानीय निकायों को कार्य सौंपे जाने से है, ताकि उन्हें सौंपे गए कार्यों और जिम्मेदारियों का निर्वहन करने में सक्षम बनाया जा सके। उदाहरण के लिए, भारत में 73 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा पंचायती राज को 29 कार्य प्रदान किये गए है लेकिन सच्चाई क्या है? यह सब जानते है। वास्तव में अभी भी भारत जैसे विकासशील देशों में पंचायती राज अथवा स्थानीय स्वशासन में बहुत अधिक सुधार की आवश्यकता है।

नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण

(Control and Supervision)

नियंत्रण

(Control)

नियंत्रण औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है। औपचारिक का अर्थ है जो कानूनी रूप से निर्धारित होता है अथवा उसकी संरचना नियमों के साथ जुडी हुई होती है। अतः नियंत्रण का वह स्वरूप जो कि निर्धारित चैनलों द्वारा नियमों और प्रक्रियाओं के माध्यम से किया जाता है। औपचारिक नियंत्रण आंतरिक अर्थात् संगठन के भीतर से और बाह्य अर्थात् संगठन के बाहर से हो सकता है। इसके विपरीत अनौपचारिक नियंत्रण प्रणाली वह है जो कानूनी रूप से निर्धारित नियमों और प्रक्रियाओं के भीतर और उसके अनुसार काम नहीं करती हैं। मीडिया, जनमत, पेशेवर आचार संहिता आदि अनौपचारिक नियंत्रण के प्रमुख उपकरण हैं।

I. औपचारिक आंतरिक नियंत्रण : आंतरिक नियंत्रण वह है जो संगठन के भीतर ही प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह प्रशासनिक मशीनरी में निहित है और अपने कामकाज की प्रक्रिया के दौरान स्वचालित रूप से व्यायाम करता है। आंतरिक नियंत्रण के मुख्य उपकरण निम्नलिखित है :-

1. संगठन की पदसोपानीय संरचना : किसी संगठन की पदसोपानीय संरचना संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों के वरिष्ठ-अधीनस्थ के सम्बन्धों को दर्शाती है। प्राधिकरण की रेखा सता के प्रवाह को उपर से नीचे की प्रवाहित करती है। प्रत्येक कार्मिक अपने स्तर पर किये जाने वाले कार्यों के लिए जिम्मेदार और जवाबदेय होता है। उच्चस्थों के द्वारा अधिनस्थों को आदेश-निर्देश दिये जाते है। इसमें आदेश की एकता, तदनुरूपता और उचित माध्यम के नियमों की अनुपालना की जाती है।

2. नियम और प्रक्रियाएं : प्रत्येक सार्वजनिक संगठन कुछ नियमों के अनुसार संचालित होता है। वह कुछ नियमों और प्रक्रियाओं को पूरा करता है जो

प्रशासनिक अधिकारियों को उनके प्रशासनिक दायित्वों का निर्वहन करने के उद्देश्य से स्थापित की जाती है। इनके माध्यम से ही कानुन के ष्ासन की अवधारणा को संगठन के भीतर स्थापित किया जाना संभव हो पाता है।

3. बजट या वितीय संसाधन : बजट किसी भी संगठन के लिए आर्थिक धुरी होता है। इसके अभाव में किसी भी संगठन का संचालन असंभव होता है। राज्य के विविध संगठनों के लिए विधायिका के द्वारा निर्धारित मदों के लिए निर्धारित बजट का आवंटन किया जाता है। यह वितीय आंवटन कार्य विषेषीकरण के सिद्धान्त पर आधारित होता है। इसमें बिना सक्षम प्राधिकार के बदलाव करनो आसान नहीं होता हैं। बजट किसी भी संगठन को नियंत्रित करने का सबसे प्रभावी आन्तरिक उपकरण होता है।

4. विशिष्ट लक्ष्य : प्रत्येक संगठन के अपने पूर्वनिर्धारित ध्येय होते है जिनकी प्राप्ति के लिए संगठन के माध्यम से संगठन के कार्मिक प्रतिबद्ध होते है। यद्यपि यह कार्मिकों के लिए थोडा कठिन होता है फिर भी इन्हें प्राप्त करने की चुनौती होती है। जिसके कारण संगठन पर एक सीमा तक दबाव होता है। अतः निर्धारित ध्येय भी संगठन के लिए नियंण का कार्य करता है।

5. आवधिक प्रतिवेदन : कार्यकारी अभिकरणों को निर्धारित समयावधि में अपने कार्य का मूल्यांकन प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है। इसके माध्यम से अधिनस्थ कार्मिक अपने से उच्चस्थ अधिकारियों के प्रति जवाबदेय होते है और यदि इस प्रतिवेदन में किसी प्रकार की त्रुटि रह जाती है तो प्रतिवेदन को तैयार करने वाले कर्मचारियों से इसका स्पष्टीकरण भी मांगा जा सकता है। इसी के साथ ऐसा मुल्यांकन प्रतिवेदन मुख्य कार्यकारी के माध्यम से विधायिका में भी पुरः स्थापित किया जा सकता है।

6. निरीक्षण : किसी संगठन के द्वारा प्रस्तुत कार्यकारी प्रतिवेदन के अलावा भी उच्चस्थ प्राधिकारियों के द्वारा समय-समय पर औचक निरीक्षण के माध्यम से भी आंतरिक नियंत्रण रखा जा सकता है। निरीक्षण के माध्यम से यह मालूम करना आसान हो जाता है कि संगठन की कार्यप्रणाली निर्धारित नियमों और प्रक्रियाओं के तहत संचालित हो रही है या नहीं।

II. संगठन पर औपचारिक बाहरी नियंत्रण : संगठनों पर केवल आन्तरिक नियंत्रण ही नहीं होता है अपितु बाहरी नियंत्रण भी होता है। आमतौर पर बाहरी नियंत्रण की संरचनाएं भी संविधान अथवा नियमों के माध्यम से ही स्थापित या निर्धारित होती है। इन संस्थाओं में राजनीतिक प्रतिनिधि या कार्यकारी, विधायिका और न्यायपालिका को प्रशासनिक संगठनों पर बाहरी नियंत्रण के लिए लगभग समस्त राजनीतिक दूनिया में स्वीकार्यता प्रदान की गई है। राजनीतिक विकास की प्रक्रियाओं के साथ बाह्य नियंत्रण के अनेक कार्यकारी अभिकरणों का भी विकास हुआ है। जैसे कि लोकपाल, नागरिक अधिकार प्रप़त्र व अनेक नियामकीय अभिकरण।

1. राजनीतिक कार्यकारी या प्रतिनिधी का निंयत्रण : किसी देश का प्रशासनिक ढांचा विभागों में संगठित होता है, जिसमें से प्रत्येक एक या दूसरे मंत्री के अधीन काम करता है। संबंधित विभागों से संबंधित सभी प्रशासनिक शक्तियां संबंधित मंत्री में निहित होती है, जो संबंधित विभाग से संबंधित सभी नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रशासनिक अधिकारी इन नीतियों और कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए संबंधित मंत्री के लिए जिम्मेदार होते हैं तथा मंत्री विधायिका या राजनीतिक कार्यपालिका और अप्रत्यक्ष रूप से देश के लोगों के लिए जिम्मेदार होते हैं।

2. विधायिका का नियंत्रण : सामान्यतया राज्यों की शासन प्रणालियों में प्रयाप्त विभिन्नताएं पायी जाती है तथापि लगभग सभी प्रणालियों के अन्तर्गत विधायिका के द्वारा प्रशासनिक संगठनों पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। सामान्यतया लोकतांत्रिक प्रणाली में जनता के सदन का स्थायी कार्यपालिका या प्रशासन पर नियंत्रण होता है। संगठन संचालन के नियमों का अन्तिम निर्णय विधायिका के द्वारा ही किया जाता है। उसी के द्वारा कानूनों का निर्माण किया जाता है अथवा इनका अनुमोदन किया जाता है। बजट विधायिका के द्वारा ही पारित किया जाता है। अतः यह प्रशासनिक संगठनों पर वितीय नियंत्रण भी स्थापित करती है। इसी के साथ समिति प्रणाली के माध्यम से भी नियंत्रण को बनाए रखा जाता है। भारत में इसके लिए लोक लेखा समिति प्रसिद्ध है।

3. न्यायतंत्र का नियंत्रण : किसी भी देश की शासन प्रणाली के नियमानुसार संचालन में न्यायपालिका की अहम भूमिका होती है। न्यायिक तंत्र लोकतांत्रिक प्रणाली, संविधान और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के महत्वपूर्ण उतरदायित्व का निर्वहन करता है। उसके पास विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया से लेकर विधि की उचित प्रक्रिया तक की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्तियाँ होती है। न्यायिक सक्रियतावाद की धारणा ने इसे ओर अधिक मजबूत बनाया है।

4. लोकपाल : स्वीडन दूनिया का वह पहला राज्य था जिसने सर्वप्रथम 1809 ई में लोकपाल की व्यवस्था को एक नियंत्रणकारी तंत्र के रूप में स्वीकार किया। यह आज पूरी दूनिया में एक लोकप्रिय संस्था बन गई है। यद्यपि इसे विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। यह प्रशासनिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं विकृत तंत्र को नियंत्रित करने और नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में प्रभावी भूमिका निभाई है।

5. नियामकीय निकाय :
ऐसे अभिकरण किसी क्षेत्र विशेष कार्य करने हेतु स्वायतता के साथ सरकारी अनुमति से ही स्थापित निकाय होते है। ऐसे नियामकीय अभिकरण कुछ मामलों में अर्ध-न्यायिक शक्तियों को भी धारण करती है। इन अभिकरणों के द्वारा निर्धारित क्षेत्रों में कार्यरत संगठनों की कार्यप्रणाली, उनके द्वारा प्रस्तुत सेवाओं की गुणवता, सेवाप्रदाताओं और उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने, निर्धारित नियमों व मानकों की अनुपालना करवाने, अनुशासनात्मक कार्यवाही करने सम्बन्धी गतिविधियों का संचालन किया जाता है। भारत में इरडा,(IRDA) सेबी (SEBI) और ट्राई (TRAI) इत्यादि तथा अमेरिका में संयुक्त राज्य वाणिज्य आयोग, ब्रिटेन में ऑफकोम जैसे नियामकीय अभिकरणों के ही उदाहरण है।

6. सिटिजन चार्टर :
एक चार्टर सेवा वितरण, शिकायत निवारण तंत्र, पारदर्शिता और जवाबदेही के मानक, गुणवत्ता और समय-सीमा के प्रति एक संगठन की प्रतिबद्धता का प्रतिनिधित्व करता है। यह लोगों को संबंधित संगठन के बारे में यह जानकारी सहजता से उपलब्ध कराता है कि कैसे कोई अपने अधिकारियों से संपर्क कर सकता है, सेवाओं के माध्यम से क्या उम्मीद कर सकता है और अगर कुछ गलत हो जाता है तो कैसे उसका समाधान खोजा जा सकता है। यह पहल उन समस्याओं को हल करने की खोज की प्रतिक्रिया है, जिनका सामना एक नागरिक सार्वजनिक सेवाओं को प्रदान करने वाले संगठनों के साथ काम करते हुए प्रतिदिन करता है। नागरिक चार्टर को 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री जॉन मेजर द्वारा राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में शुरु किया गया। यह एक ब्रिटिश राजनीतिक पहल है जिसका उद्देश्य देश के लोगों के लिए सार्वजनिक सेवाओं की गुणवत्ता में लगातार सुधार करना है ताकि ये सेवाएं जरूरतों का जवाब दें या उनकों पूर्ण करे और उपयोगकर्ताओं को संतुष्टि प्रदान करे।

III. अनौपचारिक नियंत्रण :

औपचारिक नियंत्रण तंत्र के विपरीत, अनौपचारिक नियंत्रण प्रणाली वे हैं जो कानूनी रूप से निर्धारित नियमों और प्रक्रियाओं के भीतर और उसके अनुसार काम नहीं करते हैं। मीडिया, जनमत, पेशेवर आचार संहिता आदि अनौपचारिक नियंत्रण के प्रमुख उपकरण हैं।

1. जनमत :
लोकतंत्र में नागरिक परोक्ष रूप से सार्वजनिक संगठनों पर नियंत्रण रखते हैं। नागरिकों की ओर से चुने हुए प्रतिनिधि प्रशासन पर नियंत्रण रखते हैं और वे बदले में जनता के प्रति जवाबदेह होते हैं। इसके अलावा गंभीर प्रशासनिक खामियों के कारण लहर आती है जिसे कोई भी सार्वजनिक संगठन नजरअंदाज करने की हिम्मत नहीं कर सकता है।

2. मीडिया :
यह ठीक ही कहा गया है कि मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। यह प्रशासनिक विफलताओं पर कड़ी नजर रखता है और इस प्रकार यह सार्वजनिक संगठनों पर नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण उपकरण है और इस तरह से यह लोकतंत्र को मजबूत करने का भी कार्य करता है। मीडिया प्रशासनिक विफलताओं के मुद्दों को उठाता है, उन्हें उजागर करता है और इस प्रकार जनमत के गठन का एक महत्वपूर्ण साधन है।

3. प्रशासनिक नैतिकता :
प्रत्येक पेशा कुछ मूल्यों को विकसित करता है और मूल्यों के इस समूह को उस पेशे की नैतिकता की संहिता कहा जाता है। सभी प्रशासनिक अधिकारियों को अनौपचारिक रूप से मूल्यों के इस सेट के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि करने और व्यवहार में इन मूल्यों का पालन करने की आवश्यकता होती है। भले ही यह आचार संहिता स्वैच्छिक है, यह सामाजिक और समूह नियंत्रण के एक प्रभावी तंत्र के रूप में कार्य करता है।

पर्यवेक्षण
(Supervision)

पदानुक्रमित संगठनों में लोगों को वरिष्ठ-अधीनस्थ पदों पर रखा जाता है। हर कोई जो अधीनस्थ सीढ़ी के अधीनस्थ है उनके पास उन्हें निर्देशित करने और उनके काम की निगरानी करने का अधिकार है। इसका कारण यह है कि वरिष्ठ अधिकारी अधीनस्थों के काम के लिए जिम्मेदार होते हैं जो उच्च पदानुक्रम के साथ-साथ अंततः संगठन के प्रमुख के लिए होते हैं। पर्यवेक्षण एक व्यापक शब्द है और इसकी प्रकृति, रूप और सीमा अलग-अलग है।

एक पर्यवेक्षक के कौशल और योग्यता : पर्यवेक्षण में दूसरों के कार्य को निर्देशित करना, कार्यभार आवंटित करना, योजना और समय-निर्धारण करना, निर्देश देना और कार्यों की निगरानी करना, अनुशासन बनाए रखना, जिम्मेदारी लेना और अंततः किए गए कार्यों के लिए जवाबदेह ठहराया जाना शामिल है। पर्यवेक्षण के कार्य को प्रभावी ढंग से करने के लिए, पर्यवेक्षक के पास कुछ कौशल होने चाहिए। एक पर्यवेक्षक के लिए आवश्यक विभिन्न कौशल और गुण निम्न है :-

उपादेय कौशल : पर्यवेक्षक के पास काम के विभिन्न पहलुओं की गहन जानकारी और समझ होनी चाहिए जिसकी उसे देखरेख करनी है। जब तक पर्यवेक्षक को काम के तकनीकी विवरण के साथ अच्छी तरह से बातचीत नहीं की जाती है, तब तक वह अपने काम के प्रदर्शन में अधीनस्थों का मार्गदर्शन करने और उनकी सहायता करने में सक्षम नहीं होगा।

संस्थागत कौशल : पर्यवेक्षक को दृष्टि, मिशन, नीतियों, नियमों और विनियमों,

संगठन की प्रक्रियाओं के साथ-साथ अधीनस्थों की ताकत और कमजोरियों का भी पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। संगठनात्मक मानदंडों और मूल्यों के इस तरह के ज्ञान की अनुपस्थिति में, पर्यवेक्षक काम की योजना बनाने और अधीनस्थों को कर्तव्य सौंपने में सक्षम नहीं होगा।

व्यक्तिगत कौशल :
हालांकि पर्यवेक्षक के पास औपचारिक अधिकार है और वह काम पूरा करने के लिए इसे प्रयोग में ले सकता है परन्तु हॉथोर्न प्रयोगों से पता चला है कि इसकी सीमित उपयोगिता है। मैरी पार्कर फोलेट ने भी देखा कि अधीनस्थ उनके ऊपर अधिकार का प्रयोग करते हैं; वास्तव में, उसने कानून की स्थिति की अवधारणा को प्रतिपादित किया और आदेशों के मतेवद प्रतिरूपण की आवश्यकता पर प्रकाश डाला ताकि अधीनस्थों को निर्देशों का पालन करने के लिए स्व-प्रेरित किया जा सके। इस प्रकार, "एक पर्यवेक्षक को स्वभाव से मानवीय, सहानुभूतिपूर्ण और विचारशील होना चाहिए और प्रभावी मानव संबंधों की कला के पास होना चाहिए।"

इन कारकों का महत्व पर्यवेक्षण के स्तर और काम के प्रकार और लोगों की निगरानी के साथ भिन्न होता है। "इस प्रकार, तकनीकी जानकारी के साथ परिचित एक प्रथम-पंक्ति पर्यवेक्षक के लिए अधिक महत्वपूर्ण है जो उच्चतर है जिनकी बात तकनीकी क्षमता के बजाय प्रशासनिक होनी चाहिए। कार्यालय के काम में, पर्यवेक्षक के लिए संगठन की नीतियों और प्रक्रियाओं के साथ परिचित अपरिहार्य है। मानव कारक ... सभी स्तरों पर महत्वपूर्ण है, लेकिन उच्चतर लोगों पर ऐसा है। "

पर्यवेक्षण की तकनीक :

1. पूर्व अनुमोदन :
प्रत्येक अधिकारी निर्दिष्ट समय सीमा के साथ कार्य की एक विस्तृत योजना तैयार करता है जिसमें उसी को पूरा करना होता है और वरिष्ठ / एस द्वारा अनुमोदित होने के लिए उसे जमा करना

होता है। कार्य की विस्तृत योजना को अनुमोदित करते समय, पर्यवेक्षकों को कार्य के किसी भी पहलू को संशोधित करने या संशोधित करने या हटाने का अवसर मिलता है, जो संगठनात्मक मानदंडों के अनुरूप नहीं हैं। इसके अलावा, अधीनस्थ पर्यवेक्षक द्वारा अनुमोदित कार्य योजना से विचलित नहीं कर सकते हैं। इसके अलावा पर्यवेक्षण की प्रक्रिया आसान हो जाती है क्योंकि पर्यवेक्षक वास्तविक कार्य प्रदर्शन के साथ कार्य योजना की तुलना कर सकता है। इसके अलावा, समय रेखा का भी स्वचालित रूप से पालन किया जाता है और कार्य योजना की विभिन्न गतिविधियों के लिए समय सीमा के रूप में पालन किया जाता है।

2. सेवा मानक : सेवा मानकों की स्थापना पर्यवेक्षण का एक और महत्वपूर्ण उपकरण है। पर्यवेक्षकों ने सेवा के गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों मानकों को निर्धारित किया है जो काम के प्रदर्शन के दौरान संतुष्ट होना चाहिए। कार्य योजना, नियमावली की लिखित प्रक्रिया, लिखित और मौखिक निर्देश, कर्मचारियों की बैठकें और प्रशासनिक अनुगमन ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा श्रमिकों को अनुमानित करने के प्रयास के लिए सेवा मानक स्थापित किए जाते हैं।

3. बजट आवंटन : बजट आवंटन के माध्यम से गतिविधियों के विभिन्न पहलुओं को बनाया जाता है, अर्थात, यह पहले से ही तय किया जाता है कि काम के विभिन्न पहलुओं के प्रदर्शन के लिए कितना खर्च किया जाना है। अधिकारियों को बजटीय आवंटन के भीतर कार्य करना आवश्यक है। यदि आवंटित धन अपर्याप्त है, तो पर्यवेक्षक / प्राधिकृत उच्चतर को उच्च आवंटन के लिए या पुनः विनियोजन के लिए प्राधिकरण प्राप्त करने के लिए संपर्क किया जा सकता है।

4. मुख्य अधीनस्थ कार्मिक की नियुक्ति या आवंटन : विशेषज्ञता आधुनिक संगठनों में सफलता की कुंजी हैं और काम के प्रभावी प्रदर्शन के लिए ऐसे विशेषज्ञों को काम के उपयुक्त

पहलू पर नियुक्त करना आवश्यक है। यह प्रशासन का उच्च पायदान है जो ऐसे अधिकारियों को निचली पायदानों पर भर्ती करने या उन्हें पहले से मौजूद मानव संसाधन से उन्हें आवंटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5. प्रतिवेदन प्रणाली : सभी अधीनस्थों को अपने प्रदर्शन की समय-समय पर अपने संबंधित पर्यवेक्षकों को रिपोर्ट करने की आवश्यकता होती है। पर्यवेक्षकों को काम की प्रगति के बारे में जानने का अवसर प्रदान करने के अलावा उनके अधीनस्थ, रिपोर्टिंग प्रणाली भी पर्यवेक्षकों को उन कठिनाइयों को जानने में सहायता करती है जो अधीनस्थों को कार्य के प्रदर्शन में सामना करना पड़ सकता है। इससे पर्यवेक्षक अधीनस्थों के बचाव में आ सकते हैं और जरूरत पड़ने पर कार्य योजना में संशोधन भी कर सकते हैं।

6. निरीक्षण प्रणाली : कभी-कभी तथ्यों को रिपोर्टिंग प्रणाली के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। वे भ्रामक जानकारी भी दे सकते हैं। यह कार्य स्थल के निरीक्षण की आवश्यकता है।

समन्वय
(Coordination)

हेनरी फेयोल ही वह पहला प्रबन्धकीय चिंतक था जिसने पहली बार समन्वय के बारे में लिखा। इसे बाद में लूथर गुलिक और उर्विक द्वारा एक स्टाफ पेपर के रूप में ब्राउनलो समिति को प्रस्तुत किया गया। इस समिति के सदस्य के रूप में गुलिक ने बताया कि मुख्य कार्यकारी का कार्य क्या है? और वह क्या करता है? इन प्रश्नों का जवाब खोजने के लिए गुलिक ने संक्षिप्त स्वरूप

में पोस्डकॉर्ब प्रतिमान का प्रतिपादन किया है। अतः इन सात प्रकार्यो या सिद्धान्तों में से एक है समनव्य। यह वास्तविक स्वरूप में विभिन्न इकाईयों या संगठन के भागों के बीच सहयोग को स्थापित करने का मुल आधार होता है। एक सकारात्मक अर्थ मे समन्वय का उद्देश्य संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों के बीच सहयोग और टीम वर्क की भावना को स्थापित करना है। समन्वय के बिना संगठन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। समन्वय संगठन के महत्वपूर्ण सिद्धांतों में से एक है। समन्वय की अनुपस्थिति में संगठन में भ्रम या अराजकता उत्पन्न होती है। समनव्य को प्रबन्धन का ह्ृदय कहा जाता है। इसके माध्यम से संघर्ष की स्थिति को समाप्त करके इसे सहयोग के स्वरूप में बदला जाता है।

समन्वय की परिभाषा :

मैरी पार्कर फोलेट के अनुसार ''समनव्य एक स्थिति के सभी कारकों से संबंधित होता है।'' सेक्लर हडसन के अनुसार ''समनव्य किसी कार्य के विभिन्न भागों से संबंधित कर्तव्यों के निर्वहन से सम्बन्धित होता है।'' अतः यह कहा जा सकता है कि समन्वय व्यवस्था स्थापित करने का माध्यम होता है जिससे कि संगठन के सभी भाग बिना किसी दोहराव, अंतराल और संघर्ष के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सके। इसी के साथ हमे यह भी ध्यान रखना होगा कि समनव्य और सहयोग एक-दूसरे से भिन्न होते है। सहयोग का अभिप्राय किसी व्यक्ति के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को कार्य में किये जाने वाले ऐच्छिक योगदान से होता है जबकि समनव्य भिन्न इकाईयों या समूहों के द्वारा किये जाने वाले कार्यो में तालमेल स्थापित करने से है। जिससे कि एक ही कार्य को बार-बार नहीं किया जाए तथा कार्य करने वाली इकाईयों के बीच संघर्ष उत्पन्न नहीं हो।

समन्वय के प्रकार :

सामान्यत: समनव्य के चार प्रकार होते है :-

1. **आंतरिक या प्रकार्यात्मक समनव्य (Internal or Functional) :**
2. **बाहरी या संरचनात्मक समनव्य (External or Structural) :**
3. **लम्बात्मक समन्वय (Vertical Coordination) :**
4. **क्षैतिजीय समन्वय (Horizontal Coordination) :**

1 आंतरिक समन्वय : यह किसी संगठन में कार्य करने वाले व्यक्तियों के व्यक्तिगत कर्तव्यों के समन्वय से संबंधित है। दोनों लंबवत और क्षैतिज रूप से कार्य करता है।

2. बाहरी समन्वय : बाहरी समन्वय विभिन्न संगठनात्मक इकाइयों की गतिविधियों के समन्वय से संबंधित है।

3. रेखात्मक समन्वय : वह होता है जो एक विभाग में मौजूद होता है जहाँ विभागीय प्रमुख को उसके नीचे रखी गई सभी गतिविधियों को समन्वित किया जाता है।

4. क्षैतिजीय समन्वय : यह समकक्ष इकाईयों, प्राधिकारियों के बीच सम्पादित होता है।

समन्वय की आवश्यक विशेषताएं :

1. यह प्रबंधन के प्रमुख कार्यों में से एक है। यह संगठनात्मक प्रबंधन में एक स्थायी प्रक्रिया है।
2. यह व्यक्तिगत प्रयास का उल्लेख नहीं करता है। यह एक समूह प्रयास है।
3. यह एक समूह प्रयास में प्रवेश करता है, लेकिन एक व्यक्तिगत प्रयास नहीं।

4. यह संगठन के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एकजुट कार्रवाई को संदर्भित करता है
5. इसका उद्देश्य संगठन के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति करना होता है।

समन्वय के चार महत्पवपूर्ण तत्व :

1. **सहयोग :** किसी भी संगठन के अन्तर्गत एवं बाहर अनेक प्रकार के संगठन, उप संगठन, विभाग, खण्ड़, उप खण्ड़ जैसी अनेक इकाईयां होती है। इन सबके बीच किसी भी कार्य के सही सम्पादन के लिए समनव्य होना अपरिहार्य होता है। इसी के साथ संगठन के कार्मिकों उच्चस्थों एवं अधिनस्थों तथा समकक्षों के बीच भी समनव्य होना अति आवश्यक होता है।
2. **अच्छे मानवीय संबंध** : कोई भी संगठन केवल मशीनी संगठन ही नहीं होता है अपितु मानव सम्बन आंदोलन के अनुसार वह एक मानवीय संगठन भी होता है। इसलिए यह अपरिहार्य है कि कार्मिकों के बीच परस्पर अच्छे मानवीय सम्बन्धों का विकास हो।
3. **समझ :** कोई भी संगठन और उसके कार्मिक संगठन के ध्येय के बारे में, अपने कार्यों के बारे में, उतरदायित्वों के बारे में जितनी अधिक समझ रखते है संगठन उतनी ही सरलता से अपने ध्येय को प्राप्त करने में सफल होता है।
4. **संचार :** किसी भी संगठन की विविध इकाईयों एवं कार्मिकों के बीच सम्प्रेषण होना अति आवश्यक होता है। बिना सम्प्रेषण के कोई भी कार्य सम्पादित नहीं हो सकता है।

समन्वय की तकनीक :
मैरी पार्कर फोलेट ने समन्वय स्थापित करने की निम्नलिखित तकनीकों का उल्लेख किया है :-

1. संगठन में जिम्मेदार व्यक्तियों के बीच सीधे संपर्क द्वारा समन्वय प्राप्त किया जा सकता है।
2. प्रत्यक्ष अंतर-व्यक्तिगत क्षैतिज संबंधों और प्रत्यक्ष व्यक्तिगत संचार द्वारा भी समन्वय आसानी से प्राप्त किया जा सकता है जिससे विधियों, कार्यों और उद्देश्यों की अंतिम उपलब्धि के बारे में सहमति होती है।
3. योजना और नीति-निर्माण के शुरुआती चरणों में समन्वय हासिल किया जा सकता है।
4. समन्वय एक सतत प्रक्रिया है।
5. समन्वय का आदेश नहीं दिया जा सकता है अपितु इसे प्रयासों के माध्यम से स्थापित किया जाता है।

किसी संगठन में समन्वय के सिद्धान्त को प्रभावी स्वरुप में लागू करने के लिए निम्नलिखित चरणों को अपनाया जा सकता है :-

1. सरलीकृत संगठनः
यदि संगठन के स्वरुप को बहुत ही सरल स्वरुप में रखा जाता है तो समन्वय स्थापित करने में बहुत आसानी रहती है इसकी अपेक्षा अत्यधिक पदसोपानीय स्वरुप प्रदान करने अथवा अत्यधिक विशेशज्ञता के कारण समन्वय में कठिनईया उत्पन्न होती है।

2. सामंजस्यपूर्ण क्रमबद्ध और नीतियांः
वैज्ञानिक स्वरुप में स्थापित योजनाओं के साथ समन्वय की संभावना अधिक रहती है। अंतराल विहीन स्थिर एवं एकीकृत योजनाएं समन्वय के लिए अधिक प्रभावी होती है।

3. संचार प्रणालीः
उचित समन्वय के लिए संगठन में प्रभावी संचार प्रणाली की

आवश्यकता होती है। योजनाओं और कार्यक्रमों की तैयारी के लिए सूचना के बेहतर संचार और आवश्यक समायोजन की आवश्यकता होती है।

4. स्वैच्छिक सहयोगः संगठन के सदस्यों के बीच अनौपचारिक संपर्क करने की नीति समन्वय को प्रभावी बनाती है। अनौपचारिक संचार के माध्यम से संगठन के कर्मचारियों के बीच टीम वर्क की भावना उत्पन्न होती है। संगठन में विभिन्न इकाइयों के सदस्यों के बीच समन्वय सुनिश्चित करने के लिए निकट संपर्क बनाए रखना चाहिए।

5. पर्यवेक्षण के माध्यम से समन्वय : संगठन में इकाइयों के प्रमुख पर्यवेक्षकों के रूप में कार्य कर सकते हैं। जिन संगठनों में कार्यकारी मुखिया के पास अधिक कार्य होता है वे अपने अधिनस्थों की सहायता ले सकते है।

6. योजना के माध्यम से समन्वयः समन्वय प्राप्त करने के लिए योजना भी एक प्रकार का उपकरण है। नियत अवधि के भीतर निर्धारित लक्ष्यों या योजनाबद्ध लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नियोजन, साधनों, धन और सामग्री संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने की आवश्यकता है।

7. संगठनात्मक तकनीकः संगठनात्मक तकनिकों के अन्तर्गत समितियां, सम्मेलन, बैठकें, सेमिनार, पैनल, संगोष्ठी, अंतर-विभागीय बैठकें, कर्मचारी इकाइयाँ, समन्वयकारी अधिकारी इत्यादि को शामिल किया जाता है।

8. प्रक्रियाओं और विधियों का मानकीकरणः संगठन में रखी गई प्रक्रियाएं और इसमें काम करने वाले लोग दोहराए जाने वाले कार्यों का निर्वहन करते हैं जिन्हें मानकीकृत माना जाता है। प्रपत्र प्रक्रियाओं के मानकीकरण के सर्वोत्तम उदाहरणों में से एक हैं। समन्वय प्राप्त करने के लिए नियमावली,

नियम और कानून को भी उपकरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

समन्वय की बाधाएं :-

लूथर गुलिक के अनुसार समन्वय के लिए निम्न बाधाएं होती है :-

1. भविष्य की अनिश्चितता बड़े पैमाने पर व्यक्तियों और लोगों के व्यवहार से संबंधित होती है।
2. नेताओं और उनके भ्रमित और परस्पर विरोधी विचारों और उद्देश्यों के बीच ज्ञान, अनुभव, ज्ञान और चरित्र की कमी का होना।
3. बड़ी संख्या में चर शामिल हैं और मनुष्य और जीवन के बारे में मानव ज्ञान की अपूर्णता।
4. प्रशासनिक कौशल और तकनीकों की कमी।
5. नए और विकसित तरीकों और विचारों को पूर्ण करने और अपनाने के क्रमबद्ध तरीकों की कमी का होना।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

प्रत्यायोजन

(Delegation)

प्रत्यायोजन का अभिप्राय है किसी विशेष कार्य की सिद्धि के लिए किसी अधिकारी द्वारा अधिनस्थों या समकक्षों को अधिकार प्रदान करना। यह सतत् का लिखित, मौखिक, अस्थायी, अल्प या दीर्घकालीन हस्तानांतरण होता है। इसका अर्थ है कि एक उच्च अधिकारी के द्वारा निम्न प्राधिकारी को सता सौंपना।

प्रत्यायोजन का अभिप्राय : यह किसी व्यक्ति द्वारा अपने एजेंट या अधीनस्थ को अधिकार का विचलन, पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अपने अधिकार के अधीन है। इसका तात्पर्य यह है कि कानूनी रूप से प्रत्यायोजित प्राधिकरण प्रतिनिधि को सौंपने वाले व्यक्ति से संबंधित है। टेरी के शब्दों में, "प्रत्यायोजन का अर्थ है एक कार्यकारी या संगठन इकाई से दूसरे में प्राधिकरण का प्रतिनिधित्व करना।" इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्यायोजन अनिवार्य रूप से उच्चतर से निम्नतर प्राधिकारी या श्रेष्ठ से अधीनस्थ के अधिकार का विचलन नहीं है। दूसरे शब्दों में, प्रत्यायोजन न केवल उच्च से निचले स्तर तक विचलन है और यह निम्न से उच्चतर प्राधिकारी या समान अधिकारियों के बीच हो सकता है। इसलिए, प्रत्यायोजन को कार्य या जिम्मेदारी के एक हिस्से और दूसरे को अधिकार और प्रदर्शन के लिए प्रशासनिक जवाबदेही के निर्माण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

प्रत्यायोजन की विशेषताएँ :

1. प्राधिकार के स्थानान्तरण की प्रक्रिया होने के कारण प्रतिनिधि को निर्धारित सीमाओं के भीतर कार्य करना पड़ता है।
2. प्रत्यायोजन में एक दोहरा चरित्र होता है। इसका मतलब है कि एक बेहतर अधिकारी अधीनस्थ को अधिकार सौंपता है लेकिन साथ ही साथ वह अपने अधिकार को बनाए रखता है।
3. प्रत्यायोजन हमेशा आंशिक होता है। कोई भी उच्चस्थ अधिकारी अपने अधीनस्थों को अपने पूर्ण अधिकार नहीं देता है। वह हमेशा अपने साथ पर्यवेक्षण और नियंत्रण करने की शक्ति रखता है। इसका मतलब है कि प्रत्यायोजन सीमित शर्तों के अधीन होता है।

4. प्रत्यायोजित प्राधिकरण विचरण के अधीन है। इसे बढ़ाया, घटाया या वापस लिया जा सकता है। यह सब उस समय की स्थितियों और कार्य की पूर्णता पर निर्भर करता है।

प्रत्यायोजन की आवश्यकता :
कोई भी संगठन प्रत्यायोजन के प्रावधान के बिना काम नहीं कर सकता है। किसी संगठन की वृद्धि के साथ प्रत्यायोजन की आवश्यकता को महसूस किया जाता है। उदाहरण के लिए, सामान्य समय में प्राधिकार का प्रत्यायोजन प्रशासनिक पदानुक्रम में नाममात्र का है, लेकिन प्राकृतिक आपदाओं और महामारी जैसी आकस्मिकताओं के समय में अधिक शक्तियों और कार्यों सम्पादन के लिए स्थानीय प्रशासन को आकस्मिकताओं का मुकाबला करने और स्थिति के सामान्यकरण के लिए प्रत्यायोजन की आवश्यकता होती है। निम्नलिखित कारणों से प्रत्योयोजन की आवश्यकता होती है :-

1. कार्य में दक्षता और कुशलता लाने के लिए किसी न किसी प्रकार के प्रत्यायोजन की आवश्यकता होती है।
2. नियमों, परिचालन प्रक्रियाओं और तकनीकों की जटिलताएं स्टाफ एजेंसियों के लिए विचार-विमर्श करने और योजनाओं के निर्माण को सौंपने के लिए लाइन एजेंसियों को मजबूर करती हैं।
3. कार्यकारी को ओर अधिक समय व उर्जा के लिए प्रत्यायोजन की आवश्यकता होती है।
4. शिष्टमंडल आत्म-मूल्यांकन और आत्म-अभिव्यक्ति के लिए अधीनस्थों को पर्याप्त गुंजाइश प्रदान करता है। इस प्रकार यह प्रबंधन के विकास में एक निर्णायक कदम है।

5. प्रत्यायोजन कठोरता को दूर करता है और पर्यावरणीय परिवर्तनों के साथ संगठन को अपनाने के लिए लचीला बनाता है।
6. बड़े संगठनों में भौगोलिक फैलाव होता है। उनके पास शाखाओं का एक नेटवर्क है, कई इकाइयां एक विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई हैं।

प्रत्यायोजन के प्रकार : : प्रत्यायोजन कई प्रकार का हो सकता है। **स्थायी या अस्थायी, पूर्ण या आंशिक, सशर्त या बिना शर्त, औपचारिक या अनौपचारिक और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष।** स्थायी प्रत्यायोजन के मामले में शक्तियों को हमेशा के लिए सामान्य स्थितियों के अधीन सौंप दिया जाता है। केवल असाधारण परिस्थितियों में इस तरह के प्रत्यायोजन को निरस्त किया जा सकता है। अस्थायी प्रत्यायोजन का तात्पर्य है कि किसी कार्य की सिद्धि के लिए छोटी अवधि के लिए शक्तियों का प्रत्यायोजन। प्रत्यायोजन और व्यक्ति के साथ कोई भी शर्तें नहीं होने पर प्रत्यायोजन भर जाता है, जिसे निर्णय लेने और कार्रवाई करने के लिए शक्तियों को सौंप दिया जाता है। यह आंशिक है जब उसके द्वारा लिए गए निर्णय को प्रत्यायोजन प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित किया जाना है। प्रत्यायोजन सशर्त है जब उस व्यक्ति पर कुछ शर्तें लगाई जाती हैं जिस प्रत्यायोजन दिया जाता है। यह बिना शर्त है जब अधीनस्थ बिना किसी प्रतिबन्ध के कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो। लिखित नियमों, उपनियमों या आदेशों में सन्निहित होने पर प्रत्यायोजन औपचारिक होता है, दूसरी ओर यह अनौपचारिक होता है जब यह प्रत्यायोजन करने वाले एवं जिसके लिए शक्तियाँ दी जाती हैष् उनकी पारस्परिक समझ पर आधारित होता है। प्रत्यायोजन तब प्रत्यक्ष होता है जब कोई मध्यस्थ शामिल नहीं होता है लेकिन जब कोई तीसरा व्यक्ति या पार्टी इसमें शामिल होता है तो इसे अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन कहा जा सकता है। किसी संगठन में

प्रत्यायोजन का प्रकार विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है जैसे कार्य की प्रकृति, संगठन की आयु, कर्मियों का अनुभव, संगठन का आकार आदि।

प्रत्यायोजन के सिद्धांत :

प्रत्यायोजन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए इसे निम्नलिखित सिद्धांतों द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए।

1. प्रत्यायोजन स्पष्ट तरीके से किया जाना चाहिए। उस अधिकार के बारे में कोई अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए जो प्रत्यायोजित किया गया है।
2. प्रत्यायोजन की सीमाओं को स्पष्ट करने के लिए प्रत्यायोजन के आदेश लिखित रूप में जारी किए जाने चाहिए।
3. अधीनस्थ को सौंपे गए अधिकार पर्याप्त होने चाहिए ताकि वह उसे सौंपे गए कार्य को पूरा करने की क्षमता का उपयोग कर सके। अधीनस्थों को वे सभी अधिकार और जिम्मेदारी दी जानी चाहिए जिन्हें वे संभाल सकते हैं।
4. प्रत्यायोजन एकता के सिद्धांत पर आधारित है। इसका तात्पर्य यह है कि एक अधीनस्थ को एक उच्चस्थ से ही प्रत्यायोजित होना चाहिए अथवा अधिकार प्राप्त करने चाहिए।
5. उच्चस्थ को अधीनस्थ का मार्गदर्शन करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए
6. प्रत्यायोजन का मूल्यांकन होना चाहिए।
7. प्रत्यायोजन को ठीक से नियोजित किया जाना चाहिए और व्यवस्थित होना चाहिए।

यह देखा जाना चाहिए कि प्रत्यायोजन के उपर्युक्त सिद्धांत अधिनस्थों का मार्गदर्शन करने के लिए हैं लेकिन वास्तव में

प्रत्यायोजन एक कठिन प्रक्रिया है और उपरोक्त सिद्धांत सभी स्थितियों के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

प्रत्यायोजन की बाधाएं : हालांकि प्रत्यायोजन सभी संगठनों के लिए अपरिहार्य सिद्धांत है लेकिन प्रत्यायोजन की प्रक्रिया में कई अड़चनों के कारण वरिष्ठ अधिकारी निचले स्तर तक अधिकार प्राप्त करने में संकोच करते हैं। प्रत्यायोजन में आने वाली बाधाओं को मोटे तौर पर संगठनात्मक और व्यक्तिगत बाधाओं में विभाजित किया जा सकता है।

1. संगठनात्मक बाधाओं के अन्तर्गत स्थापित विधियों और प्रक्रियाओं का अभाव, समन्वय और संचार की कमी, काम का अस्थिर और गैर-दोहरावदार प्रकृति, एक संगठन का आकार और स्थान और प्रतिनिधिमंडल में स्पष्टता की कमी इत्यादि है।
2. व्यक्तिगत बाधाओं में अहंकार, अधीनस्थों की ओर से असमानता का डर, अधीनस्थों की क्षमता और क्षमता में विश्वास की कमी, प्रतिनिधि प्राधिकरण की ओर से भावनात्मक परिपक्वता की कमी, प्रत्यायोजन को क्या और कैसे करना है? इसकी जानकारी का अभाव, जवाबदेही का डर इत्यादि हैं।

प्रत्यायोजन को प्रभावी बनाने की तकनीक : प्रत्यायोजन को प्रभावी बनाने के लिऐ निम्नलिखित तकनीकों का सहारा लिया जा सकता है :-

1. प्रत्यायोजन की जिम्मेदारी का सामना करने में सक्षम अधीनस्थों का चयन करें।

2. प्रत्यायोजन की सामान्य नीतियों की स्थापना करना और उन्हें पूरे संगठन में प्रसारित करना।
3. प्रत्यायोजन के कार्यात्मक और संस्थागत दोनों के अधिकतमकरण की दिशा में प्रयास करें
4. प्रत्यायोजन के अध्ययन, बजट योजना, कार्य, प्रवाह, प्रणाली और प्रक्रिया का सरलीकरण करना।
5. प्रत्यायोजन के लिए बाहरी जांच स्थापित करें जो स्वचालित रूप से खतरे के संकेत दिखाती हैं।
6. प्रत्यायोजन की जानकारी के प्रवाह को ऊपर, नीचे और पदानुक्रम को पार करने का आश्वासन दें।

संदर्भ :

Ali Farazmand (Edited) 'Handbook of Comparative and Development Public Administration' Second Edition, Marcel Dekker, Inc New York, 2001

Eric Edwin Otenyo, Nancy S. Lind (Edited) 'Comparative Public Administration : The Essential Readings' Jai Press Publication, New York, 2007

Woodrow Wilson, 'The Study of Administration' Source: Political Science Quarterly, Vol. 2, No. 2 (Jun., 1887), pp. 197-222 Published by: The Academy of Political Science, Stable URL: http://www.jstor.org/stable/2139277 Accessed: 24/02/2009 17:42

Avasthi and Maheshwari, 'Public Administration' Laxmi Narain Aggarwal, Agra, 2010

Mohit Bhattacharya, 'New Horizons of Public Administration' Jawahar Publishers, New Delhi, 2010

Rumki Basu, 'Public Administration-Concepts and Theories' Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 2007

H. George Frederickson and Kevin B. Smith, 'Public Administration Theory Primer' Rawat Publications, Jaipur, 2008

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998

Likert, K, New Patterns of Management, New York: McGraw Hill, 1961.

A.Etzioni, Modern Organization, New Delhi: Prentice Hall of India, 1981.

Koontz & C.O. Donnell, Essentials of Management, Tata McGraw Hill Ltd, New Delhi, 1978.

H. Koontz & C. O. Donnell, Management-4 Systems and Contingency Analysis of Managerial

Functions, McGraw Hill Ltd, Delhi, 1976.

Kast & Resenzweig, Organization and Management - a System's Approach, McGraw Hill Ltd, Delhi,

1974.

Althur G. Bedeian, Management, The Dryden Press, Chicago, 1985.

Parag Diwan, Information System Management, Pentagon Press, New Delhi, 2001

7

प्रशासनिक व्यवहार के सिद्धांत

प्रशासनिक व्यवहार

(Administrative Behaviour)

प्रशासनिक व्यवहार से हमारा अभिप्राय उस स्थिति को समझना है कि किसी संगठन में प्रशासन का संचालन किस तरह से होता है। प्रशासन कौनसे सिद्धांतों की सहायता से चलता है और उसके पास कौनसी तकनीक होती है? छोटे से छोटे और बड़े से बड़े संगठन में कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक कार्य होते हैं जिन्हें प्रशासन के व्यवहार के नाम से जाना जाता है। प्रशासनिक व्यवहार के अंतर्गत प्रशासन की निर्णय प्रक्रिया प्रशासन की संप्रेषण प्रणाली, संगठन का नेतृत्व, कार्मिकों या संगठन में कार्य के पीछे विद्यमान अभिप्रेरणा, मनोबल, नैतिकता, अनुशासन इत्यादि को शामिल किया जाता है। प्रशासनिक व्यवहार को दूसरे शब्दों में समन्वय का व्यवहार अथवा संगठनात्मक व्यवहार भी कहा जाता है। संगठन का व्यवहार उसके संचालनकर्ता, कार्मिकों, नेतृत्वकर्ता, प्रबंध को इत्यादि के व्यवहार को भी व्यक्त करता है और यह भी दर्शाता है कि उनका व्यवहार किस तरह और कौन से कारको या घटकों से प्रभावित होता है। किसी संगठन में प्रशासनिक व्यवहार को निर्धारित या प्रभावित करने वाले तत्वों में से चार प्रमुख तत्व निर्णय निर्माण, संप्रेषण, नेतृत्व और अभिप्रेरणा है।

निर्णय निर्माण का सिद्धांत
(Theory of Decision Making)

निर्णय निर्माण या निर्णयन प्रशासनिक व्यवहार का आधार होता है। परिवार सबसे छोटा इकाई संगठन है और संयुक्त राष्ट्र संघ एक बड़ा वैश्विक स्तर का संगठन है। प्रत्येक संगठन में निर्णयन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। संगठन में अनेक हिस्सों पर उसके संचालन हेतु निर्णय लेना होता है। प्रत्येक व्यक्ति भी अपने दैनिक जीवन में प्रतिदिन और प्रतिक्षण अनेक प्रकार के निर्णय लेता है। निर्णय व्यक्ति की जीवन प्रक्रिया के साथ संयोजित है परंतु निर्णयन प्रक्रिया जितनी सरल प्रतीत होती है उतनी आसान नहीं होती है। निर्णयन संगठन के भविष्य का निर्धारण करता है। एक गलत निर्णय संगठन का अंत कर सकता है और एक अच्छा और विवेकपूर्ण निर्णय संगठन को सफल बना सकता है। इसीलिए हर्बर्ट साइमन ने निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को 'प्रशासन का ह्ृरदय' कहा है। प्रबंधन चिंतन की पितामह पीटर एफ ड्रकर के अनुसार प्रबंधक जो कुछ भी करता है, निर्णयन प्रक्रिया से ही करता है। निर्णयन विद्यमान दशाओं में उपलब्ध अनेक संभावित विकल्पों में से एक ऐसे सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना है जो अधिकतम लाभांश को और न्यूनतम जोखिम को वहन करता है। यह विकल्पों के समूह में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन है।

निर्णय निर्माण का अर्थ : निर्णय लेना मानवीय जीवन की प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा है। सामान्य रूप से निर्णयन का शाब्दिक अर्थ होता है किसी कार्य या समस्या अथवा विषय के संबंध में व्यक्ति का विवेकपूर्ण विचार। अतः यह अनेक विकल्पों में से एक विकल्प का सचेतन चुनाव है। अंग्रेजी भाषा का डिसीजन (Decision) शब्द लेटिन भाषा के डी सीजों (De-Ciso) शब्द से निर्मित है जिसका शाब्दिक अर्थ है पृथ्थक करना या निष्कर्ष निकालना (Conclude) अथवा यह एक पथ का चयन (Choosing a Path) है।

एच ए साईमन के अनुसार ''निर्णय लेने की प्रक्रिया संगठनों को समझने की कुँजी रखती है।(Decision making processes hold the key to understanding Organisations.)

बर्नार्ड के अनुसार ''निर्णय निर्माण मुख्यतः विकल्पों को सीमित करने की तकनीक है।''

टैरी के अनुसार ''दो या अधिक संभावित विकल्पों में से एक का चयन करना ही निर्णय है।'' ''प्रशासकों का जीवन ही निर्णय लेना है।''

हर्बर्ट साईमन के अनुसार ''निर्णय निर्माण प्रशासन या प्रबंधन का ह्ृदय होता है और इस निर्णयन प्रक्रिया की तीन अवस्थाएँ होती हैं अर्थात् निर्णय लेने का अवसर मिलना, कार्य के संभावित मार्गों का पता लगाना और संभावित कार्य मार्गों में से सर्वश्रेष्ठ मार्ग का चयन करना।

हेनरी फयोल व उर्विक के अनुसार ''निर्णयन, प्रत्यायोजन और सत्ता को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है।''

राव एंड राव के शब्दों में ''यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वांछित परिणाम प्राप्त करने हेतु अनेक विकल्पों में से एक का चयन किया जाता है।''

उपयुर्क्त परिभाषाओं के आधार पर निर्णयन का अर्थ होता है किसी अंतिम निष्कर्ष तक पहुँचना। निर्णय निर्माण एक प्रक्रिया होती है जो अनेक कारकों से प्रभावित होती है। विद्यमान दशाओं में किसी श्रेष्ठ विकल्प का निर्धारण कर लेना ही निर्णय निर्माण है। निर्णयन नीति निर्माण प्रक्रिया से अलग या उसका एक भाग होता है। निर्णय नीति को प्रभावित करता है।

निर्णय निर्माण की विशेषताएं :

1. निर्णय निर्माण सतत रूप से संचालित एक लक्ष्य उन्मुखी प्रक्रिया होती है।

2. निर्णयन एक मानवीय प्रक्रिया होती है जिसके लिए पर्याप्त बुद्धि, ज्ञान और विवेकशीलता की आवश्यकता होती है।
3. निर्णयन अनेक संभावित विकल्पों में से एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चयन की प्रक्रिया है।
4. यह विद्यमान परिस्थितियों एवं समय के अनुरूप गतिशील प्रक्रिया होती है।
5. निर्णयन परिस्थिति की प्रकृति पर निर्भर होता है। कोई एक निर्णय अन्य सभी सामान्य दशाओं में लागू नहीं हो सकता है।
6. निर्णयन प्रक्रिया विद्यमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और भौगोलिक पर्यावरण से प्रभावित होती है।
7. यह एक सतत अथवा अनवरत प्रक्रिया है जिसमें एक निर्णय के साथ अन्य निर्णयों की आवश्यकता पड़ती है और इस तरह निर्णय की प्रक्रिया की बार-बार आवश्यकता होती है।
8. निर्णयन प्रक्रिया सभी संगठनों में और प्रत्येक स्तर पर पाई जाती है।
9. किसी समस्या विशेष के संबंध में उसके समाधान हेतु निर्णय लिया जाता है।
10. निर्णय प्रक्रिया समस्या का पता लगाने, उसका विश्लेषण करने और उसके समाधान के विकल्पों का पता लगाकर उनमें से ही श्रेष्ठ विकल्प का चयन करना है।

निर्णय निर्माण के सैद्धान्तिक प्रतिमान अथवा उपागम (Theoretical Models of Decision Making) : निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में विवेकशीलता अथवा तार्किकता केंद्रीय भूमिका रखती है। निर्णयकर्ता की विवेकशीलता के

निर्धारण के विस्तार और पूर्ण विवेकशीलता से अतार्किकता की परिधि के संदर्भ में निर्णय निर्माण के दो प्रमुख प्रतिमान हैं। एक आर्थिक मानव अथवा पूर्ण विवेकशीलता पर आधारित प्रतिमान अथवा तथ्यात्मक प्रतिमान और दूसरा अतार्किकता या भावनाओं पर आधारित मूल्य केंद्रित सामाजिक प्रतिमान। इन दोनों के बीच पूर्ण तार्किकता और अविवेकशीलता के बीच का प्रतिमान जिसे साईमन का प्रतिमान अथवा सीमित तार्किकता का प्रतिमान कहलाता है। उसे निर्णय निर्माण का तीसरा उपागम माना जाता है। निर्णय निर्माण के प्रमुख उपागममों का विवरण निम्नलिखित है :-

1. परंपरागत या पूर्ण विवेकशीलता का उपागम (Classical or Rational Model of Decision Making): यह निर्णय निर्माण प्रतिमान आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित है। शास्त्रीय परंपरागत उपागम को आर्थिक मानव उपागम के नाम से भी जाना जाता है। वर्न लिविस (Verne Lewis) के अनुसार सीमान्त उपयोगिता की अवधारणा लोक निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में शुद्ध विवेकशीलता को लाती है। अतः निर्णय निर्माण के विकल्पों का चयन सापेक्ष मुल्य (Relative Value) , प्रभावशीलता (Effectiveness) और वृद्धिशील तुलना (Incremental Comparisons) के आधार पर किया जाना चाहिए। यहाँ पर सापेक्ष मुल्य अवसर लागत (Opportunity Cost) को अभिव्यक्त करता है जो कि एक कार्य को छोडकर दुसरा कार्य करने के बदले की लागत होती है। इसी तरह से सीमान्त उपयोगिता अतिरिक्त इकाई को सम्मिलित करने से कुल आगम एवं कुल लागत के अन्तराल की तुलना को व्यक्त करती है। अतः एक संगठन को अपना निर्णय इस आर्थिक तार्किकता के आधार पर लेना चाहिए। इसलिए यह अवधारणा प्रशासन के यांत्रिक सिद्धांत या औपचारिक सिद्धांत का समर्थन करती है जिसके अंतर्गत मानव को एक मशीन अथवा उपकरण के समान माना जाता है। आर्थिक मानव अर्थशास्त्र में उपभोक्ता की

विवेकशीलता को अभिव्यक्त करता है। जहाँ विवेकशील उपभोक्ता वस्तु या सेवा से प्राप्त होने वाली सीमांत उपयोगिता के अनुरूप ही कीमत का भुगतान करता है। अतः प्रशासन में भी लिया जाने वाला निर्णय संगठन के हित या लाभ या आर्थिक लाभ अथवा उत्पादन को अधिकतम करने की विधि से प्रभावित होता है। इस अवधारणा के प्रमुख समर्थक हेनरी फयोल, लूथर गुलिक, टेलर, मैक्स वेबर, फोलेट इत्यादि है। यह एक सामान्य और कठोर उपागम है।

यह निर्णयन सिद्धांत एक आदर्श प्रतिमान अर्थात् निर्णय कैसे लिया जाना चाहिए? के आदर्श को प्रस्तुत करता है इसमें निर्णय लेने के 5 मुख्य स्तर या चरण निम्नलिखित होते हैं :-

1. **लक्ष्यों और उद्देश्यों के संदर्भ में समस्या की पहचान और उसका विश्लेषण करना।**
2. **सूचना के प्रासंगिक तथ्यों का संग्रहण और विकल्पों का निर्माण करना।**
3. **सर्वश्रेष्ठ या अनुकूल परिणाम देने वाले संभावित विकल्पों का चयन करना।**
4. **निर्णय को लागू करना।**
5. **निर्णय निर्माण की प्रभावकारिता का मूल्यांकन करना।**

आर्थिक मानव की संकल्पना पर केंद्रित निर्णय निर्माण के इस उपागम को इकोलॉजिकल या दी रीजनल इकोनामिक मॉडल अथवा मानकात्मक या आदर्शात्मक निर्णय सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। इस उपागम में अधिकतम लाभ या उत्पादन अथवा न्यूनतम लागत व अधिकतम संतुष्टि और सर्वश्रेष्ठ विकल्प इन तीन आधारों पर निर्णय लिया जाता है। यह प्रतिमान निर्णय कैसे लिए जाने चाहिए? इस आदर्शात्मक अवधारणा को बताता है परंतु निर्णय कैसे लिए जाते है? इस यथार्थ को अभिव्यक्त नहीं करता

है। इसीलिए यह उपागम तथ्यों और केवल तथ्यों पर आधारित आदर्श निर्णय को दर्शाता है जिसका व्यवहारिक जीवन से कोई संबंध नहीं होता है। यही कारण है कि इसे व्यावहारिक या गैर सामाजिक निर्णय उपागम भी कहा जाता है।
यह प्रतिमान अधिकांशतया विकसित संगठनों में और आंशिक रूप से ही सफल होने वाला निर्णय सिद्धांत है। इस उपागम के अनुसार निर्णयकर्ता को पूर्ण विवेकशील माना जाता है। जहाँ उसे समस्याओं, उनके परिणामों और प्रतिफलों का पूर्ण ज्ञान होता है। यद्यपि यह प्रक्रिया जितनी सरल दिखाई देती है, उतनी सरल होती नहीं है। व्यवहार में यह बहुत जटिल होती है। निर्णय अनेक तत्वों से प्रभावित होता है। साईमन की मान्यता है कि व्यवहारिक जीवन में व्यक्ति पूर्ण विवेकशील नहीं होता है। उसके व्यवहार पर तथ्यों के साथ-साथ मूल्यों का भी प्रभाव होता है।

2. सीमित विवेकशीलता का प्रतिमान (The Bounded Rationality Model) :
अमेरिकी विचारक हर्बर्ट ए साईमन ने शिकागो विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान में शोध उपाधि प्राप्त कर नगर पालिका प्रशासन से अपना करियर शुरू किया। उसने प्रशासनिक व्यवहार और निर्णयन प्रक्रिया के विश्लेषण में निर्णायक भूमिका निभाई। 1978 ईस्वी में उन्हें अर्थशास्त्र के अनुशासन में नोबेल पुरस्कार में प्रदान किया गया। साईमन के द्वारा ***(Administrative Behaviour, 1947AD) (Fundamental Research in Administration, 1953AD) (Organisation,1958AD)(Models of Man : Social and Rational,1957AD)*** इत्यादि पुस्तकों का लेखन किया गया।

हर्बर्ट साइमन की मान्यता है कि निर्णयकर्ता केवल आर्थिक मानव ही नही होता है अपितु वह एक सामाजिक प्राणी भी होता है। अतः उसकी निर्णय प्रक्रिया पर अनेक कारकों या घटकों का प्रभाव पड़ता है। जैसे संगठन, व्यक्ति, समय, लागत, पर्यावरण उद्देश्य क्षमता इत्यादि।

साईमन इस बात पर बल देते हैं कि सिद्धांत और व्यवहार में समानता होनी चाहिए अर्थात् लोक प्रशासन में सिद्धांतों को वैज्ञानिकता के समीप लाने के लिए मूल्यों की भूमिका को कम करना होगा और तथ्यों की भूमिका को बढ़ाना होगा अन्यथा वे केवल कहावतें और लोकोक्तियों की उपमा तक ही सीमित रह जाएंगे। यद्यपि मूल्य निरपेक्ष अध्ययन भी संभव नहीं है। यही कारण है कि मूल्य और तथ्य दोनों निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। कोई भी निर्णय न तो केवल मूल्य पर आधारित होता है अर्थात् पूर्ण भावनात्मक हो सकता है और न ही पूर्ण तार्किकता पर आधारित हो सकता है। इस कारण साइमन ने इन दोनों के बीच का मार्ग प्रस्तुत किया है जो कि आर्थिक मानव अथवा विवेकशीलता प्रतिमान की अपेक्षा एक अधिक यथार्थ उपागम है। इसे साइमन का निर्णय सिद्धांत या प्रशासनिक मानव सिद्धांत अथवा सीमित तार्किकता का प्रतिमान कहा जाता है। यह उपागम किसी संगठन में निर्णय प्रक्रिया के दौरान आर्थिक मानव की अपेक्षा प्रशासनिक मानव की धारणा पर विशेष बल देता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि मानव पूर्ण विवेकशील नहीं हो सकता है क्योंकि जटिल समस्याओं का समाधान खोजने में मानवीय क्षमता पर कुछ सीमाएं होती हैं जो कि आंतरिक स्तर पर तनाव अथवा अभिप्रेरणा के मनोवैज्ञानिक घटक के रूप में तथा बाहरी स्तर पर पर्यावरणीय घटकों के रूप में परिलक्षित होती है। इसीलिए मानव प्रशासनिक व्यवहार की निर्णय प्रक्रिया में केवल सीमित विवेकशीलता का ही प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार एक प्रशासक विद्यमान निश्चित परिस्थितियों में केंद्रित होकर निर्णय कर पाता है । प्रशासनिक मानव उन निर्णयों की खोज करता है जो कि समस्या के निदान में संतोषजनक या पर्याप्त संतुष्टि वाला निर्णय हो। **संतुष्टि दायक** (Satisfycing) निर्णय दो शब्दों **संतुष्ट (Satisfactory)** और **प्रर्याप्त (Sufficing or to be enough)** से मिलकर बना है। अतः ऐसा निर्णय जो समस्या निदान में कम से कम पर्याप्त या संतुष्टि पूर्ण विकल्प होता

है न की सर्वश्रेष्ठ विकल्प होता है। यह संतुष्टि दायक विकल्प का चुनाव होता है।
साईमन का कहना है कि निर्णयन के एक सर्वश्रेष्ठ समाधान के रूप में पूर्ण तार्किकता को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। एक प्रशासक उपलब्ध दशाओं में सीमित ज्ञान रखता है और वह अपनी सीमित तार्किकता के आधार पर ही श्रेष्ठ निर्णय लेता है। प्रशासक की इस क्रिया पर उसकी आदतों, व्यक्तिगत विश्वासों, बौद्धिक क्षमता, अनौपचारिक संगठन, संगठन में व्यक्तिगत संबंधों, समय की कमी, नियंत्रण के क्षेत्र इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। संगठन को अधिकतम और सर्वश्रेष्ठ तार्किक परिस्थिति में स्थापित करना शास्त्रीय सिद्धांतकारों का केवल आदर्शात्मक उपागम है परंतु व्यावहारिक नहीं है। साईमन ने निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह क्रियात्मक विकल्पों के बीच इष्टतम या संतोषजनक तार्किक विकल्प होता है। साईमन के अनुसार निर्णय निर्माण की प्रक्रिया संपूर्ण संगठन में पाई जाती है अथवा अंतर्निहित होती है। इसीलिए उसने संगठन को निर्णयकर्ताओं की संरचना के रूप में व्यक्त किया है। निर्णयन प्रशासनिक व्यवहार की अंतर्निहित प्रक्रिया होती है। जैसा कि हेनरी फेयोल ने पोकोक दृष्टिकोण में और गुलिक ने पॉस्डकॉर्ब प्रतिमान में अभिव्यक्त किया है। अतः साईमन ने संगठन या प्रशासन के प्रत्येक कार्य को निर्णय निर्माण का ही परिणाम माना है। साईमन के व्यवहारवादी संप्रदाय की निर्णयन प्रक्रिया के तीन मुख्य पक्ष होते हैं :-

1. **व्यक्तिगत निर्णय विकल्प योजना** (Scheme of Individual’s Decision Choice)
2. **तथ्य मूल्य द्विभाजन** (Fact - Value Dichotomy)
3. **सीमित विवेकशीलता** (Bounded Rationality)

व्यक्तिगत निर्णयन विकल्प योजना (Scheme of Individual’s Decision Choice) : साईमन के अनुसार किसी भी निर्णय निर्माण की प्रक्रिया के समाधान तक पहुँचने के 3 मुख्य चरण होते हैं। साईमन के अनुसार उसके द्वारा प्रस्तुत तीनों विकल्प या अवस्थाएँ जॉन डीवी के द्वारा 1910 ई. में प्रस्तुत समस्या समाधान के तीन चरणों के साथ निकटता से जुड़े हुए हैं। जॉन डीवी ने सर्वप्रथम समस्या समाधान स्तरों का विवेचन किया है अर्थात्

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Stages of Decision

1. **आसूचना क्रिया का स्तर** (The Intelligence Activity or Stage) : यह निर्णय निर्माण की प्रक्रिया का प्रथम चरण होता है जिसमें सर्वप्रथम समस्या की वास्तविक पहचान की जाती है। इसमें निर्णय निर्माण की दशाओं और अवसरों का पता लगाया जाता है और सांगठनिक पर्यावरण का अध्ययन, समस्या के प्रत्येक्ष पक्ष-विपक्ष, सूचना संग्रहण तथ्य इत्यादि की तलाश की जाती है अर्थात् यह समस्या की पहचान का स्तर होता है।

समस्या को मूल रूप से पहचाने बिना उसका समाधान संभव नहीं हो सकता है।

2. **प्रारूप क्रिया का चरण** (The Design Stage) : जब एक बार समस्या की पहचान हो जाती है तो उसके समाधान के लिए विविध संभावित विकल्पों की तलाश की जाती है जो कि संगठन को सकारात्मक और लाभदायक परिणामों तक पहुँचाते हैं। प्रत्येक विकल्प के गुण-अवगुण पर विचार किया जाता है। समस्या को हल करने के कौन-कौन से उपाय हो सकते हैं। इन पर विचार किया जाता है।

3. **चयन क्रिया का चरण** (The Choice Stage) : यह निर्णय निर्माण प्रक्रिया का अंतिम चरण होता है। इस चरण की समाप्ति निर्णय लेने के साथ ही होती है। अनुसंधान द्वारा विकसित किए गए उपलब्ध सभी विकल्पों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के बाद किसी एक श्रेष्ठ विकल्प का चयन कर लिया जाता है जिसे निर्णयकर्ता अपनी दृष्टि में श्रेष्ठ समझता है। निर्णय निर्माण की अंतिम अवस्था में कुछ विशेष प्रकार के कौशल जैसे कि निर्णयन, सर्जनशीलता, तथ्यात्मक का विश्लेषण तथा अनुभव इत्यादि की आवश्यकता होती है। समस्या निदान के चरणों को लेकर विभिन्न विचारकों की अलग-अलग मान्यताएँ है। साईमन के तीन चरणों गिजबर्ग और उसके साथियों ने पहचान का चरण, विकास का चरण और चयन का चरण के नामों से पहचाना है।

तथ्य और मूल्य विभेदीकरण (The Facts and Values Dichotomy) :-

साईमन के अनुसार निर्णय प्रक्रिया तथ्यों और मूल्यों दोनों से प्रभावित होती है। निर्णय केवल तथ्यों के आधार पर हो अथवा केवल मूल्यों के आधार पर निर्भर हो तो वह उचित और श्रेष्ठ निर्णय नहीं हो सकते हैं। यद्यपि प्रशासन को विज्ञान के समकक्ष बनाए रखने के लिए निर्णय निर्माण प्रक्रिया में तथ्यों को अधिक प्रभावी भूमिका और मूल्यों को गौण भूमिका दी जानी चाहिए। पूर्णतया तथ्यों पर आधारित निर्णय आर्थिक मानव की संकल्पना को और पूर्णतया मूल्य आधारित निर्णय सामाजिक या भावनात्मक मानवीय संकल्पना का प्रतिनिधित्व करता है। जबकि प्रधानतः तथ्य और गौण रूप से मूल्य पर आधारित निर्णय प्रशासनिक मानव की अवधारणा अथवा सीमित विवेकशीलता की निर्णय प्रक्रिया को दर्शाता है और यही व्यवहारिक है। साईमन के अनुसार प्रत्येक निर्णय तथ्य और दोनों का तार्किक समन्वय होता है। तथ्य यथार्थ कथन है जबकि मुल्य पसंद की अभिव्यक्ति होते हैं। तथ्य पर्यवेक्षित एवं मापनीय आधार होते है जिनका आनुभाविक परीक्षण भी किया जा सकता है। मुल्यरूपी आधारों का अनुभाविक परीक्षण नहीं हो सकता है, केवल विषयगत दृढ़ता इनको वैध स्वरूप प्रदान करती है। एक नीति के लक्ष्यों के निर्धारण में मूल्यों की प्रभावी भूमिका हो सकती है जबकि ऐसे लक्ष्यों की प्राप्ति में या उनको लागू करने में तथ्यों की प्रधान भूमिका होनी ही चाहिए। मुल्य मानवीय सभ्यता की रक्षा के आधार स्तंभ होते हैं जबकि तथ्ती इस सभ्यता के विकास के मूल आधार होते हैं।

सीमित विवेकशीलता की अवधारणा (The Concept of Bounded rationality) :
साईमन के अनुसार निर्णय प्रक्रिया का मूल केंद्र बिंदु ही निर्णयकर्ता की तार्किकता या विवेकशीलता होती है। यह विवेकशीलता अनेक कारकों से प्रभावित होती है। अतः पूर्ण तार्किकता के स्थान पर निर्णय प्रक्रिया सीमित तार्किकता पर

आधारित होती है। साईमन के अनुसार तार्किकता मूल्यों की ऐसी प्रणाली के संदर्भ में वरीयता प्राप्त व्यवहारिक विकल्पों का वह संबंध है जिसके द्वारा व्यवहार के परिणामों का मूल्यांकन किया जाता है। साईमन के अनुसार निर्णय प्रक्रिया में प्रयुक्त विवेकशीलता के छह प्रकार होते हैं :-

1. **विषयगत तार्किकता** (Subjetive Rationality)
2. **वस्तुगत तार्किकता** (Objective Rationality)
3. **चेतन तार्किकता** (Conscious Rationality)
4. **विचारपूर्ण तार्किकता**(Idealogical Rationality)
5. **व्यक्तिगत तार्किकता** (Personal Rationality)
6. **संगठनात्मक तार्किकता** (Organisational Rationality)

साईमन की मान्यता थी कि प्रशासनिक व्यवहार में पूर्ण तार्किकता संभव नहीं है। इसीलिए इष्टतम या पूर्ण संतुष्टि का निर्णय भी संभव नहीं होता है। उसने संगठन में मानवीय व्यवहार के संदर्भ में संतोषजनक निर्णय के लिए सीमित तार्किकता का विवेचन किया है। संतोषप्रद निर्णय के लिए तार्किकता को सीमित करने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारक होते हैं। जैसे कि पर्यावरण या परिवेश की गत्यात्मक प्रकृति उद्देश्यों की गतिशील प्रकृति सूचना की कमी समय इत्यादि।
इन सभी कारकों से प्रभावित प्रशासनिक मानव संतुष्टि प्रदान करने वाला या संतोषजनक निर्णय ही कर पाता है। साईमन के अनुसार संगठन में लिए जाने वाले निर्णय सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं। कार्यकर्मिक निर्णय और अकार्यकर्मिक निर्णय। कार्यकर्मिक निर्णय सामान्यत: दिनचर्या पूर्ण और दैनिक निर्णय होते हैं। ये पूर्व उदाहरणों पर आधारित निर्णय होते है। इस प्रकार

के निर्णय संगठन में निम्न स्तर पर प्रत्यायोजित किए जाते हैं जबकि अकार्यकर्मिक निर्णय पुनरावृति वाले निर्णय नहीं होते हैं अपितु अचानक उत्पन्न दशाओं का परिणाम होते हैं। ऐसे निर्णय अद्वितीय नवीनतम स्वरूप वाले होते हैं। ऐसे निर्णय प्रबंधन के उच्च स्तर पर किए जाते हैं। ऐसे निर्णय के लिए उच्च दक्षता प्रशिक्षण के द्वारा सहायता मिलती है।
साईमन के अनुसार कुछ वैज्ञानिक पद्धतियों अथवा तकनीकों के माध्यम से निर्णय दक्षता को विकसित किया जा सकता है। जैसे कि रेखीय विधि, परिचालन विधि, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण विधि, व्यवस्था विश्लेषण विधि, कंप्यूटर सिमुलेशन विधि, ट्री विधि इत्यादि।
इसके अलावा तार्किकता में वृद्धि निम्न कारकों के माध्यम से भी की जा सकती है जैसे कि उच्च स्तरीय विशेषज्ञता को बढ़ाना, वैज्ञानिक उपकरण और परीविधियों का उपयोग करना, बाजार तंत्र पर आधारित क्रियाओं में बढोतरी करना, राजनीतिक संस्थाओं के ज्ञान में अभिवृद्धि करना, समस्या निदानपूर्ण कार्यों को बड़े स्तर पर स्थापित करना, निर्णयन का स्पष्ट एवं उचित संचार काना इत्यादि।

साईमन के उपागम की आलोचनाएँ :
सीमित तार्किकता के प्रतिमान की निम्न आधारों पर आलोचना की गई है :-

1. साइमन संतोषजनक निर्णय तक सीमित रखकर व्यक्ति की क्षमता को पूर्ण उपयोग से रोक देता है।
2. साईमन की निर्णय प्रक्रिया यथास्थिति का समर्थन करती है।
3. साईमन ने तार्किकता को एक जगह तक सीमित कर दिया है।

4. साईमन एक तरफ प्रशासन को विज्ञान बनाने हेतु तथ्यों की वकालत करता है तो दूसरी तरफ मूल्यों को भी शामिल करने की बात कहता है दोनों विरोधाभास है।
5. साईमन का निर्णय सिद्धांत राजनीति और प्रशासन की द्विविभाजन पर बल देता है जबकि लोकनीति दृष्टिकोण में दोनों को समीप ला दिया है।
6. जेम्स अर्ल के अनुसार निजी संगठनों का उद्देश्य श्रेष्ठतम की खोज करना है न की संतोषजनक बिंदु की खोज करना।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी साईमन ने निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में व्यावहारिक भूमिका का निर्वहन किया है। निर्णय निर्माण की चिंतन प्रक्रिया में आरंभिक योगदान देने वाले चिंतकों में सम्मान के साथ लिया जाता है।

पूर्ण तार्किकता प्रतिमान और सीमित विवेकशीलता प्रतिमान में विभेद :

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

3. निर्णय निर्माण का वृद्धिशील प्रतिमान (The Incrementalism Model of Decision Making) : यह निर्णय निर्माण का तीसरा महत्वपूर्ण प्रतिमान है। इसे सौदेबाजी का प्रतिमान (The Bargaining Approach) भी कहा जाता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन चार्ल्स ई लिंडब्लोम (Charles E. Lindblom) के द्वारा किया गया था। हर्बर्ट साईमन के सिद्धांत के विपरीत चिंतन वाला यह उपागम ब्लोम का यह प्रतिमान शाखा तकनीक, कर्मिक सीमित, तुलनात्मक, चरणबद्ध निर्णय निर्माण इत्यादि उपनामों से भी जाना जाता है। ब्लूम के अनुसार निर्णय निर्माण की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से मुल्य से भारित एवं संघर्ष की ओर प्रवृत (Value Laden and Conflict Prone) होती है। ब्लूम येले विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं लोक नीति के विषयों के प्रसिद्ध शोधार्थी थे जिन्होनें सरकार की निर्णय निर्माण नीति के सम्बन्ध में अपने सेमीनल आलेख के अन्तर्गत नवीन परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया। यह आलेख 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू' के अंतर्गत (The Science of Muddling through, 1959AD) शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यह प्रतिमान निर्णय लेने की दो किस्मों पर निर्भर रहता है जिनको तार्किक-पूर्णता (Rational- Comprehensive) या जड पद्धति और क्रमिक-पूर्णता (Successive -Comprehensive) या ब्रांच पद्धति के नाम से जाना जाता है। संपूर्ण परिवर्तनशील प्रक्रिया और छोटे स्तर पर या आंशिक समायोजन थोड़ा-थोड़ा करके या कदम कदम आगे बढ़ाकर बिना किसी संघर्ष के स्थापित किया जा सकता है अर्थात् वृद्धिपरक प्रतिमान के माध्यम से संगठन की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। लिंडब्लोम के अनुसार निर्णय निर्माण का वृद्धिशील प्रतिमान निम्नलिखित विशेषताओं के साथ जुडा हुआ है :-

1. यह प्रकृति से ही वृद्धिशील प्रतिमान होता है।

2. यह सदैव ही **सीमित या अपरिपूर्ण** (Incomprehensive) रहता है।
3. निर्णय निर्माण की शाखा तकनीक **आनुक्रमिक या क्रमिक या उतरोतर तुलना** (Successive Comparison) को सम्मिलित करती है।
4. निर्णयन का यह प्रतिमान उपलब्ध विकल्पों में से अधिकतम के विकल्प की अपेक्षा पर्याप्त संतुष्टीदायक विकल्प का चयन करता है।
5. यह प्रतिमान समझौते की राजनीतिक कला पर आधारित होता है।

किसी लोक नीति को लागू करने में यह प्रतिमान सर्वोत्तम है। इसके लिए पूर्व की लोक नीति का ही अग्रिम क्रियान्वित किया जाए अथवा उसी का श्रेष्ठ स्वरूप अथवा थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन करने से वह एक श्रेष्ठ स्वरूप प्राप्त कर लेती है। इस उपागम का मुख्य विचार लोक प्राधिकार की सहमति पर आधारित है। यह एक संक्षिप्त प्रतिमान है।

4. संशोधित गारबेज केन प्रतिमान (Revised Garbage Can Model) :
गारबेज केन प्रतिमान का उदय सर्वप्रथम 1972 ई में हुआ जब माईकल डी कोहन, जेम्स जी मार्च तथा जे पी आल्सेन के द्वारा लिखित सेमीनल आलेख (A Garbage Can Model of Organisational Choice, 1972AD) का प्रकाशन हुआ। इस प्रतिमान के अनुसार निर्णयन प्रणाली तीन स्वतंत्र धाराओं से जुडी होती है जिन्हें समस्या, समाधान और सहभागी या निर्णयन धाराओं के नाम से जाना जाता है। ये तीनों धाराएं तभी एकीकृत होती है जब चौथी धारा चोईस अवसर धारा (Choice Opportunity Streams) का उदय होता है। तब निर्णयन होता है। गारबेज केन सिद्धान्त में संशोधन के बाद एक नए प्रतिमान का उदय हुआ है जिसे संशोधित गारबेज केन उपागम कहा जाता है।

यह निर्णयन प्रतिमान भी एक सरल प्रतिमान है। इसे कचरा डिब्बा प्रतिमान कहा जाता है क्योंकि यह भिन्न-भिन्न अवधारणाओं के समुह पर आधारित प्रतिमान होता है। इस प्रतिमान का प्रतिपादन प्रसिद्ध अमेरिकी राजनीतिक विज्ञानी जॉन वेल्स किंगडन (John Wells Kingdon) के द्वारा 1984 ई में किया गया। किंगडन के अनुसार निर्णय निर्माण तीन पृथ्थक धाराओं पर निर्भर करता है अर्थात्

1. **समस्या की धारा** (The Problem Streams) - यह समस्या के इस सन्दर्भ का प्रतिनिधित्व करती है कि समस्या कैसी है और वह क्यों उत्पन्न हुई है।
2. **राजनीतिक धारा** (The Political Streams) - यह धारा उस राज्य की धमनियों ;च्नसेम वि छंजपवदद्ध को अभिव्यक्त करती है।
3. **नीति धारा** (The Policy Streams) - यह निर्णयन की तीसरी धारा है जो कि राजनीतिक कार्मिकों, प्रशासकों, तकनीकी कार्मिकों और अनुंसंधान कर्ताओं के द्वारा तैयार या निर्मित नीति प्रस्ताव को अभिलक्षित करती है।

5. निर्णय निर्माण का सहभागिता प्रतिमान (Participatory Model of DM) :
यह निर्णयन उपागम भी एक राजनीतिक प्रतिमान है। इसे **राजनीतिक लोकतंत्र का हृदय** भी कहा जाता है। इसे उपागम के अनुसार निर्णयन प्रणाली एक सामुहिक प्रक्रिया होती है जिसमें कोई अकेला व्यक्ति ही निर्णयकर्ता नहीं होता है। निर्णय के इस प्रतिमान के अनुसार किसी भी प्रकार के निर्णयन में उन सभी पक्षों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए जिनके उपर लिये जाने वाले निर्णय का प्रभाव पडता है। अतः निर्णयन प्रक्रिया में अनेक स्टेकहोल्डर्स को भी सहभागीदार बनाया जाता है जैसे कि पर्यावरण, वन्यजीव अधिनियम, स्वास्थ्य सम्बन्धी कानुनों का

निर्माण, पशु कुररता अधिनियमों का निर्माण इत्यादि सम्बन्धी निर्णय करते समय गैर सरकारी संगठनों, सिविल सोसायटी, स्वैछिक संगठनों, सरकारी अभिकरणों, स्वास्थय की सम्बन्धी पर्यावरणीय संगठनों इत्यादि को शामिल किया जाए। यह निर्णयन प्रणाली निर्णय को एक टीम निर्णय के रूप में स्थापित करता है। प्रत्येक सहभागीदार को टीम की प्रभावशीलता को बढाने के लिए अपने विचारों को आवाज देने और अपने परिप्रेक्ष्य को अभिव्यक्त करने का अवसर दिया जाता है। यहाँ पर निर्णयन की प्रभावशीलता (Decision Effectiveness) और संगठन की निष्पादकता (Organisational Performance) या निष्पादन के बीच सकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। इस प्रकार यह उपागम बेहतर प्रभावशीलता और बेहतर निष्पादन से जुडा हुआ है।

6. लोक चयन प्रतिमान (Public Choice Model) : निर्णय निर्माण का यह प्रतिमान चिंतन के व्यष्टि अर्थशास्त्र से प्रेरित है जहाँ व्यक्ति और संगठन के आर्थिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इस उपागम के अनुसार व्यक्ति का प्रत्येक निर्णय उसके स्वंय के हित से जडा हुआ होता है। मानव स्वभाव से उपयोगिता को अधिकतम करना चाहता है। यह उपागम इस तर्क पर आधारित है कि व्यक्ति का स्वंय का हित यह निर्धारित करता है कि निर्णय कैसे लिया जाए। अतः प्रत्येक निर्णय स्वहित या तर्कसंगत उपयोगिता के अधिकतमकरण से प्रभावित होता है। यही कारण है कि नौकरशाह उपयोगिता अधिकतम कर्ता के रूप में जानबुझकर अपने स्वहितों की पूर्ति के लिए सरकार का आकार बढाते है। इसीलिए यह प्रतिमान अकुशल सरकारी क्षेत्र को घटाने और उसके निजीकरण की पैरवी करता है।

7. मिश्रित स्केनिंग प्रतिमान (Mixed Scanning Model) :

इसका प्रतिपादन एमिताई एत्जिओनी (Amitai Etzioni) के द्वारा 1967 में साईमन और ब्लॉम के प्रतिमान को मिश्रित स्वरूप

प्रदान करके किया गया। उसने अपने आलेख मिक्स स्कैनिंग ए थर्ड एप्रोच टू डिसीजन मेकिंग (A Mixed Scanning : A Third Approach to Decision Making, 1967AD) के अंतर्गत समग्र तार्किकता और वृद्धिपरक प्रतिमान को एक नए स्वरूप में स्थापित किया गया है। उसने दोनों ही प्रतिमानो का पूर्ण समर्थन नहीं किया है अपितु दोनों के गुणों से निर्मित मिश्रित उपागम जिसमें तार्किकता, व्यवहारिकता, मुल्य, तथ्य और दशाओं को स्थान दिया गया है।

निर्णय लेने के लिए एक तर्कसंगत दृष्टिकोण निर्णय निर्माताओं के आदेश की तुलना में अधिक संसाधनों की आवश्यकता होती है। वृद्धिशील रणनीति, जो अभिनेताओं की सीमित क्षमता को ध्यान में रखती है, तेज गति या त्रीव फैसले जो बुनियादी सामाजिक नवाचारों की उपेक्षा करते हैं। मिश्रित-स्कैनिंग मौलिक निर्णयों में आवश्यक विवरणों को सीमित करके तर्कसंगतता के अवास्तविक पहलुओं को कम करती है और लंबे समय तक चलने वाले विकल्पों की खोज करके वृद्धिशीलता के रूढ़िवादी तिरछा को दूर करने में मदद करती है। (वृद्धिशील फैसले मौलिक रूप से किसी को भी प्रभावित करते हैं।) मिश्रित-स्कैनिंग मॉडल इस द्वैतवाद को जोड़कर स्पष्ट करता है **(क)** उच्च-क्रम, मौलिक नीति-निर्माण प्रक्रियाएं जो बुनियादी दिशाएं निर्धारित करती हैं और **(ख)** वृद्धिशील जो मौलिक निर्णयों को तैयार करती हैं। और उनके पहुँचने के बाद उन्हें बाहर काम करना। मिश्रित-स्कैनिंग में वृद्धिशीलता पर दो और फायदे हैः यह मूल्यांकन के लिए एक रणनीति प्रदान करता है और इसमें छिपी संरचनात्मक मान्यताओं को शामिल नहीं किया गया है। विभिन्न स्कैनिंग स्तरों का लचीलापन मिश्रित-स्कैनिंग बदलती स्थिरता के वातावरण में और अलग-अलग नियंत्रण और सर्वसम्मति-निर्माण क्षमता वाले अभिनेताओं द्वारा निर्णय लेने के लिए एक उपयोगी रणनीति बनाता है।

8. निर्णय निर्माण का इष्टतम प्रतिमान (Normative Optimal Model or Dror's Model) : यह निर्णय निर्माण का आठवां या अन्तिम प्रतिमान है। इस प्रतिमान का प्रतिपादन **वाई ड्रो**र (Yyehezekel Dror) के द्वारा किया गया है। इसने ब्लोम के वृद्धिपरक प्रतिमान की आलोचना करते हुए कहा है कि समाधान का आंशिक बदलाव समस्या समाधान करना संभव नहीं है। अतः हमें रूढिवादिता और असंतुष्टि को त्यागना होगा। वृद्धिशील प्रतिमान कम शक्तिशाली एवं अधिक शक्तिशाली अभिकर्ताओं के बीच दूरी का निर्माण करके अन्याय करता है। कम शक्ति वाले लोगों के लिए परिवर्तन करना मुश्किल हो जाता है। अतः ड्रोर के द्वारा वृद्धिशील और तार्किक प्रतिमान के स्थान पर एक वैकल्पिक प्रतिमान का प्रतिपादन किया है जो कि निम्न चार आवश्यकताओं को स्वीकार करता है :-

1. तार्किकता या तर्कसंगतता की आवश्यकता।
2. निम्न स्तर पर निर्णय लेने की तर्कसंगतता बढाने के लिए प्रबन्धकीय तकनीकों का आंरभ की आवश्यकता।
3. उच्च स्तर पर निर्णयन की जटिल समस्याओं के समाधान हेतु नीति विज्ञान उपागम (Lasswell's Terms) की आवश्यकता।
4. निर्णयन प्रणाली में मुल्यों एवं तर्कहीन तत्वों को सम्मिलित करने की आवश्यकता।

किसी पूर्व समस्या और अन्य बड़ी समस्या के निदान में वृद्धिशील प्रतिमान अनुपयोगी होता है। उसने शासन प्रणाली की तार्किकता को बढाने के लिए अतिरिक्त तर्कसंगतता की धारणा को विकसित किया। ड्रोर का सुझाव है कि किसी निर्णय और परिस्थिति के साथ विवेकशीलता की तरह ही अतिरिक्त तार्किकता को भी संयुक्त किया जाना चाहिए। अतः इसे

अतिरिक्त तार्किकता का उपागम भी कहा जाता है। इस प्रतिमान में आर्थिक विवेकशीलता या पूर्ण विवेकशीलता के साथ अतिरिक्त तार्किकता को शामिल किया गया है। इसे नीति निर्माण के तार्किक और इष्टतम उपागम के नाम से भी जाना जाता है। यह फीडबैक तंत्र के माध्यम वाला एक गुणात्मक उपागम है। उसने निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में समाज विज्ञान को अंतर अनुशासनात्मक स्वरूप प्रदान करने का समर्थन किया है। जहाँ अन्य समाज विज्ञानों और तकनीकों के निर्णयों को उनके व्यापक क्षेत्र में अपनाकर अधिकतम परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है। यह समाज की समस्याओं का संतोषप्रद समाधान खोजने वाला नीति प्रतिमान है जिसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :-

1. यह गुणात्मक है और परिमाणात्मक प्रतिमान नहीं है।
2. यह तर्क और मूल्य दोनों का समायोजन करता है।
3. यह आर्थिक तर्क हेतु बुनियादी तर्क प्रस्तुत करता है।
4. इसका संबंध पश्च नीति निर्माण (Post Policy Making) से है।
5. इसमें प्रतिपुष्टि शामिल रहती है।
6. इस सिद्धांत के तीन चरण पश्च नीति निर्माण(Meta Policy Making) , नीति निर्माण (Policy Making) और उत्तर नीति निर्माण (Post Policy Making) होते हैं जिन्हें अठारह अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है।

नीति निर्माण की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए अनेक प्रशासनिक चिंतकों ने इस प्रतिमान का समर्थन किया है। इनमें आधुनिक तकनीक के जोखिम विश्लेषण निर्णय ट्री गेम थ्योरी प्राथमिकता की उपयोगिता प्रतिमान इत्यादि प्रमुख हैं।

निर्णय निर्माण में बाधाएँ : यद्यपि निर्णय निर्माण की प्रक्रिया स्वंय एक समस्या समाधान की विकल्प योजना है तथापि इसके समक्ष अनेक बाधाएँ उत्पन्न होती है जिनमें स्वंय निर्णय तंत्र की सीमा निर्णयकर्ता के मूल्य, मान वीय व्यवहार की सीमाएँ विवेकशीलता, कार्मिकों का विस्तार, संगठन इत्यादि हैं।

निर्णयन को प्रभावित करने वाले तत्व : निर्णय निर्माण एक मानवीय प्रक्रिया होती है जिस पर विद्यमान आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और भौगोलिक तथा परिवेश का प्रभाव पड़ता है। कुछ महत्वपूर्ण घटक जिनका निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में ध्यान रखा जाना चाहिए वे निम्नलिखित हैं :-

I. वैधानिकता का स्वरूप (Legal Structure) : संगठन के द्वारा लिया जाने वाला निर्णय संगठन के कानून के अनुरूप ही होना चाहिए। निर्णयन प्रक्रिया कानून के दायरे में हो अर्थात् निर्णयन के पीछे वैधानिक सहमति होनी चाहिए अन्यथा निर्णय की कोई वैधानिकता नहीं रहती है।

II. उद्देश्य (Objective) : निर्णय का मूलाधार उद्देश्य ही होता है। प्रत्येक निर्णय किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही लिया जाता है। संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही निर्णय की आवश्यकता होती है।

III. समय तत्व (Time Factor) : निर्णयन प्रक्रिया को समय प्रभावित करने वाला मुख्य घटक होता है। उचित समय पर किया गया उचित निर्णय ही सफलता का की प्रत्याभूत ही होता है। कुछ निर्णय अल्पकाल के लिए और कुछ निर्णय दीर्घकाल के लिए होते हैं।

IV. अधिकतम लाभांश और न्यूनतम जोखिम (Maximize Profit and Minimum Cost) : निर्णयन सदैव इस व्यावसायिक सूत्र पर आधारित होता है कि लाभ हमेशा अधिकतम होना चाहिए और जोखिम हमेशा न्यूनतम होना चाहिए।

V. सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवेश का प्रभाव (Social, Economic and Political Environment): निर्णयन प्रक्रिया वातावरण में उपलब्ध सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वरूप से भी प्रभावित होता है।

VI. तार्किकता अथवा विवेकशीलता (Rationality) : निर्णयन का केन्द्रीय बिन्दु तार्किकता है। भावनाओं या व्यक्तिगत मूल्यों के आधार पर निर्णय नहीं लिया जा सकता है। निर्णय विवेकशील व बुद्धिमान लोगों का विचार है, भावनात्मक लोगों का नहीं।

VII. गत्यात्मक या गतिशीलता का तत्व (Dynamic Factor) :

निर्णयन प्रक्रिया गुप्त होती है। संगठन की दशा में बदलाव के अनुरूप निर्णय भी गतिशील होता है।

निर्णयन की प्रमुख प्रकार :

संगठन में लिए जाने वाले निर्णय व्यक्ति, समूह, प्रकृति, समय इत्यादि के आधार पर अनेक प्रकार के होते हैं।

1. व्यक्तिगत और सामूहिक निर्णय (Individual and Group Decisions) :

जब व्यक्ति विशेष के द्वारा निर्णय लिया जाता है तो उसे व्यक्तिगत निर्णय कहते हैं सामान्यतया एकाधिकार या छोटी संगठनों में व्यक्तिगत निर्णय और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की स्थिति पाई जाती है यदि संगठन में लोगों के छोटे समूह के द्वारा अथवा टीम वर्क के रूप में निर्णय लिए जाते हैं तो उसे समूह का निर्णय कहा जाता है।

2. निजी और सांगठनिक निर्णय (Private and Organisational) :

चेस्ट आई बर्नार्ड ने निर्णय को दो श्रेणियों में विभाजित किया है। व्यक्तिगत स्थिति का निर्णय और संगठन की स्थिति का निर्णय। व्यक्तिगत या निजी निर्णय भी होते हैं जो निर्णयकर्ता अपनी निजी स्थिति के कारण लेता है। इन निर्णयों में बाहरी हस्तक्षेप नहीं होता है जबकि संगठनात्मक निर्णय संगठन में प्राधिकारी की भूमिका

या पद स्थिति के आधार पर ली जाने वाली निर्णय होते हैं।
3. आधारभूत और दैनिक निर्णय (Basic and Daily Routine Decision) :
संगठन में विशिष्ट समस्याओं के निदान के लिए किये जाने वाले राजनीतिक, विश्लेषणात्मक ,सर्जनशील और आधारभूत निर्णय जो संपूर्ण संगठन को प्रभावित करते हैं। ऐसे निर्णय उच्च स्तर के प्रबंधक समूह द्वारा लिए जाते हैं। दैनिक निर्णय संगठन की दिन-प्रतिदिन की कार्यप्रणाली से संबंधित होते हैं जिनका संगठन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। संगठन में निम्न स्तर के प्रबंधक समूह द्वारा ऐसे निर्णय लिए जाते हैं जैसे कि वेतन, अवकाश, प्रतिवेदन इत्यादि बारंबारता की प्रवृत्ति वाले निर्णय दैनिक निर्णय होते है।
4. नियोजित और अनियोजित निर्णय (Planned and Unplanned Decisions) :
नियोजित निर्णय संगठन में सुनिश्चित लक्ष्यों की निश्चित समयावधि में प्राप्ति हेतु भावी रणनीति की वैज्ञानिक निर्णय होते हैं। संगठन के योजनाबद्ध निर्णय नियोजित निर्णय होते हैं। संगठन में बिना किसी योजना अथवा रणनीति के अचानक उत्पन्न होने वाली दशाओं के अनुरूप लिऐ जाने वाले अवसरवादी निर्णय अनियोजित निर्णय होते हैं। इनके लिए किसी पूर्व योजना की आवश्यकता नहीं होती है। भारत में योजना आयोग के निर्णय नियोजित निर्णय होते हैं जबकि राजनीतिक कार्यपालिका के द्वारा चुनाव के समय किये जाने वाले निर्णय अनियोजित होते हैं।
5. अल्पकालिक और दीर्घकालिक निर्णय (Short Time and Long Time Decisions) :
संगठन के निर्णय ज्योति निक प्रवृत्ति अथवा अल्पकालीन विषयों से संबंधित होते हैं अल्पकालीन निर्णय कहलाते हैं जबकि संगठन की भविष्य से जुड़ी हुई निर्णय विरोध में व्यापक प्रभाव रखते हैं दीर्घकालीन निर्णय कहलाते हैं। साइमन और मार्च के अनुसार इन दोनों के लिए जिम्मेदार प्रशासक दीर्घकालीन निर्णयों से बचने या उनकी को टालने का प्रयास करता है इस घटना या प्रवृत्ति को योजना का ग्रेशम नियम भी कहा जाता है अर्थात नियमितताए

नियोजित गतिविधि का स्थानापन्न कर देती है प्रशासक भविष्य के बारे में स्वंय को असमर्थ मानता है

6. अन्य प्रकार के निर्णय (Other Types Decisions) : उपरोक्त निर्णयों के अलावा भी कुछ निर्णय सक्रिय प्रकृति के अर्थात् परिवर्तनकारी अथवा सर्जनशील होते हैं जबकि कुछ निर्णय निष्क्रिय प्रवृत्ति के निर्णय होते हैं। इसके अलावा कुछ निर्णय संगठन की सामान्य प्रकृति से संबंधित होते हैं और कुछ निर्णय संगठन की विशिष्ट प्रकृति के निर्णय होते हैं। पीटर एफ ड्रकर ने अपनी पुस्तक The Piece and Management के अंतर्गत संगठन के निर्णयों को दो प्रकारों सामान्य प्रकृति के निर्णय और विशेष प्रकृति के निर्णय में विभाजित किया है जो कि साइमन के कार्यकर्मिक और एक अकार्यक्रमिक निर्णयों से संबंधित हैं।

निर्णय निर्माण की तकनीक अथवा विधियां (Techniques of Decision Making) : संगठन में लिया जाने वाला प्रत्येक निर्णय अनेक कारकों से प्रभावित होता है। अतः परिवर्तित दशाओं के अनुरूप निर्णय प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए अनेक प्रकार की तकनीके अथवा विधियां अपनाई जा सकती हैं। इन तकनीकों को संगठन और प्रबंधन दोनों ही क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जा सकता है। जैसा कि विलियम मोर का विचार है कि प्रबंधन का मतलब ही निर्णय निर्माण होता है। निर्णय की इन विधाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। गैर परिमाणात्मक अथवा गुणात्मक विधियाँ तथा परिमाणात्मक या मात्रात्मक विधियाँ। इनके अलावा संभावित विकल्पों के समूह निर्णय को विकसित करने की भी अनेक विधियाँ होती हैं। इन विधियों का संक्षिप्त विवेचन करना इस प्रकार से है।

अंतर्दृष्टि विधि (Intuition Methode) : यह विधि व्यक्ति या निर्णयकर्ता की तार्किक और बौद्धिक क्षमता पर निर्भर करती है। इसे सूझ-बूझ के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है।

तथ्यात्मक विधि (Factual Method) : इस पद्धति में भावनाओं और मूल्यों को महत्व नहीं दिया जाता है अपितु किसी समस्या से संबंधित और विषय से संबंधित विद्यमान उपलब्ध वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर निर्णय लिया जाता है।

अनुभवात्मक पद्धति (Empirical Method) : निर्णयन प्रक्रिया को सुदृढ़ करने की विधि इस मान्यता पर आधारित होती है कि अब तक का अभ्यास या अनुभव क्या कहता है। उसके आधार पर संभावित श्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है।

विचार मत पद्धति (Considered Method) : निर्णय की इस पद्धति में किसी समस्या घटनाक्रम के संबंध में अब तक विचार एकमत अथवा विवेकशील लोगों का विचार कैसा रहा है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर निर्णय लिया जाता है।

अन्य गुणात्मक विधियाँ : इन विधियों के अलावा सैद्धांतिक विधि, सहभागी विधि, आर्थिक व सामाजिक तकनीकों की सहायता से भी निर्णय की प्रक्रिया को मजबूत बनाया जा सकता है।

मात्रात्मक अथवा परिमाणात्मक विधियाँ : अनेक सांख्यिकीय, गणितीय, कंप्यूटर विधियों के माध्यम से निर्णय प्रक्रिया में समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है। इनको विशिष्ट निर्णय तकनीक भी कहा जाता है। इन विधियों में प्रमुख निम्नलिखित हैं :

प्रचालन या क्रियात्मक शोध प्रविधि(Operating Research Method) : परिचालन या प्रचालन तकनीक उन समस्याओं के निदान में उपयोगी होती है जिनमें बार-बार निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। क्रियात्मक शोध पद्धति के सामान्यतया 6 सोपान या चरण होते हैं अर्थात् समस्या का सही कथन, प्रासंगिक आंकड़ों का संग्रहण, गणितीय प्रतिमान पर आधारित वैधानिक सर्जनशीलता, विभिन्न परिस्थितियों में परिमाणों की गणना और डेटा प्रतिमान,

सर्वश्रेष्ठ का चयन तथा वैधता के प्रतिमान का अनुगमन। **रेखीय कार्यक्रमण तकनीक** (Liner Programming Method) : पंक्तिबद्ध कार्यक्रम विधि निर्णय निर्माण की प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण विधि है। इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य सीमित साधनों का सर्वोत्तम समन्वय करके संगठन के निर्गत उत्पादन को अधिकतम करना अथवा वितरण लागत को न्यूनतम करना होता है। इस विधि में समस्या निदान की दो शर्तें होती हैं। एक लक्ष्य को अनुकूलतम बनाना अथवा उत्पादन निर्गत को अधिकतम करना तथा दुसरी वितरण लागत को प्रतिफल को प्रभावित करने वाले कारकों को पंक्तिबद्ध रेखा के रूप में स्थापित करना। **कम्प्यूटर अनुरूपण तकनीक** (Computer Simulation Technique) : निर्णय निर्माण कि यह तकनीक जटिलतम समस्याओं के निदान में सर्वाधिक उपयोगी होती है। इसमें अनुभवात्मक आंकड़ों का उपयोग किया जाता है। यह पद्धति प्रयत्न और भूल के सिद्धांत पर कार्य करती है। इस विधि का उद्देश्य वास्तविकता का अमूर्तिकरण करना, पूर्ण अनुभव के आधार पर उसका काल्पनिक समाधान खोजना होता है। इसमें वास्तविक घटना की प्रतिकृति प्रस्तुत की जाती है। यहाँ घटनाएं पूर्णतया संयोग पर आधार पर संश्लेषित होती हैं। इस विधि में रेंडम नंबर टेबल्स का निर्माण किया जाता है। ऐसे प्रतिमान स्थापित किए जाते हैं जो कि वास्तविक जीवन को प्रभावित करते हैं। जैसे कि मॉक ड्रिल करना। **मोंटे कार्लो विधि** (Monte Carle Methode) : यूरोपियन देश मोनाको के विश्व प्रसिद्ध शहर का नाम मोंटे कार्लो हुआ करता था जिसका अर्थ था 'खुशी या आनन्द का शहर'। यह विधि कंप्यूटर अनुरूपण का ही संक्षिप्त स्वरूप है। इसमें घटनाओं के संभावित आंकड़ों को शामिल करके समस्या समाधान खोजने का प्रयास किया जाता है। **कुकिंग विधि** (Quequeing Methode) :

इस पद्धति को उपयोग पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं होने की दशा में किया जाता है। संसाधनों की सीमित उपलब्धता के कारण कार्य में देरी हो जाती है तो लागत बढ़ जाती है। ऐसी दशा में हानि से बचने या बढ़ती लागत को कम करने के लिए अतिरिक्त सुविधाओं का उपयोग लागत के साथ संतुलन स्थापित करने में किया जाता है।

क्रीड़ा विधि (Gaming Methode) :
इस विधि के प्रमुख समर्थक वार्न न्यूमैन और मोगेन्सटर्न है। जब समस्या मूलतः प्रतियोगियों के कार्यों से संबंधित होती है तो इस पद्धति का उपयोग किया जाता है। यदि ए कंपनी के द्वारा उत्पादन बढ़ाने या कम करने का निर्णय लिया जाता है तो बी कम्पनी को हमेशा प्रतिक्रियास्वरूप निर्णय के लिए तैयार रहना चाहिए। उपयुर्क्त विधियों के अलावा आधुनिक प्रबंधन के क्षेत्र में नवीनतम तकनीकों का भी उपयोग किया जाने लगा है जो कि सामूहिक निर्णय प्रक्रिया को श्रेष्ठतम बनाने में सहयोग करती है। इनका उपयोग आधिकारिक संभावित विकल्पों की खोज करने में या उनको विकसित करने में सहायता मिलती है। गुणात्मक और मात्रात्मक विधियों के अलावा वर्तमान संगठनों में आधुनिक तकनीकों का भी उपयोग किया जाने लगा है। इनमें मुख्य तकनीके निम्नलिखित हैं :-

मानसिक विक्षोभ विधि (Brain Storming Method) :
इस तकनीक का उपयोग 1938 में अमेरिकी कंपनी में अलेक्स एफ आर्सबोन के द्वारा पहली बार किया गया। यह नियोजन और निर्णयन प्रक्रिया में सृजनात्मक चिंतन की मुक्त, उत्साहजनक और लोकप्रिय प्रविधि है। इसमें 10 से 15 तक की संख्या में लोगों का समूह होता है जिनके समक्ष समस्या प्रस्तुत की जाती है। इस संबंध में सबको समस्या निदान के संभावित विकल्प खोजने की स्वतंत्रता दी जाती है। किसी भी व्यक्ति की आलोचना और उसका मूल्यांकन नहीं किया जाता है। यहाँ नवीनतम विचारों को उत्पादित होने का अवसर दिया जाता है। इस पद्धति का मुख्य उपयोग शोध

शिक्षण संस्थान, विज्ञापन जगत, सेना, सरकारी और गैर सरकारी निगमों में किया जाता है। इसके प्रमुख गुण हैं आनंददायक, व्यक्तिगत सुरक्षा, सहभागिता की भावना, सर्जनशीलता जबकि अवगुणों में समस्या के स्पष्ट और जटिल होने पर समय तथा धन का अपव्यय होना है।

सिनेटिक्स या सामान्य सहमति मानचित्रण पद्धति (Synectics or Consensus Methode) :

सिनेटिक्स यूनानी भाषा का शब्द है जो कि समस्या निदान की ऐसी तकनीक है जो सर्जनशील चिंतन को बढ़ावा देती है। इस पद्धति के विकासकर्ता विलियम गोर्डन है। इस पद्धति में जहाँ विविध क्षेत्रों के तकनीकी विशेषज्ञ होते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है बाहर से देखने पर अप्रासंगिक भिन्न तत्वों को एक साथ जोड़ना अर्थात् समूह में बांध कर रखना। एक निर्णय पर पहुँचने के लिए अनेक छोटे या उप समूह को चिंतन की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। तकनीक की शुरुआत के पश्चात् विचारों की एक सूची विकसित होती है। सहभागियों को भी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती है जिनमें विचारों का उद्भव होता है। तकनीकी विशेषज्ञ इनका व्यावहारिक मूल्यांकन भी करते हैं जिसके पश्चात् एक अंतिम निर्णय तक पहुँचा जाता है। यह तकनीक जटिल संरचना और सृजनात्मकता वाले क्षेत्र में काम आती है। इसका गुण है-तकनीकों का प्रयोग एवं अवगुण है-केवल एक विकल्प की खोज कर पाना। समूह के सदस्यों द्वारा एक समूह है या एक इकाई या कड़ी के रूप में कार्य किया जाता है।

सामान्य समूह तकनीक (Nominal Group Technique) :

इस विधि के अनुसंधानकर्ता समाज विज्ञानी एंट्री डेल बैक तथा ए वान डे वेन है। इस विधि में समूह के अन्तर्गत 7 से 10 प्रतिभागी होते हैं जो एक ही क्षेत्र से एक दूसरे के परिचित और अलग-अलग पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति होते हैं परंतु निर्णय प्रक्रिया के दौरान भी आपस में अंतर क्रिया अथवा मौखिक संप्रेषण नहीं करते हैं। इसे राउंड रोमन पद्धति भी कहा जाता है क्योंकि यहाँ प्रत्येक का प्रत्येक

के साथ मुकाबला होता है जिसकी लिखित सूचना दी जाती है। इस तकनीक के प्रमुख 6 चरण है :- समूह एकत्रित करना और समूह बनाना, गुप्त रूप से प्रत्येक द्वारा अपने विचारों की सूची बनाना, 10 मिनट बाद चक्राकार रूप में प्रस्तुत करना, प्रत्येक सदस्य द्वारा विचार-विमर्श तथा मूल्यांकन व संशोधन करना, वरीयता अनुसार लिखित मतदान करना, अंततः गुप्त मतदान करना। इसके बाद प्रबंधक निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होता है।

डेल्फी तकनीक (Delfi Technique) :
डेल्फी सब प्राचीन यूनान के धार्मिक ग्रंथों से या देववाणी से लिया गया है। डेल्फी शब्द एक तीर्थ स्थल अथवा पवित्र स्थल का प्रतीक होता है। जहाँ प्राचीनकाल में यूनानी लोग भविष्य के बारे में जानकारी लेने के लिए प्रार्थना करते थे अथवा डेल्फी शब्द उस महिला पुजारिन के लिए प्रयुक्त होता था जो भविष्यवाणी करती थी। इस तकनीक की शुरूआत अमेरिका के रेड कॉरपोरेशन के विचारको ने की जिसमें दूरगामी भविष्यवाणियों के लिए समूह के द्वारा निर्णय लिया जाता है। यह तकनीक मूलतः गोपनीयता पर आधारित होती है। सभी अपने विचार स्वतंत्र और गोपनीय रूप से प्रस्तुत करते हैं। सदस्यों को एकत्रित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह वैज्ञानिक पद्धति है जो कि मृत व्यक्तियों से प्राप्त संदेशों पर आधारित होती है। इसमें सदस्य फेस टू फेस अंतः क्रिया नहीं करते हैं। प्रश्नावली सूची की पूर्ति के लिए लिखित सूचना के माध्यम से अंतिम निर्णय पर पहुँचा जाता है।

डिसीजन ट्री पद्धति (Decision Tree Methode :
इस पद्धति में निर्णय की प्रक्रिया चरणबद्ध श्रृंखला पर आधारित होती है। दूसरा चरण पहले चरण के परिणाम के आधार पर और तीसरा चरण दूसरे चरण के परिणाम के आधार पर और आगे इसी क्रम से संचालित होते है। इस तरह से निर्णय प्रक्रिया अंतिम स्थिति तक पहुँचती है। इस पद्धति में अनिश्चितता लगातार बनी रहती है। यह विकल्पों एवं चरणों पर आधारित प्रणाली है।

निर्णयन तकनीकों की सीमाएं : निर्णयन कि इन तकनीकों पर कुछ सीमाएं भी रहती है। हडसन स्केलर के अनुसार व्यवसाय की प्रकृति, दबाव समूह, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिवेश, कानूनी क्षेत्र इत्यादि इन्हें सीमित करते हैं।

निर्णय निर्माण की प्रक्रिया के प्रमुख चरण : निर्णय निर्माण की प्रक्रिया प्रशासन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। यह एक ऐसा तंत्र है जिसके माध्यम से प्रशासन अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है। लोकनीति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जिस तरह से लोकनीति का निर्माण हो उसी तरह से इसे लागू करने का भी सही और समय पर निर्णय हो अर्थात् निर्णय प्रक्रिया किसी भी लोकनीति की सफलता का आधार होती है। किसी संगठन का संचालन इसी बात पर निर्भर करता है कि प्रत्येक स्तर पर निर्णय किस तरह से लिए जाते हैं। निर्णय प्रक्रिया में सामान्यतया निम्न 6 आधारभूत चरणों को अपनाया जाता है :-

1. समस्या को परिभाषित करना अथवा स्पष्ट करना।
2. समस्या का विश्लेषण करना।
3. प्रासंगिक सूचनाओं का संग्रहण करना।
4. वैकल्पिक समाधानों का विकास अथवा खोज।
5. उपलब्ध दशाओं में सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना।
6. विकल्प को लागू करना।

हर्बर्ट साइमन के अनुसार निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में केवल तीन महत्वपूर्ण चरण निम्नलिखित होते हैं :-

1. **आसूचना या बुद्धिमता क्रिया का चरण** (The Intelligence Activity Stage) : साईमन ने इसे निर्णय निर्माण की प्रक्रिया का प्रथम चरण कहाँ

है। साईमन के अनुसार प्रथम चरण को निर्णय निर्माण की बुद्धिमता क्रिया कहा जाता है। इसमें निर्णय लेने के अवसरों को शामिल किया जाता है। संगठन का मुखिया या संगठन के परिवेश का अध्ययन करने के पश्चात् समस्या का पता लगाता है और उसके संबंध में आवश्यक सूचनाएं और जानकारियाँ प्राप्त की जाती है। पूरा संगठन इसके प्रति सचेत या सजग रहता है और इसे आगामी चरण में प्रेषित करने की प्रक्रिया का निर्वहन भी करता है।

2. **प्रारूप क्रिया का चरण** (Design Activity Stage) : साईमन के अनुसार निर्णय निर्माण की प्रक्रिया का यह दूसरा चरण होता है। जहाँ समस्या को पहचान लेने के पश्चात संगठन के मुखिया के द्वारा सर्वश्रेष्ठ संभावित विकल्पों की तलाश की जाती है जिससे समस्या का निदान हो सके और संगठन सकारात्मक एवं लाभदायक नतीजों को प्राप्त करने में सफल हो सके। इस चरण में प्रत्येक संभावित विकल्प के गुण-अवगुण का विश्लेषण किया जाता है। यह चरण समस्या और उसके लिए खोजे गए संभावित विकल्पों के बारे में चिंतन का चरण होता है।

3. **विकल्प चयन क्रिया का चरण** (Choice Activity Stage) : यह साईमन की निर्णय प्रक्रिया का यह तीसरा चरण होता है। इसमें प्रशासन द्वारा विकसित विकल्पों में से एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना होता है। जहाँ उपलब्ध सभी विभिन्न विकल्पों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाता है। इस चरण के पूर्ण होने पर लिया जाने वाला निर्णय संगठन के हितों की

पूर्ति करने वाला दिखाई देता है। इस चरण में निश्चित कौशल की आवश्यकता होती है। जैसे कि निर्णय सर्जनशीलता, गुणात्मक विश्लेषण और निर्णयन प्रक्रिया का अनुभव इत्यादि। तीसरा चरण उपलब्ध संभावित विकल्पों में से श्रेष्ठतम विकल्प के निर्धारण का चयन या चरण होता है।

इस प्रकार साईमन के द्वारा तार्किक निर्णय प्रक्रिया को तीन चरणों से गुजरना पड़ता है। परंतु सौ फीसदी तार्किक निर्णयन प्रक्रिया कभी नहीं हो सकती है। जैसे कि आज का निर्णय कल की परिस्थितियों या बड़े संगठन में पूर्णतया उपयोगी हो यह जरूरी नहीं है। अतः निर्णय प्रक्रिया में अधिकतम तार्किकता को अपनाया जा सकता है। साईमन के द्वारा प्रस्तुत उपयुर्क्त तीन चरण जॉन डीवी के द्वारा पहली बार 1910 में प्रतिपादित समस्या समाधान के तीन चरणों के साथ निकटता से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। जॉन डीवी के अनुसार समस्या समाधान के तीन चरण निम्नलिखित थे :-

1. समस्या क्या है? (What is the Problems?)
2. विकल्प क्या है? (What are the Alternatives?)
3. श्रेष्ठ विकल्प कौन सा है? (Which alternatives is the best?)
4. निर्णय की स्तरों या चरणों को लेकर विद्वानों के बीच सर्वसम्मति नहीं है।

प्रबंधन चिंतन की पितामाह पीटर एफ ड्रकर ने निर्णयन प्रक्रिया के पाँच चरणों का उल्लेख किया है जो कि निम्नलिखित है :-

1. समस्या का पता लगाना।

2. समस्या का विश्लेषण करना।
3. वैकल्पिक समाधानों का विकास करना।
4. समस्या निदान के सर्वोत्तम मार्ग का चयन करना।
5. निर्णयन को प्रभावी रूप में लागू करना।

इसी तरह से गिजबर्ग, लुंडबर्ग और न्यूमैन, समर, मिसफील्ड इत्यादि ने भिन्न संख्या में निर्णयन चरणों का वर्णन किया है। समस्या निदान की निर्णयन प्रक्रिया एवं संगठन नेतृत्व कर्ता की समस्या की प्रकृति पर भी निर्भर करती है और इसी के अनुरूप निर्णयन के के चरण निर्धारित किये जा सकते है।

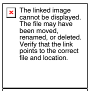

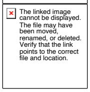

संचार का सिद्धान्त

(Theory of Communication)

प्रशासनिक विभाग के अंतर्गत **संप्रेषण संगठन का प्रमुख आधार** होता है। प्रबंधन विश्वसनीय संगठन की सफलता प्रभावी, स्पष्ट और सरल प्रस्तुतीकरण पर बहुत हद तक निर्भर करती है। संप्रेषण ऐसा होना चाहिए कि जिसे सहकर्मी, उच्चस्थ-अधीनस्थ एवं आमजन आसानी से मूल अर्थ या स्वरूप में समझ सके। संप्रेषण के बिना मानवीय जीवन शून्य के समान हो जाता है। संप्रेषण व्यक्ति से व्यक्ति की ओर विचारों व सूचनाओं का प्रवाह एवं आदान-प्रदान होता है। इसमें प्रेषक द्वारा स्थानांतरित की गए विचारों और सूचनाओं का या प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त किये गए अनुभव को शामिल किया जाता है। प्रभावी संप्रेषण केवल तभी संभव है जब सूचना और विचार प्राप्तकर्ता उसी अर्थ में समझ पाता है जिस अर्थ में प्रेषक समझाना चाहता है। सार्थक वाक्यों,

सूचनाओं एवं विचारों का आदान-प्रदान ही संचार है। संगठन समयबद्ध उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करता है। संगठन में और उसके सभी भागों में उचित समनव्य की आवश्यकता होती है और वह केवल उचित संचार के माध्यम से ही संभव है। सभी प्रकार के संगठन बड़े या छोटे, जटिल या सामान्य अथवा तकनीक वाले हो उन सबमें संप्रेषण तंत्र की प्रधान आवश्यकता होती है। **मिलेट ने ठीक ही कहा है कि ''संप्रेषण प्रशासनिक संगठन का जीवन प्राण होता है।''** **पिफनर** के अनुसार **''संप्रेषण प्रबंधन का हृदय होता है।''** संप्रेषण संगठन के कार्यो के संचालन में व्यापक भूमिका का निर्वहन करता है। इस तरह संप्रेषण मानवीय स्वभाव एवं संगठन की आवश्यकता के रूप में परिलक्षित होता है।

संप्रेषण का अभिप्राय :

संप्रेषण मानवीय जीवन का अभिन्न हिस्सा है। बिना संप्रेषण के विचारों और सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं हो सकता है और इसके अभाव में जीवन प्रणाली रुक जाती है। यद्यपि संप्रेषण भी एक मानवीय कौशल होता है। कम्युनिकेशन (Communication) **आंग्ल भाषा** का शब्द है जो **लैटिन भाषा के कम्यूनिस** (Communis) से निर्मित है जिसका शाब्दिक अर्थ है साझा करना। इस प्रकार संप्रेषण सूचनाओं का आदान प्रदान करने की प्रक्रिया है जहाँ विचारों और संदेशों का मौखिक, सांकेतिक अथवा लिखित स्वरूप में व्यवहार किया जाता है। अतः संप्रेषण में सूचना व संदेश प्लस अर्थ प्लस समझ प्लस प्रक्रिया का योग होता है। सूचना और संदेश को मूल अर्थ में समझना और समझाना ही संप्रेषण होता है। **किथ डेविस** के शब्दों में ''यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सूचना भेजने और समझने की प्रक्रिया होती है।'' **जे डी मिलेट** के अनुसार ''संप्रेषण साझा उद्देश्यों की साझा समझ होती है।''

चेस्टर आई बर्नार्ड के अनुसार ''जिस संचार को समझा नहीं जा सकता उसका कोई प्राधिकार नहीं होता है।'' आर्डवे टीड के अनुसार ''संचार वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाता है।'' टैरी व फ्रैंकलीन के अनुसार ''यह लोगों के बीच समझ को विकसित करने और प्राप्त करने की कला है। उपयुर्क्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर संप्रेषण की कुछ अपरिहार्य आवश्यकताएँ उभर कर हमारे सामने आती है जिन्हें संचार के लक्षणों के नाम से जाना जाता है।

संप्रेषण की विशेषताएँ (Characteristics of Communication) :

1. संप्रेषण एक प्रक्रिया होती हैं। इस प्रक्रिया में प्रथम तत्व संदेश भेजने वाला होता है।
2. उसके पास एक विचार होता है जिसे वह भेजना चाहता है। यही विचार संप्रेषण की विषय वस्तु है विचार या शब्द को लिखित या मौखिक स्वरूप में बदलना ही इनकोडिंग कहलाता है।
3. संप्रेषण के लिए कम से कम 2 व्यक्तियों या पक्षों की आवश्यकता होती है अर्थात् **संचार एक द्विमार्गी प्रणाली** होती है। संप्रेषण अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता है। इसके लिए कम से कम दो या अधिक लोगों की आवश्यकता होती है। सूचना प्राप्तकर्ता डिकॉडिंग कर सूचना को समझता है।
4. संप्रेषण एक सतत प्रक्रिया होती है जिसमें लगातार संपर्क में रहना पड़ता है।
5. संप्रेषण प्रक्रिया में सूचना और समझ दोनों शामिल होते हैं।
6. यह संगठन में अनेक स्तरों पर निष्पादित होती हैं।
7. संप्रेषण के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है।

8. फीडबैक संप्रेषण को और अधिक प्रभावी बनाने में सहायक होता है।

सम्प्रेषण के प्रमुख प्रकार (kinds of Communications) :

सामान्य के संप्रेषण एक सतत और अनवरत रूप से संचालित बीमार की प्रक्रिया होती है जो अनेक माध्यमों एवं सबूतों से होकर संपन्न होती है संप्रेषण का स्वरूप भी संगठन के समान ही उपचार्य का अथवा अनौपचारिक हो सकता है वह व्यक्तियों के बीच की प्रक्रिया है अतः विविध संगठनों में या भिन्न-भिन्न मानवी समुदायों में उसका अपना एक विशिष्ट और भिन्न तरीका हो सकता है।

1. मौखिक, लिखित और सांकेतिक संप्रेषण (Oral, Written and Gestural Communication) : संप्रेषण के प्रकारों को सामान्यतया संप्रेषण की विधियाँ भी कहा जाता है। यह संप्रेषण का माध्यम भी होते हैं। यद्यपि मूल रूप से मौखिक और लिखित संप्रेषण को ही संप्रेषण की प्रमुख माध्यम माना गया है फिर भी आदिमानव के समय से ही सोंकेतिक विधि बहुत महत्व रखती थी और यह आज भी विशिष्ट परिस्थितियों में विशेष महत्व रखती है। लिपि और भाषा के विकास के पूर्व इसका अपना विशिष्ट महत्व होता था और आज भी शारीरिक भाषा किसी मौखिक संप्रेषण को जीवंत बनाने में अपनी प्रभावी भूमिका निभाती है।

मौखिक या वाचिक संचार स्पष्ट रुप से सूचना प्रेषित करता है और प्राप्त करता है। यद्यपि संगठन लिखित संप्रेषण पर ही संचालित होता है परंतु उसमें अधिकांश कार्य मौखिक संप्रेषण के माध्यम से ही निष्पादित होते हैं। यह संप्रेषण की सबसे स्वाभाविक विधा या कला है जिसमें संदेश देने वाला और संदेश प्राप्त करने वाला प्रत्यक्षतः आमने सामने हो सकते हैं अथवा यांत्रिक संसाधनों का प्रयोग कर सकते हैं। आमने सामने की वार्तालाप दूरभाष संपर्क, संगोष्ठी या सेमिनार, साक्षात्कार, सार्वजनिक भाषण, विहसल्स एंड बेल्स इत्यादि संप्रेषण की श्रव्य माध्यम के उदाहरण

हैं।

मौखिक संप्रेषण के गुणों में प्रमुख है :- यह तुलनात्मक रूप से विस्तृत व्याख्यान देने में अधिक प्रभावी होता है। यह भ्रम और गलतफहमीयों को आसानी से दूर कर सकता है। इसमें समय और धन की बचत होती है। संप्रेषणकर्ता आसानी से समझ लेता है कि प्राप्तकर्ता संदेश को समझने में सक्षम है या नहीं है। तुरंत फीडबैक प्राप्त हो जाता है। कार्मिकों से सहयोग प्राप्ति में व उनके झगड़ों का समाधान करने में बहुत उपयोगी होता है। अनुदेशन व्याख्यान और काउंसलिंग में महत्वपूर्ण उपयोगी होता है। इसी के साथ **मौखिक संप्रेषण के अवगुण** भी होते हैं अर्थात् इसका कोई प्रमाण नहीं होता है। इसे बाद में सत्यापित करना कठिन हो जाता है। इसमें अनेक तरह की कानूनी बाध्यता है। **लिखित संप्रेषण** के अंतर्गत सूचना वह संदेशों का लिखित स्वरूप में आदान-प्रदान होता है। यह संप्रेषण का औपचारिक कानूनी और गंभीर प्रकृति का प्रामाणिक संप्रेषण होता है। लिखित संप्रेषण संगठन का मूल आधार होता है। लिखित संप्रेषण के रूप में समाचार पत्र, बुलेटिन, मैनुअल हैंड बुक, नोट्स, आदेश-अनुदेश, नियमावली, प्रतिवेदन, वार्षिक रिपोर्ट, लिखित शिकायतें इत्यादि शामिल हैं।

लिखित संप्रेषण के गुण निम्नलिखित हैं :- संपूर्ण कार्यवाही का लिखित रिकॉर्ड होता है जिसमें फेरबदल नहीं किया जा सकता है। इसे आसानी से सत्यापित और परिभाषित किया जा सकता है। यह कानूनी कार्यवाही का आधार होता है। निर्णय आदेश लिखित स्वरूप में मान्य होते हैं। **लिखित संप्रेषण के कुछ अवगुण** भी होते हैं जैसे कि कार्य में अनावश्यक देरी से लालफीताशाही और भ्रष्टाचार में बढ़ावा मिलता है। भाषा और अर्थ भ्रान्तिपूर्ण हो सकता है। स्पष्ट संप्रेषण में समय और धन का अपव्यय होता है। सूचना प्राप्तकर्ता की प्रतिक्रिया शीघ्रता से उपलब्ध नहीं होती है। **सांकेतिक संप्रेक्षण या अवाचिक संप्रेषण** इशारों या संकेतों अथवा प्रतीकों के माध्यम से किया जाने वाला संप्रेषण है। मुख्य

संप्रेषण सामान्य मौखिक संप्रेषण की प्रदर्शनी या अनुपूरक के रूप में यह प्रयुक्त होता है। अवाचिक संप्रेषण के अंतर्गत व्यक्तियों, एक दूसरे की भावनाओं, अभिवृतियों और संवेदनाओं को भलीभांति समझ पाते हैं। अवाचिक संप्रेषण बिना कोई शब्द कहे और लिखे अपना संदेश दे सकता है। यह एक सशक्त संप्रेषण होता है। यह यथार्थ संदेश देने की ओर उन्मुख होता है। अवाचिक संप्रेषण के मुख्य घटक आकृति, शैली, नेत्र, संपर्क, रुख, पहनावा, संस्पर्श शारीरिक हलचल, पर्यावरण विसंगति, सामाजिक कारक, श्रवण शक्ति इत्यादि होते हैं। अवाचिक संप्रेषण में दृष्टि, दिशा, चेहरे की भाव भंगिमा, शारीरिक संगीत या भाषा, हाथ मिलाना इत्यादि शामिल हैं। एक अच्छा प्रबंधक एवं संप्रेषण की भूमिका को कला के रूप में नजरअंदाज नहीं कर सकता है। **अवाचिक संप्रेषण के प्रमुख गुण** निम्नलिखित हैं :- यह संप्रेषण का सशक्त माध्यम होता है। इसमें भावनाओं और अभिव्यक्तियों का प्रस्तुतीकरण होता है। मौखिक संप्रेषण का पूरक होता है। बोलने में लिखने में अक्षम लोगों के लिए बहुत उपयोगी होता है। **अवाचिक संप्रेषण के कुछ अवगुण** भी होते हैं। जैसे कि संप्रेषण के तत्व, प्रतीक, संस्कृति में भिन्न-भिन्न होते हैं। रंगो एवं शारीरिक भाषा का अर्थ अलग-अलग देशों में भिन्न-भिन्न अर्थ रखता है। इसका कोई प्रमाण नहीं होता है। सांकेतिक भाषा को दूसरे संप्रेषण में रूपांतरित करना कठिन होता है। उदाहरण के लिए हाथों से तालियाँ बजाना, सीटी मारना, क्रिकेट में अंगुली खड़ी कर आउट का इशारा करना, ,अंगूठा दिखाना आँखें दिखाना, होठों पर अंगुली रखना, ट्रैफिक सिग्नल इत्यादि।

2. औपचारिक और अनौपचारिक संप्रेषण (Forman and Informal Communications) : औपचारिक संप्रेषण सामान्यतः कार्यकारी संचार को प्रस्तुत करता है जो कि संगठन की कार्यप्रणाली में एक स्थापित संचार व्यवस्था होती है। संगठन की संरचना एक पदसोपानीय स्वरूप या उच्चस्थ-अधिनस्थों के संबंधों को अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार

प्राधिकार या सत्ता की श्रृंखला संगठन को कार्यकारी संप्रेषण के चैनल उपलब्ध कराती है। औपचारिक संप्रेषण भी लिखित और मौखिक हो सकता है परंतु यह अधिकांशतः लिखित स्वरूप में ही होता है। **औपचारिक संगठन के मुख्य लाभ और गुण** निम्नलिखित हैं :- औपचारिक संप्रेषण के अंतर्गत सूचना और विचारों का व्यवस्थित और सुनिश्चित स्वरूप होता है। इसमें प्राधिकार के संबंध संगठन में संचार की दिशा और प्रभाव को दर्शाते हैं। इसमें कार्य का विभाजन उत्तरदायित्व को आसानी से निश्चित और नियंत्रित कर देता हैं। इसका अवगुण यह है कि यह प्रक्रिया को दीर्घ और धीमी गति प्रदान करता है। जबकि **अनौपचारिक संप्रेषण** सामान्य संगठन के कार्मिकों के बीच अंतः व्यैक्तिक संबंधों के द्वारा संचालित होता है। अनौपचारिक समूह के सदस्य सूचनाओं एवं विचारों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की ओर आदान प्रदान करते हैं। इस प्रकार का संप्रेषण संचार की कार्यालय रेखा से दूर और स्वतंत्र होता है। यह औपचारिक संप्रेषण चैनल्स में आने वाली बाधाओं और सीमाओं से दूर रहता है। ग्रेपवाईन अथवा अंगूरलता या अनौपचारिक संप्रेषण संरचना विहीन सभी दिशाओं में गमन करने वाला संप्रेषण चैनल्स का प्रतिनिधित्व करता है। यह संप्रेषण का सामाजिक प्रतिरूप होता है। यह एक आभासी संगठन होता है।

अनौपचारिक संप्रेषण की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:-

1. यह लोगों की सामाजिक अंतर क्रियाओं से उत्पन्न होता है।
2. यह लोगों की एक दूसरे से वार्तालाप करने की सामान्य स्वाभाविक क्रिया है। यह एक समूह श्रृंखला के रूप में प्रत्येक से अन्य लोगों तक संप्रेषण चैनल्स को उत्पन्न करता है।
3. इसमें केवल कुछ व्यक्ति सक्रिय होते हैं, अन्य लोग इसमें केवल ग्रेपवाईन के रूप में शामिल होते हैं

जबकि उनका उनके समूह या मित्रों का हित शामिल होता है।

4. इसकी गति जंगल में लगने वाली दावानल के समान होती है।
5. ग्रेपवाईन एक पूर्व कथन होता है जिसे कई बार प्रबंधक प्रभावित करने की कोशिश करता है।

अनौपचारिक संप्रेषण के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं : - यह संगठन में अच्छे मानवीय संबंधों को स्थापित करता है। यह उदार और व्यक्तिगत प्रकृति के कारण औपचारिक संप्रेषण की दूरियों को कम करता है। इसकी गति बहुत तेज होती है क्योंकि सभी प्रकार के प्रतिबंधों से यह मुक्त रहता है। यह कार्मिकों को संगठन से दूर कर अपनी कुंठाओं को दूर करने का अवसर देता है। इसके कुछ अवगुण होते हैं। जैसे कि इसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं होता है। अतः संगठन में अफवाहों को जन्म मिलता है। कोई भी व्यक्ति फैलने वाली सूचना या संदेशों के लिए उत्तरदाई नहीं होता है।

यह आसानी से लोगों को गलत नेतृत्व प्रदान कर देता है किथ डेविस ने ग्रेपवाइन का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार लोग ताजा घटना के बारे में बात करते हैं, कार्य को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में बात करते हैं, अपने जानकार लोगों के बारे में बात करते हैं। अतः आलोचना करने हेतु इस ग्रेपवाईन सिद्धांत का उदय हुआ है। यह शब्द सर्वप्रथम अमेरिकी गृहयुद्ध के समय पहली बार प्रयुक्त हुआ। जब सूचनाओं को प्रेषित करने हेतु टेलीग्राफ लाइनों को वृक्षों से जोड़ा गया परंतु उनमें व्यवधान उत्पन्न हो गया। अतः अब गैरसरकारी या अनधिकृत सूचनाओं के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि भारतीय महाभारत महाकाव्य में श्री कृष्ण के द्वारा कहा गया कि **'अश्वत्थामा मारा गया, गज नहीं नर।''**

औपचारिक और अनौपचारिक संप्रेषण में अंतर :

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

औपचारिक और अनौपचारिक संप्रेषण में अंतर

3. अधोमुखी, उर्ध्वमुखी और क्षैतीजीय संप्रेषण (Downwards, Upwards and Horizontal Communications) :

अधोमुखी संचार पदसोपानीय संगठनात्मक ढांचे में ऊपर से नीचे की ओर गमन करता है। संप्रेषण का यह प्रकार संगठन में सर्वाधिकारवादी वातावरण का निर्माण करता है। आदेश, निर्णय और प्राधिकार ऊपर के स्तर से संगठन के निम्न स्तरीय कार्मिकों की तरफ स्थानांतरित होते है। इसे अवरोही संप्रेषण या अधोमुखी संप्रेषण भी कहा जाता है।
उर्ध्वमुखी या आरोही संप्रेषण संगठन में नीचे से या अधीनस्थ कार्मिकों की तरफ से उच्च कार्मिकों की तरफ होता है। इसे अधीनस्थों की प्रोत्साहन या पहल का संप्रेषण कहा जाता है। आरोही संचार प्रकृति से निर्देशित होता है। ऊपर की ओर गमन करने वाला संचार सूचनाओं से संबंधित होता है अर्थात् अधीनस्थों के निष्पादन प्रतिवेदन कार्यों से संबंधित समस्या, शिकायतों पर मत, सुझाव इत्यादि। दुर्भाग्य से इस संप्रेषण में उच्चस्थ सबसे बड़ी बाधा बन जाते हैं। संगठन का वातावरण उनसे उच्च स्तरीय प्रभाव में कार्य करता है।
क्षेतीजीय या समस्तरीय संचार संगठन में संचार का वह प्रवाह है जो समकक्ष या समान प्रस्थिति वाले कार्मिकों के बीच होता है। ऐसा संप्रेषण संगठन में अधोमुखी और उर्ध्वमुखी संचार की कठोरता को सीमित कर देता है। यह अलग-अलग विभागों में समन्वय या समायोजन स्थापित करता है और टीम वर्क की भावनाओं को प्रोत्साहित करता है। यह अधिकांशतः पिरामिड के निम्न स्तरीय ढांचे पर कार्य होता है।

4. विकिरण या तिरछा संपर्क संप्रेषण (Diagonal Communication) :
यह संप्रेषण का अन्य प्रकार है। यह संप्रेषण वहाँ होता है जहाँ न तो समान विभाग होते हैं। उन्हें ही समकक्ष स्तर के कार्मिक या पद सोपान का कोई स्तर होता है। यह संपूर्ण सांगठनिक सुरक्षा में

छोटे मार्ग को अपनाकर संदेशों को तीव्र गति से पहुँचा देता है। जैसे कि सेल्समैन मैनेजर से पत्र व्यवहार न करके सीधे ही ग्राहक से पत्र व्यवहार करने लगे।

संप्रेषण के प्रतिमान
(Models of Communication)

संचार प्रणाली किस तरह से सम्पादित होती है। इस सन्दर्भ में अनेक चिंतकों के द्वारा बहुत से प्रतिमानों का प्रतिपादन किया गया है। विभिन्न विषयों के प्रख्यात सिद्धांतकारों द्वारा विकसित संचार के कई मॉडल हैं। सिद्धांतकारों मेंः अरस्तू, लैस्वेल, शैनन, वीवर, मैकलुहान, मैकलीन, रिलेयस, वेस्टले, गेर्बनेर, रोथस्टीन, श्रामन, बेर्लो, ओसगूड, जॉनसन (Aristotle, Lasswell, Shannon, Weaver, McLuhan, MacLean, Rileys, Westley, Gerbner, Rothstein, Schramn, Berlo, Osgood, Johnson) प्रमुख हैं। जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रतिमानों का विवेचन निम्न प्रकार से है :-
संचार के प्रतिमानों के विकास की विचारधारा राजनीति विज्ञान के पितामाह यूनानी चिंतक अरस्तू के चिंतन से आरंभ होती है। अरस्तू 'संचार के प्रतिमान' नामक मॉडल को विकसित करने वाला पहला (300 ई.पू.) पहला विचारक था। यह मॉडल पारस्परिक संचार की तुलना में सार्वजनिक बोलने पर अधिक केंद्रित है। आज भी संचार के अरस्तूवादी प्रतिमान का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। संचार के इस मॉडल में प्रेषक अपने अनुसार प्रतिक्रिया देने के लिए उन्हें प्रभावित करने के प्रयास में संदेश को रिसीवर को भेजता है। संदेश को बहुत प्रभावशाली और ठोस होना चाहिए। इसलिए प्रेषक को अपने दर्शकों को अच्छी तरह से जानना और समझना होगा। इस मॉडल में प्रेषक एक सक्रिय

भागीदार है और रिसीवर निष्क्रिय है। इस अवधारणा का उपयोग सार्वजनिक बोलने, सेमिनारों और व्याख्यान में किया जाता है। संचार के अरस्तूवादी प्रतिमान के तीन मूल तत्व होते है अर्थात् वक्ता (Speaker) संदेश या भाषण (Speech) श्रोता (Audience) अर्थात् सूचना प्राप्तकर्ता। अरस्तू वक्ताओं को अलग-अलग समय अर्थात् अवसरों पर विभिन्न दर्शकों के लिए और विभिन्न प्रभावों के लिए भाषण देने की सलाह देता है। सार्वजनिक बोलने में अध्यक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वक्ता को मंच में प्रवेश करने से पहले अपने भाषण और विश्लेषण की ज़रूरतों को तैयार करना चाहिए। उनके शब्दों को दर्शकों के मन में प्रभावित करना चाहिए और उनके प्रति अपने विचारों को मनाना चाहिए।

1. हेराल्ड लासवैल का संचार प्रतिमान (Harold Lasswell Model of Communication) : संचार के इस प्रतिमान का प्रतिपादन एच लासवैल के द्वारा 1948 ई. मे किया गया। इस प्रतिमान को शाब्दिक उपागम के नाम से भी जाना जाता है। संचार के उपागमों की आधुनिक अवस्था के आरंभ में लासवैल के द्वारा इसे समाज में संचार प्रकार्य एवं संरचना के रूप में अभिव्यक्त किया गया। अरस्तु एवं लासवैल दोनों के द्वारा संचार को एक वस्तु या ऑब्जेक्ट के रूप में देखा गया है। इसे रेखीय संचार प्रतिमान (Linear Communication Model) भी कहा जाता है। यह एक पक्षीय संचार प्रणाली में विश्वास करता है। लासवैल ने 1948 में लिखा कि संचार प्रकार्य को निम्नलिखित प्रश्नों के जवाबों से समझा जा सकता है अर्थात्

कौन कहता है (Who) ?
क्या कहता है (Says what) ?
किस माध्यम से कहा जाता है (In which channel) ?
किसे कहा जा रहा है (To whom) ?
क्या प्रभाव पडता है (With what effect) ?

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Communication Model

लासवैल के संचार का यह मौखिक प्रतिमान अभिव्यक्त करता है कि किसी संदेश का प्रवाह बहुसांस्कृतिक समाज में अनेकों श्रोताओं के माध्यम से प्रवाहित होता है। यह संदेश भी विविध चैलन्स से होकर प्रवाहित होता है। इस सिद्धान्त में प्रत्युतर तंत्र और संचार में उत्पन्न बाधा या शोरगुल के बारे में परिचर्चा नहीं करने की मुख्य कमी रही है तथापि इस प्रतिमान अन्य उपागमों को विकसित होने की अभिप्रेरणा प्रदान की है।

2. शैनन और विवर का संचार प्रतिमान (Claude Shannon and Warren Weaver’s Model) : संचार का पहला प्रमुख उपागम बेल प्रयोगशाला से शैनन ओर विवर के निर्देषन में 1949 ई में उदित हुआ जिसने विभिन्न संचार प्रतिमानों को आधारभूत प्रतिमानों के रूप में स्थापित किया। इस प्रतिमान की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है :-

1. यह एक रैखिक प्रक्रिया (Linear Process) होती है।
2. यह एक सरल तकनीक वाला प्रतिमान है।
3. संदेश या सामग्री को पहचानना बहुत आसान है परन्तु उसका समाधान बहुत कठिन होता है।
4. स्त्रोत प्रधान कारक या निर्णय निर्माता एक प्रभाव या प्रभावशीलता के रूप में।

5. इसे संचार का टेलिफोन प्रतिमान भी कहा जाता है।
6. शोरगुल परेशान करने वाला प्रधान कारक होता है, प्रभाव या प्रभावशीलता को।

इन सबके बावजुद भी इस प्रतिमान को कुछ चिंतक संचार का प्रतिमान नहीं मानते है क्योकि यह अपूर्ण और पक्षपाती माना गया है जहाँ माध्यम के माध्यम से सूचना का प्रवाह होता है। यह मुलतः टेलिफोन या टेलिग्राफ का प्रतिमान है। विवर का प्रतिमान एक माध्यम की गतिविधि के रूप में एक ट्रांसमीटर से एक रिसिवर तक के संचरण को दर्शाता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Claude Shannon and Warren Weaver's Model

3. न्यूकोम्ब का प्रतिमान (Newcomb’s Model) : इस संचार प्रतिमान का प्रतिपादन मशिगन विश्वविद्यालय के थियोडोर एम न्यूकॉम्ब (Theodore M Newcomb) थे जिन्होंने अपने आलेख “एन अप्रोच टू द स्टडी ऑफ कम्यूनिकेटिव एक्ट्स“ 1953 (An Approach to the Study of Communicative Acts, 1953 AD) में प्रकाशित किया था। उनका मॉडल एक अलग दृष्टिकोण अपनाता है जो कि संचार को ऐसी भूमिका के रूप में देखता है जो कि एक सामाजिक संबंध (समाज) और सामाजिक प्रणाली के भीतर सामाजिक संतुलन को बनाए रखती है। वह अपने आरेख या रेखाचित्र में संदेश को एक अलग इकाई के रूप में शामिल नहीं करता है अपितु इसे एक इकाई के रूप में देखता है जिसे केवल दिशात्मक तीरों के उपयोग से से समझाया गया है। उन्होंने संचार के सामाजिक उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए सुझाव दिया कि सभी संचार लोगों के बीच संबंधों को बनाए रखने का एक साधन है। कभी-कभी इसे संचार के एबीएक्स (ABX model of Communication) मॉडल के नाम से भी जाना जाता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Enter Caption

4. आसगुड का प्रतिमान :

इस संचार प्रतिमान का प्रतिपादन 1954 ई में अमेरिकी मनोवैज्ञानिक सी ई ऑसगुड व विलब्र सहराम (Charles Egerton Osgood and Wilbur Schramm) के द्वारा किया गया। यह संचार के रैखिक प्रतिमान का अग्रिम या परिष्कृत प्रतिमान था। इन सिद्धान्तकारों की मान्यता है कि संचार अन्तः वैयक्तिक सम्बन्धों पर आधारित प्रणाली है अर्थात् या तो दो के बीच (Inter Personal) अथवा स्वंय के साथ (Intra Personal) भी सम्पादित होती है। इसीलिए यह रेखीय प्रतिमान

से आगे का विकसित प्रतिमान है। जहाँ सन्देश भेजने वाले को तथा संदेश प्राप्त करने वाले दोनों को परस्पर परिवर्तित या दोहरी भूमिका निभानी होती है। यहाँ संचार को एकपक्षीय प्रक्रिया माना गया है। विलब्र श्रेम का कहना है कि संचार की प्रक्रिया न तो किसी किसी बिन्दु से आरंभ होती है और न ही किसी गंतव्य पर जाकर समाप्त होती है अर्थात् वह एक अन्तहीन या सतत प्रक्रिया होती है। इसे परिपत्र प्रतिमान भी कहा जाता है जिसमें संदेश भेजने वाला और संदेश प्राप्त करने वाला अपने हिसाब से कोडिंग व डिकोडिंग और व्याख्या करता है। व्यक्ति पर उसके सांस्कृतिक परिवेश, शिक्षा, सामाजिक-आर्थिक स्थिति और मूल्यों का प्रभाव पडता है। इसलिए व्याख्या या समझने की क्षमता व्यक्ति से व्यक्ति में व्यापक भिन्नता रखती है।

इसे निम्न आरेख में समझाया गया है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Osgood Model

इस प्रतिमान के प्रमुख गुण है :- यह गतिशील है तथा प्रेषक व प्रेषिति की भूमिका एक ही व्यक्ति निभाता है। प्रत्युतर तंत्र को यह संचार प्रक्रिया का ही अभिन्न हिस्सा मानता है। यह संचार की प्रकृति को परिपत्र के रूप में स्वीकार करता है। लेकिन इसके अवगुण यह है कि इसमें काडिंग व एनकोडिंग को एक पल के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी के साथ यह प्रतिमान विघ्न के बारे में परिचर्चा नहीं करता है।

5. संचार का डेविड बेर्लो प्रतिमान (David Berlo Model of Communication) : इस संचार प्रतिमान का प्रतिपादन डेविड बेरलो के द्वारा किया गया अतः इसे ब्रेलों प्रतिमान भी कहते है। इस प्रतिमान में ब्रेलो ने संदेश भेजने वाले व्यक्ति और रिसीवर के बीच संबंधों पर जोर दिया है। इस मॉडल के अनुसार संदेश को ठीक से एन्कोड और डिकोड करने के लिए स्त्रोत या संदेश भेजने वाले और प्राप्तकर्ता दोनों के संचार कौशल अच्छे होने चाहिए। यदि दोनों ही संचार का कोशल रखते हैं तो संचार अपने सबसे अच्छे रूप में होगा। बेरलो के एसएमसीआर (SMCR) प्रतिमान में में चार मुख्य घटक होते हैं और चारों तत्वों में से प्रत्येक घटक के अपने पाँच उप घटक होते हैं। इसे निम्न आरेख द्वारा दर्शाया गया है :-

Source
स्रोत या
प्रेषक

Communication Skill
संचार दक्षता
Attitudes
अभिवृत्तियां
Knowledge
ज्ञान
Social System
सामाजिक प्रणाली

SMCR Model

6. डांस का हेलिक्स मॉडल (Dance's Helix Model of Communication) :

यह संचार का एक प्रसिद्ध प्रतिमान हेलिकल प्रतिमान (Helical Model) है जिसे फ्रैंक डांस (Frank Dance) के द्वारा 1976 ई में प्रतिपादित किया गया था। हेलिक्स का आकार एक त्रिआयामी वस्तु या उल्टे त्रिभुज के समान है अथवा यह एक स्मूथ वक्र (Smooth Curve) की तरह है जो ऊपर की ओर (Upwards) जाता है और इसी तरह से नीचे की ओर (Downwards) गमन करता है।

फ्रैंक डांस ने हेलिक्स संरचना के आधार पर संचार प्रक्रिया की व्याख्या की है जो कि नीचे से एक छोटे से बिन्दु के रूप में शुरू होता है फिर यह धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ता है जो शीर्ष में बड़े सर्कल या गोला बनाता है। पूरी प्रक्रिया को सम्पादित होने में कुछ समय लगता है। हेलिक्स के रूप में संचार प्रक्रिया बहुत धीमी गति से शुरू होती है। संचारक केवल छोटे हिस्से की जानकारी साझा करते हैं और यह धीरे-धीरे आगामी स्तर पर अपनी सीमाओं का विस्तार करते हुए विकसित होता है। यद्यपि इस प्रक्रिया में कुछ समय लगता है। इसके आगे संचारक ओर अधिक सूचनाएं साझा करने के लिए अधिक प्रतिबद्ध होते हैं। फ्रैंक डांस ने अपने इस सिद्धांत में समय की अवधारणा को भी शामिल किया। इस उपागम के अनुसार समय के साथ कुछ होता है और बाद की घटनाएं पूर्व की घटनाओं पर आधारित होंगी। संचार का यह सिद्धांत कई प्रयोगों का विषय था। हांलाकि संचार का यह प्रतिमान सब कुछ स्पष्ट करता है लेकिन इसकी सबसे बडी समस्या अत्यधिक सरलीकरण (Over Simplification) की है।

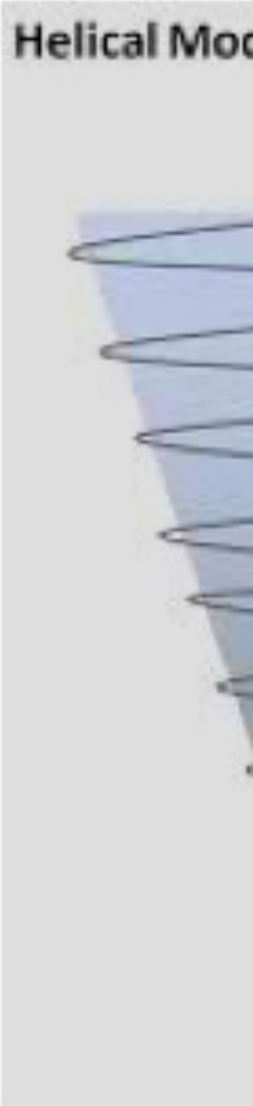

https://www.communicationth
model.jpg

Dance's Helix Model

7. संचार के अन्य प्रतिमान : इनके अलावा ग्रेबनेर का प्रतिमान 1956, वेस्टले और मैकलीन का प्रतिमान 1957, डी विटोज का इण्टरेक्टीव प्रतिमान 2003, डेविस फोल्जर का प्रतिमान 2004, इत्यादि प्रतिमान है।

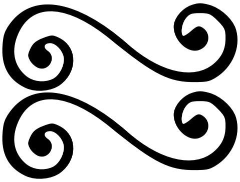

संप्रेषण तंत्र या संजाल

(Communication Networks)

किसी संगठन को संप्रेषण चैनल्स का नेटवर्क या संजाल कहा जाता है। इन चैनलों या माध्यमों से होकर ही संगठन में विचारों, सूचनाओं का संचरण या गमन अथवा आदान-प्रदान होता है। एक संप्रेषण नेटवर्क अंतर संबंधित रेखाओं का प्रारूप है जिनके माध्यम से संदेश के प्रवाह को एक दिशा अथवा अनेक दिशाओं की ओर दर्शाया जाता है। पारस्परिक संबंधों के प्रारूप के आधार पर संगठन में संप्रेषण नेटवर्क के अनेक प्रकार होते हैं। ये चैनल ही किसी संगठन के भीतर और बाहर बारंबारता एवं सुचारुपन को निर्धारित करते हैं। संप्रेषण नेटवर्क के विविध प्रकार इसमें शामिल व्यक्तियों की संख्या और चैनल्स पर निर्भर होते हैं। संप्रेषण नेटवर्क को सामान्यतया दो भागों में विभाजित किया जाता है। औपचारिक संप्रेषण तंत्र और अनौपचारिक संप्रेषण तंत्र। औपचारिक संप्रेषण संजाल : संगठन के भीतर की संचार प्रक्रिया औपचारिक संप्रेषण नेटवर्क पर आधारित होती है जिसके मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं :-

1. वृत्ताकार संजाल (Circle Network) : इसमें संदेश एक वृत्त के समान संचारित होता है। यह संगठन की

पदसोपान व्यवस्था के तीन स्वरूपों का प्रतिनिधित्व करता है। जहाँ पर उच्चस्थ और अधीनस्थ के बीच प्रचालन या क्रियात्मक स्तर पर तिरछा संप्रेषण भी होता है। यहाँ एक व्यक्ति दो समीपस्थ व्यक्तियों से संप्रेषण करता है। यह तीन स्तरीय पदानुक्रम होता है। जहाँ उच्चस्थ और अधीनस्थ के बीच संप्रेषण होता है। साथ ही क्रियात्मक स्तर पर उभयमुखी संप्रेषण भी होता है।

2. श्रृंखला संजाल (Chain Network) : यह विशिष्ट प्रकार का सोपानीय नेटवर्क होता है। इसमें संप्रेषण चाहे अधोगामी हो या उर्ध्वमुखी। वह चैन या रेखा के रूप में पहचाना जाता है। सभी अधीनस्थों के द्वारा केवल एक ही उच्चस्थ से आदेश प्राप्त किया जाता है। यहाँ निम्न स्तर पर क्षेतीजीय संप्रेषण या अंतः कार्यात्मक प्रवाह नहीं होता है।

3. वाई संजाल (Y Network) : इसमें दो अधिनस्थ एक उच्चस्थ को प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं। यह नेटवर्क स्टार नेटवर्क की तुलना में कम केंद्रीकृत होता है। यह श्रृंखला नेटवर्क का परिष्कृत स्वरूप है। इस पैटर्न को विपरीत वाई स्थिति में प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें 2 समकक्ष कार्मिक होते हैं। यह चार स्तरीय पदानुक्रम होता है।

4. पहिया नेटवर्क (Wheel Network) : इसे पहिया या चक्र नेटवर्क कहा जाता है। इसमें सभी अधीनस्थ कार्मिक एक ही उच्चस्थ या व्यक्ति से आदेश-निर्देश प्राप्त करते हैं। यहाँ अधीनस्थों के बीच आपस में किसी प्रकार का संप्रेषण नहीं होता है। अधीनस्थ एक मैनेजर के साथ या केवल उसके माध्यम से संप्रेषण करते हैं यह तेज गति वाला और प्राधिकृत संजाल होता है।

5. स्टार नेटवर्क (StarNetwork) : यह लोकतांत्रिक संप्रेषण की प्रक्रिया है। यह संप्रेषण प्रायः अनौपचारिक संगठनों या अनौपचारिक समूहों में पाया जाता है। जहाँ कोई भी सदस्य किसी भी सदस्य के साथ संप्रेषण कर सकता है।

6. काम-कॉन नेटवर्क (Com-Con Network) : यह नेटवर्क पहिया और तारा नेटवर्क का सम्मिलित स्वरूप है। यहाँ पर भी कोई सदस्य किसी भी सदस्य के साथ संप्रेषण कर सकता है। इसे संपूर्ण चैनल नेटवर्क भी कहते हैं। जहाँ समूह के सभी सदस्य एक दूसरे के साथ स्वतंत्र रूप से प्रभावी संप्रेषण कर सकते हैं। यह औपचारिक संप्रेषण का विकेंद्रीकृत स्वरूप है। इसे पूर्णतः संपर्क नेटवर्क भी कहा जाता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Formal Network

अनौपचारिक नेटवर्क अथवा संजाल (Informal Network) : अनौपचारिक नेटवर्क उस संप्रेषण जाल को प्रस्तुत करता है जो संगठन के बाहर निर्मित होता है अनौपचारिक नेटवर्क पर औपचारिक बाधाएं जैसे कि प्राधिकार की सीमाएं, उच्चता, आदेश इत्यादि लागू नहीं होती हैं। अनौपचारिक संजाल के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं :-

1. ग्रेपवाइन या सर्वमार्गी अनौपचारिक नेटवर्क (Grapevine Network) : यह संप्रेषण के स्वतंत्र प्रवाह का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक सदस्य को किसी भी अन्य सदस्य के साथ संप्रेषण की स्वतंत्रता होती है। यह उच्चतम संतुष्टि उपलब्ध कराने वाला संप्रेषण नेटवर्क होता है। यह संरचना विहीन और अनौपचारिक संप्रेषण नेटवर्क होता है। ग्रेपवाइन अमेरिकी गृहयुद्ध में प्रचलित शब्द है। किथ डेविस के द्वारा संगठन में ग्रेपवाइन या अंगूरलता संप्रेषण नेटवर्क को अभिव्यक्त किया गया। उन्होंने स्पष्ट किया कि ग्रेपवाइन के द्वारा प्रेषित संदेश को दूषित किया जा सकता है या तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। उसे अतिश्योक्तिपूर्ण स्वरूप दिया जा सकता है। यह कम या ज्यादा किया जा सकता है परंतु हटाया या समाप्त नहीं किया जा सकता है। इसे नियंत्रित नहीं किया जा सकता है और ना ही सुव्यवस्थित करना संभव होता है। इसे टोकरी से ढककर छिपाया नहीं जा सकता है। यदि हम इसका एक स्थान पर दमन करते हैं तो यह दूसरे स्थान पर शुरू हो जाता है। यदि हम एक स्रोत को हटाते हैं तो वह दूसरे साधनों से संचालित होने लगता है। यह संप्रेषण नेटवर्क अफवाह पर आधारित होता है। अनाधिकृत सूचना की पुष्टि करना साक्ष्यों के अभाव में संभव नहीं होता है। यह इच्छा, अनुमान या कल्पना पर ही आधारित हो सकता है। यह संगठन से कार्मिकों को अपनी कुंठा दूर करने या आलोचना करने या झूठी प्रशंसा प्राप्त करने का माध्यम होता है। कीथ डेविस

के अनुसार ग्रेपवाइन नेटवर्क के सामान्यतया चार तरह के संजाल में दिखायी देता है जो कि निम्न है :-

2. एकल छोर संप्रेषण संजाल (Single Stand Network) : यह एकल किनारा संप्रेषण नेटवर्क है जिसमें सूचना या संदेश एक से एक व्यक्ति की ओर संप्रेषित होता है। एक व्यक्ति ऐसी सूचना किसी दूसरे एक व्यक्ति को देता है और वह एक व्यक्ति किसी तीसरे एक व्यक्ति को ही सूचना देता है। इस तरह सूचना आगे बढती रहती है।

3. गप्पे मारना संप्रेषण नेटवर्क (Gossip Network) : एक व्यक्ति के द्वारा सूचना या संदेश को उन सब लोगों तक पहुँचाया जाता है जो भी व्यक्ति उस से मिलता है या उसके संपर्क में आता है एक व्यक्ति ही अन्य मिलने वाले लोगों तक वन बाई वन सूचना को संप्रेषित करता है।

4. संभाव्य या प्रायिकता संप्रेषण नेटवर्क (Probability Network) : इसके अंतर्गत सूचना या संदेश संभावना के नियम के अनुरूप प्रसारित होता है। यहाँ एक सदस्य अपने संदेश को उन लोगों तक प्रेषित करता है जो कुछ अन्य लोगों तक इस संदेश को प्रेषित कर सकते हो।

5. गुच्छा या समूह संप्रेषण संजाल (Cluster Network) : इस नेटवर्क के अंतर्गत सूचना या संदेष कुछ चयनित लोगों तक ही पहुँचाया जाता है। एक व्यक्ति केवल उन सदस्यों के साथ ही संप्रेषण करता है जिनको वह विश्वसनीय या भरोसेमंद मानता है और ऐसे विश्वसनीय व्यक्ति उन कुछ चयनित लोगों तक ही संप्रेषित करते हैं जिन्हें वे अपना खास व्यक्ति समझते हैं।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Informal Network

नेटवर्किंग अथवा संजाल (Networking) : सामान्यता नेटवर्किंग व्यक्तियों के साथ मेलजोल का एक क्षेत्र होता है कॉन्फ्रेंस सेमिनार सामाजिक आयोजन लंच डिनर पार्टी व्याख्यान इत्यादि इसकी प्रमुख माध्यम होते हैं।

संप्रेषण के प्रमुख तत्व या कारक (Components of Communication) :

वे साधन जो संप्रेषण की प्रक्रिया को प्रभावी बनाते हैं अर्थात् प्रेषक और प्राप्तकर्ता के बीच संपर्क स्थापित करते हैं। संचार के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं :-

व्यक्तिगत संपर्क (Individual Contacts) : किसी संगठन में व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने हेतु संदेश टेलीफोन मोबाईल, फैक्स इत्यादि। टेलीकम्युनिकेशन संगठन के भीतर और बाहर संपर्क स्थापित करते है।

औपचारिक पत्राचार (Formal correspondence) : यह किसी संगठन के अंतर्गत फाईल्स, मेमोरेंडम, मिनट्स इत्यादि के माध्यम से संपर्क बनाए रखता है। यह उपकरण ज्ञान एवं विचारों का आदान प्रदान करते हैं।

कार्यालय मंच (Official Forms) : सभी प्रशासनिक अभिकरणों के द्वारा ग्राहकों और प्रशासकों के बीच सूचना प्रणाली सुरक्षित रहे। इसके लिए कार्यालय मंचों का उपयोग किया जाता है। इन कार्यालयों को उच्च स्तरीय प्रशासनिक प्रक्रिया, नागरिक समस्याओं या शिकायतों के निदान, गुणवत्ता पूर्ण समाधान करके उपयोगी बनाया जा सकता है।

प्रतिवेदन (Reports) : प्रतिवेदन के माध्यम से बहुत से कार्यों की प्रगति या संपादित कार्यों की सूचना प्रस्तुत की जाती है। प्रतिवेदन सदैव संक्षिप्त स्वरूप में हो तथा उसमें अनावश्यक विषय सामग्री को शामिल करने से बचना चाहिए।

नियमावली (Manuals) : अधिकांश संगठन अपने कार्मिकों के लिए नियमावली तैयार

करवाते हैं। उनके द्वारा इसमें संगठन के संदर्भ में उद्देश्यों के बारे में और कार्मिकों की कार्यप्रणाली के बारे में निर्देशन शामिल किया जाता है।

कार्मिकों की बैठक (Staff Meetings) : स्टॉप बैठक एक दूसरे कार्मिकों को जानने पहचानने और सूचनाओं का आदान प्रदान करने में सहायता करती है इससे नीति की उचित समन्वय स्थापित होता है।

सूचना तकनीक का उपयोग (Use of Information Technology) : आईसीटी विज्ञान और तकनीकी विकास ने सर्वोच्च ऊँचाइयों तक उड़ान भरी है। ईमेल , एसएमएस, वेब ब्लॉग, पीपीटी, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप, वीडियो कॉन्फ्रेंस इत्यादि।

संप्रेषण प्रक्रिया (Communication Process) : दो व्यक्तियों के बीच सूचना एवं विचारों का सार्थक आदान-प्रदान ही संप्रेषण कहलाता है। इस संप्रेषण में कौन-कौन से तत्व व चरण शामिल होते हैं। इसे समझने के लिए हमें संप्रेषण प्रक्रिया का अध्ययन करना होता है। यह संप्रेषण होता कैसे है। सामान्यतया इस संदर्भ में विचारकों के चिंतन में आंशिक विभिन्नताएँ अवश्य होती हैं। सामान्य उपागम के रूप में संप्रेषण प्रक्रिया पर विचार करें तो इसका स्वरूप निम्न होगा।
प्रेषक व संदेश और सूचना प्राप्तकर्ता : सूचना देने वाला, सूचना व सूचना प्राप्त करने वाला। यह तीनों संप्रेषण प्रक्रिया के अनिवार्य भाग होते हैं इसमें एक भी लुप्त हो जाए तो संप्रेषण नहीं हो सकेगा।

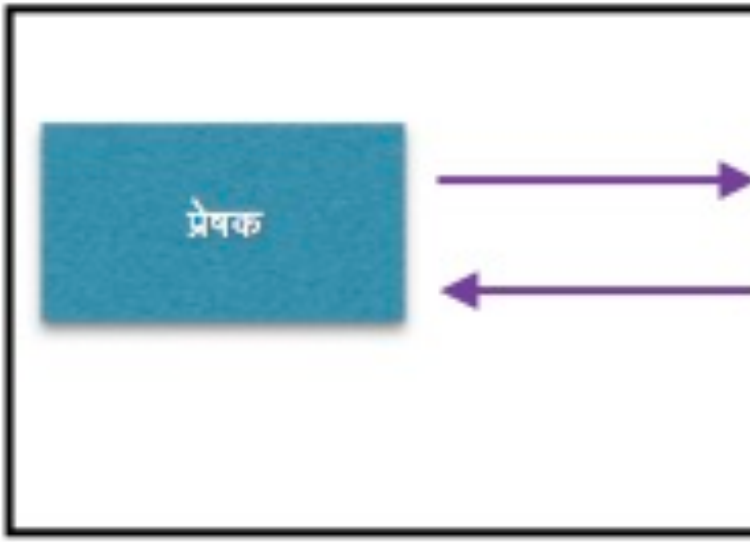

Communication Process

संप्रेषण प्रक्रिया 5 अंगों या तत्वों से निर्मित होती है। यद्यपि उसमें 8 तत्व महत्वपूर्ण होते हैं। संप्रेषण प्रक्रिया में एक बाधक तत्व भी होता है जिसे विघ्न या शोरगुल कहते हैं। वह इस प्रक्रिया का अंग नहीं होता है।

संदेश प्रेषक -- कूट निर्माण --चैनल --डिकोडिंग --प्राप्तकर्ता --

--फीडबैक--डिकोडिंग --चैनल --इनकोडिंग-- प्रतिक्रिया संचरण--

1.संदेश प्रेषक या संप्रेषणकर्ता (Message Sender) : यह संप्रेषण प्रक्रिया का पहला भाग या तत्व होता है जिसे प्राप्त कर पहल करता कहा जाता है। वह किसी दूसरे व्यक्ति या संगठन के किसी व्यक्ति या समूह को कोई संदेश विचार या सूचना भेजता है। प्रेषक की मनोंभावना, आवश्यकता, चिंतन ही सूचना है क्योंकि सूचना खुद सजीव नहीं है। उसे प्रेषक द्वारा संचालित किया जाता है। यह संप्रेषण का मुख्य स्त्रोत है।

2.संदेश या सूचना (Information) : यह संप्रेषण प्रक्रिया का दूसरा चरण या तत्व होता है जो कि संदेश भेजने वाले में अंतर्निहित होता है। यह संप्रेषण का आधार है क्योंकि सूचना और संदेश के बिना संचार हो ही नहीं सकता है।

3.इनकोडिंग संदेश (Encoding) : इनकोडिंग का अर्थ है कूट निर्माण करना। संदेशकर्ता के संदेशों को प्रतीकों, शब्दों या तस्वीरों में रूपांतरित किया जाता है। भाषा ही वह माध्यम का एकमात्र साधन नहीं है अपितु मौखिक एवं सांकेतिक विचारों को स्थानांतरित करने का अन्य माध्यम है। विचारों एवं चिंतन के जटिल होने पर वे इनकोडिंग प्रक्रिया को भी जटिल बना देते है।

4.संप्रेषण चैनल (Communication Chennels) : चैनल प्रेषक एवं रिसीवर को जोड़ने वाला माध्यम होता है। संगठनकर्ता के भीतर, आमने-सामने का वार्तालाप, लिखित मेमोज, दूरभाष, संपर्क, मोबाईल, ईमेल, समूह, बैठक इत्यादि चैनल सोते हैं। संगठन के बाहर की तरफ प्रेस नोट, परिपत्र, कवरेज, न्यूज़, साक्षात्कार, टीवी, षो इत्यादि चैनल होते हैं। ये चैनल्स औपचारिक और अनौपचारिक हो सकते हैं।

5.डिकोडिंग(Decoding) : सूचना प्राप्तकर्ता के द्वारा विचारों एवं सूचनाओं को समझने के लिए डिकोडिंग किया जाता है। सूचना को समझने, स्पष्टीकरण करने, अनुवाद करने, प्रतिक्रिया देने के लिए उसे डिकोडिंग की आवश्यकता पड़ती है। संप्रेषण के लिए कहा जाता है कि यह तभी सफल हो सकता है जब सूचना प्राप्तकर्ता प्रेषक के संदेशों को उसी अर्थ में समझे जिस अर्थ में उन्हें प्रेषित किया गया है। सेंडर और रिसीवर की आपसी समझ ही एनकोडिंग-डिकोडिंग का आधार है।

6.सूचना प्राप्त कर्ता (Receiver) : रिसीवर सूचना प्राप्त करने वाला प्रमुख घटक है। संप्रेषण एक द्विमार्गी प्रक्रिया है। एक तरफ या एक दिशा में संचार प्रक्रिया

संपन्न नहीं होती है। प्रेषक अपना संदेश सदैव रिसीवर की क्षमता व उसकी आर्थिक, सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर भेजता है।

7.पुनः निवेश या फीडबैक (Feedback) :
यह संप्रेषण प्रक्रिया का सातवां चरण है। प्रत्युत्तर संप्रेषण की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व होता है। संप्रेषणकर्ता ने जो संदेश दिया है, वह संदेश मूल रूप में या सही अर्थ में रिसीवर के पास पहुँचा है या नहीं। इसकी जानकारी फीडबैक के माध्यम से ही मिलना संभव हो पाती है। संप्रेषण की प्रक्रिया द्विमार्गी होने के कारण ही यह संभव हो सकता है।

8.विघ्न या बाधा (Noise) :
संप्रेषण प्रक्रिया में अनेक बार अनेक विकृतियाँ आ जाती हैं। जैसे कि अस्पष्ट संदेश, उच्चारण, भाषा संबंधी त्रुटि इत्यादि। इसके कारण संप्रेषण प्रक्रिया बाधित हो जाती है। अतः संदेश भेजने वाला गुणवत्तापूर्ण, स्पष्ट व पूर्ण विचारों को प्रेषित करें तो इन विघ्नों को दूर किया जा सकता है।

संप्रेषण के आवश्यक तत्व (Elements of Communications) :
संप्रेषण को सही स्वरूप में संचालित करने के लिए कुछ तत्वों की आवश्यकता होती है जो कि निम्नलिखित हैं :-

1. स्पष्टता(Clarity) :
संप्रेषण का प्रभावी तत्व है कि जो संदेश में सूचना भेजी जानी हो वह स्पष्ट हो उसका उद्देश्य क्रिया प्रतिक्रिया भाषा लेखन कूट इत्यादि में किसी प्रकार की दुविधा या भ्रांति नहीं होनी चाहिए

2. समय प्रतिबद्धता (Timeliness) :
संप्रेषण प्रक्रिया में संदेश भेजने को प्रत्युत्तर के निश्चित समय सीमा हो तथा एक ही समय में रिसीवर पर अतिरिक्त भार नहीं डाला जाना चाहिए। अतः सभी सही समय पर सही सूचना का सही व्यक्ति के पास पहुँचना बहुत जरूरी होता है।

3. संगतता या तारतम्यता (Consistency) :

संप्रेषण प्रक्रिया की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए रिसीवर की अपेक्षाओं संगठन के उद्देश्यों कार्यक्रमों की संगतता होनी चाहिए। इसके अभाव में संगठन में अराजकता और भ्रांति गुणवता उनका निर्माण हो जाता है।

4. एकरूपता (Uniformity) :

संप्रेषण प्रक्रिया में विश्वास रखने वाले लोगों के लिए एक समान होनी चाहिए। भेदभाव की प्रकृति, संप्रेषण में ईर्ष्या की भावना या जलन को उत्पन्न करती है। इसलिए यदि प्रबंधक कार्मिकों से समान व्यवहार की उम्मीद रखता है तो उसे सबकों एकसमान प्रस्थिति उपलब्ध करानी चाहिए।

5. लचीलापन (Flexibility) :

एकरूपता भी संगठन में कठोरता या रूढ़िवादिता को स्थापित करने वाली नहीं होनी चाहिए। लोक प्रशासन अपनी स्थापना से संप्रेषण प्रक्रिया के दोनों पक्षों के मानवीय स्वरूप को शामिल करता है। अतः स्थानीय दशाएँ प्रशासन में आवश्यक बदलाव की मांग करती हैं। इस तरह परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप संप्रेषण में भी बदलाव आवश्यक होता है।

6. स्वीकार्यता(Acceptability) :

एक अच्छा संप्रेषण तब होता है जब उसमें सत्यता या तथ्यों को स्वीकार किया जाता है। एक संगठन में संप्रेषण प्रबंधक के निर्णयों को संचालित करने की तकनीक होती है। सभी अधीनस्थों को स्वीकार्यता देनी होती है।

7. अनौपचारिक संगठनों की सहायता (Uses of Informal Organisation) :

कर्मचारी संगठन में उच्चस्थ-अधिनस्थ की संबंधता बनी रहती है। इसलिए अनेक बार अनौपचारिक समूह की सहायता संप्रेषण को मजबूत बनाती है।

8. पुनर्निवेश(Feedback) :

यह संप्रेषण की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण घटक है। इसमें सुझाव, समीक्षा और सुधार की संभावना निहित होती है।

संप्रेषण की प्रमुख बाधाएँ(Barriers of Communication) :

1. अर्थ संबंधी बाधा (Semantics Barrier) : सप्रेषक की भाषा समझने में असक्षमता सबसे बड़ी बाधा होती है। शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न समझने से संप्रेषण में विकार उत्पन्न हो जाता है। त्रुटिपूर्ण संप्रेषण, अस्पष्ट भाषा, तकनीकी खामियाँ अर्थ विषयक बाधाएं उत्पन्न करते है।

2. निस्पंदन या छानना (Filtering) : पदसोपानीय संरचना के कारण अनेक स्तरों पर फिल्टरिंग किया जाता है जिससे संदेश या सूचना में विकृति आ जाती है।

3. कौशल का अभाव (Absence of Skill) : यदि सेंडर व रिसीवर किसी भी एक के पास कार्य निष्पादन की दक्षता नहीं होती है तो संप्रेषण में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

4. मनोवैज्ञानिक बाधाएँ (Psychological Barrier) : प्रेषित संदेश और उसका इंटरप्रिटेशन बहुत हद तक रिसीवर और सेंडर की मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति पर निर्भर करता है। लापरवाही, पारस्परिक विश्वास का अभाव इसी प्रकार की बाधाएँ हैं।

5. वैचारिक बाधाएं (Ideological Barrier) : पिफनर के अनुसार पृष्ठभूमि, शिक्षा तथा सामाजिक व राजनीतिक भिन्नताओं के कारण गलतफहमियाँ उत्पन्न हो जाती है। इन भिन्नताओं के कारण गलतफहमियाँ उत्पन्न हो जाती है।

6. नियमों और विनियमों की कठोरता : संप्रेषण प्रक्रिया नियमों की कठोरता के कारण महत्वहीन हो जाती है। समस्या अपने समाधान से दूर चली जाती है।

7. पदस्थिति सम्बन्धी बाधा (Status Related Barrier) : संगठन के कार्मिकों के बीच यदि उच्चस्थों-अधीनस्थों की पदसोपान व्यवस्था कठोर स्वरूप में विद्यमान होती है तो संप्रेषण प्रक्रिया में विकार आ जाता है।

8. अन्य बाधाएँ (Other Barrier) : इनके अलावा संगठनीय संरचना की जटिलता, परिवर्तन के प्रति

रूढ़िवादिता, आकस्मिक प्रति क्रियाएँ, संस्कृति, संस्थान, गोपनीयता इत्यादि संगठन बाधाएँ हैं।

प्रभावी संप्रेषण (Effective Communication) : एक प्रभावशाली संप्रेषण के लिए इसमें आने वाली बाधाओं को दूर करने के समाधान खोजने अपरिहार्य होते हैं। **मिलेट के अनुसार** प्रभावशाली संप्रेषण के लिए आवश्यक **प्रमुख सात तत्व** :- **स्पष्टता, एकरूपता, समयबद्धता, पर्याप्तता, तारतम्यता, स्वीकार्यता, पुनर्निवेश** इत्यादि हैं। **टैरी के अनुसार 8 घटक** संप्रेषण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने वाले निम्नलिखित हैं :- **एक दूसरे के प्रति विश्वास का निर्माण, अनुभव का समान स्तर, सामान्यतया प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग, रिसीवर का एकाग्रचित्त ध्यान, खुद को अद्यतन रखना, लिखित प्रक्रियाओं का अभ्यास, कार्मिकों की सहायता और सहयोग। अमेरिकन मैनेजमेंट एसोसिएशन** के अनुसार :- **प्रभावी संप्रेषण के लिए संप्रेषण में स्पष्टता, संप्रेषण के प्रयोजन का परीक्षण, भौतिकी और मानवीय परिवेश का अध्ययन, संदेश की विषय वस्तु, व्यंजना या संकेतों की समझ, अनुकरण करना, अच्छे श्रोता की भूमिका का निर्वहन करना, कार्य और संप्रेषण में तारतम्यता** इत्यादि प्रभावी संप्रेषण के मुख्य तत्व हैं।

संप्रेषण का महत्व (Importance of Communication) :

संप्रेषण मानवीय जीवन एवं संगठन के संचालन का मुख्य आधार होता है। संप्रेषण प्रस्तुतकर्ता के ज्ञान एवं विचारों व संदेशों से भी अधिक महत्व रखता है। एक प्रभावशाली संप्रेषण संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने में सबसे महत्व भूमिका रखता है। संप्रेषण एक माध्यम या साधन है जो संगठन में प्रभावी भूमिका रखता है। टैरी और फ्रैंकलिन के अनुसार संप्रेषण साधन है, साध्य नहीं है। संप्रेषण किसी संगठन के अंतर्गत नियोजन, निर्णय निर्माण, समन्वय और अभिप्रेरणा की सुविधाएँ उपलब्ध कराता है। यह सूचना को उत्पादक बनाने, व्यवहार में परिवर्तन करने तथा

लक्ष्य प्राप्ति में सहायता करता है। पीटर एफ ड्रकर के अनुसार निम्न संप्रेषण अपनी अज्ञानता का प्रत्यक्ष प्रमाण होता है। सीआई बर्नार्ड का विचार है कि संप्रेषण किसी संगठन में एक उद्देश्य की प्राप्ति में नियोजित लोगों को आपस में जोड़ने का कार्य करता है। संप्रेषण किसी भी संगठन में केंद्रीय स्थान रखता है। बर्नार्ड ने इसे सभी समूह क्रियाओं का मूल आधार कहा है। संप्रेषण प्रक्रिया के महत्व निम्नलिखित है :-

1. यह संगठन में प्रत्येक क्रिया विधि संप्रेषण पर आधारित होती है।
2. यह परीक्षण का मुख्य उपकरण है।
3. संप्रेषण प्रक्रिया संगठन में नियोजन और समन्वय को संपादित करती है।
4. संप्रेषण प्रशासन की विस्तृत उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करता है।
5. किसी संगठन की कार्यात्मक प्रणाली समग्र रूप से प्रभावी संप्रेषण व्यवस्था पर निर्भर करती है।
6. संगठन को स्थापित करने में और उपक्रम के उद्देश्यों को अर्जित करने में संप्रेषण सबसे प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता है।
7. यह भी प्रेरणा का मुख्य तत्व है जो कार्मिकों में नैतिकता के स्तर को बढ़ाता है।
8. यह संगठन में बेहतर मानवीय संबंधों का सर्जन करता है जिससे उच्च स्तर अधीनस्थ के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना होती है।
9. संगठन में अच्छे मानवीय संबंधों के द्वारा संप्रेषण संगठन को अधिकतम उत्पादन और न्यूनतम लागत पर संचालित करता है।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि संप्रेषण संगठन के सिद्धांतों में सबसे प्रभावी योगदान देने वाला सिद्धांत है पीटर ड्रकर ने इसके महत्व को इंगित करते हुए कहा है कि अच्छा संप्रेषण किसी भी अच्छी प्रशासन का मूलाधार होता है संप्रेषण किसी संगठन के लिए उसी तरह से महत्वपूर्ण होता है जैसे किसी व्यक्ति के लिए उसके रक्त धाराएं महत्वपूर्ण होती हैं संप्रेषण नेटवर्क का कमजोर होना संगठन के स्वरूप और कार्यप्रणाली पर विपरीत प्रभाव डालता है।

नेतृत्व का सिद्धान्त

(Theory of Leadership)

प्रशासनिक व्यवहार के सिद्धान्तों में **तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है नेतृत्व का उपागम**। किसी भी प्रकार के संगठन का संचालन नेतृत्व के बिना असंभव होता है। कोई भी संगठन व्यक्तियों का समूह होता है। **परिवार से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक प्रत्येक समूह का संचालन करने के लिए नेतृत्व की आवश्यकता** होती है। नेतृत्व विहीन संगठन की कोई दिशा और दशा नहीं होती है। इसके अभाव में समूह केवल भेडों के झुंड के स्वरूप में दिखाई पड़ता है जिसका आभास हमें किथ डेविस के इन शब्दों से भी होता है कि 'बिना नेतृत्व के कोई भी संगठन मनुष्य और यंत्रों की एक भीड़ है। नेतृत्व संभावनाओं को वास्तविकता में बदलता है।' नेता और नेतृत्व की परिभाषा प्रकृति गुण सिद्धांत को लेकर चिंतकों का अपना अपना पृथ्थक दृष्टिकोण है। परंतु जहाँ तक नेतृत्व की बात है तो वह किसी भी संगठन के सफलतापूर्वक कार्य करने एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपरिहार्य होता है। **नेतृत्व मानवीय सभ्यता के उद्भव के काल से ही विद्यमान रहा है।** जंगल में जानवरों का शिकार करने, आवास बनाने इत्यादि के

लिए आदिम कबीलों में सरदार के द्वारा मुखिया के रूप में नेतृत्व की भूमिका का निर्वहन किया जाता था। नेतृत्व पर न केवल किसी परिवार, समूह या संगठन का अपितु राज्य का भविष्य भी निर्भर करता है। लीडर ही वह व्यक्तित्व होता है जो समूह को दिशा-निर्देश प्रदान करता है। वह पथ प्रदर्शक होता है। नेतृत्व लोगों की धारणा एवं व्यवहार को प्रभावित करने की प्रक्रिया है। नेता मित्र के समान और उसका नेतृत्व मित्रता के समान होता है। यह ध्यान रखने वाला तथ्य है कि प्रबंधक एवं नेतृत्व शब्दों का प्रयोग भले ही एक-दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है परंतु दोनों अपना-अपना पृथ्थक अस्तित्व एवं पहचान रखते हैं।

नेतृत्व का अर्थ और परिभाषा :

सामान्य अर्थ में नेतृत्व शब्द **लीड, लीडर और लीडरशिप** के रूप में निर्मित है। जहाँ लीडर सर्वोत्तम या सर्वश्रेष्ठ अथवा मार्ग दिखाने वाला या लीड करने वाला अथवा सबसे अग्रिम भूमिका पर रहने वाला के अर्थ को अभिव्यक्त करता है। **चेस्ट आई बर्नार्ड** के शब्दों में **''नेतृत्व लोगों के व्यवहार का गुण है जो उन्हें संगठित क्रियाओं में मार्गदर्शन करता है।''** **कीथ डेविस** के शब्दों में ''नेतृत्व दूसरों को उत्साह पूर्वक परिभाषित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सहमत करने की क्षमता है।''

मुने के अनुसार ''नेतृत्व वह रूप है जिसे प्राधिकारी तब धारण करता है जब वह प्रक्रिया में प्रवेश करता है।'' **टैरी और फ्रैंकलिन** ''नेतृत्व वह क्रिया है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति उद्देश्यों के लिए व्यक्तियों को स्वेच्छा से कार्य करने हेतु प्रेरित करता है।''

बुकानन ''नेता वह है जो दूसरों पर अपना प्रभाव रखता है।''

पी एफ ड्रकर लोगों के दृष्टिकोण को उच्चतर स्तर पर उठाना, उनके निष्पादन को श्रेष्ठतर बनाना तथा उनके व्यक्तित्व का सामान्य सीमा से परे निर्माण करना ही नेतृत्व है।'' उपर्युक्त परिभाषा से अभिव्यक्त होता है कि नेतृत्व व्यक्ति में

अंतर्निहित ऐसा गुण या क्षमता है जो अन्य लोगों के व्यवहार को प्रभावित करती है। उसके नेतृत्व के पीछे अनेक अनुयायियों का समूह होता है। नेतृत्व के व्यवहार की कुछ अपनी मूलभूत शैलियाँ होती हैं। यद्यपि नेता को परिस्थिति एवं परिवेश के साथ समायोजन करना पड़ता है।

नेतृत्व की प्रकृति : नेतृत्व कैसा होता है और यह कौन सी बातों पर निर्भर रहता है। इनसे नेतृत्व की प्रकृति का निर्धारण होता है। एल ए एलेन ने अपनी पुस्तक 'प्रबंधन और संगठन' (Management and Organisation, 1958AD) के अंतर्गत नेतृत्व और प्रबंधन में अंतर करते हुए बताया है कि कोई व्यक्तिगत नेतृत्व प्रतिभा के साथ जन्म लेता है परंतु प्रबंधन का नेतृत्व उसे सीखना पड़ता है। एमपी फॉलेट ने अपनी रचना 'दी न्यू स्टेट' 1918 (The New State) के अंतर्गत नेतृत्व संबंधी विचारों का प्रतिपादन किया है। फोलेट के चिंतन में नेतृत्व की प्रकृति के वर्ताकार प्रतिरूप या प्रतिक्रिया का उल्लेख किया है। गोलाकार या वृत्ताकार प्रतिक्रिया का आशय है कि नेता समूह के लिए क्या करता है? हमें केवल इस बारे में ही चिंतन नहीं करना चाहिए अपितु यह भी विचार करना चाहिए कि समूह नेता के साथ क्या करता है? फोलेट ने नेतृत्व की प्रकृति को तीन स्वरूपों में विभक्त किया है अर्थात्

1. **पद का नेतृत्व : यह औपचारिक प्राधिकार पद होता है।**
2. **व्यक्ति का नेतृत्व : यह व्यक्तिगत गुणों की प्रभावशीलता को अभिव्यक्त करता है।**
3. **कार्य का नेतृत्व : यह पद एवं व्यक्तित्व दोनों का समावेश करता है।**

मिलेट के अनुसार ''नेतृत्व की प्रकृति परिस्थितियों के अनुरूप बनती और बिगड़ती है।'' इन दो प्रभावी परिस्थितियों में

राजनीतिक और प्रशासनिक दशाएं महत्वपूर्ण होती हैं। चेस्टर आई बर्नार्ड ने नेतृत्व की प्रकृति को तीन तत्वों या घटकों से प्रभावित माना है। नेतृत्व की प्रकृति खुद व्यक्ति, उसके अनुयायियों और विद्यमान परिस्थितियों से निर्धारित होती है। डग्लस मैकग्रेगर के अनुसार ''नेतृत्व की प्रकृति का संबंध चार तत्वों से होता है अर्थात् नेता के गुण, अनुयायियों की आवश्यकताएँ और गुण, संगठन का स्वरूप तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश।''
नेतृत्व की प्रकृति के अलावा जॉन फ्रेंच और बट्रम रैवेन ने नेतृत्व प्रभाव के भी पाँच स्त्रोत बताए हैं जिनमें बाध्यकारी शक्तियाँ, पुरस्कारात्मक निर्णय, वैधानिक स्वरूप, विशेषज्ञता एवं निर्देशन प्रमुख होते हैं। नेता की पद स्थिति, उसकी नियुक्ति, संगठन का औपचारिक और अनौपचारिक स्वरूप करिशात्मक नेतृत्व, विशेषज्ञता, परंपरा के आधार पर नेताओं के भी अनेक प्रकार सामने आते हैं।

नेतृत्व की विशेषताएँ :

1. नेतृत्व की प्रक्रिया में नेता के लिए अनुयायियों का होना अपरिहार्य माना जाता है।
2. नेतृत्व अनुयायियों के व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता का नाम है।
3. नेतृत्व एक गतिशील प्रक्रिया होती है।
4. नेतृत्व अनुयायियों की संतुष्टि प्रदान करता है।
5. नेतृत्व एवं अनुयायियों में पारस्परिक घनिष्ठ संबंध होता है।
6. नेतृत्व पर परिस्थितियों व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है।

नेतृत्व के प्रमुख गुण :

नेतृत्व के संबंध में दो मुख्य धारणाएँ होती है। एक क्या नेता

जन्मजात होते हैं? अथवा नेता तैयार किए जाते हैं? नेता में कौन से गुण होते हैं अथवा कौन से गुण होने चाहिए? इसके बारे में पूर्ण रूप से सूची का निर्माण करना तो संभव नहीं है फिर भी नेता के संदर्भ में कुछ गुणों का आधार तय किया जा सकता है। रिचर्ड पेंटिंगर के अनुसार नेतृत्व में निम्न गुण अवश्य होने चाहिए :-

1. नेता के पास अन्य लोगों के साथ निरंतर संवाद बनाए रखने की क्षमता होती है।
2. नेता उचित समय परिस्थितियों के अनुरूप निर्णय प्रक्रिया का निष्पादन करने की क्षमता रखता है।
3. नेता में कार्य संगठन समय के लिए प्रतिबद्धता होती है।
4. नेता में अपने संगठन के कार्मिकों की प्रति मानवीय व्यवहार की भावना होती है।
5. नेता सामाजिक एवं व्यापारिक मूल्यों का त्याग नहीं करता है।
6. नेता में व्यक्तिगत सत्यनिष्ठता होती है।
7. नेता सदैव सकारात्मक दृष्टिकोण को धारण करता है।

रोजमरी और स्टीवर्ट के अनुसार नेता में न्यायनिष्ठा, सत्यनिष्ठता, निर्भरता, प्रोत्साहन, पहल, महत्वाकांक्षा, क्रमशक्ति, सहयोग, समर्पण, कुशलता इत्यादि गुण होने चाहिए। बर्नार्ड के अनुसार निर्णय की क्षमता, अनुकरणीयता, जिम्मेदारी, बौद्धिक क्षमता, नेता के प्रमुख गुण होते हैं। मिलेट के अनुसार रुचि, ईमानदारी, बुद्धिमान, कार्य, योग्यता, निर्णय, कर्तव्य नेता के गुण माने जाते हैं।

नेतृत्व के प्रमुख सिद्धांत या उपागम *(Major Theories of Leaderships)* :
नेता और नेतृत्व का उदय अधीनस्थों के साथ व्यवहार, प्रभावकारिता और व्यवहार के स्वरूप या षैली को व्यक्त करने

वाले सिद्धांतों का विकास हुआ है जिनमें मुख्य रूप से नेतृत्व का गुण सिद्धांत, समूह सिद्धांत, व्यवहारपरक शैली सिद्धांत, परिस्थिति जन्य सिद्धांत, आकस्मिक सिद्धांत और उदयीमान उपागम महत्वपूर्ण है।

1. नेतृत्व का गुण या लक्षण सिद्धांत (Trait Theory of Leadership) :

यह नेतृत्व का **सबसे प्राचीनतम सिद्धांत** है जो नेता के गुणों लक्षणों या विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करता है इसे **अंतर्निहित उपागम** अथवा **महामानव सिद्धांत** के नाम से भी जाना जाता है यह उपागम 1900 से 1940 ईस्वी के दर्शकों में लोकप्रिय हुआ इस सिद्धांत की मूल मान्यता है कि **नेता जन्म लेते हैं।** नेता जन्म से व्यक्तित्व, मुल्य,उद्देश्य, कौशल जैसे व्यक्तिगत गुणों को धारण करते हैं। ऐसे गुण नेता को जन्मजात प्राप्त होते हैं जो उसे अन्य लोगों की तुलना में असाधारण अथवा महामानव बनाते हैं। ऐसे अद्वितीय गुणों के कारण वह स्वाभाविक नेतृत्व के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इन गुणों को प्रशिक्षण के द्वारा कदापि अर्जित नहीं किया जा सकता है। इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थक चेस्टर आई बर्नार्ड, आर एस द्विवेदी, टीड, मिलेट, एप्पल बी इत्यादि हैं। इन समर्थकों के चिंतन में नेता में निर्णय परकता, बौद्धिक क्षमता, कर्मनिष्ठता, आत्मविश्वास, प्रबंधन क्षमता, उदारता, प्रभुत्वकारी व्यक्तित्व, आकर्षण, साहस, आक्रामकता इत्यादि गुण जन्मजात होते हैं।

इस सिद्धांत की **मान्यताएँ निम्नलिखित** हैं :-

1. नेता जन्म लेते हैं बनाए अथवा तैयार नहीं किए जा सकते हैं।
2. नेतृत्व की जन्मजात गुण उसी महान बनाते हैं।
3. नेता की जन्मजात या प्राकृतिक गुण लक्षणों और विशेषताओं को किसी औपचारिक या अन्य प्रशिक्षण के द्वारा अर्जित नहीं किया जा सकता।

4. सामान्य लोगों में जन्मजात नेतृत्व के गुण नहीं होते हैं वे नेता बनने की आशा नहीं कर सकते हैं।
5. परिस्थिति जन्य अथवा पर्यावरणीय घटक नेतृत्व की प्रभावशीलता को प्रभावित नहीं करते हैं।

ड्रकर के शब्दों में ''नेतृत्व अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इसका कोई विकल्प नहीं होता है। इसको न तो सर्जित किया जा सकता है और न अर्जित किया जा सकता है। न इसे उन्नत किया जा सकता है, न इसे सीखा जा सकता है और न ही इसे किसी दूसरे को सिखाया जा सकता है।''

आलोचनाएँ ***(Criticism of Trait Theory)*** : एक स्थिति तक तो इसे स्वीकार किया जा सकता है। जहाँ तक नेतृत्व के गुणों की परिचर्चा की जाती है परंतु इसमें बड़ी कमी रही है। जैसे कि नेतृत्व के गुणों में कौन से गुणों को शामिल करें या नहीं। यह विवादास्पद है। नेता जन्म लेते हैं। यह पूर्णता सत्य नहीं है। अभ्यास से ऐसे गुणों को विकसित किया जा सकता है। इस सिद्धांत के उदय के पीछे कोई वैज्ञानिक उपागम नहीं है। इस सिद्धांत पर परिस्थिति जन्य और पर्यावरण जन्य कारकों की उपेक्षा की गई है जो कि सही नहीं है। इन आलोचनाओं के बावजूद भी इस सिद्धांत ने नेतृत्व की महत्ता को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2. कार्यात्मक या समूह सिद्धांत ***(Functional Theory of Leaderships)*** : यह उपागम महामानव सिद्धांत की मान्यता के विपरीत स्वरूप को स्वीकृत करता है। **नेता जन्म ही नहीं लेते है** अपितु नेतृत्व को प्रशिक्षण के माध्यम से अर्जित किया जा सकता है क्योंकि नेतृत्व एक कौशल है। क्रिया केंद्रित नेतृत्व सिद्धांतों या नेतृत्व के अध्ययनों में से महत्वपूर्ण एवं निर्णायक आरंभिक कदम है। इस सिद्धांत के **प्रतिपादक जॉन एडेयर** हैं जिन्होंने सैन्य संदर्भ में नेतृत्व के स्वरूप का अध्ययन एवं विश्लेषण किया है। यह उपागम नेता

के गुणों या व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके द्वारा निष्पादित कार्यों पर ध्यान केंद्रित करता है। एडेयर ने अपने सिद्धांत में तीन महत्वपूर्ण **सैन्य समूह की आवश्यकताओं की खोज** की है। इन **तीनों के बीच समन्वय स्थापित करना ही नेतृत्व की आदर्श स्थिति का प्रतीक** होता है। इन आवश्यकताओं के तीन समूह या सेट होते हैं। इनमें कार्यकारी आवश्यकताएँ, टीम आवश्यकताएँ और व्यक्तिगत आवश्यकताएँ प्रमुख है।

1 कार्य संबंधी आवश्यकताएँ :
इस आवश्यकता समूह में कार्यदल के लक्ष्यों की उपलब्धि, दल कार्य को परिभाषित करना, कार्य नियोजन संसाधनों का आवंटन करना, कर्तव्यों और दायित्वों का संगठन, निष्पादन परीक्षण करना तथा प्रगति की समीक्षा करना इत्यादि आवश्यकताएँ कार्य संबंधी आवश्यकताओं शामिल हैं।

2 टीम आवश्यकताएँ :
इस समूह के अंतर्गत समूह के मनोबल और टीम भावना को बनाए रखना, दल में एकता बनाए रखना प्रतिमाओं को स्थापित करना और उसे बनाए रखना अपने समूह के साथ संवाद, दल का प्रशिक्षण, उप नेताओं की नियुक्ति इत्यादि आवश्यकताएँ शामिल हैं।

3 व्यक्तिगत आवश्यकताएँ :
इस सेट में टीम के प्रत्येक सदस्य की आवश्यकताओं की पूर्ति, व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान, प्रशंसा करना, व्यक्ति और समूह के बीच के विवादों का समाधान और व्यक्तियों को प्रशिक्षण प्रदान करने संबंधी आवश्यकताएँ शामिल हैं। आवश्यकताओं के तीनों समूह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। नेता यदि एक क्षेत्र में कार्य करता है तो उसका प्रभाव दूसरे क्षेत्रों में भी पड़ता है। किसी भी कार्य दल अथवा कार्यात्मक समूह में वह नेता सबसे सफल माना जाएगा जो कि तीनों क्षेत्रों की आवश्यकताओं को समन्वित स्वरूप में पूर्ण करेगा अथवा इनमें संतुलन बनाए रखता है। अतः इसे त्रिवृत सिद्धांत भी कहा जाता

है। यह सिद्धांत इस तथ्य पर बल देता है कि किस प्रकार से नेता का व्यवहार अपने दल या अधीनस्थों के समूह को प्रभावित करता है और किस प्रकार नेता अपने दल अधीनस्थों के समूह के व्यवहार से प्रभावित होता है। अतः यह सिद्धांत अधीनस्थों के व्यवहार को भी ध्यान में रखता है। अतः इसे अनुयायी सिद्धांत भी कहा जाता है। तीनो आवश्यकताओं के समन्वय को निम्न रेखा चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :-

Functional Theory of Leaderships

यह सिद्धांत नेतृत्व की भूमिका उसके कार्यों और दायित्वों का विश्लेषण करता है। इस सिद्धांत के अनुसार नेताओं के द्वारा

सामान्यतः 14 कार्यों का निष्पादन किया जाता है। इनमें लक्ष्य निर्धारण, संसाधन मूल्यांकन, पर्यवेक्षण, प्रत्युत्तर, व्यवहार प्रतिमान निर्धारण, समस्या समाधान, संसाधनों का संगठन और समन्वय, सामग्री आपूर्ति, उत्पादन, प्रभावशाली निर्णय क्षमता, कुशलता, प्रभावकता, प्रतिनिधि मूलक भूमिका, संरक्षण की भूमिका का निर्वहन करना इत्यादि शामिल है। अमेरिका में औद्योगिक समाज ऐडेयर के सिद्धांत पर आधारित नेतृत्व प्रशिक्षण पद्धति का विकास किया है। क्रिया केंद्रित उपागम के अंतर्गत ऐडेयर द्वारा प्रयुक्त त्रिवृत उपागम नेतृत्व एवं प्रबंधन में घनिष्ठ संबंधों को अभिव्यक्त करता है।

3. व्यवहारवादी उपागम ***(Behavioural Theory of Leadership)*** : नेतृत्व का सिद्धांत व्यवहार की शैली या प्रारूप पर आधारित है। यह सिद्धान्त इस तथ्य पर ध्यान केंद्रित करता है कि नेता क्या करते हैं? और नेता का व्यवहार कैसा है? अर्थात् नेतृत्व व्यवहार अथवा नेतृत्व की शैली का पता लगाना। यहाँ क्या शब्द नेता के कार्य और कैसे शब्द नेता की शैली या व्यवहार के स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। यह इस अनुसंधान पर आधारित हैं कि नेता जन सामान्य से अलग होते हैं क्योंकि नेता में कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं। अतः नेताओं का निर्माण अर्थात् उन्हें तैयार किया जाता है। नेताओं के क्रियाकलापों के व्यवहार प्रतिमान उनके नेतृत्व स्वरूप को इंगित करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार प्रभावशाली नेतृत्व सदैव प्रभावशाली व्यवहार की भूमिका पर आधारित होता है। इस सिद्धांत के अंतर्गत नेताओं के लक्षणों पर नहीं अपितु उनके क्रियाकलापों के अध्ययन पर बल दिया गया है ताकि व्यवहार प्रतिमानों को पहचाना जा सके। **व्यवहारवादी सिद्धांत** के अंतर्गत **तीन महत्वपूर्ण अध्ययन** किए गए हैं :-

I. ओहियों राज्य नेतृत्व अध्ययन ***(Ohio State Leadership Studies)*** : व्यवहारवादी शैली उपागम का यह सबसे महत्वपूर्ण अध्ययन रहा

है जो कि ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के ब्यूरो आफ बिजनेस रिसर्च के द्वारा किया गया है। इस अध्ययन का केंद्र बिंदु नेतृत्व शैली के प्रभाव का समूह निष्पादन पर प्रभावशीलता की खोज करना था। इस अध्ययन से नेतृत्व प्रभाव या शैली की दो आयामों अथवा व्यवहार प्रतिमानों का अनुसंधान किया गया अर्थात् **परभावनशीलता(Consideration) प्रतिमान** :- यह कार्मिक केंद्रित नेतृत्व शैली होती है जिसमें द्विमार्गी संवाद, सहभागिता और मानवीय संबंधों के दृष्टिकोण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। नेता का अपने अधीनस्थों के प्रति व्यवहार परस्पर विश्वास, समादर व घनिष्ठता पर आधारित होता है जो अधीनस्थों के हित चिंतन, सौहार्द और सहयोगपरक व्यवहार का प्रतीक है। **दूसरा महत्वपूर्ण आयाम संरचनाओं का दीक्षण प्रतिमान** (Initiating Structure) :- नेतृत्व शैली संगठन के प्रति किस सीमा तक कार्य करती है अर्थात् यह उत्पादन से संबंधित है। जहाँ संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सामूहिक कार्य किया जाता है। यद्यपि इस अध्ययन में सर्वाधिक प्रभावशाली नेतृत्व शैली उसे बताया गया है जो की प्रभावनशीलता और संरचना दोनों पर बल देती है फिर भी व्यवहार में इन दोनों के बीच ऐसा समन्वय नहीं पाया जाता है क्योंकि दोनों आयाम एक दूसरे से पृथ्थक, स्वतंत्र तथा असंबंधित होते हैं।

II. मिशीगन विश्वविद्यालय समूह अध्ययन *(The University of Michigan Group Studies)* : मिशीगन सर्वे रिसर्च सेंटर के शोध अध्ययन का मुख्य विषय नेतृत्व व्यवहार की उन विशेषताओं की पहचान करना था जो निष्पादन प्रभावकारिता के लिए किए गए उपायों से संबंधित थी। इस अनुसंधान के द्वारा भी नेतृत्व व्यवहार के दो प्रतिमानों की पहचान की गई। पहला कर्मचारी उन्मुखी आयाम और दूसरा उत्पादन उन्मुखी प्रतिमान। प्रथम आयाम से संबंधित नेता व्यक्तिगत संबंधों, कार्मिकों की समस्याओं, अधीनस्थों की आवश्यकताओं में व्यक्तिगत अभिरुचि रखते हैं। ऐसे नेता अपने व्यवहार में

कर्मचारी उन्मुखी होते हैं। अतः उनका नेतृत्व सामूहिक उत्पादकता और उच्च कार्य संतुष्टि से संबंधित होता है। दूसरे आयाम से संबंधित नेता अपने कार्य के तकनीकी पक्ष से जुड़े होते हैं। उनका मुख्य केंद्र समूह के कार्य को पूर्ण करना होता है। नेता कर्मचारी को संगठन के ध्येय प्राप्ति का केवल साधन समझता है। कर्मचारी की समस्याओं की तुलना में उत्पादकता पर विशेष बल दिया जाता है। इस नेतृत्व शैली का संबंध निम्न उत्पादकता और निम्न कार्मिक संतुष्टि से होता है। इन दोनों ही आयामों का अंतिम ध्येय उत्पादन होता है। ओहियो अध्ययन की तरह इस अध्ययन समूह ने भी समन्वय या संतुलन की बात पर बल दिया है परंतु यथार्थ में रेंसिस लिकर्ट के अनुसार नेतृत्व व्यवहार की कोई श्रेष्ठ शैली नहीं होती है।

III. प्रबंधकीय संजाल नेतृत्व अध्ययन *(The Managerial Grid Leadership Studies)* : यह व्यवहारवादी नेतृत्व उपागम का तीसरा महत्वपूर्ण अध्ययन है जिसमें पहले दो अध्ययनों को अर्थात **कर्मचारी केंद्रित और उत्पादन केंद्रित** को आधार के रूप में स्वीकार करके **जैम्स माउंटेन और आर ब्लैंक ने 1964** में एक प्रबंधकीय ग्रिड के रूप में प्रस्तुत किया है। **रॉबर्ट ब्लैक व एनी ऐडम्स मैकेंजी** के द्वारा इसे **'लीडरशिप ग्रिड'** कहा गया है
इस अध्ययन के अनुसंधान में नेतृत्व के **पाँच प्रतिमानों और पाँच प्रकार की व्यवहार शैलियों** की खोज की गई है। इस शोध के निष्कर्ष में बताया गया है कि नेतृत्व की पाँच प्रमुख शैलियाँ होती हैं जिनको **पाँच प्रमुख स्थितियों या अवस्थाओं में ग्रिड के रूप में दर्शाया** जा सकता है। इस **ग्रिड की प्रत्येक धुरी के साथ ग्रिड की नौ संभावित दशाएँ** जुड़ी होती हैं जो **81 भिन्न दशाओं को दर्शाती हैं।** इन दशाओं में भिन्न-भिन्न नेतृत्व शैली अंतर्निहित होती है। जिसे निम्न रेखा चित्र में दर्शाया गया हैः-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Managerial Grid Leadership

विपणन प्रबंधन शैली ***(Impoverished Management Style - 1,1)*** : इसे स्वतंत्र, अहस्क्षेपवादी अथवा यद्राव्यम शैली कहा जाता है। इस शैली में कर्मचारी और उत्पादन पर किसी प्रकार का ध्यान नहीं दिया जाता है। इस कारण से कर्मचारी हित और उत्पादकता का स्तर दोनों ही इस धुरी (1,1) पर निम्न उत्पादकता और निम्न कार्मिक हित की स्थिति को दर्शाते हैं। यह नेतृत्व की विकृत शैली या निम्नतम शैली को इंगित करता है।

टीम प्रबंधन शैली ***(Team Management Style - 9,9)*** : इस प्रबंधन शैली में कर्मचारी व उत्पादकता दोनों पर ध्यान देने का प्रयास किया जाता है। इसे नेतृत्व की श्रेष्ठतम शैली कहा जाता है। जहाँ दोनों दशाएं (9,9) के द्वारा इंगित हो रही है। नेतृत्वकर्ता और कार्मिकों के बीच विश्वास और समादर के संबंध स्थापित कर संगठन के कार्य का कुशलतापूर्ण निष्पादन करने का प्रयास किया जाता है परंतु व्यवहार में इसे स्थापित नहीं किया जा सकता है।

कंट्री क्लब प्रबंधन शैली ***(Country Club Management Style- 1,9)*** : इस व्यवहार शैली में नेतृत्व का केंद्र बिंदु कर्मचारी होते हैं। इसलिए उत्पादन की अपेक्षा कार्मिकों के हितों, उनके साथ पारस्परिक मैत्रीपूर्ण संबंधों, पारस्परिक विश्वास और अच्छे व्यवहार पर बल दिया जाता है। यह कर्मचारी केंद्रित शैली है। इसे धुरी(1,9) के द्वारा दर्शाया गया है।

सत्ता प्रबंधन शैली ***(Authority or Compliance Management Style - 9,1)*** : इसमें नेता के द्वारा उत्पादन या संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसमें कर्मचारी हित पर बहुत कम या न्यूनतम ध्यान देते हैं। अतः इसे उत्पादन केंद्रित शैली कहा जाता है। यह धुरी (9,1) से इंगित है।

मध्यवर्ती प्रबंधन शैली ***(Impoverished Management Style - 5,5)*** :

धुरी ;5ए5द्ध पर इंगित मध्यवर्ती प्रबंधन शैली है जिसमें नेतृत्व कर्ता कर्मचारी और संगठन के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। यह संतुलन बनाए रखने की शैली है।
टैरी और फ्रैंकलीन के द्वारा प्रबंधन की ग्रिड की दशाओं का विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है :-

ग्रिड धुरी	केन्द्रित क्षे
1,1	उत्पादन एवं कार्मिकों पर न्यूनत
9,9	उत्पादन एवं कार्मिकों पर पूर्ण
1,9	उत्पादन पर न्यूनतम एवं कार्मि अधिकतम ध्यान देना।
9,1	उत्पादन पर अधिकतम एवं का ध्यान देना।
5,5	उत्पादन एवं कार्मिकों दोनों पर

टैरी और फ्रैंकलीन के द्वारा प्रबंधन की ग्रिड की दशाओं का विवरण

व्यवहारवादी शैली उपागम नेतृत्व के व्यवहार प्रतिमान खोजने में तो सफल रहा है फिर भी उसकी प्रबंधन की शैलियाँ वर्तमान उत्पादक संगठनों में यदि स्थापित की जा सके तो यह अच्छा कदम

होगा। यह वर्तमान में विशुद्ध रूप से व्यावहारिक जीवन में उपलब्ध नहीं है। नेतृत्व पर परिस्थितियों का और परिवेश का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसे व्यवहारवादी शैली उपागम में नजरअंदाज कर दिया गया है। व्यवहारवादी शैली उपागम ने नेतृत्व शैलियों को महत्वपूर्ण बना दिया है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने अपने चिंतन में नेतृत्व की भिन्न-भिन्न शैलियों की विवेचना की है जिनमें रेंसिस लिकर्ट, लेविन, व्हाईट इत्यादि प्रमुख हैं।

रेंसिस लिकर्ट के अनुसार नेतृत्व की शैलियाँ : रेंसिस लिकर्ट के द्वारा नेतृत्व प्रारूपों का विश्लेषणात्मक अध्ययन दो आयामों के आधार पर किया है। **एक कर्मचारी केंद्रित और दूसरा कार्य या उत्पादन केंद्रित है।** लिकर्ट के अनुसार प्रबंधक निष्पादन क्षमता के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने के लिए अधीनस्थों की समस्याओं के मानवीय पक्षों पर ध्यान देते हैं। उसके अनुसार इन दो आयामों के आधार पर **नेतृत्व की चार प्रमुख शैलियाँ** होती है जिन्हें प्रबन्धन की पद्धतियों (Systems of Management) के नाम से भी जाना जाता है जो कि निम्नलिखित है :-

शोषणात्मक–सतात्मक Exploitative-Authoritative	उदार–सत Benevo Authori
निरूकुंश या निदेशात्मक शैली	उदारवादी एव शैली
सर्वसतावादी एवं नेता की सर्वोच्चता में विश्वास	प्रबन्धक स्व लकिन सतावाद
मध्यवर्ती उत्पादकता	अपेक्षाकृत अधि
कर्मचारीयों का शोषण	कार्मिक हितैषी
दण्ड व पुरस्कार सिद्धान्त की अनुपालना	आर्थिक पुरस्क के सिद्धान्त की

Systems of Management

लिकर्ट की उपयुक्र्त चारों शैलियां में से प्रथम दो शैलियाँ उत्पादन केंद्रित तथा पश्चवर्ती दो शैलियाँ कार्मिक केंद्रित हैं।

लिप्पिट और व्हाईट के अनुसार नेतृत्व शैलियाँ : लिप्पिट और व्हाईट के द्वारा नेतृत्व के सातत्य या अबाध क्रम सिद्धांत (Continuum Theory) का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व की तीन मूलभूत या आधारभूत शैलियाँ होती है जिन्हें निरूकुंश, लोकतांत्रिक और स्वतंत्र शैली के नाम से जाना जाता है। नेता अपने संगठन में कर्मचारियों से जो व्यवहार

करता है, उसे ही नेतृत्व शैली के नाम से जाना जाता है। अतः यह अधीनस्थों के पर्यवेक्षण के दौरान किसी नेता का प्रदर्शित व्यवहार का प्रतीक है। **नेतृत्व की तीन आधारभूत शैलियाँ** निम्नलिखित है :-

1. निरंकुश शैली ***(Autocratic Style)*** : यह नेतृत्व की अलोकतांत्रिक शैली होती है जिसे प्रभुत्वपूर्ण या निर्देशात्मक शैली भी कहा जाता है। इसमें नेता का व्यवहार अधीनस्थों के साथ एकात्मक या आदेशात्मक प्रकृति का होता है। नेता अपने अधीनस्थों को केवल निर्देश या आदेश देता है और किसी भी दशा में उसकी अनुपालना चाहता है। वह अधिकांशतया पुरस्कार और दंड के सिद्धांत का सहारा लेता है। नेतृत्व की यह शैली डग्लस मैकग्रेगर के अभिप्रेरणा सिद्धांत में **अभिप्रेरणा के एक्स सिद्धांत (X Theory)** की मान्यताओं से प्रभावित है अर्थात् कार्मिक नेता के डर से ही कार्य करते हैं।

2. लोकतांत्रिक शैली ***(Democratic Style)*** : नेता का अधीनस्थों के साथ व्यवहार का यह प्रतिरूप जनतांत्रिक या भागीदारी या सहभागिता की प्रकृति का होता है। नेता अपनी निर्णय निर्माण प्रक्रिया में अधीनस्थों को भी रचनात्मक भूमिका प्रदान करता है। नीति निर्माण पर समूह के माध्यम से परिचर्चा होती है। इस शैली में नेता और अधीनस्थों के बीच संप्रेषण स्वतंत्र रूप से और **बहुमार्गी नेटवर्क** में प्रवाहित होता है। यह शैली **अभिप्रेरणा के वाई सिद्धांत (Y Theory of Motivation)** से प्रभावित है जहां कार्मिकों को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा गया है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Leadership Styles

3. अहस्तक्षेपवादी शैली *(Laissez Fair Style)* : इसे नेता के नियंत्रण से मुक्त शैली भी कहा जाता है। इसमें नेता की भूमिका न्यूनतम तथा अधीनस्थों की भूमिका प्रभावी होती है। अधीनस्थों को संगठन में अधिकतम स्वतंत्रता दी जाती है। निर्णयन प्रक्रिया लक्ष्य निर्धारण और उसकी प्राप्ति में अधीनस्थ सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इसे अधीनस्थों की स्वतंत्र शैली भी कहा जाता है।

क्यूलिस के अनुसार यह सिद्धान्त नेतृत्व की **चार शैलियों** को अभिव्यक्त करता है अर्थात्

1. **बतलाने की शैली** (Tells Style)
2. **बेचने की शैली** (Sells Style)
3. **परामर्श की शैली** (Consults Style)
4. **मिलने की शैली** (Joins Style)

बेल्विन ने उद्योगों में प्रयुक्त नेतृत्व की दो शैलियाँ बतलाई हैं अर्थात् **एकाकी नेतृत्व शैली** (The Solo Leader Style) जिसमें लीडर पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करता है या स्वेच्छाचारी होता है जबकि दूसरी **टीम लीडर शैली** (The Team Leader Style) होती है जिसमें सामूहिक नेतृत्व के कारण नेता अपनी भूमिका सीमित रखता है। वह स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता है। इसके अलावा **संरक्षात्मक नेतृत्व शैली** (Paternalistic Leadership Style) भी होती है जिसे नेतृत्व का जापानी प्रतिमान भी कहा जाता है। नेतृत्वकर्ता संगठन को अपने परिवार की तरह और स्वंय को पितृसत्तात्मक सत्ता के वाहक के समान अथवा मुखिया की तरह मानता है। इनके अलावा **करिश्मात्मक नेतृत्व शैली** और **पदप्रधान नेतृत्व शैली** का भी विवेचन किया गया है।

4. परिस्थितिजन्य नेतृत्व सिद्धांत (Situational Theory of Leadership) : परिस्थितिवादी या परिस्थितिगत प्रतिमान नेतृत्व को जीवन चक्र उपागम अथवा जीवनवृत्त विचारधारा के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन पॉल हर्से और केनेथ एच ब्लाचार्ड के द्वारा किया गया है। इस सिद्धांत की मूल मान्यता है कि नेता परिस्थितियों से जन्म लेते हैं। इसमें परिस्थिति को केंद्रीय स्थान दिया गया है। यह सिद्धांत प्रभावशाली नेतृत्व की विशेषताओं के अध्ययन में सर्वाधिक महत्व परिस्थिति को देता है। यद्यपि प्रबंधकीय नेतृत्व में परिस्थिति को सर्वाधिक महत्व देने वाले सिद्धांत का प्रतिपादन मेरी पार्कर फॉलेट ने किया है। उसने प्रबंधक और अधीनस्थों के बीच आदेश-निर्देश की पद्धति का विवेचन किया और बताया कि आदेश व्यक्तिशः नहीं होने चाहिए। सभी संबंधित व्यक्तियों को परिस्थिति के अध्ययन में शामिल किया जाना चाहिए।

पॉल हर्से व ब्लाचार्ड ने परिस्थिति जनक नेतृत्व शैली को अभिव्यक्त करते हुए बताया है कि यह उन लोगों की तत्परता के स्तर पर निर्भर करती है जिनको प्रभावित करने का प्रयास नेता करता है। यह तत्परता विशिष्ट कार्य के निष्पादन में नियत 'अधीनस्थों की इच्छा और योग्यता' का संयोग है। इस तत्परता या प्रौढता या परिपक्वता के चार स्तर होते हैं। इन चारों स्तरों के लिए अर्थात् प्रत्येक स्तर के लिए 'कार्य व्यवहार और संबंध व्यवहार' के मिश्रण से निर्मित उचित नेतृत्व शैली होती है। यहाँ कार्य व्यवहार नेता के द्वारा अपने अधीनस्थों को दिए जाने वाले दिशानिर्देश, लक्ष्य निर्धारण भूमिका और निर्वहन के तरीके को दर्शाता है जबकि संबंध व्यवहार इसका प्रतीक है कि नेता किस स्तर तक अपने अनुयायियों के साथ भी द्विमार्गी संवाद करता है, उनको सुनता है और उन्हें प्रोत्साहन व समर्थन देता है। इसे नीचे की तालिका में दर्शाया गया है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Situational Theory of Leadership

यद्यपि इस उपागम की अपनी सीमाएं भी हैं जैसे कि नेता में प्रस्तुत दशा का ज्ञान व कौशल होना प्रकट होना समूह के प्रभाव को अभिव्यक्त नहीं करना और सब कुछ परिस्थितियों पर ही छोड़ना संभव नहीं होना इत्यादि। निकोल्स के द्वारा अपने निकोल्स प्रतिमान में इस उपागम की आलोचना करते हुए बताया गया है कि इसके अंतर्गत तीन तार्किक नियमों - **संगतता, निरंतरता और समरूपता** की अवहेलना की गई है। इन तीनों की अवहेलना नहीं करते हुए निकोलस प्रतिमान प्रस्तुत किया गया है जिसे परिस्थिति नेतृत्व का नवीन प्रतिमान

कहा जाता है।

निकोलस प्रतिमान के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है :-

R1 के साथ कथन शैली से आगे बढ़कर नेता को परामर्श एवं विकासकर्ता या विकासपरक भूमिका निभानी चाहिए।

R 2 इसमें नेता अपने समूह की योग्यता और इच्छा को अधिक विकसित करने के लिए सहभागिता और प्रत्यायोजन का सहारा लेता है।

R 3 में नेता कोच की भूमिका का निर्वहन करता है।

R 4 में नेता को एक ड्राइवर या चालक की भूमिका निभानी होती है।

निकोलस के अनुसार यदि समूह में योग्यता और इच्छा विकसित स्थिति में हो तो नेता को कोच की भूमिका एवं इच्छा हो तो चालक की भूमिका निभानी पड़ती है।

विलियम रेडिन ने 1970 में नेतृत्व प्रभाविता के त्रिआयामी प्रतिमान का प्रतिपादन किया। रीडिंग के अनुसार कार्य, व्यवहार और परिस्थिति नेतृत्व के मूल आधार स्तंभ होते हैं। इसमें कार्य संबंधी या निर्देशन, व्यवहार संबंध या निर्देशन तथा नेतृत्व को प्रभावित करने वाली स्थिति या नेतृत्वकर्ता और अनुयायियों की स्थिति को शामिल किया गया है।

5. नेतृत्व का आकस्मिकता सिद्धांत *(Contingency Theory of Leadership)* :

इस सिद्धांत की मान्यता है कि नेतृत्व की कोई एक शैली नहीं है जो सभी परिस्थितियों में उपयोगी अथवा प्रासंगिक सिद्ध होती है। इस सिद्धांत के चार प्रमुख भाग हैं :-

1. **परिस्थिति अनुकूलता सिद्धांत ।**
2. **निर्णय सहभागिता सिद्धांत ।**
3. **पथ और गोल थ्योरी।**
4. **परिस्थितिपरक सिद्धांत।**

1 नेतृत्व परिस्थिति की अनुकूलता का सिद्धांत ;द्ध : इस सिद्धांत का प्रतिपादन फ्रेड ई फीडलर के द्वारा किया गया है। फिडलर ने अपनी पुस्तक 'थ्योरी ऑफ लीडरशिप इफेक्टिवनेस' (A Theory of Leadership Effectiveness, 1967AD) में अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। उसने नेतृत्व व्यवहार और नेतृत्व शैली में अंतर बताया है। नेतृत्व व्यवहार किसी विशिष्ट परिस्थिति में नेता के व्यवहार की प्रतिक्रिया होता है जबकि नेतृत्व शैली परिस्थिति के अनुरूप अपनाये जाने वाले व्यवहार का प्रतिमान है। कोई एक नेतृत्व शैली ऐसी नहीं है जिसे सभी प्रकार की परिस्थितियों में अपनाया जा सके। इसलिए भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में नेतृत्व की अलग-अलग शैलियों का सहारा लेना पड़ता है। नेता की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह परिस्थिति के अनुरूप कौन सी नेतृत्व शैली अपनाता है। फ्रेडरिक ने एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण के माध्यम से (Least Preferred Co-Worker, LPC) नेताओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया है। एक कार्य केन्द्रित नेतृत्व और दूसरा संबंध केंद्रित नेतृत्व।

परिस्थितियाँ सदैव परिवर्तनशील होती है। अतः नेतृत्व परिस्थिति की अनुकूलता पर निर्भर करता है। परिस्थिति की अनुकूलता को प्रभावित करने वाले तीन मुख्य घटक होते हैं। पहला संबंध व्यवहार अर्थात् नेता और संगठन के सदस्यों के बीच के संबंध। दूसरा कार्य व्यवहार अर्थात् किस सीमा तक कार्य का स्पष्टीकरण और उसका निष्पादन किया गया है। तीसरा तत्व पद शक्ति अर्थात् जो पदसोपान में नेता की स्थिति एवं आदेश पालन कराने में नेता किस स्तर तक सत्ता का प्रयोग करता है। फिडलर ने इन तीन चरों के आधार पर 8 प्रकार की नेतृत्व शैलियों का वर्णन किया है।

जब परिस्थितियाँ नेता के अनुकूल हो तो :- नेतृत्व मजबूत एवं संरचनात्मकपूर्ण अथवा कमजोर व असंरचनात्मकपूर्ण होता है।

जब परिस्थितियाँ नेता के प्रतिकूल हो तो :- नेतृत्व कमजोर और सर्जनात्मकपूर्ण अथवा मजबूत और असंरचनात्मकपूर्ण होता है।

2 नेतृत्व का सहभागिता प्रतिमान : इसे निर्णय भागीदारी मानक प्रतिमान अथवा नेतृत्व निर्णय स्वीकृति सिद्धांत भी कहा जाता है। टैरी और फ्रैंकलिन ने इसे नेतृत्व निर्णय सिद्धांत कहा है। यह सिद्धांत उन नियमों की खोज है जिनकी सहायता से बदलती हुई परिस्थितियों में निर्णय निर्माण किया जाता है। नेता अपने निर्णय में अधीनस्थों को किस स्तर तक भूमिका प्रदान करता है। वरुण और येट्टन ने निर्णय प्रक्रिया को दो पक्षों पर केंद्रित किया है। यद्यपि उसका तीसरा पक्ष भी होता है। पहला पक्ष गुणात्मक पक्ष होता है जो कि निष्पादन क्षमता को प्रभावित करता है जबकि दूसरा पक्ष स्वीकृति पक्ष होता है जो अधीनस्थों की सहमति अथवा सहभागिता या निर्णय लागू करने की प्रतिबद्धता अथवा अभिप्रेरणा का संकेतक होता है। इसका तीसरा पक्ष निर्णय में लगने वाले समय तत्व को अभिव्यक्त करता है। इनके आधार पर **विक्टर एच व्रूम एवं येट्टन ने नेतृत्व की पाँच शैलियों** को स्पष्ट किया है जो कि निम्न तालिका में प्रदर्शित है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

नेतृत्व का सहभागिता प्रतिमान

इसके लिए 7 नियम भी बताए हैं जो 7 प्रश्नों का उत्तर खोजते हैं अर्थात् निर्णय वृक्ष प्रतिमान का विकास किया गया है। इनमें गुणवत्ता, सूचना, समस्या, स्वीकृति, सहमति, अभिप्रेरणा और विवाद सात महत्वपूर्ण तत्व होते हैं। वरुण और जैगों ने इनकी संख्या 12 तक बतायी है।

3 पथ उद्देश्य सिद्धांत ***(Path Goal Theory)*** : यह अभिप्रेरणा और नेतृत्व के अनेक सिद्धांतों का मिश्रित स्वरूप है। इसमें व्यवहारवादी शैली सिद्धांत, विक्टर वरूम का अभिप्रेरणा का प्रत्याशा सिद्धांत और परिस्थिति सिद्धांत को एक साथ समाहित किया गया है। इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय रोबट जे हाउस, टेरेस आर मिचेल, ईवान्स व ड्रेसलर इत्यादि को जाता है।

इन्होंने 1950 के दशक के अंतिम वर्षों में इसे चर्चित बनाया। इस सिद्धांत की मूल मान्यता है कि उच्चतर निष्पादन को प्राप्त करने हेतु अधिक प्रयास करने होंगे तथा उच्चतर निष्पादन नकारात्मक परिणामों से दूरी बनाए रखने और सकारात्मक पुरस्कारों को प्राप्त करने में सहयोगी होता है। यह सिद्धांत मार्ग स्पष्टीकरण, आवश्यकता पूर्ति और लक्ष्य उपलब्धि का गमन करता है। अतः इसे मार्ग लक्ष्य प्रतिमान कहा जाता है। रोबोट जे हाउस ने चार प्रकार के नेतृत्व व्यवहार या शैली का उल्लेख किया है जिनमें

1. **निर्देशात्मक नेतृत्व (Directive)**
2. **समर्थनात्मक नेतृत्व (Directive)**
3. **भागीदारी नेतृत्व(Supportive)**
4. **उपलब्धि नेतृत्व(Achievement)**

इन चारों में से नेता परिस्थितियों के अनुरूप किसी भी शैली को अपना सकता है। हाउस ने नेतृत्व व्यवहार को निर्धारित करने वाले दो परिस्थितिजन्य कारकों की पहचान की है अर्थात् प्रथम अधीनस्थों के व्यक्तिगत गुण या चारित्रिक विशेषताएँ दूसरा कार्य की प्रकृति अर्थात पर्यावरणीय दबाव।

4 क्लॉर्क और प्रैट का सिद्धांत : यह क्वांटम थ्योरी या **परिस्थितिजन्य उपागम का चौथा उप सिद्धांत** है। इस सिद्धांत का मूल उद्देश्य विभिन्न दिशाओं में विभिन्न शैलियों की खोज करना है जो विद्यमान परिस्थिति के अनुकूल हो। यह दो घटकों पर आधारित होता है अर्थात विद्यमान नियंत्रण की मात्रा और नेतृत्व की प्रयुक्त शैली। संगठन के अलग-अलग विकास के स्तर पर अलग प्रकार की शैली की आवश्यकता होती है जिन्हें निम्न तालिका संख्या में दर्शाया गया है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

क्वांटम थ्योरी

इस सिद्धांत के समर्थक रोड्रिग्ज ने गतिशील पर्यावरण में कार्यरत संगठन तीन प्रकार के परिवर्तनों का सामना करता है। अर्थात् समस्या समाधान चरण, समाधान क्रियान्वयन चरण और स्थायी चरण। इन चरणों में विशिष्ट योग्यता व्यवहार और विशेषता वाला नेता ही सफल होता है। उसने तीन प्रकार के नेतृत्व की परिकल्पना प्रस्तुत की अर्थ अर्थ परिवर्तक (Innovator) ,

क्रियान्वयक (Implementeer) और शांतिकर्ता (Pacifieer) ।

नेतृत्व एवं प्रबंधन में अंतर : सामान्यतया यह उम्मीद की जाती है कि एक प्रबंधक अच्छा नेता भी हो परंतु यह संभव हो ऐसा जरूरी नहीं होता है। लोरी जे मूलिंस के अनुसार किसी संरचनात्मक संगठन में निर्धारित भूमिका निभाने वाले प्रबंधक कहलाते हैं। संगठन के बाहर के लोग मैनेजर को नेता की भूमिका में स्वीकार नहीं कर सकते हैं। नेतृत्व अनुयायियों के उचित और उत्साहपूर्ण व्यवहार से संबंधित होता है। नेतृत्व के लिए किसी संरचनात्मक संगठन में शामिल होने की आवश्यकता नहीं होती है। सोपानीय संरचना में प्रबंधक नेता की भूमिका में होता है परंतु नेतृत्व निर्धारित औपचारिक भूमिका के भी अतिरिक्त होता है।

वाटसन के अनुसार प्रबंधक सामान्यतया संगठन की संरचना, रणनीति एवं व्यवस्था पर निर्भर होते हैं जबकि नेतागण शैली, स्टाफ, कौशल, साझा लक्ष्यों पर निर्भर होते हैं। हेनरी के अनुसार नेतृत्व एक विशाल अवधारणा होती है जो सभी प्रकार के औपचारिक-अनौपचारिक संगठनों मे मैत्री संगठनों में तथा परिवार इत्यादि में पाई जाती है। इसके विपरीत प्रबंधन की धारणा सीमित और औपचारिक संगठनों तक ही विस्तृत रहती है। फिर भी ध्यान रखने वाली बात यह है कि इस अंतर के बावजूद भी प्रबंधन व नेतृत्व को एक दूसरे से पूर्णतया अलग नहीं माना जा सकता है। प्रबंधन प्रशिक्षण की अनेक विधियाँ ऐसी हैं जिनके माध्यम से नेतृत्व शैली का मापन किया जाता है। किसी प्रबंधन की सफलता अग्रिम स्वरूप में पहुँच जाती है। यदि वह नेता की जैसी भूमिका भी निभाता है। यद्यपि नेतृत्व को प्रबंधन का अंग माना जाता है परंतु स्वंय नेतृत्व भी एक विशिष्ट शैली होती है।

नेतृत्व का महत्व (Significant of Leadership) : इस प्रकार नेतृत्व के अर्थ, प्रकृति, सिद्धांतों का विवेचन करने के पश्चात् हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि नेतृत्व का अपना

महत्व होता है। वह समूह का निर्देशन करता है। उसके अभाव में किसी भी संगठन का सफलतापूर्वक संचालन संभव नहीं हो सकता है। यद्यपि वह प्रबंधन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक नेतृत्व में अलग-अलग भूमिका का निर्वहन करता है परंतु नेतृत्व परिवार से लेकर दुनिया के सभी प्रकार के संगठनों के लिए अनिवार्य होता है। संगठन में नेतृत्वकर्ता इस प्रकार से कार्य करता है कि उसके अनुगामी अपने वांछित कार्य के निष्पादन तथा अपने लक्ष्यों की उपलब्धि में संतोष तथा आत्मतुष्टि का अनुभव करते हैं। नेतृत्व की गत्यात्मक प्रक्रिया है। नेतृत्व प्रभावी और द्विमार्गी प्रक्रिया होती है जिसमें अनुयायी और नेता के बीच पारस्परिक संबंध होते हैं। इसका प्रभाव व्यक्ति तथा संगठनात्मक निष्पादन की प्रक्रिया दोनों पर पड़ता है। नेता समूह में टीमवर्क की भावना से कार्य करता है। अतः वह संगठन निरंतर बना रहता है। नेता लोगों के संगठन में तथा लक्ष्यों में समनव्य स्थापित करता है। नेता अपने कार्मिकों या अनुयायियों के कार्य की प्रशंसा या उसको महत्व देकर उन्हें अभिप्रेरित करता है। संगठनात्मक अवस्था की अपूर्णता, परिवर्तनशील पर्यावरण, संगठन की आंतरिक गतिशीलता और संगठनों में मनमानी प्रवृत्तियों के विकास के लिए नेता अनिवार्य आवश्यकता का आधार होता है। संगठन का वास्तविक कार्य औपचारिक रूप से भिन्न भी होता है। इस कार्य का निष्पादन करने का आधार नेतृत्व ही होता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

अभिप्रेरणा का सिद्धान्त

(Theory of Motivation)

प्रशासनिक व्यवहार के प्रतिमानों में अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों का विशिष्ट महत्व होता है। संगठन में सबसे महत्वपूर्ण इकाई कार्य निष्पादन करने वाले कर्मचारी होते हैं। कर्मचारी कार्य

क्यों करते हैं? अथवा कर्मचारियों के द्वारा किए जाने वाले व्यवहार में भिन्नता क्यों होती है? **मानवीय व्यवहार की प्रकृति अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित, कर्मठता-अकर्मण्यता, ईमानदारी-बेईमानी इत्यादि गुणों-अवगुणों के पीछे एक मनोवैज्ञानिक शक्ति कार्य करती है जिसे मनोविज्ञान में अभिप्रेरणा** के नाम से जाना जाता है। रेंसिस लिकर्ट ने अभिप्रेरणा को 'प्रबंधन का ह्दय' कहा है। हेनरी फेयोल के अनुसार **अभिप्रेरणा 'कार्य करने का आदेश' देने वाली शक्ति** है। इसका महत्व व्यक्तिगत जीवन से लेकर संगठन के कार्मिकों तक विस्तृत है। अभिप्रेरणा संगठन में कार्मिकों को कार्य करने के लिए तैयार करती है। किसी संगठन में यदि कर्मचारी सकारात्मक रूप से भी प्रेरित रहते हैं तो संगठन आसानी से अपने लक्ष्यों को अर्जित कर लेता है।

अभिप्रेरणा का अर्थ व परिभाषा : अभिप्रेरणा **आंग्ल भाषा के मोटिवेशन (Motivation)** का हिंदी अनुवाद है जो कि **लैटिन भाषा की मूवरे** (Movere) से निर्मित है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- **गति या चलना।** अभिप्रेरणा **व्यक्ति की वह आंतरिक शक्ति** है जो उसे कार्य करने के लिए प्रेरित या तैयार करती है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Motivation

इसके अभाव में व्यक्ति कार्य नहीं करता है। संगठन में उच्च उत्पादकता या अधिकतम उत्पादन के ध्येय को प्राप्त करने के लिए प्रबंधक को अपने कार्मिकों को अभिप्रेरित करना होता है। संगठन में कार्मिकों की अभिप्रेरणा और उत्पादकता में घनिष्ठ और सकारात्मक संबंध पाया जाता है। इसके बिना कोई कार्मिक योग्य, कुशल और दक्ष होते हुए भी अपनी क्षमता का उपयोग नहीं करता है या कम करता है। अतः अभिप्रेरणा कार्य की चालक शक्ति होती है। कार्य करने की इच्छा का सर्जन ही अभिप्रेरणा है।

गिलफोर्ड के अनुसार अभिप्रेरणा आंतरिक कारक है जो कार्य को आरंभ करने और बनाए रखने की ओर प्रवृत होता है। ऐे जे डयूबरिन के अनुसार ''लक्ष्य की ओर किया गया प्रयास ही अभिप्रेरणा है।''

लॉरेंस जी मूलिंस के विचारों में ''अभिप्रेरणा को कार्य निर्देशन एवं निरंतरता के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।'' लोग किसी कार्य विशेष को महत्व क्यों देते हैं? उस कार्य को लंबे समय तक करते रहते हैं और उसमें आने वाली कठिनाईयों का सामना करते रहते हैं। अभिप्रेरणा व्यक्तियों में अंतर्निहित चालक शक्ति होती है जो किसी लक्ष्य की प्राप्ति में उनके लिए चालक का कार्य करती रहती है। म्यूलिन्स के अनुसार आवश्यकता और आकांक्षाओं को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात् मनोवैज्ञानिक या आंतरिक अभिप्रेरणा और बाह्य अथवा सामाजिक अभिप्रेरणा। आंतरिक अभिप्रेरणा के तत्वों में पुरस्कार, पहचान, प्रशंसा, अवसर, प्रयत्न, सफलता की अनुभूति, आदर्श इत्यादि को शामिल किया जाता है जबकि बाहरी अभिप्रेरणा में वेतन, पदोन्नति, अतिरिक्त, सुरक्षा, सेवा संबंधी घटकों को शामिल किया जाता है। म्यूलिन्स ने मूल अभिप्रेरणात्मक मॉडल को निम्न रेखाचित्र में समझाया हैः-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Motivation Model

अभिप्रेरणा की मुख्य विशेषताएँ :

1. अभिप्रेरणा एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है।
2. यह व्यक्ति के मनोबल को बढ़ाती है।
3. अभिप्रेरणा संपूर्ण इकाई है जो व्यक्ति के किसी भाग को नहीं अपितु समग्र रूप को प्रभावित करती है।
4. यह एक अंतहीन और सतत प्रक्रिया होती है।

5. इसे मौद्रिक एवं अमौद्रिक अथवा आंतरिक और बाह्य कारकों से प्रभावित किया जा सकता है।

अभिप्रेरणा की प्रमुख प्रकार : इसे सामान्यतया चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। मौदिक अभिप्रेरणा, अमौद्रिक अभिप्रेरणा, आंतरिक अभिप्रेरणा तथा सामाजिक अभिप्रेरणा।

भय और दंड का सिद्धांत : इस सिद्धांत का विश्वास है कि व्यक्ति या कार्मिक भय और दण्ड के कारण कार्य करता है। यदि कोई कर्मचारी कार्य नहीं करता है तो प्रबंधक उसे सेवा बर्खास्त, वेतन कटौती, अनुशासनहीनता की कार्यवाही तथा अन्य कार्रवाई का भय दिखाकर अभिप्रेरित कर सकता है। यद्यपि यह कुछ हद तक सही हो सकता है परंतु इस नकारात्मक अभिप्रेरणा का संगठन की उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पुरस्कार या इनाम का सिद्धांत : यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि यदि कार्मिक को आर्थिक पुरस्कार दिया जाए तो वह कार्य क्षमता का अधिकतम उपयोग करता है। टेलर के द्वारा इसी आधार पर विभेदात्मक मजदूरी प्रणाली का समर्थन किया गया अर्थात् उसकी मान्यता थी कि यदि श्रमिकों को अधिक आर्थिक प्रतिफल देते हैं तो वे अधिक काम करते हैं। अर्थशास्त्री एडम स्मिथ की धारणा इसी सिद्धान्त से मिलती जुलती है।

गाजर या चारा और छड़ी का सिद्धांत : यह प्रथम दोनों सिद्धांतों का समन्वित स्वरूप है जिसमें पुरस्कार और दंड दोनों धारणाओं का प्रयोग करने का समर्थन किया गया है। पुरस्कार देने से अभिप्रेरणा उत्पन्न होती है तो इनाम दे अन्यथा दण्ड का सहारा लिया जाना चाहिए। मैक्सग्रेगर ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि यह आवश्यकता के एक निश्चित

स्तर तक ही कार्य करता है। उसके बाद आवश्यकताओं का स्तर बदल जाता है।

आवश्यकता सोपानीय सिद्धांत *(Hierarchy of Needs Theory)* :
इस सिद्धांत का प्रतिपादन ए एच मेंस्लो के द्वारा 1943 में अपने निबंध ए थ्योरी ऑफ हयुमन माटिवेशन' (A Theory of Human Motivation, 1943AD) में किया गया। मैस्लो के अनुसार मानवीय आवश्यकता अभिप्रेरणा का मूल आधार होती है। मानवीय आवश्यकताओं को मैस्लो ने पाँच भागों में विभाजित किया है जो कि दो श्रेणियों (Basic and Social) में होती है। इनमें मूलभूत और स्वाभाविक आवश्यकताएँ निम्न स्तर पर होती हैं जबकि सामाजिक और शैष्टिक संबंधी आवश्यकताएँ उच्च स्तर पर होती हैं। आवश्यकताओं का यह क्रम नीचे से ऊपर की ओर बढ़ता जाता है। प्रथम आवश्यकता पूर्ण होने पर व्यक्ति दूसरी उच्च आवश्यकता की पूर्ति के लिए उन्मुख हो जाता है। व्यक्ति संगठन में कार्य इसलिए करता है क्योंकि संगठन उसकी आवश्यकताएँ पूर्ण करता है। इन आवश्यकताओं का एक सोपान या सीढीनुमा क्रम होता है जिसे निम्न रेखाचित्र के द्वारा स्पष्ट किया गया है :-

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Model

1. **शारीरिक आवश्यकताएँ** (Physiological Needs) : इन आवश्यकताओं में भोजन, कपडे, मकान, निद्रा, आराम संबंधी, मूल आजीविका से जुड़ी हुई आवश्यकताएँ शामिल है।

2. **सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ** (Safety Needds) : इनके अंतर्गत संकट, धमकी, अभाव, वातावरण, कार्य की सुरक्षा, पद की सुरक्षा इत्यादि आवश्यकताएँ शामिल हैं।
3. **सामाजिक आवश्यकताएँ**(Social or Love Needs) : इसके अंतर्गत मानव की सामाजिक प्रवृत्ति से जुड़ी हुई आवश्यकताएँ आती है। जैसे समाज और सामाजिक समूह, परिवार, संगठन, कार्य, दल, मित्र समूह इत्यादि में शामिल होने संबंधी आवश्यकताएँ।
4. **सम्मान संबंधी आवश्यकताएँ** (Esteem Needs) : व्यक्ति अब संगठन में प्रतिष्ठा, सम्मान, प्रशंसा, प्राप्ति की इच्छा रखने लगता है। इन्हें मानव की उच्च स्तरीय आवश्यकताएँ कहा जाता है।
5. **आत्म सिद्धि संबंधी आवश्यकताएँ** (Self Actualisation Needs) : ये उच्चतम श्रेणी की आवश्यकताएँ होती हैं। आत्मबोध व्यक्तिगत विकास, सामाजिक, भौतिक अभिवृत्ति, सृजनात्मकता इत्यादि आवश्यकताएँ इसी श्रेणी में शामिल हैं।

इस तरह से मैस्लो के अनुसार आवश्यकताओं के सोपानात्मक क्रम में कार्मिक अभिप्रेरित होता है। उच्चतम दो आवष्यकताएँ संगठन से संबंधित नहीं है। मैस्लों के सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि ऐसी आवश्यकताओं का सोपान सबके लिए एक जैसा हो यह जरूरी नहीं है। अनेक बार आवष्यकताएँ उल्टे स्वरूप में और प्रतिस्थापित भी हो जाती हैं। म्यूलिंस के अनुसार पदानुक्रम के एक ही स्तर पर कार्यरत लोगों को प्रेरित करने वाले कारक एक से हो यह जरूरी नहीं है।

कार्मिक अपने उच्च स्तर की आवश्यकताओं से भी प्रभावित हो सकता है।

अभिप्रेरणा का एक्स वाई सिद्धांत (X, Y Theory of Motivation) :

इस सिद्धांत का प्रतिपादन प्रसिद्ध व्यवहारवादी और मनोवैज्ञानिक डग्लस मैकग्रेगर (Douglas MC Greger) के द्वारा किया गया है। ग्रेगर ने अपनी पुस्तक 'दी ह्यूमन साइड ऑफ एंटरप्राइजेज' (The Human Side of Enterprise, 1960AD) के अंतर्गत अभिप्रेरणा के एक्स और वाई सिद्धांत का विस्तार से वर्णन किया है। उसने संगठन के कार्मिकों के संबंध में मान्यताओं के दो सेट प्रस्तुत किए हैं। एक समूह उन कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करता है जिनका दृष्टिकोण नकारात्मकता से परिपूर्ण होता है अर्थात् एक्स सिद्धांत। दूसरा समूह कार्मिकों के सकारात्मक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है अर्थात् वॉइ सिद्धांत। संगठन का मुख्य प्रबंधक या प्रशासक अपने कर्मचारियों के साथ इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर व्यवहार करता है।

एक्स सिद्धांत की मान्यताएं हैं कि संगठन के कार्मिक स्वभाव से काम करना पसंद नहीं करते है। इसलिए सदैव कार्य से बचने का प्रयास करते हैं। वे संगठन के प्रति अपनेपन की भावना नहीं रखते हैं। वे परिवर्तन विरोधी होते हैं। ऐसे कर्मचारियों से काम कराने का एकमात्र तरीका दंड और भय का सिद्धांत होता है।

मैकग्रेगर के अनुसार संगठन में कार्मिकों का एक दूसरा समूह होता है जो सकारात्मक अभिप्रेरणा से प्रेरित होता है। वाई सिद्धान्त समूह के कर्मचारी स्वाभाविक रूप से कार्य करना पसंद करते हैं। वे आत्म निर्देशन और आत्म नियंत्रण के गुण रखते हैं। संगठन के प्रति समर्पण की भावना रखते हैं। अपने दायित्व का अनिवार्यता के साथ निर्वहन करते हैं। सभी कार्मिकों में सर्जनशीलता की योग्यता दिखाई देती है। कर्मचारियों और प्रबंधन के बीच अच्छे मानवीय संबंध स्थापित होते हैं। अतः वाई सिद्धांत संगठन में कार्मिकों के अच्छी स्वरूप को दर्शाता है।

यदि मैस्लो के आवश्यकता सोपानात्मक सिद्धांत के आधार पर इस पर विचार करें तो एक्स सिद्धांत वाले कार्मिकों पर मूलभूत एवं वाई सिद्धांत वाले कार्मिकों पर सामाजिक और उच्च स्तर वाली आवश्यकताएं प्रभावी रहती हैं। परन्तु व्यवहारीक रूप से सभी कार्मिक केवल एक्स से अथवा वाई से ही प्रभावित नहीं रहते हैं अपितु कार्मिक दोनों ही प्रकार के सिद्धांतों से आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं।

ई आर जी थ्योरी (ERG Theory of Motivation) : यह **कॉन्टेंट थ्योरी** का ही एक सिद्धांत है। इसे ई आर जी अथवा अस्तित्व (Existence) सम्बन्धता (Relatedness) और वृद्धि (Growth) के नाम से भी जाना जाता है। यह मैस्लों के आवश्यकता सोपानात्मक सिद्धांत का संशोधित प्रतिमान है। इस सिद्धांत का **प्रतिपादन कलेटन इ एडल्फर** के द्वारा किया गया है। एडल्फर ने मैस्लो की आवश्यकताओं को तीन मूलभूत आवश्यकताओं तक सीमित कर दिया है।

1. **अस्तित्वजन्य आवश्यकताएँ :** जिनमें आहार और भौतिक संबंधी आवश्यकताओं को शामिल किया गया है।
2. **संबंधपरक आवश्यकताएँ :** ऐसी आवश्यकताएँ जिनकी पूर्ति परिवार और मित्र या सामाजिक समूह के माध्यम से होती है।
3. **अभिवृद्धि आवश्यकताएँ :** इसके अंतर्गत वैयक्ति और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को शामिल किया गया है।

एल्डरफर के अनुसार इन आवश्यकताओं का पदानुक्रम ऐसा ही होगा जरूरी नहीं है। आवश्यकता पदानुक्रम की अपेक्षा सात्यतक प्रकृति की होती है। व्यक्ति ऊपर से नीचे की ओर भी उन्मुख हो सकता है। एक साथ एक से अधिक आवश्यकताएँ भी

अभिप्रेरणा का कारक हो सकती हैं। इस प्रकार से मैस्लों के सिद्धांत की अपेक्षा एल्डरफर का सिद्धांत लचीला और अधिक सुगम तथा व्यवहारिक दिखाई देता है।

अभिप्रेरणा की जेड़ सिद्धांत (Z Theory of Motivation) :

इस सिद्धांत के मुख्य प्रतिपादक विलियम जी आउची और प्रमुख समर्थक अल्फ्रेड जेगर हैं। आउची ने अपनी पुस्तक 'थ्योरी जेड' 1981 (Theory Z, 1981AD) में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। यह सिद्धांत जापानी प्रबंधन पर शोध प्रस्तुत करता है। यह मेकग्रेगर के वाई विचारधारा सिद्धांत से आगे का स्वरूप है। इसका मुख्य केंद्र संगठन में कार्यरत कार्मिकों की दलीय भावना होती है। अनेक कंपनियों का अध्ययन करने के पश्चात् आउची ने प्रबंधन की व्यवस्था में कार्य करने की शक्ति या अभिप्रेरणा का मुख्य आधार तीन शब्दों विश्वास(Trust) मर्मज्ञता(Subtlety) और आत्मीयता (Intimacy) को बताया है। इस सिद्धांत के अनुसार उपभोक्ता के मानवीय व्यवहार का अध्ययन कर आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्रबंधकीय सिद्धांत (Management Theory) : रेंसिस लिकर्ट के अनुसार कार्मिकों की अभिप्रेरणा के पीछे का मूल आधार प्रबंधन की कुशलता होता है। लिकर्ट ने अपनी रचना 'न्यू पैटर्न ऑफ मैनेजमेंट' 1961 (New Pattern of Management, 1961AD) के अंतर्गत चार प्रकार की प्रबंधकीय व्यवस्था का वर्णन किया है।

1. स्वार्थी सर्वसत्ताधारी व्यवस्था : उत्पादन या कार्य पर केंद्रित होती हैं ।
2. हितेषी सर्वसत्ताधारी व्यवस्था : कार्मिकों के हितों और उत्पादन दोनों पर केंद्रित होती है।
3. परामर्शी प्रबंधकीय व्यवस्था : कार्मिकों को केवल सलाहकार रूप में स्वीकार करती है।

4. सहभागी प्रबंधकीय व्यवस्था : लोकतांत्रिक शैली पर आधारित होती है।

द्विघटकीय सिद्धान्त (Two Factor Theory) : इस सिद्धांत का प्रतिपादन फ्रेडरिक हजर्बग (Fredrick Herzberg) के किया गया है। इस सिद्धांत के अन्तर्गत अमेरिका के पिटसबर्ग क्षेत्र में 200 से अधिक लेखापालको और अभियंताओं पर अनुसंधान किया गया है। अनुसंधान को प्रभावित करने वाले तत्वों के दो समूह बनाए गए हैं अर्थात् संगठन ऐसे घटक जो कार्मिकों को संतुष्टि प्रदान करते हैं और दूसरे संगठन के ऐसे कारक या घटक जो कर्मचारियों को असंतुष्टि प्रदान करते हैं। इन कारकों के समूह को **आंतरिक कारक या अभीप्रेरणात्मक कारक** और **बाह्य अथवा हाइजीन कारकों** के नाम से जाना जाता है।

हाइजीन अथवा आरोग्य कारकों का संबंध कार्य की **असंतुष्टि** से है। उन परिस्थितियों या परिवेश अथवा कार्य दशाओं में जिनमें बाहरी तत्व एक निश्चित न्यूनतम स्तर तक उपलब्ध नहीं कराए जाते हैं। इनकी वजह से संगठन के कर्मचारियों में असंतुष्टि की भावना उत्पन्न होती है। इन कारकों को अनुरक्षण घटक (Maintenance Factor) कहा जाता है। इनकी उपस्थिति संतुष्टि को बनाए रखती है लेकिन इनकी संख्या में अथवा स्तर में वृद्धि करने से संतुष्टि या अभिप्रेरणा में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं आता है। इनकी अनुपस्थिति असंतुष्टि का प्रतीक होती है। पारंपरिक अवधारणा में इन्हें कार्मिकों के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने वाले घटक के रूप में देखा गया लेकिन यथार्थ में इनसे कार्मिक अभिप्रेरित नहीं होता है। हाइजीन तत्वों में वेतन और क्षतिपूर्ति, निजी जीवन, कार्यगत दशाएं या परिस्थितियां, कार्यगत संबंध और प्रकृति, पदस्थिति, कार्य या पद की सुरक्षा, कंपनी की नीति और प्रशासन , नियमावली, निरीक्षण की गुणवत्ता इत्यादि षामिल है। ऐसे कारक कार्मिकों को कार्यगत परिवेश उपलब्ध

कराते हैं। अतः कार्मिकों के उचित संतोषजनक स्तर को बनाए रखने के लिए इन हाइजीन घटकों की आवश्यकता होती है।
आंतरिक कारक जिन्हें अभिप्रेरणात्मक तत्व या संतुष्टि जनक या कारक तत्व भी कहा जाता है। इन आंतरिक कारकों में उन्नति के अवसर, कार्य की पहचान और स्वीकृति, चुनौतियां और नवप्रवर्तन, उपलब्धि, कार्य की पहचान अथवा मान्यता, उन्नति, दायित्व अभिवृद्धि की संभावना इत्यादि शामिल हैं। इन कारकों की अनुपस्थिति कभी भी असंतुष्टी को उत्पन्न नहीं करती है परंतु इनकी उपस्थिति एवं सक्रियता से कार्मिकों की संतुष्टि और अभिप्रेरणा में सकारात्मक बदलाव आता है। समय एवं उपलब्धता के अनुसार इन कारकों में परिवर्तन और अदला-बदली भी हो सकती है।

यदि मैस्लों की आवश्यकताओं और हर्जबर्ग के द्विघटक सिद्धांत की तुलना करें तो यह स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि मैस्लों की प्राथमिक या मूल आवश्यकताएँ हर्जबर्ग के आरोग्य तत्वों या बाहरी कारकों के समकक्ष होती हैं जबकि मैस्लों की उच्चतर श्रेणी या सामाजिक आवश्यकताएँ हर्जबर्ग के अभिप्रेरक तत्वों के समकक्ष हैं।

उपलब्धि अभिप्रेरणा सिद्धांत (Achievement Motivation Theory) :
इस सिद्धांत का प्रतिपादन **डेविड सी मेक कलीलैंड** ने किया है। कार्मिक की अभिप्रेरणा कार्यस्थल पर विद्यमान तीन आवश्यकताओं पर निर्भर करती है।

1 उपलब्धि की आवश्यकता या उपलब्धि अभिप्रेरणा : इसके अंतर्गत प्रतियोगिताओं में कार्मिक उपलब्धि प्राप्त करना चाहता है। इस अभिप्रेरणा से प्रभावित होने वाले कर्मचारी अपने पद व पदस्थिति से अधिक निष्पादन करने का प्रयास करते हैं और सदैव उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे कार्मिक नवीन चुनौतियों को स्वीकार करने, जिम्मेदारी और उत्तरदायित्व का पूर्णतया निर्वहन करने को तैयार रहते हैं। ऐसे कार्मिकों की

उपस्थिति संगठन को प्रगति और सफलता की तरफ अग्रसर करती हैं। अतः सफलता की उच्च आवश्यकता एवं कार्य निष्पादन स्तर में सकारात्मक संबंध पाया जाता है।

2 शक्ति की आवश्यकता या शक्ति अभिप्रेरणा : अन्य लोगों के व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता शक्ति अभिप्रेरण को व्यक्त करती है। यह उन कर्मचारियों के लिए आवश्यक हो जाती है जिनको यह लगता है कि लोगों से उसे प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं मिल रहा है। अतः व्यक्ति शक्ति की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अभिप्रेरित होता है।

3 संम्बद्धन अभिप्रेरण आवश्यकता : यह कार्मिक की सामाजिक आवश्यकता से उत्पन्न होने वाली अभिप्रेरणा होती है। दूसरे व्यक्तियों के साथ अंतः क्रिया के माध्यम से समूह, मित्र मंडली इत्यादि का संगठन किया जाता है। इसके पीछे व्यक्तिगत व्यवहार, लोगों के प्रति संवेदनशीलता, सामाजीकरण, मानवीय व्यवहार इत्यादि कारक होते हैं।

उपर्युक्त तीनों आवश्यकताएं सामान्यता मैस्लों के सिद्धांत के समकक्ष ही हैं। इसमें भी आवश्यकताओं को ही कार्मिकों की अभिप्रेरणा का मूलाधार माना गया है। उपर्युक्त सभी सिद्धांतों को सामान्यतया कॉन्टेंट सिद्धांत श्रेणी में शामिल किया जा सकता है। जहाँ मानवीय आवश्यकताओं को एक समान स्तर पर रखा गया है। आवश्यकताओं या इनसे संबंधित घटकों को कार्मिक की अभिप्रेरणा और कार्य संतुष्टि को जोड़ने वाली कड़ी माना जाता है।

इनके अलावा दूसरी श्रेणी के सिद्धांत जिनमें मानवीय आवश्यकताओं के बीच अंतर को भी ध्यान में रखा गया है। उनको प्रक्रियात्मक सिद्धांत कहा जाता है। इनमें प्रबंधक अपने कार्मिकों के मनोविज्ञान का अध्ययन कर उसी के अनुरूप निर्णय करता है इनमें प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :-

प्रत्याशा सिद्धांत :

सिद्धांत का प्रतिपादन विक्टर वरूम (Victor Vroom) के द्वारा किया गया है। इसे 'वैलेंसी इंस्ट्रुमेंटल एक्सपेक्टेंसी' थ्योरी भी कहा जाता है। यह सिद्धांत कर्म और उसके प्रतिफल के मध्य के संबंधों को दर्शाता है। कार्मिक को कार्य के लिए प्रेरित करने वाली अभिप्रेरणा के पीछे का प्रमुख कारक प्रयास एवं पुरस्कार के बीच की कड़ी का आभास होता है। इनके बीच के संबंध को अभिव्यक्त करने के लिए सर्वप्रथम हमें यह जानने का प्रयास करना होता है कि कर्म और निष्पादन के बीच क्या संबंध है अर्थात् प्रत्याशा। इसके बाद क्या उच्च निष्पादन करणत्व का प्रतिफल सुनिश्चित रूप से प्राप्त होगा। यदि प्रत्याशा (Expectancy), करणत्व (Instrumentality) एवं संयोजकता (Valency) का मूल्य ज्ञात होने पर अभिप्रेरणा की शक्तियों की गणना की जा सकती है। इस सिद्धांत के तीन मुख्य घटक संयोजन, करणत्व एवं प्रत्याशा है।

संयोजन (Valency) :
किसी कार्य के परिणामस्वरूप कर्ता को प्राप्त होने वाला संभाव्य प्रतिफल या पूर्व कल्पित संतुष्टि संयोजन कहलाता है। प्रत्येक कार्मिक के लिए यह संयोजन भिन्न भिन्न हो सकता है।

करणत्व (Instrumentality) :
वह आधार जिसकी पूर्णता से कर्ता आगामी दिशा में अग्रसर होता है। यह संभाव्यता है जिसके बाद कर्ता कार्य करता है अर्थात यदि कार्मिक पदोन्नति चाहता है तो उसे यह अनुभव होना कि वह उच्च निष्पादन स्तर रखेगा तो उसे पद उन्नति अवश्य प्राप्त होगी। अतः उस निष्पादन पदोन्नति की प्राप्ति का कारण या करणत्व बनता है। यह कर्ता को क्रम की ओर प्रेषित करने वाला घटक होता है। किसी काम में की जाने वाली मेहनत प्रथम स्तर और प्रतिफल उसका दूसरा स्तर होता है।

प्रत्याशा (Valency) :
वह संभाव्यता जो कर्म प्रतिफल की ओर अग्रसर करती है। यह पूर्ण विश्वास है कि किसी विशिष्ट कार्य का विशिष्ट प्रतिफल

होगा। प्रत्याशा प्रतिफल के विश्वास के साथ जुड़ी होती है। व्यक्ति यह विश्वास करता है कि यदि वह अधिक प्रयास करता है तो यथार्थ में अधिक निष्पादन होगा जिसके बाद एक निश्चित प्रतिफल प्राप्त होगा। इस सिद्धांत के अनुसार कार्य परिवेश में कर्मचारी की कार्य करने की इच्छा शक्ति को दो तरीकों से बढ़ाया जा सकता है। प्रथम तो प्रतिफल मूल्यों के बारे में कार्मिकों को बेहतर जानकारी देकर और दूसरा उन्हें यह आश्वासन देना कि उनका कार्य उन्हें वांछित प्रतिफल तक पहुँचा देगा। इन सबके बावजूद भी अभिप्रेरणा का यह उपागम संगठन के कार्मिकों की अभिप्रेरणा को बढ़ाने में बड़े स्तर तक सफल नहीं हो पाया है।

लक्ष्य निर्धारण सिद्धांत (Goal Theory) : इस सिद्धांत का प्रतिपादन एडविन लॉक के द्वारा किया गया है। इस सिद्धांत की मूल मान्यता है कि कार्मिक के व्यवहार के निर्धारण में लक्ष्य और उद्देश्यों की निर्णायक भूमिका होती है। अभिप्रेरणा के पीछे लक्ष्य प्रभावी भूमिका का निर्वहन करते हैं। लोग लक्ष्य को प्राप्त करके अपनी संवेदनाओं और इच्छाओं को संतुष्ट करना चाहते हैं।
लक्ष्य कार्मिकों को दिशा-निर्देश की भावना देते हैं। यदि कार्मिक के सामने निर्धारित लक्ष्य होते हैं तो भी कार्य का बेहतर निष्पादन करते हैं। प्रबंधकों को चाहिए कि वे कार्मिकों के लिए ऐसी व्यवस्था स्थापित करें जिसमें कि

1. संगठन के द्वारा लक्ष्यों के निर्धारण में कर्मचारियों से परामर्श लिया जाए। लक्ष्य निर्धारण प्रक्रिया में सहभागितामूलक दृष्टिकोण लक्ष्य प्राप्ति में प्रभावी घटक सिद्ध होता है।
2. संगठन के लक्ष्य सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित हो ताकि भ्रम की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सके। लक्ष्य प्राप्ति कार्मिकों को व्यैक्तिक संतुष्टि एवं गौरव की अनुभूति कराती है।

3. लक्ष्य चुनौतीपूर्ण परंतु व्यावहारिक होनी चाहिए। जिनकी प्राप्ति के लिए कार्मिक पूर्ण समर्पण की भावना से कड़ी मेहनत से कार्य कर सकें।
4. इसमें फीडबैक चरण को भी शामिल किया जाता है।

इस प्रकार लक्ष्य कार्मिक को कार्य की प्रेरणा प्रदान करता है।

इस प्रकार से अंत में कहा जा सकता है कि निःसन्देह अभिप्रेरणा न केवल किसी संगठन में काम करने वाले कार्मिकों के लिए कार्य करने के उत्प्रेरक का कार्य करती है बल्कि यह प्रत्येक सामान्य आदमी को भी कर्म की ओर नियत करती है। प्रत्येक क्रिया के पीछे अभिप्रेरणा निहित होती है।

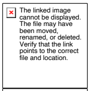

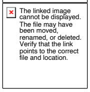

संदर्भ :

F.W, Taylor, Scientific Management, Harper & Brothers Pub., New York, 1947

Henri Fayol, General and Industrial Management, Sir Isaac Pitman & Sons Ltd., London, 1959

Chester Barnard, The functions of the executive, Cambridge, Massachusetts Harvard University Press, USA, 1972

Herbert Simon, Administrative Behaviour, The Free Press, New York, 1976

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C. P. Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, 'Public Administration : An Introduction' PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

Felix A. Nigro, 'Modern Public Administration' Harper and Row, New York, 1970

India: Administrative Reforms Commission, Report on Personnel Administration, 1969

Second Administrative Reforms Commission, Report on Personnel Administration, 2007

Second Administrative Reforms Commission, Report on Personnel Administration, 1969

C. M. Jain, Public Personnel Administration, College Book Depot, Jaipur, 2003

P. Ghosh, Personnel Administration, Sudha Publication, New Delhi, 1975

S.L.Goel, Public Personnel Administration, Deep & Deep Publishers, New Delhi, 2004

K.Aswathappa, Human Resource Management, Tata McGraw Hill, New Delhi, 2008

V.S.P.Rao, Human Resource Management, Excel Books, New Delhi, 2007

E. A. Ramaswamy, Manageing Human Resources, OUP, New Delhi, 2000

Prasad, Prasad, Satyanarayana & Pardhasaradh, Administrative Thinkers, Sterling, New Delhi, 2010

R. N. Singh, Management Thoughts and Thinkers, S.Chand & Co.Ltd., New Delhi, 2010

R.K. Sapru, Theories of Administration, S.Chand & Co.Ltd., New Delhi, 1996

S. R. Maheshwari, Administrative Thinkers, MacMillan, New Delhi, 1998.

S. R. Maheshwari, Administrative Theories, Allied Publishers, New Delhi, 1999

Sum Sun Nisa Ali, Eminent administrative Thinkers, Associate Publishing House, New Delhi, 1990

S. L. Goel, Administrative and Management Thinkers, Deep& Deep Publications, New Delhi,2008

M. R. Minto, Management Thinkers, New Delhi, Allied Pub. Ltd., 1989

8

कार्मिक प्रशासन

कार्मिक प्रशासन

(Personnel Administration)

किसी संगठन के कार्मिकों या कर्मचारियों के द्वारा उस संगठन की कार्यप्रणाली का अथवा शासन की व्यवस्था का संचालन करना ही कार्मिक प्रशासन कहलाता है। सामान्यतः संसाधन दो प्रकार के होते हैं, मानव संसाधन और प्राकृतिक संसाधन। प्राकृतिक साधनों की खोज करना एवं उन्हें उपयोगी बनाना मानवीय संसाधनों के द्वारा ही संभव होता है। कुशल प्रशिक्षित योग्य कार्मिकों का समूह ही मानव प्रबंधन अथवा मानव संसाधन के नाम जाना जाता हैं। जैसा कि सर्वज्ञात है कि मानव संसाधन ही प्राकृतिक साधनों को संसाधन के रूप में परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।
कोई भी साधन संसाधन के रूप में तभी परिवर्तित होता है, जब वह मानव के लिए उपयोगी बने। इसीलिए मानव ही वह साधन है जो

प्राकृतिक साधनों को अपने लिए उपयोगी बनाकर संसाधन के रूप में पहचान दिलाता है।
कार्मिक प्रशासन भी मानवीय साधन को संसाधन के रूप में विकास करने की रणनीति है अथवा कार्मिक प्रशासन मानवीय संसाधन होता है।

कार्मिक प्रशासन का ऐतिहासिक स्वरूप : सार्वजनिक कार्मिक प्रशासन का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि मानवीय सभ्यताओं का इतिहास है। जहाँ तक एक रणनीतिक या प्रबन्धकीय लोक कार्मिक प्रशासन की बात है तो वह सरकार और लोक प्रशासन के नेतृत्व में प्रमुख रणनीतिक पदों के लिए दीर्घकालीन कैरियर, पेशेवर विशेषज्ञों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, पेन्शन इत्यादि विशेषताओं के साथ 2500 वर्षों से अधिक पुराना नहीं है।
लोक या सरकारी कार्मिक प्रशासन लोक प्रशासन का एक ऐतिहासिक घटक है। यह कई सदियों से विद्यमान रहा है। जब बड़े पैमाने पर सार्वजनिक प्रशासन की परियोजनाओं को अंजाम दिया गया था। कृषि के आविष्कार और दासता के उदय की आवश्यकता ने विविध पैमानों पर कार्मिक प्रबन्धन को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। प्राचीन समय में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक निर्माण परियोजनाओं को लागू करने के लिए गुलामों, अर्ध-दासों, किराये के लोगों, स्वयंसेवकों, बन्धुआ मजदूरों, और वेतनभोगी श्रमिकों की आवश्कता होती थी जिनमें से सभी को संगठित, समन्वित और प्रबंधित किया जाना अपरिहार्य होता था। विभिन्न श्रमिकों, कुशल और अकुशल, और पेशेवर कारीगरों या कामगारों जैसे कि बढ़ई, लोहार, लेखाकार, रिकॉर्ड रखने वाले, निरीक्षक, योजनाकार, पत्थर काटने वाले कलाकारों इत्यादि का चयन करना कोई मनमाना कार्य नहीं था अपितु ये ज्यादातर अपने क्षेत्र की विद्या या कला की तर्कसंगतता के साथ-साथ राजनीतिक वफादारी के आधार पर नियुक्त किये जाते थे।
मानव सभ्यताओं के सम्पूर्ण इतिहास में मिस्र में पिरामिडों का

निर्माण, 500 ईसा पूर्व फारसी शासन के दौरान स्वेज नहर का निर्माण तथा 5 वीं शताब्दी ई.पू. पर्शिया में विशाल औपचारिक एवं सांस्कृतिक राजधानी के रूप में विख्यात पर्सिपालिश शहर की संरचना तथा इसी समय में निर्मित चीन की महान दीवार तथा इसी के समानन्तर रोम, फारस और अन्य शहरों में कई विशाल सार्वजनिक परियोजनाओं को व्यावहारिक स्वरूप देने में तथा नियोजित और अनियोजित लक्ष्यों को प्राप्त करने में मानव श्रम और कौशल को व्यवस्थित, चयनित, अनुरक्षित, समन्वित करने का संकेत व प्रमाण मिलता है।

इसी तरह से आरम्भिक सुमेरिनियन सभ्यता का विस्तृत नगर नियोजन, प्रारंभिक ईरानी एलामाइट साम्राज्य के अधीन निर्मित रणनीतिक योजना और भूमिगत नहर प्रणाली, फारसी नौकरशाही और प्रशासनिक प्रणाली का संगठन तथा रोमन सेना का सशस्त्रीकरण इत्यादि यह प्रदर्शित करता है कि किस तरह से बड़े पैमाने पर दक्षता और प्रभावशीलता के साथ इन्हें विकसित कर मानवीय संसाधन के प्रबन्धन में महारत हासिल की गई।

हालिया खोजों से पता चलता है कि “महिला पर्यवेक्षकों“ ने विशाल पर्सेपोलिस शहर की संरचना के लिए 90 साल की अवधि की निर्माण प्रक्रिया के दौरान मुआवजे की व्यवस्था के प्रबंधकों के रूप में कार्य किया। इस प्रकार से सार्वजनिक कार्मिक प्रशासन का इतिहास हमें प्रारंभिक मानव सभ्यताओं के इतिहास के समीप ले जाता है। नागरिक और सैन्य सार्वजनिक कर्मियों के के सहयोग से पिछले दो सहस्राब्दियों के दौरान दुनिया भर में हाईवे, बिल्डिंग, ब्रिज, किले, महल इत्यादि के रूप में बनाए गए।

आधुनिक युग में कार्मिक प्रशासन की धारणा का विकास :

यूके और यू.एस.ए. जैसे देशों में कार्मिक प्रशासन का विकास एक स्वाभाविक प्रकृति का परिणाम है। भारत एवं भारत जैसे देशों में प्रशासन का विकास सरकार द्वारा किए गए प्रयासों का परिणाम है। पश्चिम में कार्मिक प्रबंधन के क्षेत्र में अग्रणी कार्य करने वाला

चिली कल्याण की अवधारणा के साथ प्रेरित था लेकिन भारत में अव्यवस्थित भर्ती प्रथाओं, बढ़ती श्रम अशांति, उत्पादन की हानि आदि ने कार्मिक प्रबंधन की अवधारणा में रुचि उत्पन्न की। यूके में कार्मिक प्रशासन की उत्पत्ति कल्याण की अवधारणा में हुई जबकि कार्मिक प्रबंधन शब्द की उत्पत्ति वास्तव में यू.एस.ए. के प्रशासन से जुडी हुई अवधारणा मानी जाती है।
यह एफ.डब्ल्यू. टेलर की वैज्ञानिक प्रबंधन की अवधारणा थी जिसने कार्मिक प्रशासन के विकास की नींव रखी। टेलर ने वैज्ञानिक चयन और व्यक्तिगत कार्यकर्ता के व्यवस्थित प्रशिक्षण और विकास पर जोर दिया। वैज्ञानिक प्रबंधन आंदोलनों में टेलर के एक करीबी सहयोगी एच.एल. गैंट ने कार्यकर्ताओं या कार्मिकों के इच्छुक सहयोग को प्राप्त करने की आवश्यकता का पूर्वाभास भी किया। उन्होंने कहा कि कार्यकर्ता को यह बताना पर्याप्त नहीं है कि किसी कार्य को कैसे करना है बल्कि कार्य करने की क्षमता और इच्छा को बढ़ावा देना भी आवश्यक है।
मैरी पार्कर फोलेट ने प्रबंधन के प्रशिक्षण और विकास पहलुओं पर जोर दिया। कार्मिक प्रशासन की धारणा को सबसे महत्वपूर्ण सफलता एल्टन मेयो के हॉथोर्न प्रयोगों और उसके मानव संबंध आंदोलन से मिली। इन प्रयोगों ने कर्मचारियों और संगठनात्मक व्यवहार को समझने और एक प्रेरक दृष्टिकोण के माध्यम से उन्हें प्रभावित करने की दृष्टि से समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान आदि विषयों का उपयोग करने का मार्ग प्रशस्त किया। यह सब कार्मिक प्रबंधन के सिद्धांत और व्यवहार के क्रमिक विकास में मिल का पत्थर साबित हुआ। इसी के साथ द्वितीय महायुद्ध एवं इसके बाद के उत्पन्न वातावरण ने कार्मिक पशासन के उदय में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

कार्मिक प्रशासन का अभिप्राय :
सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि संगठन भले ही सरकारी हो अथवा निजी उस संगठन को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए

कर्मचारियों अथवा कार्मिकों की आवश्यकता होती है। इसे ही कार्मिक प्रशासन कहते हैं। किसी भी संगठन के लिए कार्मिक मूल इकाई के रूप में होते हैं। हम बिना कार्मिकों के किसी भी प्रकार के संगठन की कल्पना नहीं कर सकते है क्योंकि कर्मचारियों के बिना वह एक अमूर्त संस्था के समान होगा। कार्मिक ही किसी संगठन का आधार अथवा रीढ की हड्डी के समान होते हैं। मानव संबंध उपागम के जनक एल्टन मेयों संगठन में मानव संबंधों को अथवा कार्मिकों को सबसे महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में अभिव्यक्त करते है।

हरमन फाईनर के शब्दों में ''लोक प्रशासन में सेवावर्ग शासन को ही सर्वोच्च माना जाता है। यह कुशल, प्रशिक्षित, योग्य एवं वेतनभोगी कर्मचारी होते हैं।''

रेंसिस लिकर्ट के शब्दों में ''संगठन का संचालन उसमें निवास करने वाले मानवीय उपक्रमों से ही संभव है। उसके बिना उत्पादन प्रक्रिया संचालित नहीं हो सकती है।''

अतः सारांश के रूप में यदि हम कहे तो कार्मिक प्रशासन लोक प्रशासन की वह शाखा है जो कार्मिकों के प्रबंधन में संगठन की सहायता करती है। अतः इसमें कार्मिकों का प्रबंधन इस विधि या तरीके से किया जाता है कि संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ पर्सनल मैनेजमेंट के अनुसार कार्मिक प्रबंधन, प्रबंधन का वह भाग है जिसमें संगठन के भीतर मानवीय संबंधों को बनाए रखा जाता है प्रशिक्षित किया जाता है ताकि संगठन का संचालन हो सके।

सरकारी कार्मिक प्रशासन में सामान्यतया दो शाखाएं होती हैं, एक संस्थापन शाखा जो की भर्ती, प्रशिक्षण, रिकार्ड संरक्षण, पदोन्नति इत्यादि के कार्यों का निर्वहन करती है तथा दूसरी शाखा, लेखा शाखा होती है जो कि भुगतान, वेतन वृद्धि, वेतन संरक्षण सम्बन्धी कार्यों का निष्पादन करती है।

कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य :-

1. कार्मिक प्रशासन का पहला उद्देश्य होता है, संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करना।
2. संगठन में अच्छे मानवीय संबंधों का विकास करना।
3. मानवीय संसाधन का कुशल प्रबंधन और विकास करना।
4. कार्मिकों के हितों का पूर्ण ध्यान रखना।
5. कार्मिक नीति का निर्माण सुधार और उसका क्रियान्वयन करना।
6. कार्मिकों के संरक्षण मनोबल और प्रोत्साहन को बढ़ाना।
7. अनुसंधान प्रशिक्षण और तकनीकों का उपयोग करना।
8. जनहित के अनुरूप सामाजिक जवाबदयेता को निर्धारित करना।
9. कार्मिकों की समस्याओं का समाधान करना।
10. माइकल जे. ज्यूशियस के अनुसार कार्मिक प्रबंधन के मुख्य लक्ष्यों में संगठन के लक्ष्यों को आर्थिक रूप से और प्रभावी ढंग से प्राप्त करना; व्यक्तिगत लक्ष्यों की सेवा करना और समुदाय के सामान्य कल्याण को संरक्षित करना और आगे बढ़ाना इत्यादि है।

कार्मिक प्रशासन की प्रकृति :
किसी भी प्रशासनिक संगठन में कार्मिक का कार्य अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होता है। संगठन इसे नजरअंदाज नहीं कर सकता। इसलिए यह एक बुनियादी जिम्मेदारी बन जाती है, चाहे वह

सरकार में हो या अर्ध या गैर-सरकारी संगठनों में। सामाजिक-आर्थिक वातावरण में परिवर्तन का प्रभाव प्रबंधन पर पड़ता है। सामाजिक-आर्थिक वातावरण में होने वाले परिवर्तनों के कारण प्रबंधन का वातावरण बदलता रहता है। राजनीतिक वातावरण एक संगठन में कार्य वातावरण को भी प्रभावित करता है। ऐसे परिवर्तन कार्मिक प्रशासन में परिलक्षित होते हैं। इस प्रकार कार्मिक प्रबंधन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य में परिवर्तन से प्रभावित होता है।

इसने वास्तव में कार्यबल के अनुपात को बदल दिया है। 'विकास' और 'कल्याण' कार्यक्रमों के तहत गतिविधियों के प्रसार के साथ कर्मचारियों से अब और अधिक सक्षम और कुशल होने की उम्मीद है। बड़े पैमाने पर लोग प्रशासन से कुशल, प्रभावी और सहानुभूतिपूर्ण होने की अपेक्षा करते हैं। प्रशासनिक गतिविधियों में लोगों की भागीदारी बढ़ रही है।

किसी संगठन के प्राथमिक उद्देश्य से सीधे संबंधित गतिविधियों को 'लाइन' इकाई के कार्य कहा जाता है। 'स्टाफ' कार्य वे हैं जो लाइन इकाई के कार्यो को निष्पादित करने में सहायता प्रदान करते हैं। एक संगठन में कार्मिक कार्यों में लाइन और स्टाफ दोनों की गतिविधियाँ शामिल हैं।

कार्मिक प्रशासन हमेशा औपचारिक संगठन में कार्य नहीं करता है। कोई भी संगठन केवल औपचारिक नियमों और विनियमों के आधार पर नहीं चल सकता है, इसमें ऐसे मनुष्य शामिल होते हैं जो संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यों और गतिविधियों को पूरा करने के लिए एक प्राधिकरण और जिम्मेदारी नेटवर्क में संचरित होते हैं। यह औपचारिक संरचना पूरक, समर्थित या कभी-कभी बाधित होती है और यह अनौपचारिक स्वरूप औपचारिक संगठन के भीतर विकसित होता है। यह एक प्राकृतिक घटना है और औपचारिक समूहों के कर्मियों के बीच सामाजिक और सांस्कृतिक संबंधों पर आधारित है। राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारक भी अनौपचारिक संगठन के विकास में

योगदान देते हैं।
कार्मिक प्रशासन के कार्य दिन-ब-दिन जटिल होते जा रहे हैं। कार्मिक प्रशासन की समस्याएं एक संगठन से दूसरे संगठन में भिन्न होती हैं। बड़े संगठनों के पास अधिक कार्य होते हैं, वे अधिक लोगों को नियुक्त करते हैं और 'विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। ऐसे संगठनों में कार्मिक प्रशासन का कार्य अधिक जटिल हो जाता है। जैसा कि कार्मिक प्रशासन हर समय मनुष्यों के साथ व्यवहार करता है, कर्मचारियों की प्रेरणा और मनोबल के महत्वपूर्ण कार्यों को इसके द्वारा पूरा करना होता है। इसे लोगों की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ अपने कर्मचारियों की बढ़ती अपेक्षाओं को भी पूरा करना होता है।

कार्मिक प्रशासन का कार्य क्षेत्र :-

कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत संगठन के कौनसे कार्या को शामिल किया जाए और कौनसे कार्या को सम्मिलित नहीं किया जाए। यह एकमत वाला विषय नहीं है। कार्मिक प्रशासन के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत सामान्यतया उन सभी कार्यो को शामिल किया जा सकता है जो कि कार्मिक के सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक हित से जुडे होते है।

कार्मिक प्रशासन का प्राथमिक उद्देश्य संगठनात्मक लक्ष्यों की खोज में मानव संसाधनों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित करना है।

कार्मिक प्रशासन को कर्मचारियों के बीच संगठन के प्रति प्रतिबद्धता, भागीदारी और प्रेम की भावनाओं को उत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए। यह कर्मचारियों के बीच संबंधों को बनाए रखने के लिए है और व्यक्तिगत कारणों से उत्पन्न होने वाली घर्षण स्थितियों को दूर करने के लिए है।
कार्मिक प्रशासन को किसी संगठन में भतीजावाद और भाई-भतीजावाद जैसी प्रतिकूल प्रथाओं पर भी अंकुश लगाना होता है। प्रशासन को प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं जैसे भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा की शर्तों, मनोबल, नैतिकता, कर्मचारी कल्याण,

नियोक्ता-कर्मचारी संबंधों और प्रक्रियाओं पर ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। इसे अपने आप को प्रभावी और कुशल बनाने के लिए तत्काल, मध्यवर्ती और बाहरी वातावरण के साथ संबंध विकसित करना होगा।

जैसे-जैसे संगठन के कार्य बढ़ते हैं, वैसे-वैसे कार्मिक प्रशासन की जिम्मेदारियाँ भी बढ़ती जाती हैं। एक बार के निर्णय से सभी समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। जितनी बड़ी प्रणाली उतनी ही अधिक जटिलताएं होती हैं।

विभिन्न पदों के लिए और अलग-अलग संख्या में आवश्यक जनशक्ति की नियमित आपूर्ति की योजना बनाना और उपलब्ध कराना सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्य है। मानव संसाधन की प्रत्येक सूक्ष्म इकाई की भर्ती और उपयोग की प्रक्रिया प्रभावी कार्मिक प्रशासन की मांग करती है, इसी तरह, वांछनीय कार्य संबंध बनाने और बनाए रखने के लिए भी कर्मियों की ओर से निरंतर प्रयासों की एक श्रृंखला की आवश्यकता होती है। कार्मिक प्रशासन के लिए जिम्मेदार लोगों को इसके लिए लगातार काम करना पड़ता है।

वे मजबूत प्रेरक और संतोषजनक के रूप में कार्य करते हैं। इसके अलावा, लाखों कर्मचारियों की वेतन संरचना एक हितकर कार्य है क्योंकि प्रत्येक श्रेणी को संगठन के उद्देश्यों की दिशा में किए जाने वाले योगदान के लिए पर्याप्त और समान रूप से मुआवजा दिया जाना है। यह कार्मिक प्रशासन का भी कार्य है। कर्तव्य के उचित प्रदर्शन को विनियमित करने के लिए कार्यबल को भी कुछ अनुशासन के अधीन होना पड़ता है। आचरण नियमों का निर्माण, अनुशासनात्मक कार्रवाई की प्रक्रिया निर्धारित करना, उन नियमों को लागू करना और उपयुक्त प्रक्रियाओं को अपनाना भी कार्मिक प्रशासन का एक हिस्सा है।

कर्मचारी-कर्मचारी संबंध, संयुक्त सलाहकार तंत्र का प्रावधान, न्यायनिर्णयन के लिए लोक सेवा न्यायाधिकरणों की स्थापना, कल्याणकारी उपायों को अपनाना और कर्मचारियों को

सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान आदि कार्मिक प्रशासन की अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ हैं। पिछले कुछ दशकों में सरकारी कर्मचारियों के बीच ट्रेड यूनियनवाद बढ़ा है। नियोक्ता और कर्मचारी संघ दोनों सामने आए हैं। कर्मियों की जरूरतों और समस्याओं का पूर्वाभास करने के लिए अब उनकी संतुष्टि और सुधार के लिए योजना बनाने के लिए विशेषज्ञ कौशल की सख्त आवश्यकता है। यह सब व्यवस्थित कार्मिक प्रशासन की आवश्यकता है। अतः अन्ततः कार्मिक प्रशासन के कार्य क्षेत्र में निम्न विषयों को अवश्य ही शामिल किया जाता है जैसे कि कार्मिक प्रशासन की नीति का निर्माण करना, कार्मिकों के साथ मानवीय संबंध स्थापित करना, कार्मिक हितों का ध्यान रखना, कार्मिक पद वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन, भत्ते, लाभ, निष्पादन मूल्यांकन, ईसीआर का निर्धारण तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही, आचार संहिता इत्यादि का निर्माण करना। इस प्रकार कार्मिक प्रशासन का दायरा व्यापक और विविध है, इसके अलावा यह पर्यावरण में परिवर्तन के साथ लगातार विस्तार कर रहा है।

कार्मिक प्रशासन का वर्गीकरण :- वर्गीकरण से हमारा अभिप्राय है किसी एक समान और अनिवार्य लक्षण के आधार पर व्यक्तियों अथवा समूहों का समूहीकरण करना। कार्मिक प्रशासन में कर्तव्यों और दायित्वों की समानता के आधार पर अनेक वर्गों का निर्माण किया जाता है।

कार्मिक वर्गीकरण की आवश्यकता या महत्व :-

भर्ती सरलीकरण के लिए : कार्मिक वर्गीकरण का सबसे बडा महत्व यह होता है कि इसके माध्यम से विभन्न स्तरों पर भिन्न पदों की रचना की जाती है जिसकी सहायता से उच्चस्थ से लेकर निम्न तक कार्मिकों की अलग अलग भर्ती प्रक्रिया का आयोजन करना आसान हो जाता है।

वेतन एवं भत्तों के निर्धारण के लिए : विभिन्न आधारों पर कार्मिकों का वर्गीकरण करने से ही यह संभव हो पाता है कि उनकें लिए अलग स्वरूव में भिन्न वेतन श्रेणी तथा भत्तों के भिन्न स्वरूप निर्धारित किये जाते है।

प्रशिक्षण और पदोन्नति के लिए : संगठनों में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा सबकों उनके कार्य की प्रकृति के अनुरूप ही प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। उनके कार्य के प्रदर्शन या अनुभव के आधार पर उनकां पदोन्नति भी देनी होती है। इन दोनों ही कार्यो के लिए सभी पदों का विभाजन होना अतिआवश्यक होता है।

कार्मिक नियोजन और बजट निर्माण के लिए : संगठन में मानवीय शक्ति के उचित नियोजन एवं वितीय प्रशासन के सही संचालन के लिए तथा अधिकतम उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि कार्मिकों का अनेक आधारों पर वर्गीकरण किया जाना चाहिए।

पर्यवेक्षण नियंत्रण और निर्देशन के लिए : संगठन में कार्यप्रणाली के अनेक स्तर होते है। इन सभी स्तरों पर निर्णयन एवं सता के विकेन्द्रीकरण के अनेक आधार होते है तथापि प्रत्येक स्तर पर उतरदायित्व एवं कर्तव्य के बीच सही समनव्य हो रहा है या नहीं, सभी कार्मिक संगठन में अपने उतरदायित्वों का निर्वहन कर रहे है या नहीं। इन सभी का पता लगाने के लिए पर्यवेक्षण, नियंत्रण एवं निर्देशन की आवश्यकता होती है और इसके लिए पदों का वर्गीकरण अति आवश्यक होता है।

कार्मिक प्रशासन के वर्गीकरण के विभिन्न आधार : कार्मिक प्रशासन का वर्गीकरण दूनियाभर के संगठनों में विविध आधारों पर होता है। यह उस राज्य या उसके अन्तर्गत विद्यमान संगठनों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं पर्यावरणीय घटकों पर निर्भर करता है कि वे किस तरह से कार्मिक प्रशासन का

वर्गीकरण करते है। आधुनिक राज्य रूपी संगठनों में भी कार्मिकों के प्रबंधन के लिए सरकार में कर्मियों का एक उचित और व्यवस्थित वर्गीकरण बहुत आवश्यक है। जैसा कि हरमन फाइनर ने कहा भी है कि, "उचित वर्गीकरण पर दक्षता या भर्ती, एक तर्कसंगत प्रचार प्रणाली बनाने की संभावना और विभिन्न विभागों में काम करने वाले लोगों के समान व्यवहार पर निर्भर करता है।" दुनिया में वर्गीकरण की दो अलग-अलग प्रणालियाँ मौजूद हैं। वे हैं - पदस्थिति वर्गीकरण और रैंक वर्गीकरण।

पदस्थिति और रैंक के आधार पर वर्गीकरण : यदि वर्गीकरण का आधार कार्मिक का कर्तव्य उत्तरदायित्व जिम्मेदारी को माना जाता है तो इसे कर्तव्य आधारित अथवा पदस्थिति कार्मिक वर्गीकरण के नाम से जाना जाता है। जैसे अमेरिका, जापान, कनाडा, फिलिपिंस, ताइवान जैसे देशों में यह वर्गीकरण किया जाता है।
रैंक, दर्जा या स्थिति का वर्गीकरण के अंतर्गत कर्मचारी की व्यक्तिगत स्थिति या उसकी पदस्थिति या दर्जा या पे बैंड और ग्रेड पे के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है जैसे कि ब्रिटेन, भारत, फ्रांस, जर्मनी, पाकिस्तान इत्यादि में कार्मिक प्रशासन का वर्गीकरण।

पदस्थिति वर्गीकरण अथवा पोजीशन वर्गीकरण : वर्गीकरण की इस प्रणाली को कर्तव्य वर्गीकरण के रूप में भी जाना जाता है। इसमें कर्तव्यों, जिम्मेदारियों और योग्यता के आधार पर पदों का समूहीकरण शामिल है। दूसरे शब्दों में, किसी पद को पद धारण करने वाले व्यक्ति के बजाय कार्य की प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है। वर्गीकरण की इस प्रणाली में स्थिति या पद सबसे निचली/बुनियादी इकाई है। एक पद एक कर्मचारी को सौंपे गए कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के एक समूह को दर्शाता है। एक कर्मचारी की स्थिति और वेतन उसके कर्तव्यों और जिम्मेदारियों पर निर्भर करता है। कई समान पदों को एक साथ रखने से एक वर्ग बनता है।

ग्लेन स्टाल के शब्दों में, एक वर्ग विभिन्न रोजगार प्रक्रियाओं में सामान्य व्यवहार को सही ठहराने के लिए, अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के संबंध में पर्याप्त रूप से समान पदों का एक समूह है। इस प्रकार, एक वर्ग पदों/पदों का एक समूह है जिसमें समान स्तर की कठिनाई के साथ समान कर्तव्य और जिम्मेदारियां होती हैं। एक कक्षा में शामिल सभी पदों के लिए समान योग्यताएं, आवश्यकताएं और वेतनमान हैं। इसलिए ग्लेन स्टाल का कहना है कि यदि पदस्थिति वर्गीकरण का कच्चा माल है तो वर्ग परिचालन इकाई है। प्रत्येक वर्ग के पदों के लिए एक वर्ग विनिर्देश तैयार किया जाता है। आम तौर पर, यह इन कारकों को निर्दिष्ट करता है, अर्थात्, वर्ग का शीर्षक; कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का विवरण; किए जाने वाले कार्य के उदाहरण, या विशिष्ट कार्य; न्यूनतम योग्यता का विवरण; वेतनमान; और पदोन्नति की रेखा इत्यादि। ग्लेन स्टाल ने पदों के वर्गीकरण के विकास में चार चरणों का उल्लेख किया है।

पदस्थिति वर्गीकरण के लाभ :

1. विषय विशेषज्ञता की प्राप्ति : यह उच्च स्तर की विशेषज्ञता प्रदान करता है। इसलिए यह इंजीनियरिंग, भूवैज्ञानिक जैसी विशेषज्ञ सेवाओं के लिए उपयुक्त है।
2. समान कार्य के लिए समान वेतन : यह समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत का समर्थन करता है। इस प्रणाली में कर्मचारियों को भुगतान उनके काम की कठिनाई और जिम्मेदारी के अनुसार किया जाता है।
3. प्रत्येक कार्य की विषय वस्तु का वर्णन : यह किसी भी कार्य की सामग्री को विस्तार से परिभाषित करता है। इसलिए एक कर्मचारी का ध्येय, कार्य

के प्रदर्शन और उपलब्धियों का तर्कसंगत मूल्यांकन हो सकता है।

4. वैज्ञानिक स्वरूप की अनुपालना : यह वैज्ञानिक मानकों के निर्माण के लिए प्रवाहकीय है जिस पर कर्मियों के विभिन्न पहलूओं भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, जनशक्ति नियोजन, करियर विकास जैसे मानको की समग्रता हो सकती है।
5. सरकारी एवं निजी क्षेत्र में अदला-बदली के लिए उपयुक्त : सरकारी से निजी और निजी से सरकारी क्षेत्र में अदला-बदली अथवा पार्श्विक प्रवेश सरल होता है। यह निजी क्षेत्र से सरकारी सेवा में पार्श्व प्रवेश की सुविधा प्रदान करता है।
6. राजनीतिक एवं प्रशासनिक भेदभाव की समाप्ति : यह राजनीतिक कर्मियों के विचारों पर सेवा मामलों में भेदभाव को समाप्त करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सभी एक वर्ग के कर्मचारियों के साथ समान व्यवहार किया जाता है।
7. वरिष्ठता के स्थान पर कार्य निष्पादन एवं योग्यता पर बल : इस कार्य आधारित वर्गीकरण के अर्न्तगत वरिष्ठता काई मायने नहीं रखती है अपितु कार्मिक के द्वारा सम्पादित कार्य एवं उसकी योग्यता पर बल दिया जाता है।
8. मजदूर और अधिकारी के उत्तरदायित्व की स्पष्ट सीमाएं : इस वर्गीकरण के अन्तर्गत उच्चस्थ एवं अधीनस्थ के कार्यो एवं उतरदायित्व का स्पष्ट विभाजन होता है। इसलिए सब अपने-अपने कार्य के लिए उतरदायी होते और इसे एक दूसरे के पर टाल नहीं सकते है।

9. सभी कार्मिकों के साथ एक जैसा व्यवहार : सभी कार्मिक एक ही प्रवर्ग के होते है। अतः उनके साथ भेदभाव नहीं होता है।
10. पद बदलने से कार्य नहीं बदलता : इस वर्गीकरण की सबसे अच्छी बात यह भी है कि कार्मिक का पद बदलने से उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यो की प्रकृति नहीं बदलती है।

पद स्थिति वर्गीकरण की हानियां अथवा इसके नुकसान :

1. यह कार्मिक प्रशासन में कठोरता का तत्व लाता है। इस प्रकार यह क्षैतिजीय और ऊर्ध्वाधर गतिशीलता में बाधा उत्पन्न करता है।
2. यह कई वर्गों वाले वर्गीकरण की एक विस्तृत प्रणाली है। इस कारण से इसकी तैयारी में अधिक पैसे व समय लगता है।
3. इस प्रणाली के तहत वर्गीकरण योजना कम समय में पुरानी हो जाती है। अतः इसे लगातार अपडेट रखने के लिए संशोधित करना पडता है।
4. यह कर्मचारियों को उनकी स्थिति और मुआवजे के बारे में योग्यता व कार्यक्षमता की निरंतरता के कारण से असुरक्षित महसूस कराता है।
5. यह तेजी से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहे विकासशील समाजों के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि भारत में जिला कलेक्टर जैसे कई अधिकारियों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को परिभाषित नहीं किया जा सकता है।
6. इसे प्रशासित करना कठिन है क्योंकि इसके लिए विभिन्न प्रकार के परिष्कृत तकनीकी कौशल की आवश्यकता होती है।

पद क्रम, दर्जा अथवा रैंक आधारित वर्गीकरण : रैंक वर्गीकरण प्रणाली का आधार पदधारी की रैंक और व्यक्तिगत स्थिति है। कर्मचारियों को उनके रैंक के अनुसार एक श्रेणीबद्ध क्रम में वर्गीकृत किया जाता है। इस वर्गीकरण प्रणाली के अन्तर्गत कर्मचारियों को वर्गीकृत किया जाता है न कि नौकरी को। प्रत्येक कर्मचारी को एक विशेष वर्ग में रखा गया है। किसी कर्मचारी का वेतन और स्थिति समूह या सेवा में उसकी रैंकिंग पर निर्भर करती है, न कि पोस्टिंग पर। दूसरे शब्दों में एक कर्मचारी की स्थिति और वेतन का निर्धारण उस सेवा के संदर्भ में किया जाता है जो उसे भर्ती के बाद सौंपी जाती है।

रैंक आधारित वर्गीकरण के लाभ या गुण :

1. यह कार्मिक प्रशासन में लचीलेपन का एक तत्व लाता है। इस प्रकार से अंतरविभागीय स्थानान्तरण को आसान बनाया जा सकता हैं।
2. यह सिविल सेवाओं के सामान्यवादी संवर्गों के लिए अधिक उपयुक्त है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह एक कर्मचारी के सामान्यवादी गुणों पर अधिक जोर देता है न कि विशेषज्ञ गुणों पर।
3. यह वर्गीकरण की सामान्य या कम विस्तृत योजना है जिसमें कम संख्या में वर्ग होते हैं। इसलिए इसमें कम समय और पैसा खर्च करता है।
4. यह सिविल सेवा के प्रति निष्ठा को बढ़ावा देता है, न कि किसी पद/पद के प्रति।
5. इस प्रणाली के तहत वर्गीकरण योजना का उपयोग लंबी अवधि के लिए किया जा सकता है। इसमें बार-बार संशोधन की आवश्यकता नहीं पडती है।
6. यह कर्मचारियों को उनकी स्थिति और वेतन के बारे में अधिक सुरक्षित महसूस कराता है, क्योंकि

पोस्टिंग और पद/पद के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों में परिवर्तन से प्रभावित नहीं हैं।
7. स्थिति वर्गीकरण प्रणाली के विपरीत, इसे समझना और संचालित करना आसान है।
8. यह सिविल सेवकों के कैरियर के अवसरों पर जोर देता है और इसलिए, सेवा में गतिशीलता को बढ़ावा देता है।

रैंक वर्गीकरण प्रणाली के दोष :

1. यह सिविल सेवकों में अधिक विशेषज्ञता को बढ़ावा नहीं देता है। इसलिए यह विशेषज्ञ सेवाओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
2. यह समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत का उल्लंघन करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस प्रणाली में कर्मचारियों को भुगतान किया जाता है, उनकी योग्यता व कार्य को नहीं।
3. यह नौकरी की कठिनाई और जिम्मेदारी की परवाह किए बिना कार्य करने की दुर्भावना को बढाता है।
4. इसमे वर्ग भेद और सामंती प्रवृत्तियों की बू आती है क्योंकि यह व्यक्ति के इर्द-गिर्द घूमती है, न कि स्थिति के।
5. यह कार्मिक प्रशासन के लिए वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ मानकों को तैयार करने के लिए अनुकूल नहीं है।
6. यह कार्मिक प्रबंधन के पूरे क्षेत्र को व्यक्तिपरक बनाता है।
7. नौकरी की आवश्यकताओं और पदधारी की योग्यता के बीच कोई मेल नहीं है।

इस प्रकार से यदि निष्कर्ष के रूप में कहे तो वर्तमान वर्गीकरण प्रणालियों की मुख्य रूप से इस आधार पर आलोचना की जाती है कि वे वर्ग चेतना को बढ़ावा देती हैं जो कि कुशल, सुचारू और सामंजस्यपूर्ण कामकाज के लिए अनुकूल नहीं है। सिविल सेवकों के बीच यह भावना विकसित करने के लिए महत्व दिया जाता है कि वे सभी एक सामान्य सार्वजनिक सेवा से संबंधित हैं। विभिन्न ग्रेडों के स्तरों में प्रस्तावित पुनर्गठन के साथ, सेवाओं के वर्गीकरण की मौजूदा प्रणालियों को बेहतर ढंग से युक्तिसंगत बनाया जा सकता है।

कार्मिक प्रशासन की भर्ती : भर्ती लोक कार्मिक प्रशासन का केन्द्रीय आधार होती है क्योंकि सरकारी मशीनरी की दक्षता और इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता इसकी भर्ती प्रणाली की सुदृढ़ता पर निर्भर करती है। ग्लेन स्टाल के शब्दों में, "भर्ती संपूर्ण सार्वजनिक कार्मिक संरचना की आधारशिला है। जब तक भर्ती नीति पर अच्छी तरह से विचार नहीं किया जाता है, तब तक प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों के निर्माण की उम्मीद कम ही हो सकती है।"

भर्ती का अभिप्राय : भर्ती का सामान्य अर्थ है सिविल सेवा में रिक्त पदों को भरना। इसके नकारात्मक और सकारात्मक अर्थ हैं। नकारात्मक रूप से, इसका उद्देश्य अयोग्य और सेवा में पदों के लिए अनुपयुक्त लोगों को समाप्त करना है। यह राजनीतिक प्रभाव को समाप्त करता है। सकारात्मक रूप से इसका उद्देश्य रिक्त पदों को सर्वोत्तम योग्य और सबसे सक्षम व्यक्तियों से भरने से होता है। यदि समग्र रूप मे देखे तो यह प्रणाली एकाग्रता के माध्यम से सर्वोत्तम योग्य, सबसे प्रतिभाशाली और अत्यधिक सक्षम कर्मियों को आकर्षित करता है।

योग्यता पर आधारित भर्ती प्रणाली का उदय : कार्मिकों के भर्ती की योग्यता प्रणाली के उदय से पहले तीन अलग-अलग प्रणालियाँ प्रचलित थीं अर्थात् अमेरिका की

अयोग्यता आधारित प्रणाली, ब्रिटेन की संरक्षण प्रणाली एवं फ्रांस में कार्यालयों की बिक्री की प्रणाली। योग्यता प्रणाली प्रदर्शित फिटनेस के आधार पर सिविल सेवकों के चयन, प्रतिधारण और पदोन्नति के लिए है, इस बात पर जोर देते हुए कि सिविल सेवकों की शर्तें उनकी योग्यता, यानी शैक्षिक, तकनीकी, व्यक्तिगत और शारीरिक फिटनेस द्वारा नियंत्रित होती हैं, जिनका परीक्षण किया जाता है और अच्छी तरह से परिभाषित मानकों के आधार पर निष्पक्ष रूप से निर्णय लिया जाता है।

भर्ती प्रक्रिया के मुख्य चरण : भर्ती प्रक्रिया में नीचे दिए गए क्रम में चरण होते हैंः

1. नौकरी की मांग यानी विभिन्न मंत्रालयों, विभागों और अन्य प्रशासनिक एजेंसियों के बारे में पूछना उनके कर्मियों की आवश्यकता के बारे में जानना।
2. योग्यता का निर्धारण (शैक्षिक, तकनीकी और व्यक्तिगत और भर्ती की अन्य शर्तें) नीति।
3. आवेदन प्रपत्रों का पदनाम।
4. विभिन्न प्रकार के मीडिया के माध्यम से रिक्त पदों और परीक्षाओं का विज्ञापन/घोषणा, आवेदनों की जांच।
5. आवेदकों की योग्यता और योग्यता निर्धारित करने के लिए परीक्षा आयोजित करना,
6. प्रमाणीकरण, यानी भर्ती एजेंसी द्वारा योग्य उम्मीदवारों की सूची विचार के लिए प्रस्तुत करना
7. नियुक्ति प्राधिकारी के चयन, अर्थात सरकार द्वारा योग्य उम्मीदवारों में से चयन करने की क्रिया।
8. नियुक्ति अर्थात संबंधित उम्मीदवार को सरकार द्वारा नियुक्ति का औपचारिक पत्र जारी करना। परिवीक्षा अर्थात चयनित और नियुक्त उम्मीदवारों का अस्थायी आधार पर सेवा में प्रवेश। अगर

परिवीक्षा अवधि के दौरान उम्मीदवार का प्रदर्शन संतोषजनक है तो उसे सेवा में पुष्टि दी जाती है या उसका स्थायीकरण करना।

9. प्लेसमेंट यानी भर्ती उम्मीदवार की सही नौकरी में पोस्टिंग।
10. ओरिएंटेशन, यानी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के माध्यम से उम्मीदवार को संगठन, काम के माहौल और उसकी नौकरी के तरीकों के साथ परिचित कराना।

कार्मिकों की भर्ती की पद्धति या तरीके : सामान्यतया कार्मिकों की भर्ती के दो तरीके होते है एक प्रत्यक्ष या सीधी भर्ती और दूसरी अप्रत्यक्ष भर्ती।

सीधी भर्ती पद्धति के गुण :

1. यह सभी योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा में प्रवेश के लिए समान अवसर प्रदान करता है। इसलिए यह लोकतांत्रिक मानदंडों के अनुरूप है।
2. यह भर्ती के क्षेत्र को विस्तृत करता है, क्योंकि आपूर्ति का स्रोत बहुत व्यापक है।
3. यह विश्वविद्यालयों से सार्वजनिक सेवा के लिए सक्षम और योग्य लोगों को आकर्षित करता है।
4. यह तरीका सरकार में प्रगतिशील दृष्टिकोण, नवीन विजन और नए विचारों के साथ युवा शक्ति को लेकर आता है।
5. यह तकनीकी और व्यावसायिक क्षेत्रों में भर्ती के लिए उपयुक्त है, क्योंकि उन्हें नवीनतम ज्ञान की आवश्यकता होती है।
6. यह पहले से कार्यरत व्यक्तियों को उच्च पदों के लिए युवाओं के साथ प्रतिस्पर्धा करने की दृष्टि से

स्वयं को ज्ञान में अद्यतन रखने के लिए प्रेरित करता है।

सीधी भर्ती पद्धति के दोष :

1. इसके अन्तर्गत बिना प्रशासनिक अनुभव वाले व्यक्तियों का चयन और नियुक्ति होती है।
2. इसके लिए एक लंबे और गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जो महंगा होता है।
3. यह कर्मचारियों की पहल को रोकता है क्योंकि उच्च पदों को नए लोगों के लिए खोल दिया जाता है।
4. यह नये युवा और अनुभवहीन व्यक्तियों को निमंत्रण प्रदान करके वरिष्ठ और अनुभवी कर्मचारियों के बीच ईर्ष्या और द्वेषता की भावना को जन्म देता है क्योंकि वे निम्न स्थान पर रह जाते हैं।
5. यह उन कर्मचारियों का मनोबल गिराता है जो पदोन्नति पाने में विफल रहते हैं जिससे उनमें अक्षमता की भावना उत्पन्न होती है।
6. पहले से कार्यरत व्यक्ति खुली प्रतियोगी परीक्षाओं में बाहरी लोगों के साथ कई कारणों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते है।

अप्रत्यक्ष भर्ती के गुण :
सीधी भर्ती के गुणों को अप्रत्यक्ष भर्ती के दोषों के रूप में उद्धृत किया जा सकता है, और सीधी भर्ती के दोषों को अप्रत्यक्ष भर्ती के गुण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

1. इसके अन्तर्गत प्रशासनिक अनुभव वाले व्यक्तियों का चयन और नियुक्ति होती है।

2. इसके लिए एक लंबे और गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है। अतः समय व पैसे की बचत होती है।
3. यह कर्मचारियों की पहल को प्रोत्सहान प्रदान करता है क्योंकि उच्च पदों को नए लोगों के लिए नहीं खोलता है।
4. यह नये युवा और अनुभवहीन व्यक्तियों को निमंत्रण प्रदान न करके वरिष्ठ और अनुभवी कर्मचारियों के बीच ईर्ष्या और द्वेषता की भावना का अन्त कर देता है क्योंकि वे उच्च स्थान पर काबिज हो जाते है।
5. यह सभी कार्मिकों को पदोन्नति प्रदान कर उनके मनोबल को बढाता है।

अप्रत्यक्ष भर्ती पद्धति के अवगुण या दोष :

1. यह सभी योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा में प्रवेश के लिए समान अवसर प्रदान नही करती है। इसलिए यह लोकतांत्रिक मानदंडों के अनुरूप नहीं है।
2. यह विश्वविद्यालयों से सार्वजनिक सेवा के लिए सक्षम और योग्य लोगों को आकर्षित करने मे सफल नहीं हो पाती है।
3. यह तरीका सरकार में प्रगतिशील दृष्टिकोण, नवीन विजन और नए विचारों व युवा शक्ति को के आगमन में बाधा उतपन्न करता है।
4. यह तकनीकी और व्यावसायिक क्षेत्रों में भर्ती के लिए उपयुक्त नहीं है।

कार्मिक प्रशासन के प्रशिक्षण की अवधारणा : प्रशिक्षण वह अभिक्रिया होती है जो कि कार्मिकों लिए अपरिहार्य होती है। इसके माध्यम से कार्मिक स्वयं को समय एवं बदलावों के अनुकूल बना पाते है। किसी भी संगठन में गतिशीलता बनाए रखने के लिए प्रशिक्षण का होना अतिआवश्यक है। प्रशिक्षण को सामान्यतया हैः एक क्रिया और प्रक्रिया के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है जिसके द्वारा कर्मियों की क्षमताओं में सुधार किया जा सकता है तथा संगठनात्मक कार्यों और कार्यों को करने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और दृष्टिकोण को विकसित किया जा सकता है तथा अपेक्षाकृत कम समय के भीतर संगठनात्मक जरूरतों को पूरा किया जा सकता है।

विलियम जी. टॉरपी ने प्रशिक्षण को कर्मचारियों के वर्तमान सरकारी पदों पर उनकी प्रभावशीलता बढ़ाने के साथ-साथ भविष्य की सरकारी स्थिति के लिए कर्मचारियों को तैयार करने के उद्देश्य से कौशल, आदतों, ज्ञान और दृष्टिकोण विकसित करने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। प्रशिक्षण पेशेवर ज्ञान, व्यापक दृष्टि और व्यवहार, आदतों और दृष्टिकोण के सही पैटर्न प्रदान करके सार्वजनिक सेवाओं में बढ़ी हुई क्षमता प्रदान करने के लिए एक अच्छी तरह से व्यक्त प्रयास है। निरंतर महसूस की जाने वाली आवश्यकता के जवाब में यह एक सतत प्रक्रिया है।

प्रशिक्षण की भूमिका और उद्देश्य : सिविल सेवकों के लिए प्रशिक्षण की भूमिका का पहली बार यूके में 1944 की अपनी रिपोर्ट में एश्टन समिति द्वारा पूरी तरह से विश्लेषण किया गया था। प्रशिक्षण के उद्देश्यों पर, इसने कहा, "किसी भी बड़े पैमाने के संगठन में, दक्षता दो तत्वों पर निर्भर करती है, एक कॉर्पोरेट निकाय के रूप में संगठन की तकनीकी दक्षता, सामूहिक भावना और उन व्यक्तियों के दृष्टिकोण से प्राप्त होती है जिनसे शरीर बना है।

एश्टन समिति की रिपोर्ट के अनुसार प्रशिक्षण के पाँच उद्देश्य होते हैं :

1. एक ऐसा सिविल सेवक तैयार करना जो अपने कार्य को सटीकता और स्पष्टता के साथ कर सके।
2. बदलती दुनिया में सिविल सेवक को उन कार्यों के लिए तैयार करने के लिए जिन्हें उसे करने के लिए कहा जाता है।
3. सिविल सेवा में नए समय की नई जरूरतों के लिए अपने दृष्टिकोण और इसके तरीकों को लगातार और साहसपूर्वक समायोजित करना चाहिए।
4. सिविल सेवक समुदाय को होशपूर्वक बनाना। सिविल सेवकों के मशीन द्वारा मशीनीकृत होने के खतरे के प्रति प्रतिरोध विकसित करने की आवश्यकता है; जबकि हमें उच्चतम संभव मानक का लक्ष्य रखना चाहिए। हमारा उद्देश्य यांत्रिक रूप से परिपूर्ण सिविल सेवा जैसे रोबोट का उत्पादन करना नहीं है।
5. उच्च कार्य और अधिक जिम्मेदारियों के लिए सिविल सेवकों की क्षमता का विकास करना तथा सिविल सेवकों के मनोबल में सुधार करना।

एश्टन समिति की रिपोर्ट की उपरोक्त सूची में निम्नलिखित को जोड़ा जा सकता है:

1. सिविल सेवा में नए प्रवेशकों की कमियों को पूरा करने के लिए।
2. सिविल सेवकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाना।
3. सिविल सेवकों में सत्यनिष्ठा को बढ़ावा देना।
4. कर्मचारियों में टीम की भावना को बढ़ावा देना।

हर्बर्ट ए. साइमन के अनुसार विकासशील देशों में सिविल सेवकों के प्रशिक्षण को निम्नलिखित तीन कारकों ने विशेष रूप से आवश्यक बना दिया है अर्थात् हमारे समय की मांगों और

चुनौतियों को पूरा करने के लिए प्रशासन में नवाचार की आवश्यकता, सरकारी कार्यों और कर्तव्यों का तेजी से बढना एवं कुशल जनशक्ति की भारी कमी होना।

प्रशिक्षण के प्रकार : मूल रूप से, प्रशिक्षण दो प्रकार का होता है अर्थात् अनौपचारिक प्रशिक्षण और औपचारिक प्रशिक्षण।

अनौपचारिक प्रशिक्षण का अभिप्राय : अनौपचारिक प्रशिक्षण का अर्थ है वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गदर्शन में वास्तव में कार्य करके कार्य सीखना। इस प्रकार यह अनुभव द्वारा प्रशिक्षण या परीक्षण और त्रुटि विधि द्वारा सीखना है। प्रशिक्षु वास्तव में कार्य करने के क्रम में, अर्थात अभ्यास के माध्यम से प्रशासनिक कौशल प्राप्त करता है। इसे 'ऑन-द-जॉब-ट्रेनिंग' भी कहा जाता है। यह लोक प्रशासन में प्रशिक्षण का एक पारंपरिक तरीका रहा है।

औपचारिक प्रशिक्षण का अभिप्राय : दूसरी ओर, औपचारिक प्रशिक्षण, विशेषज्ञ मार्गदर्शन और पर्यवेक्षण के तहत पूर्व-व्यवस्थित और अच्छी तरह से परिभाषित पाठ्यक्रमों के माध्यम से व्यवस्थित तरीके से प्रदान किया जाता है। इसमें निम्नलिखित प्रकार होते हैंः सेवा में प्रवेश से पूर्व के प्रशिक्षणों के अन्तर्गत अभिविन्यास प्रशिक्षण, अभिप्रेरण प्रशिक्षण, वेस्टिबुल प्रषिक्षण, परिपत्र प्रशिक्षण, पुनश्चर्या प्रशिक्षण इत्यादि प्रमुख है।

इसी तरह से सेवा में प्रवेश के बाद के प्रशिक्षण के अन्तर्गत**अल्पकालिक और दीर्घकालीन प्रशिक्षण, विभागीय और केंद्रीय प्रशिक्षण, कौशल और बैक ग्राउंड प्रशिक्षण** इत्यादि।

प्रशिक्षण तकनीक का अभिप्राय **प्रशिक्षण के तरीकों** से होता हैं जो निम्नानुसार सूचीबद्ध हैंः **व्याख्यान विधि ; सिंडिकेट विधि ; केस स्टडी विधि ; घटना विधि ; रोल प्ले ; प्रबंधन खेल विधि** इत्यादि।

कार्मिक प्रशासन में पदोन्नति की अवधारणा का महत्व : कर्मचारियों को एक पद से दूसरे पद पर पदोन्नत करना सबसे महत्वपूर्ण है। कर्मचारी की पदोन्नति के लिए पुरस्कार या संभावित पुरस्कार के रूप में प्रत्यक्ष महत्व है। वास्तविक पदोन्नति एक पुरस्कार है, जबकि पदोन्नति का अवसर एक संभावित पुरस्कार है।

एल डी व्हाइट ने ठीक ही कहा है, "एक बुरी तरह से नियोजित पदोन्नति प्रणाली न केवल अयोग्य व्यक्तियों को आगे बढ़ाकर बल्कि समूह के मनोबल को कम करके भी एक संगठन को नुकसान पहुंचाती है"।

ब्रिटिश फुल्टन कमेटी (1966 - 68) ने कहा, "सही समय पर सही पदोन्नति सेवाओं में पुरुषों और महिलाओं की पूर्ण प्रतिभा विकसित करने की प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा है।

पदोन्नति के तत्व : किसी भी संगठन में पदोन्नति के तत्व (घटक) निम्नलिखित हैं :

1. स्थिति का परिवर्तन, अर्थात् निम्न स्थिति से उच्च स्थिति में।
2. कर्तव्यों का परिवर्तन, अर्थात् कम कठिन प्रकार के कार्य से अधिक कठिन प्रकार के कार्य में परिवर्तन।
3. जिम्मेदारी में बदलाव, यानी कम जिम्मेदारी से बड़ी जिम्मेदारी।
4. शीर्षक का परिवर्तन, यानी निम्न पद से उच्च पद पर।
5. वेतन में परिवर्तन, यानी कम वेतनमान से उच्च वेतनमान में।

हालांकि नियोक्ता के दृष्टिकोण से, पदोन्नति का तात्पर्य सार्वजनिक सेवा के भीतर से उपयुक्त और अनुभवी व्यक्तियों के साथ रिक्त उच्च पदों को भरना है। इस प्रकार इस संबंध में

पदोन्नति को "अप्रत्यक्ष भर्ती" या "भीतर से भर्ती" भी कहा जा सकता है।

पदावनति पदोन्नति के विपरीत है। इसका तात्पर्य किसी कर्मचारी के उच्च पद से निम्न पद पर अवनति से है। वास्तव में यह सिविल **सेवा आचरण नियमों के उल्लंघन के लिए** कर्मचारी पर लगाया जाने वाला **एक प्रकार का दंड** है।

पदोन्नति के प्रमुख प्रकार : पदोन्नति तीन प्रकार की होती है।

1. निम्न ग्रेड से उच्च ग्रेड में पदोन्नति, उदाहरण के लिए कनिष्ठ टाइपिस्ट से वरिष्ठ टाइपिस्ट के रूप में।
2. निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में पदोन्नति, उदाहरण के लिए लिपिक वर्ग से कार्यकारी वर्ग में।
3. निम्न सेवा से उच्च सेवा में पदोन्नति, उदाहरण के लिए,राज्य सिविल सेवा से आईएएस में।

पदोन्नति के प्रमुख सिद्धांतः पदोन्नति के तीन सिद्धांत होते है अर्थात् पदोन्नति का वरिष्ठता सिद्धांत; पदोन्नति का योग्यता सिद्धांत और पदोन्नति का वरिष्ठता-सह-योग्यता सिद्धांत।

इन्हें संक्षेप में इस प्रकार समझाया जा सकता है :

1. पदोन्नति का वरिष्ठता सिद्धांत : वरिश्ठता सिद्धांत सबसे पुराना और अभी भी प्रचलित है। वरिष्ठता का अर्थ है किसी कर्मचारी की सेवा की अवधि। इस प्रकार इस सिद्धांत के अनुसार पदोन्नति करने में वरीयता का क्रम कर्मचारियों की सेवा की अवधि से निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए यदि किसी कर्मचारी के पास दी गई स्थिति में कर्मचारी की तुलना में अधिक समय तक सेवा करता है तो वह पदोन्नति के लिए पात्र है।

2. पदोन्नति का योग्यता सिद्धांत : योग्यता सिद्धांत का तात्पर्य है कि सबसे मेधावी कर्मचारी को

पदोन्नत किया जाना चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार पदोन्नति कर्मचारियों की योग्यता और उपलब्धियों से निर्धारित होती है भले ही सेवा की लंबाई कुछ भी हो। पदोन्नति के उद्देश्य से उम्मीदवार की योग्यता का परीक्षण और न्याय करने के लिए निम्नलिखित तीन विधियों का उपयोग किया जाता है।

1. विभाग के प्रमुख का व्यक्तिगत निर्णय जो पदोन्नति करने वाला प्राधिकरण है
2. प्रमोशनल परीक्षा (लिखित/मौखिक)
3. दक्षता रेटिंग (सेवा रेटिंग)

3. पदोन्नति का वरिष्ठता-सह-योग्यता सिद्धांत : वरिष्ठता-सह-योग्यता सिद्धांत प्रदान करता है कि पदोन्नति दोनों के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए, सामान्य तौर पर पहला सिद्धांत निचले स्तरों पर लागू होता है, दूसरा सिद्धांत उच्च स्तर पर और तीसरा सिद्धांत मध्यम स्तर पर लागू होता है।

इस प्रकार से कार्मिक प्रशासन लोक प्रशासन की एक महत्वपूर्ण अवधारणा होती है। जैसा कि सर्वविदित है कि कार्मिक प्रशासन किसी भी संगठन की नींव होता है। कोई भी संगठन बिना कामिर्को के संचालित नहीं हो सकता है। मानव संसाधन के बिना प्राकृतिक संसाधनों का भी उपयोग करना संभव नहीं है। अतः मानव संसाधन किसी भी संगठन का संचालन तत्व होता है और मानव संसाधन या कार्मिक प्रबन्धन किसी भी संगठन को सफल बनाने में निर्णायक भूमिका का निर्वहन करता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

संदर्भ :

Likert, K, New Patterns of Management, New York: McGraw Hill, 1961

A.Etzioni, Modern Organization, New Delhi: Prentice Hall of India, 1981

Koontz & C.O. Donnell, Essentials of Management, Tata McGraw Hill Ltd, New Delhi, 1978

H. Koontz & C. O. Donnell, Management-4 Systems and Contingency Analysis of Managerial Functions, McGraw Hill Ltd, Delhi, 1976

Kast & Resenzweig, Organization and Management - a System's Approach, McGraw Hill Ltd, Delhi, 1974

Althur G. Bedeian, Management, The Dryden Press, Chicago, 1985

Parag Diwan, Information System Management, Pentagon Press, New Delhi, 2001

M.P. Sharma and B. L. Sadana, Public Administration in Theory and Practice, Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, Public Administration, Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, Public Administration– Principles and Practices, Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, Public Administration-Theory & Practice, Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, Public Administration– Theory and Practice, Jaiparkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Dr. B. L. Fadia, Public Adminishation, Sahitya Bhawan Publications, Agra, 2010

Nichlos Henry, Public Administration and Public Affairs, Prentice-Hall of India Pvt.Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), Handbook of Public Administration, Marcel Dekker, Inc., New York, 1998

Marc Holzer & Richard W. Schwester, Public Administration: An Introduction, PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

Nicholas Henry, Public Administration and Public Affairs, Prentice-Hall, New Jersey, 1975

Felix A.Nigro, Modern Public Administration, Harper and Row, New York, 1970

9

वित्तीय प्रशासन

वित्तीय प्रशासन का अभिप्राय, महत्व, प्रकृति एवं क्षेत्र

(Financial Administration : Meaning, Significance, Nature and Scope)

लोक वित एवं बजट एक गतिशील अनुशासन है। 1930 की वैश्विक महामंदी ने पूरी दूनिया की आर्थिक प्रणालियों अथवा अर्थव्यवस्थाओं की जड़ों को हिला दिया। अतः अब इस सन्दर्भ परम्परागत अर्थशास्त्रियों से भिन्न दृष्टिकोण को सहमति मिली।

जे एम केन्ज ने राज्य के आर्थिक हस्तक्षेप को स्वीकृति प्रदान की। अब अहस्तक्षेपवादी राज्य के पुराने दृष्टिकोण में बदलाव आया कि सरकार की भूमिका एक संगठन के रूप में कैसी होनी चाहिए तथा सरकार को कैसे सहयोग करना चाहिए? सबसे बड़ा विषय यह उभर कर आया कि किस तरह से आर्थिक प्रणाली के भीतर वितीय सुस्थिरता (Fiscal Sustainability) को स्थापित किया जाए?

वित्त किसी भी प्रकार के संगठन के लिए जीवन रक्त है। किसी भी कार्यालय, उद्योग, उद्यम के संचालन के लिए धन की उपलब्धता होने पर ही उसके संचालन के लिए आवश्यक कार्मिक और भौतिक संरचना उपलब्ध हो सकती है। किसी भी तरह की संचालन प्रणाली एवं देखरेख या रखरखाव प्रणाली की दक्षता उसकी वित्तीय प्रणाली की प्रभावशीलता पर निर्भर करती है क्योंकि प्रत्येक प्रशासनिक अधिनियम के वित्तीय निहितार्थ हो सकते हैं। लोक प्रशासन के लिए वित्त का महत्व लॉयड जॉर्ज की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है कि "सरकार वित्त है"। यह बिल्कुल सही है, क्योंकि सरकार जो कुछ भी करती है उसके लिए धन की आवश्यकता होती है। कौटिल्य के अनुसार, "सभी उपक्रम वित्त पर निर्भर होते हैं। इसलिए सबसे पहले खजाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए।"

पूरी दूनियाभर में प्राचीनकाल की संगठित राजतंत्रात्मक शासन प्रणालियों से लेकर वर्तमान काल की संगठित राष्ट्रीय सरकारों तक वित्तीय प्रशासन लोक प्रशासन के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में विद्यमान रहा है। अपने मूल रूप में यह मध्यकाल तक कुछ सीमित कार्य कर रहा था। पूर्व आधुनिक समय में इसकी कल्पना कार्यपालिका पर विधायी नियंत्रण की संरचना के स्वरूप में की गई थी। लेकिन औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक ताकतों ने वित्तीय प्रशासन को एक नया अर्थ, स्वरूप और गतिशालता प्रदान की है। बदले हुए संदर्भ में यह नियोजित

आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन की बदलती हुई जरूरतों को पूरा करने की उम्मीद है।

वित्तीय प्रशासन का अभिप्राय : वित्तीय प्रशासन (Financial Administration) शब्द दो शब्दों (Finance & Administration) से मिलकर बना है। एक है **'वित्त' और 'प्रशासन'।** जहाँ पर 'वित्त' **शब्द मौद्रिक (धन) संसाधन** को संदर्भित करता है जबकि 'प्रशासन' शब्द का अर्थ किसी संगठन में एक सचेत उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले **सामूहिक मानवीय प्रयासों के प्रबन्धन से** है। अतः वित्तीय प्रशासन का तात्पर्य एक संगठन या कार्यालय या उसकी शाखाओं को अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए धन उपलब्ध कराने वाली गतिविधियां के समुच्चय से होता है। चाहे वह कृषि विभाग, रेलवे, सड़क परिवहन निगम, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, नगर पालिका या ग्राम पंचायत या कोई अन्य संगठन, कार्यालय या विभाग हो सकता है। एक परिवार रूपी संगठन का संचालन करने वाली गतिविधिया भी वितीय प्रशासन का ही भाग है।
एल.डी. के अनुसार व्हाइट, "राजकोषीय प्रबंधन में उन क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो कार्यालयों को धन उपलब्ध कराने और उसके वैध तथा दक्षतापूर्ण उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं।"
जैज़ गैस्टन के अनुसार "वित्तीय प्रशासन सरकारी संगठन का वह भाग है जो सार्वजनिक धन के संग्रहण, संरक्षण और वितरण, सार्वजनिक राजस्व और व्यय के बीच समन्वय, राज्य की ओर से क्रेडिट संचालन के प्रबंधन, और लोक उतरायित्व के वित्तीय मामलों पर नियंत्रण से संबंधित होता है।
अतः इसे स्पष्ट तौर पर अभिव्यक्त करते हुए कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रशासन राज्य के वित्तीय प्रबंधन के सभी पहलुओं से संबंधित है। लोक प्रशासन सार्वजनिक मामलों और जनहित के विषयों से सम्बन्धित है। इसलिए वित्तीय प्रशासन की सीमाओं का विस्तार हो रहा है और इसलिए वित्तीय प्रशासन की एक व्यापक

परिभाषा की आवश्यकता है जिसे निम्न स्वरूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है अर्थात्
“वित्तीय प्रशासन में वे सभी गतिविधियाँ शामिल हैं जो एक राजनीतिक समुदाय के सभी सदस्यों के भरण-पोषण और विकास के लिए आवश्यक मौद्रिक संसाधनों को उत्पन्न, विनियमित और वितरित करती हैं।“

लोक वित्त और निजी वित के बीच अंतर :
वित्त का कार्य एक सामान्य प्रक्रिया प्रतीत होती है जो सार्वजनिक और निजी दोनों संगठनों में पायी जाती है। लेकिन किसी को यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि निजी वित्त पर लागू होने वाले सिद्धांत और मानदंड सार्वजनिक वित्त पर समान रूप से लागू होते हैं। लोक वित्त और निजी वित्त के बीच अंतर स्पष्ट है। सुंदरम के अनुसार इन दोनो के बीच असमानताओं को निम्नानुसार रेखांकित किया जा सकता है :

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Distinction between Public & Private Finance

वितीय प्रशासन का महत्व :
औद्योगिक क्रांति के बाद तक वित्तीय प्रशासन के महत्व पर विचार नहीं किया गया था। न्यूनतम शासन की अवधारणा के रूप में अहस्तक्षेप या लेसेज फेयर का सिद्धांत न्यूनतम कराधान की नीति का समर्थन करती है। जब औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन अधिक जटिल हो गया तो सरकार की भूमिका कई गुना बढ़ गई। इसके अलावा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने राज्य की गतिविधियों में अभूतपूर्व वृद्धि कर की है।

1. चार वर्षीय वैश्विक आर्थिक महामंदी (1929-33) ने सरकारों के तटस्थ आर्थिक रुख की कमजोरियों को उजागर किया। इसने आय और रोजगार में स्थिरता के साथ-साथ समानता और सामाजिक न्याय की अवधारणा को भी स्थापित करने के बात पर बल दिया। किन्सेनियन परिप्रेक्ष्य के आधार पर राज्य ने राष्ट्रीय विस्तार के लिए एक सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निभाई।
2. अब राज्य ने आय और रोजगार की धारणा के सहारे समानता सुनिश्चित करने का कार्य भी हाथ में लिया है। लोगों के सामाजिक-आर्थिक जीवन को प्रभावित करने वाले कार्य के रूप में सरकार का वास्तविक स्वरूप उभर कर सामने आया। रक्षा और प्रशासनिक व्यय ने अपने अनुत्पादक लेबल को छोड़ दिया और आय और रोजगार के स्तर को प्रोत्साहित करने के लिए एक लीवर के रूप में एक नया महत्व ग्रहण किया। वित्तीय प्रशासन को राज्य के इन नए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रभावी नीतियां बनाने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। इसे वित्तीय संसाधनों को सार्वजनिक उद्देश्यों में बदलने और इस प्रकार वितरणात्मक न्याय के माध्यम से व्यक्ति की स्थिति में सुधार करने के लिए कहा गया था।
3. लोकतंत्र के आगमन के साथ एक लोकप्रिय सामाजिक संस्था के रूप में **'लोक बटुए पर संसदीय नियंत्रण'** की अवधारणा को सार्वभौमिक स्वीकृति मिली है। **"प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं"** अर्थात **"संसदीय स्वीकृति के बिना कोई सार्वजनिक व्यय नहीं"** के सिद्धांत आधुनिक राजनीतिक समुदायों के मार्गदर्शक

सिद्धांत बन गए हैं। वित्तीय प्रणाली को आम व्यक्ति के लिए सुगम बनाने के लिए एक सरल और व्यवस्थित वित्तीय प्रक्रिया तैयार करने की तत्काल आवश्यकता दिखाई दी। **वित्तीय प्रशासन "लोकप्रिय संप्रभुता"** को सामाजिक वास्तविकता बनाने के लिए 'आधुनिक सरकारों' का एक साधन बन गया।

4. नियोजित विकास की अवधारणा ने लोक प्रशासकों को विकास योजनाओं और परियोजनाओं के निर्माण और कार्यान्वयन में सक्रिय और गतिशील भूमिका निभाने में सक्षम बनाया है। इन परियोजनाओं को लागू करने का समय और लागत गंभीर रूप से महत्वपूर्ण हो गई है। वित्तीय प्रशासन का उच्चारण निधि के संवितरण को नियंत्रित करने वाले एक से विभिन्न विकास परियोजनाओं और कार्यक्रमों के प्रबंधन में स्थानांतरित हो गया है। प्रदर्शन बजट और अन्य संबंधित बजटीय नवाचारों का उदय इस चुनौती को पूरा करने में वित्तीय प्रशासन की उल्लेखनीय उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करता है।

अस्सी के दशक की शुरुआत से संसाधनों की कमी आधुनिक सरकारों की एक बहुत ही गंभीर समस्या बन गई है। जबकि आधुनिक सरकारों पर लोगों की बढ़ती महत्वाकांक्षाओं और मांगों को पूरा करने के लिए अपने व्यय एवं परिव्यय को बढ़ाने के लिए जबरदस्त दबाव है तथा दूसरी ओर करदाता अतिरिक्त कर बोझ उठाने में असमर्थ या अनिच्छुक हैं। इस दुविधा में सार्वजनिक व्यय को सावधानीपूर्वक प्राथमिकता देने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। इसलिए वित्तीय प्रशासन का एक अध्ययन और प्रबंधन जो लोक प्रशासन का एक हिस्सा हैं। अब अवांछित व्यय को समाप्त

करने और सीमित संसाधनों के आधार पर उत्पादन के अनुकूलन को सुनिश्चित करने के तरीकों की तलाश करना महत्वपूर्ण हो गया है। जीरो बेस बजटिंग इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है।

वितीय प्रशासन की प्रकृति का आधुनिक उपागम : आधुनिक दृष्टिकोण वित्तीय प्रशासन को सार्वजनिक निधियों को जुटाने और वितरित करने के बजाय सार्वजनिक संगठनों की समग्र प्रबंधन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग मानता है। इसमें लोक प्रशासन में नियोजित सभी व्यक्तियों की सभी गतिविधियाँ शामिल हैं, क्योंकि स्पष्ट रूप से लगभग हर सरकारी अधिकारी ऐसे निर्णय लेता है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वित्तीय प्रकृति के होते हैं। यह उपागम वितीय प्रशासन की प्रकृति के पारंपरिक सिद्धांत के मूल्य-तटस्थ विचार को खारिज करता है। यह लोक वित्त के तीन प्रसिद्ध सिद्धांतकारों के विचारों को संयोजित करता है अर्थात् **वैग्नर, एग्वर्थ और पिंगू** के द्वारा प्रतिपादित **सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत** को, केन्सियन या **कीन्सवादी परिप्रेक्ष्य के कार्यात्मक सिद्धांत** को और आधुनिक लोक वित्त के सिद्धांतकारों के द्वारा प्रतिपादित **सक्रिय दृष्टिकोण**। इस दृष्टिकोण के अनुसार वित्तीय प्रशासन के द्वारा निम्नलिखित भूमिकाएँ निभाई जाती है :

1. **समान भूमिका :** इस भूमिका के तहत वित्तीय प्रशासन धन की योग्यता को ध्वस्त करने का प्रयास करता है। यह राजकोषीय नीतियों के माध्यम से अमीरों से गरीबों को आय हस्तांतरित करना चाहता है।
2. **कार्यात्मक भूमिका :** सामान्य परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था अपने आप कार्य नहीं कर सकती है। इस भूमिका के तहत वित्तीय प्रशासन अर्थव्यवस्था के उचित कार्यप्रणाली को कराधान, सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक ऋण के माध्यम से

सुनिश्चित करना चाहता है। यह उपागम नीतिगत साधन विकसित करके उच्च आर्थिक विकास और पूर्ण रोजगार प्रबन्धन का कार्य करता है।

3. **सक्रिय भूमिका :** इस भूमिका के तहत वित्तीय प्रशासन में ऐसे कदमों का अध्ययन शामिल है जो निवेश को एक सहज और तेज प्रवाह प्रदान करेंगे और इसके इष्टतम आवंटन से राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए कार्य करेंगे।
4. **वितीय स्थिरता की भूमिका :** इस भूमिका के तहत वित्तीय प्रशासन का उद्देश्य राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के माध्यम से मूल्य स्तर और मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों का स्थिरीकरण किया जाता है ताकि वितीय स्थिरता बनी रहे।
5. **सहभागी भूमिका :** इस दृष्टिकोण के अनुसार वित्तीय प्रशासन में समुदाय के सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के उद्देश्य से राज्य को सार्वजनिक और निजी दोनों वस्तुओं का उत्पादक बनाने के लिए नीतियों का निर्माण और निष्पादन शामिल है। यह राज्य की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भागीदारी के माध्यम से आर्थिक विकास को बढ़ावा देने का भी प्रयास करता है।

इस प्रकार वित्तीय प्रशासन साध्य और साधनों के संबंध में विकल्पों का एक ढांचा प्रदान करता है जो राज्य की प्रकृति और चरित्र और इसके वैचारिक आधार के साथ-साथ इसके मूल्यों को दर्शाता है। उदाहरण के लिए समाजवादी देशों और लोकतांत्रिक देशों का वित्तीय प्रशासन एक दूसरे से भिन्न होता है। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन का स्वरूप विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक प्रणालियों में अलग-अलग होगा जो कि विशेष रूप से सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों के स्वरूप पर निर्भर करता है।

वित्तीय प्रशासन का दायरा या क्षेत्र : वितीय प्रशासन के अन्तर्गत किसका अध्ययन किया जाए और किसका नहीं किया जाए। सामान्यतया वितीय प्रशासन के अन्तर्गत लोक वित की आगम एवं निर्गम प्रणाली के सभी व्यक्तिगत अर्थात् कार्मिक, सांगठनिक या मंत्रालय, विभाग, एवं अभिकरणीय पक्षों को शामिल किया जाता है। इसमें न केवल बजट अपितु बजट प्रक्रिया, उसके प्रकारों, उसके लेखांकन, अंकेक्षण तथा नियंत्रण सम्बन्धी गतिविधियों को भी शामिल किया जाता है। एक लोकतांत्रिक संदर्भ में इस दृष्टिकोण को व्यापक स्वीकृति मिल सकती है क्योंकि यह विधायिका के प्रति कार्यकारी के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करता है। वितीय प्रशासन के क्षेत्र को निम्न चार आधार काफी हद तक परिभाषित करते है अर्थात् लोक वित का संग्रहण, संरक्षण और वितरण ; सार्वजनिक राजस्व और व्यय का समन्वय ; राज्य की ओर से ऋण संचालन का प्रबंधन ; सरकार के वित्तीय मामलों का सामान्य नियंत्रण इत्यादि तथापि वितीय प्रशासन के क्षेत्र का दायरा अति विशाल होता है। सामान्यतया आधुनिक राज्यों में वित मंत्रालयों के अधीन वित विभागों के द्वारा और उनके अधीन कार्यरत अभिकरणों के द्वारा समस्त वितीय कार्यवाही का संचालन किया जाता है। यद्यपि अनेक राज्यों में वित विभाग, वितीय प्रशासन की केन्द्रीय धुरी के रूप में कार्य करते है। इसकी भूमिका वित्तीय प्रशासन के बजाय वित्तीय प्रबंधन का गठन करती है। एक वित्तीय प्रबंधक के रूप में यह सरकार में आर्थिक निर्णय लेने में योगदान देने वाली प्रणालियों, उपकरणों और तकनीकों से संबंधित है। फिर भी एक अन्य दृष्टिकोण वित्तीय प्रशासन के दायरे के लिए एक बजट उन्मुख रूपरेखा की वकालत करता है। उनके अनुसार वित्तीय प्रशासन का दायरा बजट तैयार करने, बजट के अधिनियमन और बजट के निष्पादन तक सीमित है। हालांकि बजट वित्तीय प्रशासन का मूल है, बजट तैयार करने से पहले कुछ संचालन समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। वित्तीय प्रशासन के एक

अभिन्न अंग के रूप में नियोजन प्रक्रिया को शामिल करने की उचित आवश्यकता है। अंतिम विश्लेषण में एक एकीकृत दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है ताकि उपरोक्त सभी विचारों को लोक प्रशासन के दायरे में शामिल किया जा सके। इस तरह से वित्तीय नियोजन ; बजट निर्माण ; संसाधन मोबाईलाइजेशन या संसाधन जुटाना ; निवेश सम्बन्धी निर्णय ; व्यय नियंत्रण ; लेखांकन, रिपोर्टिंग और लेखा परीक्षा या अंकेक्षण इत्याति तत्वों को वित्तीय प्रशासन के मुख्य क्षेत्रों के रूप में शामिल किया जा सकता है।

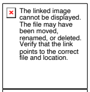

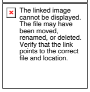

बजट की अवधारणा
(The Concept of Budget)

वितीय प्रशासन की केन्द्रीय धूरी बजट : बजट की अवधारणा मध्य युग के अंत में विकसित होनी शुरू हुई जो कि इंग्लैंड के साथ-साथ यूरोप की शासन प्रणालियों में विद्यमान थी। इस समय बजट राजस्व और व्यय का विवरण होता था जिसे राजा के व्यापारिक मामलों और राज्य के रहस्य के रूप में माना जाता था। इस समय तक ऐसा इसलिए था क्योंकि राजस्व राजा के डोमेन या प्रभाव या प्रभूत्व से ही प्राप्त किया जाता था। **'प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं'** के सिद्धांत को इस समय तक मान्यता नहीं मिली थी जो कि आगे चलकार 1776 की अमेरिकी क्रान्ति का उद्घोष बना। **1688 ई की ब्रिटेन की गौरवपूर्ण क्रांति तक यह स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं हुआ था।** इस समय, यहाँ तक कि सभी प्रकार के सरकारी व्यय भी संसदीय नियंत्रण के अधीन नहीं थे। राज्य के वित पर पूर्ण विधायी नियंत्रण इस 17 वी शताब्दी की प्रमुख विशेषता है।

उन्नीसवीं सदी में सार्वजनिक वित्त की समस्या का बड़े पैमाने पर विकास हुआ। सभी दिशाओं में राज्य के कार्यों में वृद्धि, सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियंत्रण की स्थापना, धोखाधड़ी और बर्बादी को रोकने के लिए वित्तीय प्रशासन में जांच की आवश्यकता पर बल देने और सार्वजनिक व्यय से उच्चतम संभव परिणाम प्राप्त करने और क्रेडिट संचालन में वृद्धि जिसके परिणामस्वरूप केंद्रीय बैंकों का सरकार के बैंकर के रूप में निर्माण होने के कारण अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई। इस समस्या का समाधान करने के लिए इंग्लैंड में एक नई प्रणाली का उदय हुआ जिसे बजटवाद या बजट प्रणाली के नाम से पुकारा गया। इस तरह से **बजट प्रणाली आधुनिक दूनिया के लिए 1803 ई तक पूरी तरह से अज्ञात थी।**

बजट का अभिप्राय :
शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार ’बजट’(Budget) **फ्रांसीसी भाषा के शब्द ’बौगेट’ ;(Bougette) से बना है,** जिसका शाब्दिक अर्थ होता है **चमडे का थैला या एक बोरी या थैली** जिसमें से राजकोष के कुलाधिपति सरकार की आगामी वर्ष की वित्तीय योजना को संसद के समक्ष रखने के लिए अपने वितीय दस्तावेज निकालते थे। अब, ’बजट’ शब्द निश्चित रूप से वित्तीय दस्तावेज या कागजात को संदर्भित करता है, बोरी या थैली को नहीं। सामान्यतया ’बजट’ शब्द की परिभाषा को लेकर विद्वान एकमत नहीं है।

डिमॉक के अनुसार “एक बजट एक वित्तीय योजना है जो वर्तमान योजना को बताते हुए अतीत के वित्तीय अनुभव को सारांशित करती है और एक निर्दिष्ट अवधि के भावी स्वरूप को पेश करती है।“

मुनरो के अनुसार “बजट आने वाले वित्तीय वर्ष के लिए वित्त पोषण की एक योजना है। इसमें एक ओर सभी राजस्वों और दूसरी ओर सभी व्ययों का मदवार अनुमान शामिल रहता है।“

एल.डी. के अनुसार व्हाइट, “राजकोषीय प्रबंधन में इसके

सिद्धांत उप-विभागों के रूप में, विनियोग के औपचारिक अधिनियम के बाद बजट बनाना, व्यय का कार्यकारी पर्यवेक्षण (बजट निष्पादन), लेखांकन और रिपोर्टिंग प्रणाली का नियंत्रण, ट्रेजरी प्रबंधन और राजस्व संग्रह और लेखा परीक्षा को शामिल करता है। “

बजट प्रक्रिया के मुख्य घटक या तत्व : बजट प्रणाली के मुख्य भागों को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। डब्ल्यू.एफ. विलोबी के अनुसार एक बजट में तीन घटक होते हैं। प्रथम तत्व है एक निश्चित अवधि के दौरान सार्वजनिक मामलों के उचित संचालन के लिए अनुमानित आवश्यक रकम का विवरण ; सार्वजनिक देय राशि और ऋण संचालन के संबंध में विद्यमान कानून के प्रावधान के अनुसार मौजूदा आधार पर राजस्व और ऋण से संभावित आय का अनुमान तथा संपत्ति और देनदारियों के संदर्भ में राजकोष की सेवा व शर्तों का विवरण। बजट में सामान्य रूप से अनुमान तैयार करने, धन का संग्रह और अभिरक्षा करने, व्यय का संवितरण और नियंत्रण रखने तथा उन सभी लेन-देन की रिकॉर्डिंग जिनकी वैधता और नियमितता विधिवत रूप से सत्यापित है और एक स्वतंत्र लेखा परीक्षा द्वारा विधानमंडल को प्रतिवेदन इत्यादि को शामिल किया जाता है। बजट वितीय प्रशासन का एक मुख्य हिस्सा है जिसे निम्न पाँच स्तरों पर विभाजित कर स्पष्ट किया जा सकता है : बजट तैयार करना ;बजट को विधानमण्डल के द्वारा पारित करना जिसे कि ’बजट का विधान’ कहा जाता है; बजट को लागू करना; बजट कोष का प्रबंधन करना ;बजट का लेखा परीक्षण करना। हेरोल्ड डी. स्मिथ ने बजट सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने के लिए आठ बजटीय सिद्धांत निर्धारित किए हैं अर्थात् कार्यकारी प्रोग्रामिंग का सिद्धान्त; कार्यकारी की जिम्मेदारी का सिद्धान्त; प्रतिवेदन का सिद्धान्त; पर्याप्त उपकरणों का सिद्धान्त; अनेक प्रक्रियाओं का सिद्धान्त; कार्यकारी के निर्देशन का सिद्धान्त; समय

के अनुरूप लचीलेपन का सिद्धान्त तथा दोतरफा बजट संगठन का सिद्धान्त प्रमुख है।

बजट की महत्व या उपयोगिता : बजट समन्वय के एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करता है। यह दोहराव और अपव्यय को समाप्त करने एक प्रभावी उपकरण के रूप में कार्य करता है। बजटिंग कार्यक्रमों और नीतियों के मूल्यांकन के लिए एक अवसर प्रस्तुत करता है जिससे अप्रचलित या अनावश्यक गतिविधियों की पहचान कर उन्हें बंद कर दिया जाता है। बजट आज वित्तीय और विकासात्मक प्रशासन के प्राथमिक उपकरणों में से एक बन गया है। यह एक वितीय प्रबंधन का उपकरण है जो कि सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए कार्यक्रमों और परियोजनाओं को निर्धारित करता है। बजट की उपयोगिताएं निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट की जा सकती है।

वित्तीय नियंत्रण के उपकरण के रूप में : बजट के माध्यम से दुर्लभ संसाधनों और असीमित मांगों के बीच संतुलन बनाए रखने की कोशिश की जाती है। बजट के माध्यम से विभिन्न चरणों में वित्तीय नियंत्रण किया जाता है जैस कि अनुमान तैयार करने से लेकर व्यय करने तक, एक विभाग के भीतर अधीनस्थ एजेंसियों को अनुमानों की शुरुआत में शामिल किया जाता है। इन कार्यालयों के प्रमुख अपनी जरूरतों और खर्च करने की क्षमता के आधार पर अनुमानों की जांच करते हैं। यह प्रक्रिया बड़े विभागों के हाथों में जाती है, जिनसे सरकार की स्वीकृत नीतियों के आलोक में अनुमानों को मॉडरेट करने की उम्मीद की जाती है। अंत में केंद्रीय बजटीय प्राधिकरण राष्ट्रीय नीतियों और प्राथमिकताओं, व्यय के मानदंडों और संसाधनों की बाधाओं के संदर्भ में अंतिम प्रारूप देने और जांच का कार्य करता है।

प्रशासन के उपकरण के रूप में : यह सरकारी विभागों के साथ-साथ सार्वजनिक निगमों और सरकारी सहायता प्राप्त एजेंसियों की सभी गतिविधियों को

शामिल करता है। एक स्वीकृत बजट व्यवस्थापक-प्रबंधक को उस वित्तीय वातावरण का एहसास कराता है जिसके भीतर उसे काम करना होता है। यह उसे अपने विभाग की योजनाओं और संभावनाओं की विविध विशेषताओं के बारे में समस्त प्रशासनिक जानकारी आसानी से उपलब्ध कराता है जिन पर विभाग की नीति में किसी भी स्तर पर विचार करने की आवश्यकता होती है। इसमें उन परियोजनाओं, कार्यक्रमों और गतिविधियों पर जोर दिया जाता है जिनके लिए लागत, समय और उपलब्धि के मामले में किसी भी प्रकार की प्रशासनिक जिम्मेदारी होती है।

सार्वजनिक नीति के उपकरण के रूप में : बजट वह आर्थिक उपकरण है जिसके द्वारा योजनाओं और नीतियों को क्रियान्वित किया जाता है। यह व्यापक विचारों को ठोस गतिविधियों और संसाधनों में परिवर्तित करता है। ऐसा करने में बजट उस अंतिम निर्धारक के रूप में कार्य करता है जिसके माध्यम से विधायी रूप से प्रतिपादित नीति को यथार्थ स्वरूप प्रदान किया जाता है। राजकोषीय नीति के एक साधन के रूप में बजट इसके सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है अर्थात् एक अर्थव्यवस्था के संचालन और दिशाओं को प्रभावित करने के लिए एक राजकोषीय उपकरण के रूप में कार्य करता है। बजट के माध्यम से ही सरकार रियायतों और प्रोत्साहनों की घोषणा करके निजी निवेश व्यय के आकार और दिशा को प्रभावित करने का प्रयास करती है। बजटीय नीति पूंजी निर्माण को भी प्रोत्साहित कर सकती है और मुद्रास्फीति की जांच कर सकती है। सार्वजनिक क्षेत्र का दायरा एक अन्य क्षेत्र है जो बजटीय नीतियों के माध्यम से प्रभावित होता है।

जवाबदेही के उपकरण के रूप में : इसका उद्देश्य कार्यपालिका या कार्यकारी सरकार की विधायिका के प्रति वित्तीय और कानूनी जवाबदेही का निर्धारण करना होता है और इसी के साथ में कार्यकारी सरकार के संगठन के भीतर भी

प्रत्येक अधीनस्थ कार्मिक की ओर से अपने उच्चस्थ प्राधिकारी के प्रति इसी तरह की समान जवाबदेही को सुनिश्चित करना होता है। इस स्वरूप में वह एक लेखांकन प्रणाली भी होती है।इसमें अंकक्षण का सहारा यह जाँच करने के लिए लिया जाता है कि क्या व्यय प्राधिकरण के अनुरूप है और क्या यह व्यय बजटीय स्वीकृतियों के अनुसार और बजट में स्वीकृत उद्देश्य के अनुसार किया गया है।

बजट और नियोजन के के रूप में : नियोजन प्रणाली सदैव बजटीय प्रक्रिया में अन्तर्निहित रहती है। नियोजन दीर्घकालिक लक्ष्यों को मध्यम अवधि के परिचालन उद्देश्यों के रूप में न्यूनतम लागत पर कार्यान्वित करने का प्रयास करता है और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन किए गए कार्यक्रमों के अनुरूप ही मानवीय, भौतिकी और वित्तीय संसाधनों का कुशलतापूर्वक आवंटन करता है। सरकार के लक्ष्यों को मूर्त रूप देने वाली नीतियों के संदर्भ में कार्यक्रमों के मूल्यांकन की नीति नियोजन और बजटिंग का मिलन स्थल है।

सूचनात्मक उपकरण के रूप में : बजट दस्तावेज में विभिन्न वर्गों के लिए बहुमूल्य जानकारी होती है। बजट का कार्यात्मक वर्गीकरण प्रत्येक क्षेत्र में सरकार के प्रयासों की एक स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत करता है। बजट में विभिन्न आर्थिक संकेतकों जैसे राष्ट्रीय आय, खपत, व्यय, पूंजी निवेश, घाटे के वित्तपोषण आदि पर बहुत अधिक आंकडे होते है। व्यापार, समुदाय और उद्योगपतियों के लिए यह एक महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है जो आने वाले वर्ष में उनके व्यवसाय को प्रभावित कर सकता है। . आम लोगों को भी बजट का बेसब्री से इंतजार रहता है।

निष्पादन मूल्यांकन के उपकरण के रूप में : बजटीय डेटा समग्र प्रदर्शन के बारे में जानकारी प्रदान कर सकता है और विशिष्ट डेटा एक परियोजना के प्रदर्शन, विशेष विभाग के कार्यक्रम को इंगित करता है। प्रत्येक वर्ष के प्रदर्शन की तुलना की

जा सकती है। लागत लाभ विश्लेषण उद्देश्यों या गतिविधियों के पुनर्गठन व पुनः आवंटन में मदद कर सकता है।

बजट के प्रमुख प्रकार : अनेक प्रतिमानों के आधार पर बजट को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। बजट के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैः

दीर्घकालीन बजट (Long Term Budget) **:** ऐसा बजट जो कि दीर्घकालीन ध्येय को पूरा करने के लिए 5 या 10 या इससे अधिक समयावधि के लिए बनाया जाता है तो इसे दीर्घकालीन बजट कहते है। किसी देश की दीर्घकालिक जरूरतों पर विचार किए बिना एक वर्ष के बजट के माध्यम से उन्हें पूरा करना संभव नहीं होता है। आर्थिक प्रणाली के अनेक क्षेत्रों जैसे रक्षा का सुदृढ़ीकरण, संचार का विस्तार, आर्थिक और औद्योगिक विकास इत्यादि को एक वर्ष के भीतर प्रभावी बनाना संभव नहीं हो सकता हैं। अतः इनके विकास के लिए दीर्घकालीन बजट बनाना आवश्यक होता है।

सन्तुलित बजट (Balanced Budget) **:** ऐसा बजट जिसमें राजस्व और व्यय की अनुमानित राशि एकसमान होती है तो इसे सन्तुलित बजट कहते हैं। इसी के समानान्तर बजट के दो अन्य स्वरूप भी होते है जिन्हें घाटे का बजट अथवा अधिशेष बजट या आधिक्य के बजट के नाम से जाना जाता है अर्थात् यदि अनुमानित राजस्व अनुमानित व्यय से कम हो तो इसे घाटे का बजट कहा जाता है। इसके विपरीत यदि अनुमानित राजस्व अनुमानित व्यय से अधिक हो तो तो इसे अधिशेष बजट के नाम से जाना जाता है। यद्यपि अधिकांश देश घाटे के बजट का सहारा लेते हैं। घाटे का बजट देश की आर्थिक प्रगति का संकेत होता है लेकिन घाटा बहुत ज्यादा नहीं होना चाहिए। घाटे को आम तौर पर अधिक मुद्रा निर्गमन के माध्यम से कवर किया जाता है लेकिन अगर राष्ट्रीय मुद्रा की मात्रा बहुत

अधिक हो जाए तो यह उच्च मुद्रास्फीति को जन्म देती है। संतुलित बजट को सामान्यतया सरकारी क्षेत्रों में खारिज किया जाता है क्योंकि संतुलित बजट समुदाय के लिए बहुत आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के प्रावधान में बाधा डालता है तथा सार्वजनिक व्यय में अतिरिक्त सावधानी की वकालात करता है। संतुलित बजट निजी वित की पहली पसंद होता है।

नकद और राजस्व बजट (Cash and Revenue Budget) **:**
ऐसा बजट जिसमें आय और व्यय के अनुमान को एक वित्तीय वर्ष में यर्थाथ स्वरूप में प्राप्त राजस्व या आय और खर्च के रूप में दिखाया जाता है तो इसे नकद बजट कहा जाता है। इसे ब्रिटेन भारत एव अमेरिका की बजटिंग प्रणाली में देखा जा सकता है। यदि एक वित्तीय वर्ष में अर्जित आय और व्यय जो कि उस वित्तीय वर्ष के बजट में दिखाए जाते हैं लेकिन वास्तव में ऐसे आय एवं व्यय का वास्तविक स्वरूप से कोई सम्बन्ध नहीं होता है तो इसे राजस्व बजट कहा जाता है। फ्रांस की बजटिंग प्रणाली में राजस्व बजट को देखा जा सकता है।

लाइन-आइटम बजट (Line Item Budget) **:** लाइन आइटम बजट प्रणाली का विकास 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान इंग्लैंड में हुआ। इस बजट प्रणाली को एक कानूनी और लेखा उपकरण के रूप में देखा जाता था। इस बजटिंग प्रणाली के तहत बजट अभिकरण की मुख्य जिम्मेदारी होती थी कि वह प्रति वर्ष विविध विभागों से उनकी व्यय की आवश्यकताओं के अनुसार अनुमानों को समेकित करे। सरकारी बजट का यह पारंपरिक प्रारूप कार्यालय या आधिकारिक जवाबदेही के एकमात्र उद्देश्य को पूर्ण करता है। यह सरकार की वित्तीय गतिविधियों पर संसदीय नियंत्रण को स्थापित करने का एक दस्तावेज है। इसके अन्तर्गत संपूर्ण व्यय को अनुदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक मंत्रालय अपने अधीनस्थ संगठनों में से प्रत्येक के लिए अपनी आवश्यकताओं और अलग-अलग

मांगों के लिए एक अनुदान मांग प्रस्तुत करता है। इस प्रकार से अनुदान की मांग एक संगठनात्मक प्रारूप का पालन करती है और प्रत्येक मांग का वर्गीकरण वस्तुवार या मदवार या आईटमवाइज होता है। इसे ही लाइन आईटम बजट कहा जाता है। इस प्रकार के बजट में व्यय के मदबद्ध वर्गीकरण पर ध्यान दिया जाता है। यह बजट पर अधिकतम नियंत्रण के आधार प्रस्तुत करता है।

कार्यकारी बजट (Executive Budget) : यह 20वीं सदी की घटना है। यह 'कार्यकारी नेतृत्व' के सिद्धांत पर आधारित है, जिसका अर्थ है 'अनुमानों को तैयार करना, और बजट का निष्पादन, जैसा कि विधानमंडल द्वारा अनुमोदित है, मुख्य कार्यकारी को सौंपना। इस तरह कार्यकारी बजट वित्तीय प्रक्रियाओं में किसी भी कमी के साथ-साथ निराशाजनक प्रोग्रामर परिणामों के खिलाफ प्रशासन की अधिक जवाबदेही की सुविधा प्रदान करता है।

एकमुश्त बजट (Lump Sum Budget) : इसके तहत न केवल वस्तुओं के बीच बल्कि संगठन की इकाइयों और स्वीकृत कार्य गतिविधियों के बीच भी बजट का आवंटन किया जाता है। यह राष्ट्रीय स्तर पर समग्र वितरण का एक त्वरित विचार प्रस्तुत करता है और इसके अन्तर्गत आवंटन के क्षेत्र में विधानमंडल के द्वारा क्षेत्र दर क्षेत्र में संशोधन किया जा सकता है।

कार्यक्रम बजट (Programme Budget) : इस बजट को निष्पादन या परफोर्म बजट की दिशा में बढने वाला एक कदम माना जाता है। यह बजट कार्य के परिणाम पर ध्यान केंद्रित करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसे लेखाकार के बजाय बजटिंग के 'प्रबंधकीय दृष्टिकोण' के रूप में जाना जाता है।

निष्पादन बजट (Performance Budget) : द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रबंधकीय दृष्टिकोण को प्रभावी बनाने के प्रयासों को तेज किया गया तथा निष्पादन बजट बनाने का आग्रह किया गया। निष्पादन बजट बनाने का अधिकांश प्रोत्साहन

अमेरिका के पहले हूवर आयोग 1947-1949 से मिला। प्रथम हुवर आयोग ने सिफारिश की कि “संघीय सरकार की संपूर्ण बजटीय अवधारणा को कार्यों, गतिविधियों और परियोजनाओं के आधार पर बजट को अपनाकर नया रूप दिया जाना चाहिए“, और इस प्रक्रिया को ’निष्पादन या प्रदर्शन बजट’ का नाम दिया जाना चाहिए। निष्पादन बजट सार्वजनिक वयय को कार्यों, कार्यक्रमों और गतिविधियों के संदर्भ में प्रस्तुत करता है और इस प्रकार से वह लाइन-आइटम बजट से अलग होता है जो कि केवल कर्मचारियों, फर्नीचर, उपकरणों आदि पर बल देता है। एक संगठन के उद्देश्यों का विश्लेषण करके एक प्रदर्शन बजट शुरु होता है और यह तय करना कि किन सामान्य शीर्षकों के तहत इसके व्यय का कार्यात्मक रूप से सर्वोत्तम विश्लेषण किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में शिक्षा विभाग का कार्य ’शिक्षा’ है लेकिन इसके अन्तर्गत एक कार्यक्रम ’प्राथमिक शिक्षा’ हो सकता है। इस कार्यक्रम के तहत परियोजना और गतिविधि क्रमशः एक स्कूल भवन का निर्माण और प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों का प्रशिक्षण हो सकता है। इसे निष्पादन बजटिंग के नाम से जाना जाता है।

प्लानिंग-प्रोग्रामिंग-बजटिंग (Planning-Programming Budgeting) : प्रदर्शन बजट की कमियों के कारण योजना-प्रोग्रामिंग-बजट की अवधारणा 1960 के दशक में यू.एस. में विकसित हुई। पीपीबी का पहला प्रयोग अमेरिकी ऑटोमोबाइल कंपनी - ’जनरल मोटर्स’ द्वारा 1924 की शुरुआत में किया गया था और आगे चलकर बाद में 1964 में पीपीबी को पूरे रक्षा विभाग के लिए अपनाया गया था। इसकी सफलता से प्रभावित होकर राष्ट्रपति जॉनसन ने 1965 में संपूर्ण संघीय बजट के लिए पीपीबी प्रणाली निर्धारित की। प्लानिंग अर्थात् संगठन के मूल लक्ष्यों का निर्धारण और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम गणना किए गए कार्यक्रमों का चयन करना। प्रोग्रामिंग अर्थात् इन कार्यक्रमों को लागू करने

के लिए आवश्यक विशिष्ट परियोजनाओं का यथासंभव कुशलता से निर्धारित और निष्पादन शामिल है। बजटिंग लक्ष्यों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं को प्रशासनिक शाखा के भीतर समीक्षा के लिए धन अनुमानों में परिवर्तित करने और कानून द्वारा अंतिम कार्यवाही करने की प्रक्रिया है। इसके चार मुख्य तत्व सरकार और उसके कार्यक्रमों के लिए स्पष्ट लक्ष्य; भविष्य-वर्ष के निहितार्थों की पहचान; सभी प्रासंगिक लागतों का विश्लेषण; तथा कार्यवाही के वैकल्पिक पाठ्यक्रमों और प्रत्याशित परिणामों का व्यवस्थित विश्लेषण है। यह बजट प्रणाली कुछ स्कैंडिनेवियाई और पश्चिमी यूरोपीय देशों में पाई जाती है।

ज़ीरो-बेस बजटिंग (Zero Base Budgeting) **:** इस बजटिंग अवधारणा की उत्पत्ति अमेरिका में हुई थी। इसे पीटर.ए द्वारा टेक्सास इंस्ट्रूमेंट्स कंपनी में विकसित किया गया था। अमेरिकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर ने 1977 में इसे संघीय सरकार की बजट प्रणाली में अपनाया। इसे प्रत्येक वर्ष के सभी कार्यक्रमों और व्यय के मूल्यांकन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें प्रत्येक प्रबंधक को अपने संपूर्ण बजट अनुरोध को विस्तार से उचित ठहराने की आवश्यकता होती है। भारत में इसको शुरू करने का निर्णय 1986 में तत्कालीन वितमंत्री श्री वी.पी. सिंह तत्कालीन वितमंत्री ने लिया तथा वर्ष 1987-88 में इसे संघ स्तर पर विभिन्न विभागों और मंत्रालयों द्वारा अपनाया गया था।

इस प्रकार से बजट के उपरोक्त प्रकारों के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि बजट के अनेक प्रकार होते है। यह उस देश की राजनीतिक प्रणाली के स्वरूप एवं आर्थिक प्रणाली को प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करता है कि बजट के कौनसे स्वरूप को अपनाया जाता है तथापि बजट समस्त वितीय प्रशासन की केन्द्रीय धूरी होता है।

भारत में बजट की प्रक्रिया एवं उसका कार्यान्वयन : भारत के संविधान का अनुच्छेद 112 एक वार्षिक वित्तीय विवरण

का उल्लेख करता है। इस वार्षिक वितीय विवरण के अन्तर्गत आगामी वित्तीय वर्ष के लिए भारत सरकार की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय के विवरण को अभिव्यक्त किया जाता है। प्रत्येक वितीय वर्ष (वित्तीय वर्ष की अवधि भारत, इंग्लैंड और अधिकांश राष्ट्रमंडल देशों में 1 अप्रैल से 31 मार्च तक, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, इटली, स्वीडन में 1 जुलाई से 30 जून तक तथा फ्रांस और अन्य यूरोपीयन देशों में 1 जनवरी से 31 दिसम्बर तक है।) में प्रस्तुत किये जाने वाले इस वार्षिक वित्तीय विवरण में राजस्व का विवरण, व्यय का विवरण, और एक समग्र विवरण शामिल रहता है। यह वार्षिक वित्तीय विवरण भारत की संचित निधि पर प्रभारित राशि और अन्य व्ययों को पूरा करने के लिए आवश्यक धन को दर्शाता है। भारतीय बजटीय प्रक्रिया में निम्नलिखित **5 कार्य शामिल हैं : बजट तैयार करना, बजट के अधिनियमन का विधायी प्राधिकरण, बजट का निष्पादन, लेखांकन और लेखा परीक्षा।**

बजट का निरूपण :
पूरे देश के लिए एक ही बजट नहीं होता है अपितु राज्यों के अपने-अपने बजट भी होते हैं तथापि संविधान संघीय है। केंद्रीय स्तर पर भी दो बजट होते हैं - आम बजट और रेल बजट। रेल बजट को 1921 में आम बजट से अलग कर दिया गया था। इस व्यवस्था का लाभ यह है कि पहला रेलवे नीति के लिए एक व्यावसायिक दृष्टिकोण की सुविधा है और दूसरा रेलवे के सामान्य राजस्व में से एक निश्चित वार्षिक योगदान का भुगतान देश को करने के बाद शेष को रेलवे अपने विकास के लिए रख सकता है। भारत में बजट के निर्माण में निम्नलिखित कार्य शामिल होते हैं जो नीचे दिए गए क्रम में सम्पादित किये जाते हैं:

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Budget Process in India

बजट अनुमान तैयार करने की जिम्मेदारी उस कार्यपालिका पर होती है जो प्रशासन चलाने के लिए जिम्मेदार होती है और इसलिए यह कहने के लिए सबसे अच्छी स्थिति में होती है कि इसके लिए कितनी धनराशि की आवश्यकता है। बजट तैयार करने की संपूर्ण जिम्मेदारी वित्त मंत्रालय की होती है लेकिन ये प्रशासनिक-रणनीतिक मंत्रालय होते हैं जिन्हें प्रशासनिक आवश्यकताओं का विस्तृत ज्ञान होता है। बजट में योजना प्राथमिकताओं को शामिल करने के लिए वित्त मंत्रालय को योजना आयोग के साथ निकट संपर्क में रहना होता है। इसके अलावा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक भी इसमें शामिल होता है क्योंकि वह ऐसा प्राधिकारी होता है जो कि आवश्यक अनुमान तैयार करने के लिए लेखांकन कौशल उपलब्ध कराता है। बजट अनुमान तैयार करने के संबंध में किया जाने वाला कार्य अगले वित्तीय वर्ष के प्रारंभ होने से 6 से 8 माह पूर्व प्रारंभ हो जाता है। चूंकि भारतीय वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से शुरू होता है, इसलिए भारत में सितंबर के महीने में बजट तैयार करना शुरू कर दिया जाता है।

1. कार्यालयों के प्रमुखों के द्वारा आरंभिक अनुमान तैयार करना :

सर्वप्रथम वित्त मंत्रालय (राज्यों के मामले में वित्त विभाग) के एक परिपत्र द्वारा विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालयों या विभागों को अनुमानों की तैयारी शुरू करने के लिए कहा जाता है। ये निर्देश संवितरण अधिकारियों यानी कार्यालयों के प्रमुखों को देते हैं। मुद्रित प्रपत्रों की आपूर्ति की जाती है जिसमें अनुमान और अन्य अपेक्षित जानकारी भरनी होती है। प्रत्येक प्रपत्र में के लिए कॉलम होते हैं जैसे कि (ए) पिछले वर्ष के वास्तविक, (बी) चालू वर्ष के लिए स्वीकृत अनुमान, (सी) चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान, (डी) अगले वर्ष के बजट अनुमान, (ई) चालू वर्ष के वास्तविक (तैयारी के समय), और (च) पिछले वर्ष की इसी अवधि के

वास्तविक अनुमान।

आगामी वाले वर्ष का अनुमान निम्न के आधार पर लगाया जाता है अर्थात् चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान; पिछले वर्ष के 12 महीने के वास्तविक; पिछले वर्ष के आंकड़ों में कोई पहचानने योग्य अनियमितता; तथा कोई विशेष परिस्थितियाँ जो भिन्नताएँ पैदा करती हैं। बजट सम्बन्धी अनुमान दो भागों में तैयार किए जाते हैं। भाग एक मौजूदा राजस्व और शुल्क से संबंधित है होता है और भाग दो व्यय की नई योजनाओं और राजस्व के किसी भी मौजूदा स्त्रोत को छोड़ने के प्रस्तावों से संबंधित होता है।

2. नियंत्रण अधिकारियों के द्वारा जांच एवं समीक्षा करना :

संवितरण अधिकारी विभाग के प्रमुख को प्राक्कलन भेजते हैं और विभाग का प्रमुख उन्हें इस तरह की समीक्षा और संशोधन के बाद पूरे विभाग के लिए समेकित करता है जैसा कि वह आवश्यक समझे। इस तरह की समीक्षा के दौरान विभाग के प्रमुख को समग्र रूप से विभाग के लिए संभावित अनुदान के आलोक में नए खर्च के लिए विभाग की विभिन्न शाखाओं और अनुभागों से प्राप्त प्रस्तावों में से कुछ को स्वीकार करना होता है और दूसरों को अस्वीकार करना होता है ताकि सबके साथ में सापेक्ष महत्व का न्याय हो सके। इनमें से विभिन्न विभागों से प्राक्कलन उपयुक्त सचिवालय/विभाग को उसकी सामान्य नीति के आलोक में एक बार फिर जांच के लिए भेजे जाते हैं और अंत में सचिवालय विभाग अनुमानों को वित्त मंत्रालय या विभाग को भेजते हैं।

3. महालेखाकार के द्वारा संशोधत अनुमानों की जांच एवं समीक्षा एवं पूर्ति करना :

भारत में ये वितीय अनुमान महालेखाकार के हाथ से भी होकर गुजरते हैं जो कि अपनी लेखा पुस्तकों से वास्तविक और कुछ अन्य जानकारियों की आपूर्ति करता हैं।

4. वित्त मंत्रालय के द्वारा अनुमानों की जांच करना : विभिन्न विभागों से प्राप्त अनुमानों की अंतिम रूप से वित्त मंत्रालय

द्वारा जांच की जाती है और इस तरह के संशोधन या संशोधन के बाद जो आवश्यक हो उसे समग्र रूप से सरकार के बजट में समेकित किया जाता है। इसकी संवीक्षा प्रशासनिक मंत्रालय की प्रकृति से भिन्न होती है। यह व्यय की नीति में नहीं जाता है। यह मुख्य रूप से प्रशासनिक मंत्रालय की जिम्मेदारी है। वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की संवीक्षा वित्तीय दृष्टि से अर्थात् मितव्ययिता और धन की उपलब्धता के आधार पर की जाती है। यह उन प्रशासनिक मंत्रालयों के प्रस्तावों की अंतर्निहित नीति पर सवाल नहीं उठाता जिसके लिए वे स्वयं जिम्मेदार हैं।
वित्त मंत्रालय को दो कारणों से अन्य विभागों के अनुमानों पर जबरदस्त नियंत्रण दिया जाता है। पहला तो वित्त मंत्रालय स्वयं खर्च करने वाला विभाग नहीं है और करदाताओं के हितों के एक गैर-प्रतिबंधित अभिभावक के रूप में कार्य करता है। दूसरा, वित्त मंत्रालय को प्रस्तावित व्यय को पूरा करने के लिए धन का पता लगाना होगा और इसलिए यह तय करने में उसकी भूमिका होनी चाहिए कि इसे खर्च किया जाना चाहिए या नहीं। वित्त मंत्रालय की जांच का संचालन नए व्यय के प्रस्तावों के मामले में सबसे अच्छा देखा जाता है, उदाहरण के लिए, एक नई सामाजिक सेवा पर, या एक नई दिशा में मौजूदा गतिविधि का विस्तार।
पंचवर्षीय योजना की अनिवार्य मांगें, कैबिनेट के नीतिगत फैसले, देश में मौजूदा हालात इन सभी को बजट में प्रतिबिंबित करना चाहिए और कुछ हद तक वित्त मंत्री को सीमित करना चाहिए।
वित्त मंत्रालय उन सभी प्रस्तावों पर बारीकी से विचार करता है जो सरकार पर नया या बढ़ा हुआ प्रभार लगाते हैं।
जो नियंत्रण भारत में वित मंत्रालय के द्वारा किया जाता है वैसा ही कार्य ब्रिटेन में कोषागार और अमेरिका में बजट ब्यूरो के द्वारा किया जाता है।

5. केबिनेट के द्वारा समेकित अनुमानों पर अन्तिम विचार करना :

वित्त मंत्री बजट अनुमानों की जांच करता है और प्रधानमंत्री के

परामर्श से कराधान आदि के संबंध में वित्तीय नीति तैयार करता है। हालांकि यह एक रहस्यपूर्ण मन्तव्य होता है। समेकित आंकड़े विचार करने के लिए कैबिनेट को प्रस्तुत किए जाते हैं। वित्त मंत्रालय का बजट प्रभाग मंत्रिमंडल के आदेशों के अनुसार इसमें आवश्यक परिवर्तनों को शामिल करता है और उसके बाद चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान अद्यतन करता है। जब इसे अंततः कैबिनेट द्वारा अनुमोदित किया जाता है जो कि अब बजट के रूप में संसद को प्रस्तुत करने के लिए तैयार होता है। इस प्रकार से भारतीय बजट उपयुक्त पाँच चरणों से गुजरकर तैयार होता है जिसे वित मंत्री के द्वारा संसद पहले लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है।

बजट का अधिनियमन या संसद से अनुमोदन की प्रक्रिया : बजट औपचारिक रूप से वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है लेकिन विधायी प्राधिकरण के लिए संसद में प्रस्तुत करने से पहले राष्ट्रपति द्वारा इसकी सिफारिश की जानी चाहिए। वास्तव में यह वित्तीय प्रशासन के नियंत्रण के साधन के रूप में बजट को पूरा करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। सभी संसदीय व्यवस्था वाली लोकतांत्रिक प्रणालियों में यह एक प्रमुख सिद्धांत है कि संसद की पूर्व स्वीकृति के बिना न तो कोई कराधान लगाया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। इसके साथ ही बजट प्रक्रिया कार्यपालिका, संसद के आन्तरिक संगठन एवं स्वयं सांसदो से भी प्रभावित होती है। **भारतीय संसद में प्रस्तुत बजट निम्नलिखित पाँच चरणों से होकर गुजरता** है जो कि निम्नलिखित है :

1. संसद में बजट का परिचय या बजट की प्रस्तावना का चरण।

2. सामान्य परिचर्चा का चरण।

3. अनुदान की मांगों पर मतदान का चरण।

4. विनियोग विधेयक पर विचार और पारित होने का चरण।

5. वित्त विधेयक के रूप में कराधान प्रस्तावों पर विचार और पारित होने का चरण।

1. प्रस्तावना का चरण :
भारत में बजट को दो भागों - रेल बजट और सामान्य बजट में फ्रेम करना, पेश करना और पारित करना प्रथागत हो गया है। रेल बजट को संसद में प्रक्रिया और कार्य संचालन के नियमों के नियम 134 द्वारा नियमित किया जाता है जो दो या दो से अधिक भागों में बजट प्रस्तुत करने का प्रावधान करता है। इसके प्रत्येक भाग को उसी तरह से निपटाया जाता है जैसे कि वह बजट था। दोनों के मामले में प्रक्रिया समान है सिवाय इसके कि रेल बजट रेल मंत्री द्वारा पेश किया जाता है और वित्त मंत्री द्वारा आम बजट पेश किया जाता है। रेल बजट आम बजट से पहले का होता है।
बजट के अधिनियमन के संबंध में संसद की शक्तियाँ संविधान में ही निहित होती हैं। बजट से सम्बन्धित प्रासंगिक अनुच्छेद 112 से 117 तक हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रावधान ध्यान देने योग्य हैं:

1. राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना अनुदान की कोई मांग नहीं की जाएगी।
2. व्यय से संबंधित कोई भी प्रस्ताव राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना नहीं लाया जा सकता है।
3. संसद कर में वृद्धि नहीं कर सकती, हालांकि उसे इसे कम करने या समाप्त करने का अधिकार है।
4. भारत की संचित निधि ;ब्वदेवसपकंजमक थ्नदकद्ध पर ’प्रभारित’ व्यय जमा नहीं किया जाएगा। हालांकि यह चर्चा के अधीन तो है परन्तु संसद में मतदान के लिए नहीं है।
5. संसद विनियोग विधेयक में इस तरह से संशोधन नहीं कर सकती है, जिसका प्रभाव किसी भी ’भारित’ व्यय की राशि में बदलाव से हो।

6. राज्य सभा की शक्तियाँ वित्तीय मामलों में काफी प्रतिबंधित हैं। अनुदान की मांग पर मतदान लोकसभा का विशिष्ट विशेषाधिकार है। बजट को राज्यों की परिषद (राज्य सभा) के समक्ष भी रखा जाता है, हालांकि यह कक्ष केवल इस पर चर्चा कर सकता है और अनुदान पर इसका कोई अधिकार नहीं है। वित्त विधेयक के मामले में राज्यसभा के पास बहुत सीमित शक्तियां होती हैं। राज्य सभा को इसे 14 दिनों के भीतर बिना किसी सिफारिश के या सिफारिश सहित अपनी सहमति देनी होगी। लोकसभा इनमें से किसी या सभी सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। हालांकि वित्त विधेयक फिर से राज्य सभा में नहीं जाता है अपितु इसे राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेत दिया जाता है। अब तक केवल एक बार 1977 में राज्यसभा ने वित्त विधेयक में कुछ बदलाव या सिफारिश की लेकिन लोकसभा ने इन सिफारिशों या परिवर्तनों को खारिज कर दिया और वित्त विधेयक को मूल स्वरूप में ही पारित कर अपने प्रभाव को स्थापित किया।

वित्त मंत्री सामान्यतया फरवरी के अंतिम कार्य दिवस पर लोकसभा में बजट पेश करता हैं। आजकल यह प्रातः 11 बजे प्रस्तुत किया जाता है। बजट सबसे पहले निचले सदन में वित्त मंत्री द्वारा पेश किया जाता है। वह बजट पेश करते हुए भाषण देता है जिसमें देश की सामान्य आर्थिक स्थिति, सरकार की वित्तीय नीति और बजट अनुमानों और चालू वर्ष के संशोधित अनुमानों के बीच होने वाले अन्तर का स्पष्टीकरण शामिल होता है। इस भाषण का व्यापार और वित्तीय हलकों द्वारा बेसब्री से इंतजार किया जाता है क्योंकि यह उन्हें आगामी वित्तीय वर्ष के लिए कराधान प्रस्तावों,

टैरिफ प्रवृत्तियों, उद्योगों को सुरक्षा और सरकार की सामान्य आर्थिक और वित्तीय नीति की पहली सूचना देता है। बजट भाषण एक लंबा दस्तावेज है और इसकी मुद्रित प्रतियां, बजट अनुमान और व्याख्यात्मक ज्ञापन सदस्यों के बीच परिचालित किए जाते हैं।

2. सामान्य परिचर्चा का चरण : बजट पेश होने के दिन नहीं अपितु इसके पेश होने के कुछ दिनों बाद आम चर्चा शुरू हो जाती है। इसके लिए दो या तीन दिन आवंटित किए जाते हैं। यह बजट में अंतर्निहित सामान्य सिद्धांतों या नीति तक ही सीमित है। हालांकि इसमें न तो बजट के विवरण पर चर्चा की जाती है, न कोई मतदान किया जाता है और न ही कटौती प्रस्तावों की अनुमति होती है। बजट की सामान्य चर्चा ब्रिटिश भारत के अतीत से लटकी हुई है जब भारतीय विधानमंडल के पास बजट को वोट देने की शक्ति नहीं थी, लेकिन वह केवल उस पर चर्चा कर सकता था। नई व्यवस्था के तहत यह कुछ उद्देश्यों को पूरा करता है - सदस्यों के पास राजस्व अनुमानों, सरकार के तरीकों और साधनों के कार्यक्रम पर चर्चा करने का अवसर होता है और शायद सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य है, 'भारित' व्यय। यह चरण करों के साथ-साथ सरकार को व्यय के बजट प्रस्तावों पर सदन की भावनाओं का पूर्वाभास प्रदान करता है। जैसा कि अपेक्षित है बहस के अंत में वित्त मंत्री सदस्यों द्वारा लगाए गए विभिन्न आरोपों का खंडन करते हुए एक सामान्य उत्तर देता है।

3. अनुदान मांगों पर मतदान का चरण : यह मतदान व्यय के मतदान योग्य भागों तक ही सीमित है; **'प्रभारित' व्यय** मतदान के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता है। मांगों पर मतदान लोकसभा का विशेष विशेषाधिकार है। इस स्तर पर लोकसभा अनुमानों की पूरी तरह से जांच करती है और अनुमानों की चर्चा में काफी समय लगता है। अनुदान की मांगों पर चर्चा की जाती है और मंत्रालयवार प्रस्तुत किया जाता है। यह व्यवस्था सदन को प्रत्येक मंत्रालय की मांगों और कामकाज पर विचार

करने की सुविधा प्रदान करती है। भारत में अनुदान मांगों पर मतदान के लिए आवंटित दिनों की कुल संख्या 26 दिन है। स्पीकर सदन के नेता के परामर्श से प्रत्येक मांग के साथ-साथ बजट के संपूर्ण व्यय भाग के लिए एक समय सीमा निर्धारित करता है। किसी अनुदान मांग के लिए निर्धारित समय सीमा समाप्त होते ही वह मतदान के अधीन हो जाता है। आवंटित अवधि के अंतिम दिन सदन का स्पीकर या अध्यक्ष शेष सभी अनुदान पर मांगों को मतदान के लिए रखता है कि क्या मांग पर चर्चा पूरी हुई है या नहीं। सामान्य रूप से आम बजट को 109 मांगों में विभाजित किया गया है, नागरिक व्यय के लिए 103 और रक्षा निर्भरता के लिए 6 मांगे होती है। रेल बजट में 32 मांगें होती हैं। प्रत्येक मांग मतदान के अधीन होती है। सम्बन्धित विषय के प्रभारी मंत्री द्वारा एक भाषण के साथ मांग पेश की जाती है, जो काफी हद तक राजनीतिक होती है, वित्तीय नहीं। यह सक्रिय चर्चा या बहस का चरण होता है। कटौती प्रस्तावों को आगे बढ़ाकर चर्चा शुरु की जाती है। इसके पीछे का विचार यह है कि सदस्य उन सटीक बिंदुओं को निर्दिष्ट करते हैं जिन पर वे चर्चा को केंद्रित करना चाहते हैं। सामान्य रूप से कटौती प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैः

1. **नीतिगत कटौती प्रस्ताव :** यह एक मांग के तहत पॉलिसी को अस्वीकृत करता है। इस प्रस्ताव में एक रुपये की कटौती की मांग की जाती है।
2. **अर्थव्यवस्था में कटौती :** यह प्रस्तावित व्यय में अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने की संभावना को उजागर करता है। अर्थव्यवस्था में कटौती का प्रस्ताव प्रस्तावित व्यय को एक निर्दिष्ट राशि में से कम करने की मांग करता है।
3. **सांकेतिक कटौती :** यह भारत सरकार की जिम्मेदारी के दायरे में एक विशिष्ट शिकायत को

दर्शाता है। जैसे कि 100 रुपये की कटौती की मांग करना।

इन कटौती प्रस्तावों का मुख्य गुण प्रशासन की कमियों को उजागर करना और उनका प्रचार करना है। कैबिनेट के पीछे बहुमत सताधारी दल या बहुमत दल का हाथ होता है। इस स से किसी भी प्रकार का कटौती प्रस्ताव पारित नहीं हो पाता है। विधिवत मतदान के बाद कोई मांग अनुदान में परिवर्तित हो जाती है।

भारित व्यय :

यह व्यय के अनुमानों का ऐसा भाग होता है जो सदन में मतदान के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। यद्यपि इसके द्वारा उस पर चर्चा की जा सकती है। इस भाग को भारित व्यय के रूप में जाना जाता है अर्थात् संचित निधि पर प्रभारित व्यय। इन मदों को सदन के वोट से बाहर करने का कारण यह है कि ये एक निश्चित या अपरिहार्य प्रकृति के होते है।

4. विनियोग विधेयक पर विचार और पारित होने का चरण :

जब लोक सभा में सभी मांगों पर मतदान कर दिया जाता है तो उन्हें 'प्रभारित व्यय' की मांगों के साथ विनियोग विधेयक में शामिल कर लिया जाता है। भारत की संचित निधि में से धन की निकासी के लिए और मांगों को वैध बनाने या अधिकृत करने के लिए विनियोग विधेयक का पारित होना आवश्यक होता है। संविधान के अनुच्छेद 114 में प्रावधान है कि भारत की संचित निधि में से विनियोग विधेयक को पारित करने के माध्यम के अलावा कोई पैसा बाहर नहीं निकाला जा सकता है। यह लोक सभा में किसी अन्य विधेयक की तरह पारित किया जाता है लेकिन इस विधेयक में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसमें शामिल सभी अनुदानों पर पहले ही मतदान हो चुका होता है। इसी के साथ भारित व्यय भी मतदान की श्रेणी में नहीं आता है। लोक सभा द्वारा पारित होने के बाद इसे स्पीकर के द्वारा धन विधेयक के रूप में

प्रमाणित किया जाता है और राज्य परिषद को भेजा जाता है। राज्यों की परिषद इसे संशोधित या अस्वीकार नहीं कर सकती है। उसे 14 दिनों के भीतर अपनी सिफारिशों के साथ या के बिना बिल लौटाना पड़ता है। लोक सभा इनमें से किसी एक या सभी सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। इसके बाद इसे राष्ट्रपति के पास सहमति के लिए भेजा जाता है और उसे इसे निश्चित रूप से सहमति देनी होती है। विनियोग विधेयक को पारित करने का उद्देश्य नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कार्य को सुगम बनाने के लिए सदन द्वारा दी गई आपूर्ति को प्रमाणित करना है।

5. वित्त विधेयक के रूप में कराधान प्रस्तावों पर विचार करने और पारित होने का चरण या अन्तिम चरण : विनियोग अधिनियम के पारित होने से बजट का व्यय भाग पूर्ण हो जाता है। लेकिन व्यय के लिए आय का होना भी आवश्यक होता है जो कि कराधान प्रस्ताव के द्वारा संग्रहित होती है। संविधान के अनुच्छेद 265 के अनुसार कोई भी कर कानून के अनुसार ही आरोपित एवं संग्रहित किया जा सकता है अन्यथा नहीं। भारत में संसद कानून बनाने वाला निकाय है। इसलिए उसके द्वारा सरकार को कराधान प्रस्तावों पर सहमति दी जाती है। इन कराधानों में कुछ कर स्थायी होते हैं और उनकी दरें इनकों संचालित करने वाले कानूनी प्रावधानों के तहत स्थायी होती है जबकि अन्य करों को विधायिका द्वारा वार्षिक आधार पर अधिकृत व संग्रहित किया जाता है जैसे कि आयकर, सीमा शुल्क आदि।

आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार के सभी कराधान प्रस्तावों को एक एकल विधेयक में शामिल किया जाता है जिसे वित्त विधेयक कहते है। वित विधेयक को हर साल संसद द्वारा पारित किया जाना होता है। यह सामान्य और मदवार परिचर्चा के लिए खुला रहता है। विनियोग विधेयक के विपरीत वित विधेयक में संशोधन प्रस्ताव के माध्यम से किसी भी कर को समाप्त करने या घटाने का प्रस्ताव रखा जा सकता है और कभी-कभी ऐसे

संशोधन सरकार के द्वारा भी स्वीकार कर लिए जाते हैं लेकिन इस संशोधन के माध्यम से न तो कोई नया कर आरोपित किया जा सकता और न ही किसी मौजूदा कर की दर में वृद्धि की जा सकती है। यद्यपि राष्ट्रपति की सिफारिश पर टैक्स की दर बढ़ाने या नया टैक्स लगाने का प्रस्ताव पेश किया जा सकता है। लोकसभा में वित्त विधेयक के पारित होने के बाद इसे राज्यसभा की सहमति के लिए भेजा जाता है। राज्य सभा को 14 दिनों के भीतर अपनी सिफारिशों के साथ या सिफारिशों के बिना विधेयक को वापस लौटाना होता है लेकिन लोक सभा किसी भी या सभी सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। यह बिल राष्ट्रपति की सहमति के साथ ही कानून बन जाता है। सामान्य रूप से बजट में राजस्व और व्यय दोनों के सामान्य वार्षिक अनुमान शामिल होते हैं तथापि विशेष या असाधारण परिस्थितियों में लोक सभा को निम्नलिखित प्रकार के अनुदानों के लिए प्रावधान बनाने होते है अर्थात् लेखानुदान (Vote on Account) ओट ऑन क्रेडिट (Vote on Credit) विशेष अनुदान (Special Grant) अतिरिक्त अनुदान (Excess Grant) टोकन अनुदान (Token Grant) अनुपूरक अनुदान (Supplementary Grant)

लेखानुदान :

यह नियमित बजट के पारित होने तक आगामी वित्तीय वर्ष के एक भाग के लिए अनुमानित व्यय के संबंध में लोक सभा द्वारा दिया गया एक अग्रिम अनुदान होता है।

प्रत्यानुदान अनुदान :

लोक सभा ऐसे व्यय को पूरा करने के लिए क्रेडिट पर वोट दे सकती है जिसकी राशि या विवरण सेवा के परिमाण या अनिश्चित प्रकृति (उदाहरण के लिए, युद्ध) के कारण सटीक रूप से नहीं बताया जा सकता है। इस प्रकार यह कार्यपालिका को दिया जाने वाला एक प्रकार का ब्लैंक चेक है। अनुच्छेद 116 (बी)

में वोट ऑन क्रेडिट के लिए संवैधानिक प्रावधान किया गया है, हालांकि इस उपकरण का अभी तक भारत में उपयोग नहीं किया गया है।

विशेष अनुदान :
विशेष अनुदान किसी भी वित्तीय वर्ष की वर्तमान सेवा का हिस्सा नहीं होते हैं। जब इनमें से किसी भी तरीके से अप्रत्याशित व्यय का प्रावधान नहीं किया जाता है, तो अचानक उत्पन्न होता है, इसे राष्ट्रपति द्वारा भारत की आकस्मिक निधि से दिए गए अग्रिमों से पूरा किया जा सकता है। इन अग्रिमों को बाद में संसद द्वारा विधिवत अधिकृत किया जाता है।

अतिरिक्त अनुदान :
अतिरिक्त अनुदान वित्तीय वर्ष के बाद मतदान किया जाता है। चूंकि संवितरण प्राधिकरण पूरे देश में फैले हुए हैं, इसलिए स्पष्ट रूप से खर्च को संसद द्वारा निर्धारित सीमा के भीतर रखना संभव नहीं है। कभी-कभी ज्यादा पैसा खर्च हो जाता है। इस तरह के व्यय को संसद से अतिरिक्त अनुदान प्राप्त करके नियमित किया जाता है। अधिक अनुदान की ऐसी सभी मांगों को पहले लोक लेखा समिति द्वारा लोकसभा में प्रस्तुत करने से पहले अनुमोदित करने की आवश्यकता होती है।

सांकेतिक अनुदान :
सांकेतिक अनुदान को सांकेतिक मतदान के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, जो एक स्व-वित्तपोषण योजना के लिए संसदीय अनुमोदन लेने का एक उपकरण है, जब एक नई सेवा पर प्रस्तावित व्यय को पूरा करने के लिए धन पुनर्विनियोजन द्वारा उपलब्ध कराया जा सकता है। एक सांकेतिक राशि (मान लीजिए, रु. 10) मतदान के लिए रखी जाती है, और धन संसद की मांग के अनुमोदन पर उपलब्ध कराया जा सकता है। इसे टोकन अनुदान के रूप में जाना जाता है।

अनुपूरक अनुदान :
एक पूरक वित्तीय विवरण सदन के समक्ष रखा जा सकता है यदि (ए) किसी भी सेवा के लिए बजट अनुदान बाद में अपर्याप्त पाया जाता है; या
(बी) किसी भी सेवा पर किया गया व्यय बजट में प्रदान की गई राशि से अधिक है ; या
(सी) किसी नई सेवा पर व्यय आवश्यक हो जाता है तो इसे विनियोग विधेयकों के लिए अपनायी जाने वाली सामान्य प्रक्रिया की तरह पारित करना होगा।
यह ध्यान देने वाली बात है कि पूरक मांगों की प्रणाली न केवल सार्वजनिक व्यय पर संसदीय नियंत्रण को कमजोर करती है अपितु यह सरकार और संसद के बीच के अनुबंध का उल्लंघन करने के समान है। अनुपूरक अनुदानों का सहारा कम से कम लिया जाना चाहिए।
इस प्रकार विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक के पारित होने के साथ ही बजट का अधिनियमन पूर्ण हो जाता है या इसके पारित होने की प्रक्रिया का समाप्त हो जाती है।

बजट का कार्यान्वयन या लागू करना (Execution of Budget in India) **:**
एक बजट तब तक किसी काम का नहीं है जब तक कि उसे लागू नहीं किया जाता है अर्थात् बजट के अनुसार ही राजस्व और व्यय को विनियमित किया जाता है। बजट को लागू करना कार्यकारी सरकार की जिम्मेदारी होती है और इसलिए कार्यकारी सरकार के भीतर शक्तियों का वितरण बजट के कार्यान्वयन की प्रक्रिया को निर्धारित करता है। बजट का कुशल कार्यान्वयन इस बात पर निर्भर करता है कि निष्पादन की जवाबदेहिता के साथ वित्तीय नियंत्रण किस हद तक परिचालन की स्वतंत्रता और लचीलेपन के बीच समनव्य स्थापित करता है। इसके अलावा इसे मजबूत केंद्रीय नियंत्रण और निर्देशन की भी आवश्यकता होती है।

बजट की शर्तों के भीतर व्यय का नियंत्रण राजस्व के संग्रहण की तुलना में कहीं अधिक जटिल विषय होता है और बजट निष्पादन में इस पर प्राथमिक से बल दिया जाता है। व्यय के नियंत्रण के दो मुख्य ध्येय होते हैं :

1. यह देखने के लिए कि किया जाने वाला व्यय किसी भी शीर्ष या मद के तहत बजटीय अनुदान से अधिक तो नहीं है, और
2. यह सुनिश्चित करना कि यह अनुचित, बेकारया फालतू, फिजूलखर्ची या अपव्यय तो नहीं है।

बजट में मतदान की गई राशि वह अधिकतम राशि होती है जिसे कार्यपालिका निर्दिष्ट उद्देश्यों के लिए खर्च कर सकती है और जिसे किसी भी मामले में नई विधायी मंजूरी के बिना बढाया नहीं जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि कार्यपालिका आवश्यकता और मितव्ययिता की परवाह किए बिना इतना अधिक खर्च कर सकती है। यह हमेशा निहित होता है कि बजटीय प्रावधान के बावजूद कार्यपालिका किसी भी वस्तु पर केवल न्यूनतम आवश्यक राशि खर्च करेगी जैसा कि एक सामान्य रूप से व्यक्ति निजी जीवन में विवेकशीलता के साथ करता है। इस प्रकार से व्यय पर कार्यकारी नियंत्रण की मशीनरी के रूप में दो इकाईयां अर्थात् वित मंत्रालय और विभिन्न प्रशासनिक विभागों के मुखिया शामिल हैं।

वित्त मंत्रालय :
भारत में वित्त मंत्रालय को बजट निष्पादन पर समग्र नियंत्रण रखने की जिम्मेदारी दी गई है। सरकार की वित्तीय नीतियों को चलाने के लिए एक साधन के रूप में वित्त मंत्रालय तीन चरणों में अपने खर्च की जाँच करके खर्च करने वाले अधिकारियों के वित्त का पर्यवेक्षण करता है अर्थात्

1. सैद्धांतिक रूप से कार्यक्रमों या नीतियों का अनुमोदन करना ;
2. बजट अनुमानों में प्रावधानों की स्वीकृति देना ;
3. प्रशासनिक मंत्रालयों/विभागों को प्रत्यायोजित की गई शक्तियों के अधीन व्यय करने की पूर्व सहमति प्रदान करना।

वास्तव में यह पहले और तीसरे चरण में नियंत्रण है जो आम तौर पर वित्त मंत्रालय का अधिक ध्यान और समय लेता है और यह प्रशासनिक मंत्रालयों के दिन-प्रतिदिन के कामकाज को प्रभावित करता है। इसी के साथ में वित्त मंत्रालय बजट को पूरा करने के संबंध में कई अन्य कर्तव्यों का भी निर्वहन करता है जैसे कि : यह देखता है कि वित्तीय वर्ष के दौरान प्रशासनिक मंत्रालयों को अधिक धन प्राप्त नहीं होता है, जितना वे खर्च कर सकते हैं, और यह कि वे वित्तीय वर्ष की समाप्ति से पहले जितनी जल्दी हो सके अव्ययित शेष राशि को आत्मसमर्पण कर देते हैं;
खर्च करने वाले विभागों से समय-समय पर रिपोर्ट के माध्यम से व्यय की प्रगति को देखना और आवश्यक होने पर उन्हें सावधान करना;
केंद्रीय राजस्व बोर्ड के माध्यम से राजस्व संग्रह का पर्यवेक्षण करना जो अधिक महत्वपूर्ण संघ कर एकत्र करता है;
नियंत्रण अधिकारियों की क्षमता से परे पुनर्विनियोग को मंजूरी देना;
तथा आम तौर पर प्रशासनिक मंत्रालयों को वित्तीय सलाह और मार्गदर्शन देना।

विभागीय प्रमुख :
वित्त मंत्रालय के समग्र नियंत्रण के अधीन प्रत्येक प्रशासनिक विभाग के प्रमुख को अपने विभाग में होने वाले व्यय के संबंध में नियंत्रण अधिकारी के रूप में नामित किया जाता है। यह देखने के लिए कि उनके निपटान में रखी गई राशि निर्दिष्ट उद्देश्यों पर खर्च

की जाती है। वर्तमान और प्रत्याशित व्यय पर निरंतर निगरानी रखना नियंत्रक अधिकारियों की जिम्मेदारी होती है। महालेखाकार प्रत्येक विस्तृत मद या शीर्ष के अंतर्गत संसदीय स्वीकृति के विरूद्ध व्यय की प्रगति को देखता है।

बजट निष्पादन की निरंतर समीक्षा और मूल्यांकन : बजट कार्यान्वियन की प्रक्रिया का सतत रूप से मूल्यांकन और इसकी समीक्षा की जाती है। प्रारंभिक समीक्षा सितंबर के महीने में होती है जब वास्तविक खर्च के चार महीने के आंकड़ों को ध्यान में रखा जाता है। अगली समीक्षा दिसंबर के महीने में होती है। इसी तरह तीसरी समीक्षा जनवरी में की जाती है। इस समय नौ महीने के वास्तविक आंकडों के आधार पर संशोधित अनुमान तैयार किए जाते हैं। इन समीक्षाओं के दौरान यह भी पता लगाया जाता है कि क्या अतिरिक्त धन के लिए संसद में जाने की आवश्यकता है। अगर वित्त मंत्रालय इससे संतुष्ट होता है तो पूरक बजट पेश करता है।

अक्सर ऐसा होता है कि एक ही अनुदान के अंतर्गत विभिन्न मदों में अधिकता और कमियां होती हैं। विभाग जहाँ आवश्यक हो वित्त मंत्रालय के परामर्श से एक शीर्ष से दूसरे में स्थानान्तरण की मंजूरी दे सकता है। जिन विभागों को अनुदान की पूरी राशि की आवश्यकता नहीं है, वे इसे अन्यत्र उपयोग करने के लिए वित्त मंत्रालय को सौंप देते हैं।

बजट का कार्यान्वियन तीन आधारों पर निर्भर करता है अर्थात् राजस्व का उचित संग्रहण ; एकत्रित धन का उचित संरक्षण; तथा कोष का उचित वितरण।

राजस्व का उचित संग्रह : राजस्व का संग्रह पहला कदम है और इसमें दो प्रमुख कार्य शामिल हैं - राजस्व का आकलन और उसका संग्रह। आकलन कुछ और नहीं बल्कि एक अधिनियम है जो यह निर्धारित करता है कि

विधायिका द्वारा दिए गए अधिकार के अनुसार विभिन्न निकायों या व्यक्तियों से कितनी राशि एकत्र की जानी है। इसके लिए निर्णय और विवेक की उच्च भावना की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, संग्रह वास्तव में मूल्यांकन की गई राशि को एकत्र करने का कार्य है। इसके लिए उच्च स्तर की सटीकता और सत्यनिष्ठा की आवश्यकता होती है और संग्रह करने वाली एजेंसी अपने विवेक का उपयोग नहीं कर सकती है। भारत में, वित्त मंत्रालय का राजस्व विभाग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के संग्रह में लगी मशीनरी पर समग्र नियंत्रण और पर्यवेक्षण का प्रयोग करता है। इस तरह का नियंत्रण दो बोर्डों के माध्यम से किया जाता है - केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केंद्रीय उत्पाद और सीमा शुल्क बोर्ड।

निधियों की अभिरक्षा या कोष का संरक्षण : मुख्य उद्देश्य गबन और दुर्विनियोजन की सभी संभावनाओं से बचना और धन के लेन-देन में सुविधा और शीघ्रता सुनिश्चित करना है। किसी भी देश का वित्तीय प्रशासन, हिरासत की दृष्टि से, उसके इतिहास, उसके क्षेत्र और बैंकिंग सुविधाओं पर निर्भर करता है। व्यापक बैंकिंग नेटवर्क के उदय के कारण सरकारी निधियों की अभिरक्षा के लिए सरकारी खजाने तेजी से गायब हो रहे हैं। बैंकिंग प्रणाली के उपयोग के माध्यम से अब सभी वित्तीय लेनदेन को नकद के माध्यम से करना आवश्यक नहीं है क्योंकि अब अधिकांश काम चेक, ड्राफ्ट, हुंडी और बैंक बिल के माध्यम से किया जा सकता है। आधुनिक प्रवृत्ति सरकारों के लिए अपने स्वयं के केंद्रीय या रिजर्व बैंक रखने की है। इसके कई फायदे हैं जैसे वित्तीय स्थिरता, सुरक्षा और सुरक्षा और भ्रष्टाचार और कदाचार का कोई खतरा नहीं है।

कोष का उचित संवितरण : भारत में संवितरण प्रणाली ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित है। संवितरण अधिकारी पर एक भारी कर्तव्य होता है जो कोषागार से धन निकालता है और उसे संवितरित करता है।

इस प्रकार से भारत में सम्पूर्ण बजट प्रणाली एक लम्बी प्रक्रिया

होती है जो अनेक चरणों से गुजरकर अन्तिम स्वरूप को प्राप्त करती है।

अतः निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि वितीय प्रशासन लोक प्रशासन की अन्य शाखाओं के समान एक महत्वपूर्ण अनुशासन होता है। वितीय प्रशासन सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था की ध्ूरी होता है। आज वितीय प्रशासन ने केवल लोक पशासन के लिए अपितु वाणिज्य एवं प्रबन्धन के अनुशासनों में भी एक कोर विषय के रूप में अध्ययन व अध्यापन से जुडा हुआ है। इसका महत्व दिनो दिन बढता ही जा रहा है। यह केवल सरकारी क्षेत्र से ही जुडी हुई धारणा नहीं है अपितु सरकारों के समानान्तर प्रभाव रखने वाले निजी संगठनों, कम्पनियों, निगमों से भी सम्बन्धित है और तो और वित प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आज के आर्थिक युग में विशिष्ट महत्व रखता है।

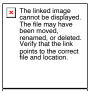

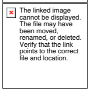

संदर्भ :

Burkhead, Jesse, 'Government Budgeting', John Wiley & Sons: NewYork, 1953

Groves, Harold M, Financing Government, Fifth Edition, Henry Colt and Co. New York' 1958

Lall, G.S. 'Public Finance and Financial Administration in India' Kapoor, New Delhi, 1976

Pinto P. J.J., 'System of FinancialAdministration in India' New Book Company, Bombay, 1943

Premchand A , 'Control of Public 'Expenditure in India, Allied Publishers: New Delhi, 1963

Sundram K P M, 'Indian Public Finance and Financial Administration' Sultan Chand & Sons, New Delhi, 1974

Thavaraj, M.J.K. 'Financial Administration of India' Sultan Chand & Sons, New Delhi, 1978

Wattal, P.K., 'Parliamentary Financial Control in India' Second Edition, Minema Book, Bombay, 1962

M J K Thavaraj, Financial Administration in India, Delhi, Sultan Chand & Sons, 1996

Sarapa, Public Finance in India, Kanishka Publishers Distributors, New Delhi, 2004

G.S.Lal, Financial Administration in India, New Delhi, HPJ Kapoor, 1987

Ruddar Dutt & K.P.Sundharam, Indian Economy, New Delhi, S. Chand & Co. Pvt. Ltd., 2010

M.Y.Khan and P.K.Jain, Finance Management, New Delhi, Tata McGraw Hill 1982

R.N.Srivastave, Management of Financial Institutions, Bombay, Himalaya Publishing House, 1988

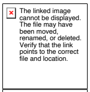

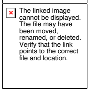

अभिशासन, सुशासन और ई-शासन की धारणा

अभिशासन की अवधारणा

(Concept of Governance)

सरकार से शासन की ओर बढने की अवधारणा का यह क्रम दूनिया के आर्थिक व्यवहार के इतिहास में छिपा हुआ है। 1930 ई. का वह दशक जिसने पूरी दूनिया की आर्थिक प्रणालियों अथवा अर्थव्यवस्थाओं की जडों को हिलाकर रख दिया और इसे वैश्विक महामंदी का नाम दिया गया। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की विफलता के परिणामस्वरूप जे एम केन्स ने नवीन कल्याणकारी राज्य की अदृश्य हाथ की संकल्पना को स्वीकार करने का आग्रह किया गया। ब्रिटेन के द्वारा **बेवरीज प्रतिवेदन, 1943** के आधार पर कल्याणकारी आर्थिक सुधारों को सामाजिक क्षेत्र में लागू किया गया और वह इस तरह से दूनिया के पहले कल्याणकारी राज्य के रूप में प्रसिद्ध हुआ। दुनियाभर में राज्य के द्वारा आर्थिक क्षेत्र में जनहितों की रक्षा करने की या राष्ट्रीयकरण की लहर आंरभ हुई। विशेषकर पिछडे राज्यों में इसका आगमन हुआ। **1980 और 1990 के दशक में** पुरी दूनिया में फिर से एक **नवीन क्रांति** का आगाज हुआ जिसने सरकार को शासन के द्वारा प्रतिस्थापित करने में निर्णायक भूमिका निभाई। यद्यपि यहाँ पर एक विशेष सोचने या चिंतन करने वाली बात यह है कि जनसेवाओं या सुविधाओं की प्रभावी वितरण प्रणाली को तथा कुशलता को

बढाने के लिए निजि क्षेत्र को बडे स्तर पर अवसर दिया गया लेकिन इसका श्रेय राज्य ने अपने सिर पर ले लिया अर्थात् वह **कल्याणकारी राज्य** के स्वरूप का विस्तार कर रहा है। यर्थाथ में वह जनता का हित कम कर रहा है और शोषण के अवसर अधिक उत्पन्न कर रहा है। इसका आभास हमें गहराई से तार्किक चिंतन करने पर ही मालूम हो सकता है अथवा हमारे जह्न में यह सवाल उत्पन्न हो सकता है। इसी के साथ हमे पुंजीवाद एवं उदारवाद को भी कदापि एक समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

अभिशासन का उदय : **गवर्नेंस या शासन या अभिशासन** कानून के प्रारूप, **हकूमत का तरीका या या शासकीय क्रियाओं (Pattern of Rule or Practices of Governing) के स्वरूप** को दर्शाता है। सामान्यतया इस टर्म का उपयोग 1980 व 1990 के दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र में किये गए सुधारों के पश्चात् राज्य की प्रकृति एवं भूमिका में आने वाले बदलावों को अभिव्यक्त करने के लिए किया जाता है। वास्तविक अर्थों में ये सुधार पदसोपानीय नौकरशाही के ढांचे से बाजार, अर्द्ध बाजार एवं संजाल तंत्र के नेतृत्व की ओर विवर्तन से सम्बन्धित थे विशेष रूप से सार्वजनिक सेवाओं के वितरण के क्षेत्र में। यह बदलाव विश्व स्तर पर बढती पार राष्ट्रीय आर्थिक गतिविधियों के रूप में और नवोदित क्षेत्रीय सहयोग संगठनों जैसे कि यूरोपियन संघ के रूप में दिखायी देने लगा।

अभिशासन या सुशासन की अवधारणा किसी भी कल्याणकारी राज्य का सबसे प्रभावी उपकरण है। शासन शब्द राज्य की लोकप्रियता में वृद्धि तथा राज्य की भूमिका के पुनः निर्धारण के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् राज्य को विकास के इंजन के रूप में देखा गया था लेकिन विकास के प्रदर्शन में विफलताओं के कारण वह इन सबके लिए उतरदायी भी ठहराया जाने लगा। इसलिए पूरी दुनिया में सार्वजनिक सेवाओं के वितरण के लिए नीति निर्माण और वैकल्पिक संस्थानों के लिए

वैकल्पिक रूपरेखा की खोज आरंभ हुई। विकास की रणनीति ने बाजार को मुक्त करने और आर्थिक नीतियों को उदार बनाने पर अधिक जोर दिया। शासन को आर्थिक सुधारों की ऐसी नीतियों से निकटता से जोड़ा जाने लगा और राज्य के साथ सार्वजनिक प्रशासन के लक्ष्य को अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का समर्थन करने वाले राज्य के रूप में देखा जाने लगा। अतः यह कहा जा सकता है कि नीतियों के निर्माण, उनके क्रियानव्यन एवं सार्वजनिक सेवाओं के वितरण में अन्य संगठनों के उपर राज्य की बढती निर्भरता ही सुशासन का प्रतीक है। जैसे कि **अन्तराष्ट्रीय सुशासन (International Governance)** के टर्म के अन्तर्गत हम देखते है कि कानून के प्रारूप के निर्माण में वैश्विक स्तर पर राज्य की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र संघ इसका स्वरूप निर्धारित करता है अथवा इसे हम **व्यावसायिक अभिशासन (Corporate Governance)** के टर्म के रूप में भी समझ सकते है जहाँ कानून या शासन का प्रारूप व्यवसाय के अधीन होता है और प्रणालियों, संस्थाओं तथा मानकों का निर्धारण निगमों के द्वारा किया जाता है, राज्य के द्वारा नहीं।

भारत में अभिशासन की धारणा का उदय : भारत में अभिशासन की अवधारणा का उदय आर्थिक मजबूरी के साथ 1990 के दशक में होता है। जब भारत के पास केवल एक सप्ताह तक आयात करने का कोष शेष रहा और उसे मजबूर होकर आई एम एफ की सेवा व शर्तो के साथ समझौता करना पड़ा तथा भारतीय अर्थव्यस्था को अन्तराष्ट्रीय बाजार के रूप में खोलने की शुरूआत करनी पडी जो कि अब तक एक बन्द अर्थव्यवस्था के रूप में प्रसिद्ध थी। 1991 में आर्थिक सुधारों की शुरूआत और नव-उदारवादी विचारधारा को विकास की रणनीति के रूप में स्वीकार करने के साथ-साथ सरकार को शासन (Governance) के रूप में देखा जाने लगा। शासन के इस कदम ने भारत में लोक प्रशासन के पूरे संदर्भ को बदल दिया है। यह उपागम पहले के उस दृष्टिकोण को शिथिल करने की मांग कर रहा था जिसमें

सार्वजनिक प्रशासन को लोगों तक सामान और सेवाओं को पहुँचाने के एक प्रमुख साधन के रूप में देखा गया था।

अभिशासन के निहितार्थ :

1. अभिशासन शासन को नियंत्रित करने वाली शैलियों के विकास को संदर्भित करने वाला एक आधारभूत समझौता है जिसके बाद से सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच की सीमाएँ धुंधली हो गई हैं।
2. सामाजिक समस्याओं का समाधान केवल राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा ही नहीं अपितु अन्य अभिनेताओं के द्वारा भी किया जा सकता हैं अर्थात् केवल राजनीतिक संस्थान अब शासन के एकमेव प्राधिकार का उपयोग नहीं कर सकती है।
3. शासन की अवधारणा सरकार द्वारा सामाजिक मुद्दों के समाधान के लिए टॉप टु डाउन उपागम के माध्यम से हल करने की सुव्यवस्थित धारणा से हटने का संकेत देती है। इसका विशेष बल राज्य और उसकी जन स्वीकार्यता की भूमिका को कम करने पर है।
4. अब केवल राज्य ही समाज को चलाने वाला एकमात्र अभिनेता नहीं है अपितु अब तीन अभिनेताओं का नेटवर्क संबंध - राज्य, बाजार और नागरिक समाज के रूप में विकसित हो चुका है जो कि विश्व स्तर पर शासन या अभिशासन के विचार का मुख्य आधार बन गया है।
5. सार्वजनिक सेवाओं के वितरण में राज्य से इतर संगठनों की प्रभावी भूमिका स्थापित होने लगी है।
6. यह सार्वजनिक नीति के उत्पादन और सार्वजनिक और निजी अभिनेताओं के योगदान पर केंद्रित है।

ये सब नीति नेटवर्क, सरकारी और अन्य अभिनेताओं के बीच औपचारिक संस्थागत और अनौपचारिक संबंधों के समूह हैं। यदि सार्वजनिक नीति निर्माण और कार्यान्वयन में विश्वासों और हितों के बारे में बातचीत की जाए तो ये अभिनेता अन्योन्याश्रित हैं ।

7. औपचारिक स्तर पर यह नीति नेटवर्क सार्वजनिक संस्थानों के रूप में उभरा है जहाँ सरकार, व्यापार और नागरिक समाज के बीच बातचीत हो सकती है। ये **अन्तर्सम्बन्ध नीति निर्गत** (Interaction Policy Output) को जन्म देते हैं। परिचालन की दृष्टि से सरकारों ने सलाहकार निकाय और विभिन्न प्रकार की परिषदों की स्थापना की है जहाँ सरकार के प्रतिनिधि और अन्य दो अभिनेता व्यवसाय या व्यापार और नागरिक समाज सदस्य हैं। ऐसे नीति नेटवर्क लॉबी समूहों से अलग हैं जिनकी भूमिका सरकार को अपने पक्ष में आउटपुट पाने के लिए प्रभावित करने की थी।

8. अनौपचारिक स्तर पर शासन का मतलब गैर-सरकारी अभिनेताओं के लिए सरकारी गतिविधियों को खोलना है। यह अब पदानुक्रमित निर्णय लेने का संरक्षण नहीं है, जो अक्सर गुप्त और बंद रहता है। तीन अभिनेता, राज्य, बाजार या व्यापार और नागरिक समाज, सार्वजनिक डोमेन में अधिक बार बातचीत करते हैं और सार्वजनिक नीतियों को एक साथ बनाने का प्रयास करते हैं। यह लॉबी समूहों की समझ से अलग है जो सरकार को अपने पक्ष में नीति बनाने या मोड़ने के लिए प्रभावित करते हैं। यह एक अधिक पारदर्शी सरकार की ओर बढने वाला कदम है जो नीति

निर्माण में तीनों में से प्रत्येक को सुनने और भागीदार बनने के लिए तैयार रहता है।

9. नीति तंत्र या पॉलिसी नेटवर्क के अलावा क्रियात्मक तंत्र या ऑपरेषनल नेटवर्क भी हो सकते हैं। ये नेटवर्क सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं को वितरित करने वाले उपकरण हैं जो एक एकल अभिनेता नहीं कर सकता है। सरकार ने सार्वजनिक हित के कार्यक्रमों को लागू करने में एक या दूसरे अभिनेता का सहयोग लेने का तरीका अपनाया है। इस तरह के सहयोग ने सार्वजनिक - निजी भागीदारी के प्रतिमान को लोकप्रिय बनाया है।
10. सुशासन के अर्थ में लोकतंत्र सफल आर्थिक विकास के लिए आवश्यक राजनीतिक संरचना के रूप में उभरता है और इस सन्दर्भ के भीतर लोकतंत्र और आर्थिक उदारवाद को वैचारिक रूप से जोड़ा जाता है।
11. सुशासन के इस एजेंडे में नागरिक समाज की अवधारणा इस धारणा पर आगे बढ़ती है कि शक्ति और शोषण राज्य के साथ जुड़ा हुआ है जबकि स्वतंत्रता और समानता नागरिक समाज के दायरे में आती है। यह नागरिक समाज की ओर जाता है जहां राज्य के बाहर संस्थानों का अस्तित्व यह मानने के लिए पर्याप्त आधार बन जाता है कि राज्य की शक्ति पर अंकुश लगाया गया है और इससे अधिक लोकतांत्रिकरण हो रहा है।

इस प्रकार से अभिशासन इस परिप्रेक्ष्य में है कि नागरिक समाज की अवधारणा इसके साथ कुछ योग्यता और मूल्य की धारणा रखती है। उदारीकरण की विचारधारा को बढ़ावा देने वालों

ने तीसरी दुनिया के अंतर्राष्ट्रीय दानदाताओं और सरकारों को नागरिक समाज के बारे में एक अलौकिक दृष्टिकोण बनाने में मदद की और उन्हें यह विश्वास दिलाने के लिए राजी किया कि उनकी सहायता और समर्थन की नीतियों का निर्माण किया जा सकता है। यह विचार कि नागरिक समाज कोई गलत काम नहीं कर सकता है और ऐसा कुछ भी नहीं है जो वह नहीं कर सकता' इसको व्यापक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों के बीच स्वीकार किया गया था। गैर सरकारी संगठन मशरूम की तरह पनपते हैं और नागरिक संगठनों के रूप में नागरिक समाज को मजबूत करने की पेशकश करते है। कई मामलों में वे बड़े पैमाने पर नागरिक समाज की ओर से बोलने का दावा भी करते है। इस प्रकार से विकास के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहायता अभिकरणों और नीतियों के माध्यम से गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को मजबूत किया गया।

सुशासन की रणनीति की समालोचना :

1. तीन अभिनेताओं राज्य, बाजार और नागरिक समाज को सुशासन की रणनीति के रूप में बढ़ावा दिया जाता है। साझेदारी प्रयासों के दोहराव से बचने का वादा करती है और अधिक प्रभावी समस्या समाधान तंत्र को डिजाइन करने के लिए उनके पूरक संसाधनों और क्षमताओं को आकर्षित करने के लिए देखी जाती है। वे निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में अन्य अभिनेताओं- बाजार और नागरिक समाज को शामिल करके नीतियों की जवाबदेही बढ़ाने और जवाबदेही बनाने का वादा करते हैं। उन्हें राजनीतिक निर्णयों के अनुपालन और कार्यान्वयन में सुधार के लिए भी माना जाता है।

2. इसके अलावा साझेदारी की प्रणाली इसके भागीदारों को एक-दूसरे से सीखने का अवसर प्रदान करती है। यह व्यापक रूप से माना जाता है कि साझेदारी के कार्य सामाजिक और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने वाली प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ ने तर्क दिया है कि साझा समझ आर्थिक निर्णय लेने के बेहतर कामकाज के लिए महत्वपूर्ण हैं। साझा समझ नौकरशाही के प्रतिरोध को दूर करने में मदद करती है और राज्य को सामाजिक और राजनीतिक हितों के लिए शिकार नहीं बनने देती है। उद्योगपति भावी विकास के लिए आवश्यक बुनियादी ढाँचा और सामूहिक सामान प्राप्त करने की अपनी क्षमता बढ़ाते हैं।
3. हालांकि, यह आशावादी दृष्टिकोण कई लोगों द्वारा साझा नहीं किया गया है। आलोचकों का कहना है कि ये साझेदारी राज्य की जिम्मेदारी से बचने की रणनीति भी हो सकती है। अन्य लोग बताते हैं कि नई संस्थानों का निर्माण किया जा सकता है जिनमें लोकतंत्र एवं जवाबदेही का अभाव रहता है। नौकरशाही लोगों के अभ्यावेदन के लिए जिम्मेदार है और नेटवर्क नीतिगत निर्णयों को संसदीय नियंत्रण को दरकिनार कर सकते हैं, जो पारंपरिक निर्णय क्षमता को कमजोर करने का जोखिम उठाते हैं। एक आशंका यह भी व्यक्त की जाती है कि कॉर्पोरेट क्षेत्र द्वारा अपनी स्वयं की शक्ति और संसाधनों को सुशोभित करने के लिए साझेदारी का उपयोग किया जा सकता है।
4. इन चिंताओं के बावजूद, साझेदारी के बारे में आशावादी दृष्टिकोण प्रचलित है और नेटवर्क का

जटिल वेब दुनियाभर में उभर रहा है जो कि राज्य की प्रकृति और लोकतंत्र के कामकाज पर बहुत प्रभाव डाल रहा है। शासन की धारणा राज्य के संगठन और निजी क्षेत्र और नागरिक समाज के अभिनेताओं के साथ उसके संबंधों को बदल रही है। विद्वानों का ध्यान अब राज्य और लोकतंत्र के इस परिवर्तन का विश्लेषण करने और बहस करने के लिए समर्पित है। ध्यान को व्यापक सार्वजनिक नीति प्रणाली की समझ में सुधार लाने के लिए निर्देशित किया जा रहा है जिसमें सरकार के संस्थान अन्य अभिनेताओं के साथ बातचीत, सौदेबाजी और समझौते की प्रक्रियाओं में शामिल होते दिखाई देते हैं।

5. सार्वजनिक-निजी भागीदारी को विकास की रणनीति के रूप में आगे बढ़ाने की रणनीति ने नए प्रकार के संस्थानों की स्थापना की है जो जरूरी नहीं हैं कि हमेशा सरकारी पदानुक्रम का हिस्सा नहीं हो। यहाँ बुनियादी चिंता यह है कि नीति बनाने और वितरण के नए संस्थानों के गठन के साथ सेवाओं और सामानों के साथ, अलग-अलग अभिनेताओं के साथ दक्षता और इक्विटी के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कैसे काम करते हैं। लोकतंत्र और राज्य के कामकाज पर इन नए संस्थानों का क्या प्रभाव है? जवाबदेही का मुद्दा सभी शैक्षणिक प्रवर्ग और लोगों की चिंता में सबसे आगे है। ये साझेदारी किसके प्रति जवाबदेह है और कैसे? इन साझेदारियों में प्रतिनिधित्व कौन पाता है? क्या इन साझेदारियों का कामकाज पारदर्शी है? ऐसे अनेकानेक सवाल जहन में उत्पन्न होते है जिनके जवाब प्रतिक्षारत है।

अभिशासन के सिद्धान्त (Theories of Governance): यद्यपि ये पूर्ण रूप से अभिशासन से ही सम्बन्धित उपागम नहीं है अपितु इन प्रतिमानों के अन्तर्गत अभिशासन का स्वरूप प्रतिलक्षित होता है। इन सिद्धान्तों की मूल भावना सरकार की अपेक्षा शासन के अधिक नजदीक दिखायी देती है। अभिशासन के उपागमों में से प्रमुख उपागम निम्नलिखित है :-

1. लोक चयन सिद्धान्त (Public Choice Theory) : यह प्रतिमान चिंतन के व्यष्टि अर्थशास्त्र से प्रेरित है जहाँ पर व्यक्ति और संगठन के आर्थिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि मानव स्वभाव से ही उपयोगिता का अधिकतमकरण चाहता है। यह बात न केवल उपभोक्ता अपितु उत्पादक के लिए भी लागू होती है अर्थात् वह भी लागत का न्यूनतमकरण अथवा लाभ का अधिकतमकरण करना चाहता है। अतः प्रत्येक निर्णय स्वहित या तर्कसंगत उपयोगिता के अधिकतमकरण से प्रभावित होता है। यही कारण है कि नौकरशाह उपयोगिता अधिकतमकर्ता के रूप में जानबुझकर अपने स्वहितों की पूर्ति के लिए सरकार का आकार बढाते है। इसीलिए उसकी इस अयोग्यता के कारण यह प्रतिमान अकुशल सरकारी क्षेत्र को घटाने और उसके स्थान पर निजीकरण की पैरवी करता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

Public Choice Theory

जैसा कि इस तस्वीर से हमें मालूम होता है कि एक उत्पादक अपनी तार्किकता का उपयोग करते ब्रेड को बेच रहा है जबकि दुसरी ओर विक्रेता नौकरशाह के रूप में राज्य की अकुशलता का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसीलिए लोक चयन सिद्धान्त इस प्रक्रिया में निजी क्षेत्र को सम्मिलित करने की पैरवी कर रहा है। अतः यह उपागम सामाजिक परिदृश्य को तार्किक व्यक्तिगत क्रिया के रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। सामाजिक तथ्यों, नियमों के प्रारूप, गतिविधियों, संस्थाओं का विश्लेषण व्यक्तिगत आधार पर किया जाता है। यद्यपि अनेक बार अवास्तविक तार्किकता का उपयोग भी किया जाता है जिसे सीमित तार्किकता की धारणा के नाम से जाना जाता है। इसके माध्यम से सूचनाओं के त्रुटिपूर्ण होने की परिस्थितियों में मानव व्यवहार उपागम की सहायता ली जाती है। यह राज्य सता की अनुपस्थिति में संस्थागत परिवेश के निर्माण व संचालन की व्यवस्था का समर्थन करता है।

नवसंस्थावादी सिद्धान्त (The New Institutionalism Theory) : लगभग 1940 ई के दशक तक संस्थावादी उपागम के अन्तर्गत राज्य, सरकार, लोक प्रशासन एवं राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया। इस समय अधिकांश शोधार्थियों के द्वारा संविधान, निर्वाचन प्रणाली, राजनीतिक दल या दलीय व्यवस्था, औपचारिक नियमों, प्रक्रियाओं, प्रावधानों और संगठनों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। 20वीं सदी के मध्यावधि के समय व्यवहारवादियों (Behaviourists) और तार्किक चयन सिद्धान्तकारों (rational choice theorists) के द्वारा इसे चुनौती प्रदान की गई। नवसंस्थावादियों के द्वारा संस्थावादियों के औपचारिक अध्ययन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार करते हुए इसके अन्तर्गत अभिसमयों, सांस्कृतिक रीति रिवाजों, मानकों, विश्वासों एवं मुल्यों, आदिम कबिलों व गैर राज्य

समुहों के अध्ययन को शामिल किया। तार्किक सिद्धान्तकारों ने इन संस्थाओं के अभिकर्ताओं के तार्किक व्यवहार के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया ताकि वे जान सके कि ये संस्थान किस तरह से अभिकर्ताओं के व्यवहार को तार्किकता का आकार प्रदान करते है। कुछ संस्थानों के द्वारा तार्किक कार्यों के सम्पादन के लिए निगनात्मक पद्धतियों (Deductive Methods) का सहारा भी लिया जाता है। समाजशास्त्रीय संस्थावादियों का तर्क है कि ज्ञानात्मक एवं प्रतिकात्मक स्कीम लोगों को पहचान और भूमिकाएं प्रदान करती है। ऐतिहासिक संस्थावादियों की मान्यता है कि पूर्व की संस्थात्मक व्यवस्थाएं राजनीतिक दबाव की प्रतिक्रिया के रूप में अभिव्यक्त होती है। यह ऐतिहासिक स्वरूप ही विकास के पथ का निर्धारक होता है। समाजशास्त्रीय संस्थावादियों के द्वारा अनौपचारिक मूल्यों एवं विचारों को नीति निर्माण की प्रणाली में निर्णायक भूमिका देने पर बल दिया जाता है। इसीलिए उन्होंने सुशासन के सिद्धान्तों को रचनात्मक उपागम (Constructivist Approach) के रूप में स्वीकार किया है। अतः वह नीति निर्माण में प्रशासनिक सुधार और कल्याण के एजेण्डा पर अधिक ध्यान देने वाला प्रतिमान है।

2. व्यवस्थावादी सिद्धान्त (System Theory of Governance) : यह उपागम भी समाजशास्त्रियों की ही देन है। यह अन्तः निर्भर तत्वों की सतत अन्तः क्रियाओं का प्रतिमान है। यह उपागम मूलतः प्राकृतिक संसाधनों से रेखांकित किया जाता है जहाँ विज्ञान के एकीकरण और वैज्ञानिक विश्लेषण का समायोजन इस दृष्टिकोण से कार्य करता है। व्यवस्था विश्लेषण का मूल विचार जीव विज्ञान ;ठपवसवहलद्ध से आया है जिसे बाद में समाज विज्ञानियों के द्वारा अपनाया है। अतः किसी भी पर्यावरण में जिस ढाँचे के अन्तर्गत कोई विशेष प्रक्रिया सम्पन्न होती है उसे व्यवस्था (Biology) कहा जाता है। जर्मन जीव विज्ञानी एल. वी. बर्टनलफी (Ludwing Van Bertalanfly) ने 1920-1930 के

दशक में 'सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त' (General System Theory) के रूप में इसका प्रथम बार प्रतिपादन किया। उन्होंने व्यवस्था को अन्तः क्रियाओं के तत्वों के समूह का अध्ययन बताया है। यह सिद्धान्त जीव विज्ञान से मानवशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में प्रचलित हुआ। यह उपागम इन तत्वों के बीच समस्त प्रकार की गतिविधियों के लिए राज्यरूपी नियंत्रण सता की अनुपस्थिति का समर्थन करता है। गवर्नेन्स की यह अवधारणा राज्य की शासन की सीमाओं को रेखांकित करता है। यह व्यावहारिक स्तर पर एकल संप्रभु अधिसता को स्वीकार नहीं करता है। इस प्रकार से यह प्रभुसता के बहुलवादी सिद्धान्त का समर्थन करने वाला प्रतिमान है जो कि अन्तःनिर्भर अभिकर्ताओं और संस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है। अतः ऐसी व्यस्था को अभिशासन के रूप में पहचाना जाएगा जहाँ पर राज्य की भूमिका व्यवस्था या आदेश के निर्माण की न होकर केवल सामाजिक व राजनीतिक अन्तःक्रियाओं की उपलब्धता कराने की होती है और इसके लिए अनेक संगठनों व संस्थाओं की सहायता ली जाती है।

3. अन्य सिद्धान्त :
इनके अलावा लोक नीति उपागम, नियामकीय सिद्धान्त और मार्क्सवादी सिद्धान्त इत्यादि अभिशासन की अवधारणा से सम्बन्धित अन्य प्रतिमान है।

निष्कर्ष :
शासन को एक निश्चित क्षेत्र के भीतर सार्वजनिक उद्देश्य के उत्पादन में योगदान करने के लिए माना जाता है। यह सार्वजनिक उद्देश्य सामाजिक दृष्टि की अभिव्यक्ति है और इस दृष्टि को प्राप्त करने के लिए नीतियों को दिशा मिलनी चाहिए। लेकिन नेटवर्क शासन समाज में काम पर राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रियाओं में अंतर्निहित है और वे सभी अवसरों पर सार्वजनिक उद्देश्य के उत्पादन के लिए जरूरी नहीं हो सकते हैं। इससे राज्य की बातचीत और सौदेबाजी की क्षमता का मुद्दा सामने आता है। यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि दोनों राजनीतिक और साथ ही

नौकरशाही नेतृत्व भी व्यक्तिगत लाभ और लाभ लेने में बहुत असहज नहीं है जो उदारीकरण की नीतियों ने पेश किया है। नतीजतन, बातचीत करने की उनकी क्षमता कमजोर हो जाती है। सार्वजनिक और निजी हितों की सीमाओं के धुंधला होने के अलावा, लोक सेवकों को अकेले सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाने का बोझ महसूस नहीं हो सकता है। इस प्रकार, साझेदारी समान नहीं है और कुछ निजी हितों को हावी होने की अनुमति दे सकती है।

हालांकि यह स्वीकार किया जाता है कि शासन सामाजिक समस्याओं को हल करने में राजनीतिक संस्थानों के एकाधिकार को कम करने का प्रयास करता है और सक्रिय रूप से अन्य अभिनेताओं को संयुक्त रूप से या स्वतंत्र रूप से इस भूमिका को निभाने के लिए चाहता है, कई खिलाड़ियों की भूमिकाओं को समन्वित करने की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है। विभिन्न उद्देश्यों और रुचियों वाले अभिनेताओं की एक विस्तृत विषमता के बीच यह समनव्य और सामंजस्य केवल राज्य और इसके संस्थानों द्वारा ही लाया जा सकता है।

संस्थानों के इस उभरते हुए वेब में, यह नहीं माना जाना चाहिए कि राज्य वापस लुढ़का हुआ है और अप्रभावी हो गया है। यह एक निर्णायक संस्था है। राज्य अपनी भूमिका निभाए बिना और ऐसा करने की क्षमता रखने के कारण, संस्थानों का नेटवर्क उन कार्यों को नहीं कर सकता है जिनके लिए उन्हें स्थापित किया गया है। राज्य कानूनों का स्रोत है और लोकतंत्र उन्हें वैध स्वरूप प्रदान करता है। कानून संघर्षों को हल करने और समाज में सद्भाव बनाए रखने के लिए हैं। कानून बनाने के साथ-साथ, राज्य एकमात्र एजेंसी है जो उन्हें इसके लिए लागू कर सकती है, जिसमें बलशाली शक्ति के उपयोग का एकाधिकार है। इस प्रकार, एक लोकतांत्रिक राज्य कानून के शासन पर आधारित है और महत्वपूर्ण प्रश्न इसकी क्षमता है। यह क्षमता केवल जोर-जबरदस्ती से नहीं बल्कि वैधता से उपजी है। शासन, अपने

व्यापक सहभागी संस्थानों के साथ, राज्य-केंद्रित शासन की तुलना में वैधता प्रदान करने के लिए संभवतः एक बेहतर स्थिति में होगा। सहभागी संस्थाएँ राज्य को साफ और पारदर्शी तरीके से कानून लागू करने में मदद करती हैं और यही अभिशासन की दिशा में एक सुनहरा कदम है।

सुशासन की अवधारणा
(Concept of Good Governance)

सुशासन की अवधारणा **शासन या अभिशासन** से ही जुडी हुई अनिवार्य अवधारणा है। अभिशासन एक नवीन अवधारणा नहीं है अपितु यह उतनी ही पुरानी है जितनी की मानवीय सभ्यता पुरानी है। सरकार के द्वारा कानुन एवं व्यवस्था का संचालन करने के लिए जो कार्य किया जाता है उसका तरीका या प्रारूप ही शासन के नाम से जाना जाता है। अतः अभिशासन का मतलब निर्णय निर्माण प्रक्रिया और इस निर्णयन को लागू करने वाली अधिसता से है। इस निर्णयन की प्रणाली में अनेक औपचारिक एवं अनौपचारिक अभिकर्ता (गैर सरकारी संगठन, सामुदायिक समूह, सिविल सोसायटी, वितीय संस्थान, भूस्वामी, अन्य संगठन इत्यादि) या एक्टर्स सम्मिलित रहते है। सरकार या गर्वन्मेंट इसी अभिशासन का एक अभिकर्ता मात्र है। लोक प्रशासन के जनक **वुडरो विल्सन** के शब्दों में **''यह विस्तृत अर्थ में नियमों का व्यवस्थित रूप से क्रियान्वयन ही है जिसे प्रशासन के नाम से जाना जाता है।''** लोक कल्याणकारी राज्य के उदय ने इसे पूरी दूनिया में लोकप्रिय बना दिया है। अभिशासन टर्म का प्रयोग अनेक सन्दर्भों में किया जाता है जैसे कि कॉर्पोरेट गवर्नेन्स, इण्टरनेशनल गवर्नेन्स, लोकल गवर्नेन्स इत्यादि। इसके अलावा इस शब्द या टर्म का प्रयोग सामान्यकरण के विविध स्तरों पर ;ग्रामीण स्तर से वैश्विक स्तर तक, विश्व बैंक, आईएमएफ के स्तर पर अन्तराष्ट्रीय सुशासन,द्ध और अनेक प्रकार के सैद्धान्तिक सन्दर्भों ;व्यावसायिक शासन, राजनीतिक या लोकतांत्रिक अभिशासन, आर्थिक,

सामाजिक, पर्यावरण, नव शासनद्ध के साथ भी किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अभिशासन के माध्यम से ही सुशासन के ध्येय को अर्जित किया जा सकता है। सुशासन की धारणा **आठ महत्वपूर्ण तत्वों** से जुडी हुई है जिनमें **सहभागिता (Participatory) जवाबदेयता (Accountable) पारदर्शिता (Transparent) उतरदायित्व (Responsive) समग्रता एवं समावेशी (Equitable and Inclusive) प्रभावी एवं दक्ष (Effective and Efficient), आम सहमति उन्मुखी (Consensus oriented), कानून के शासन (Rule of Law) की अनुपालना** इत्यादि प्रमुख है। यह वास्तव में भ्रष्टाचार के अवगुण को न्यूनतम करने, अल्पसंख्यकों की आवाज को सुनने और निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में समाज के महत्वपूर्ण हिस्सेदारों को बातों को निर्णायक महत्व देने की व्यवस्था की स्थापना को सुनिश्चित करता है। इसी के साथ यह जनता के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति उतरदायी होता है।

यदि हम सुशासन को आर्थिक सन्दर्भ के साथ अभिव्यक्त करे तो हमारे सामने अर्थशास्त्रियों का यह चिंतन सामने उभर कर आता है कि बाजार सुधारों की प्रभावशीलता विद्यमान उचित राजनीतिक संस्थाओं पर निर्भर करती है। इस सन्दर्भ में सुशासन का विषय ओर अधिक चर्चित इसलिए हो गया कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं जैसे कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के द्वारा दिये जाने वाले कर्ज और आर्थिक सहायता देने और उसमें वृद्धि करने का आधार सुशासन को माना जाने लगा। अच्छे शासन या सुशासन के राजनीतिक इतिहास पर नजर डाले तो हमें यूनानी विचारक प्लेटों व अरस्तू के राजनीतिक चिंतन से ही इसका आभास होता है। अरस्तू के कहते है कि ''राज्य का उदय ही सद् जीवन (Good Life) के लिए हुआ है और वह सद् जीवन (Good Life) को बनाए रखने के लिए ही बना हुआ है।'' राज्य को अपने नागरिकों के सद् जीवन के लिए अभिशासन के तरीके को भी अच्छा बनाना होता है

और इस अच्छे तरीके को ही सुशासन के नाम से जाना जाता है। जहाँ तक भारत में सुशासन की धारणा के इतिहास पर नजर डाले तो इसका विस्तार से उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। जिसमें राजा के सुख और दुःख को प्रजा के सुख व दुःख के साथ जोडकर देखा गया। उसे प्रजा का संरक्षक बताया गया है। यद्यपि यह एक अलग विषय है कि अर्थशास्त्र की तुलना में मनुस्मृति को अधिक महत्व दिया जाता है। ठीक वैसे ही जैसे कि स्वतंत्रता सेनानी गांधी को अधिक महत्व दिया जाता है बजाय भारतीय पुनर्जागरण के जनक राजा राम मोहन राय के।

आधुनिक युग में **सर्वप्रथम यह शब्दावली 17 वीं सदी में** (1628AD) **ब्रिटेन** में प्रयुक्त हुई। 1 नवंम्बर, 1858 ई. में महारानी विक्टोरिया के द्वारा विक्टोरिया दरबार में भारत के लिए **एक श्रेष्ठ या बेहतर (Better Governance for India) अभिशासन** की बात कही गई। 1979 ई. में ब्रिटिश प्रधानमंत्री मार्गट थैचर के द्वारा विनौकरशाहीकरण की अवधारणा पर बल दिया गया क्योंकि वह सुशासन की धारणा को लागू करने में सबसे बडी बाधा बनी हुई थी। यह संस्थागत बेरियर को सुशासन के रास्ते में से हटाने के समान था। अतः हम सुशासन को एक ऐसी अवधारणा के रूप में परिभाषित कर सकते है जो कि भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं को जन्म देने वाली संस्थागत बाधाओं को दूर करती है और एक ऐसी स्वतंत्र या बाजार अर्थप्रणाली को स्थापित करती है जहाँ लोकतांत्रिक जनादेश के माध्यम से एक अधिसता या राज्य की विद्यमानता होती है तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में बाजार एवं प्रतियोगिता के सिद्धान्तों को अपनाया जाता है। यहाँ प्रशासन दक्ष या कुशल तथा खुली सोच या उदार स्वरूप वाला होता है। इसे यदि मैक्स वेबर के भावार्थ में कहे तो यहाँ प्रशासन की लालफीताशाही न होकर ग्रीन टेप या बिजनेस ब्यूरोक्रेसी होती है। अनेक वैश्विक संस्थाओं के द्वारा कुछ निश्चित विशेषताओं के साथ सुशासन को परिभाषित किया गया। अलगोर कमेटी के

अनुसार विश्व बैंक ने इसे 1992 ई में इसे इस प्रकार से परिभाषित किया कि विदेशी सहयोग व सहायता के आधार के रूप में सुशासन के स्तर को स्वीकार किया गया। यह मुख्य रूप से विकासशील देशों में एक ऐसी शासन व्यवस्था की स्थापना का पक्षधर था जहाँ पर प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय कुशलता विद्यमान हो जिससे कि विश्व स्तर के संस्थानों के द्वारा दी जाने वाली सहायता का सही दिशा में उपयोग हो सके। अतः इस सुशासन की नवीन अवधारणा को आधारभूत रूप में निम्न आठ विशेषताओं के साथ जोडकर अभिव्यक्त किया गया कि यदि विकासशील देशों की सरकारे अपने यहाँ पर इन अभिलक्षणों को स्थापित करने में समर्थ हो तो वह एक सुशासन की स्थापना का सुनहरा कदम होगा और इसी आधार पर उसे विदेशी सहयोग एवं सहायता प्रदान की जाएगी।

सुशासन की विशेषताए *(Major Features of Good Governance)* :

सुशासन के **आठ आधारभूत लक्षण** निम्नलिखित है :-

1. सहभागिता (Participation) : सहभागिता सुशासन की स्थापना की दिशा में पहला कदम है। यह सुशासन की धारणा का राजनीतिक आयाम है। किसी समाज की विकास प्रक्रिया में सभी स्टेकहोल्डर्स की सक्रिय सहभागिता निःसन्देह सुशासन की अनिवार्य शर्त है। सभी महिला एवं पुरूषों तथा दिव्यांगजनों के द्वारा समावेशी स्वरूप में निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से अथवा वैधतापरक संस्थाओं के माध्यम से या उनके हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं के माध्यम से सक्रिय रूप से भाग लेना ही सहभागिता है। यह सहभागिता सदैव व्यवस्थित एवं संगठित स्वरूप में होनी चाहिए। इसका मतलब संघ की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति एक पक्ष है जबकि संगठित नागरिक समाज इसका दूसरा पक्ष होता है। जैसे कि

भारत में स्थानीय स्वशासन या पंचायती राज के अन्तर्गत ग्राम सभा व वार्ड सभा जन सहभागिता का सबसे बडा आधार है।

2. कानून का शासन (Rule of Law) : यह कानून के समान व्यवहार और कानून के प्रति सम्मान से जुडी हुई धारणा है। यह सुशासन की आधारभूत विशेषता है जो कि मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं से कम नहीं होती है। कानून के शासन की धारणा किसी लोकतांत्रिक एवं सभ्य समाज (Democratic and Egalitarian Society) की धुरी होती है। कानून के शासन की अवधारणा आम आदमी एवं विशेष आदमी के बीच भेदभाव की धारणा में विश्वास नहीं करती है। यह देश की सामान्य जनता से लेकर प्रधानमंत्री तक कानून की समानता के व्यवहार से जुडी हुई है। इसका मतलब है कि समाज में सभी व्यक्ति कानून के समक्ष समान होते है और कानून बिना किसी भेदभाव के सभी पर लागू होता है।

3. समता एवं समावेशन (Equity and Inclusiveness) :

यह सुशासन की मुख्य धारणा है कि किसी समाज के सभी सदस्य अपने आपकों अन्य सदस्यों की तरह समान महसूस करे, असमान या कमजोर या पिछडे नहीं। यहाँ समानता का मतलब है कि सब लोगों को बिना किसी जाति, रंग, रूप या नस्ल अथवा सामाजिक प्रस्थिति के अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर प्राप्त हो। समता किसी भी संगठित मानवीय समाज में मानवीय अधिकारों की संक्लपना की, न्याय की और अभिशासन की नींव होती है। समावेशन के लिए यह अपरिहार्य होता है कि किसी समाज के बनायी जाने वाली नीतियों एवं कार्ययोजनाओं में उन सभी व्यक्तिगत इकाईयों और समूहों के हितों को, उनकी आकांक्षाओं को और उनके जनमत को शामिल किया जाए जिससे कि समाज का कोई भी सदस्य स्वयं को मुख्यधारा से दूर महसूस नहीं करे अपितु उसे यह महसूस होना चाहिए कि वे सभी एक ही मानवीय समाज के सदस्य है।

4. पारदर्शिता (Transparency) : पारदर्शिता की धारणा सूचनाओं के स्वतंत्र प्रवाह का निर्माण करती है। इसका मतलब है कि प्रक्रियाएं, संस्थाएं और सूचनाएं समाज के सभी लोगों के लिए प्रत्यक्ष रूप से आसानी से उपलब्ध रहती है। सुशासन का यह उपकरण लोकहित की निर्णयन प्रक्रिया, सरकार की कार्यप्रणाली और परामर्श सम्बन्धी गतिविधियों में खुलेपन को प्रोत्साहित करता है। इस प्रक्रिया में सिविल सोसायटी, सरकारी संस्थान और अन्य समूह प्रभावी भूमिका का निर्वहन करते है। भारत में सूचना का अधिकार और सिटीजन चार्टर इसी पारदर्शिता के साधन है।

5. उतरदायित्व (Responsiveness) : एक निर्धारित समयावधि के भीतर ही आम जनता को वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए सार्वजनिक एवं निजी सेवा प्रदाता इकाईया उतरदायी होती है। जनता के प्रति अपने दायित्वों के निर्वहन में सेवा प्रदाता के द्वारा किसी भी कीमत पर अनावश्यक देरी नहीं होनी चाहिए। अनेक राज्यों ने अपने यहाँ सेवा का अधिकार कानून भी बना रखे है।

6. आम सहमति या आम राय उन्मुखी (Consensus Oriented) : मतैक्य उन्मुखी दृष्टिकोण सुशासन की स्थापना में एक निर्णायक कदम होता है। किसी भी समाज में अनेक अभिकर्ता और विविध प्रकार के भिन्न-भिन्न विचार होते है जो कि एक विवेकशील समाज की निशानी होती है। सुशासन की धारणा को स्थापित करने के लिए इन सबके बीच यथासंभव आमराय या मतैक्य बनाना या बनाए रखना अतिमहत्वपूर्ण होता है। सरकार जो कि समस्त समुदाय का प्रतिनिधित्व करती है। उसे अन्य सभी समूहों से मिलकर सदैव आमराय के अनुसार कार्य करना चाहिए जिससे कि सुशासन को स्थापित किया जा सके।

7. प्रभावशीलता एवं दक्षता (Effectiveness and Efficiency) :

आमजन के हित में लागू किये जाने वाले कार्यकर्मो, नीतियों और इसके लिए नियोजित संसाधनों की कुशलता एवं प्रभावशीलता सुशासन की दिशा में एक तकनीकी कदम होता है। इन संसाधनों का कुशलतम आवंटन एवं पूर्ण उपयोग करने के लिए ही सुशासन की आवश्यकता होती है और इसी से सुशासन के ध्येय को अर्जित किया जा सकता है। प्रभावशीलता और दक्षता को अर्जित करने के लिए अभिशासन के सिद्धान्तों के रूप में प्रतियोगी आर्थिक वातावरण, संस्थाओं की क्षमताओं के निर्माण और कार्मिकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

8. जवाबदेयता (Accountability) : जवाबदेयता सुशासन का केन्द्र बिन्दु है। यहाँ जवाबदेयता का मतलब न केवल सार्वजनिक क्षेत्र से है अपितु इसी के समानान्तर निजी क्षेत्र, सिविल सोसायटी के संगठनों तथा अन्य संस्थाओं और संगठनों की भी जवाबदेयता से है। वे सभी संगठन और संस्थान जो कि आन्तरिक अथवा बाह्य रूप से निर्णयन की प्रक्रिया से सम्बन्धित रहे है अथवा किसी भी तरह से उससे जुडे होते है, वे सब जनता के प्रति जवाबेदय होंगे। इसे पारदर्शिता और कानून के शासन के बिना निर्धारित करना संभव नहीं है।

इस प्रकार नव-उदारवादी लोकतंत्र की विचारधारा और इसके आकस्मिक बाजार के नेतृत्व वाले आर्थिक दर्शन पर आधारित, सुशासन का विचार समकालीन समय में दुनिया भर में एक आंदोलन बन गया जिसे अंतरराष्ट्रीय आर्थिक और वित्तीय संगठनों और अन्य सहायता एजेंसियों ने सभी विकासशील देशों में सुशासन की धारणा के रूप में प्रचारित किया है और जो उनकी स्थायी आर्थिक प्रगति के लिए विदेशी सहयोग और सहायता पर निर्भर हैं। इस तरह से इसे दूनियाभर में लोकप्रिय बनाया गया। सुशासन की खोज ने अरस्तू के प्राचीन लेखन में उसके राजनीति शास्त्र में और कौटिल्य के प्राचीन लेखों में भी अभिव्यक्ति पाई। हालांकि, शीत युद्ध की समाप्ति के बाद ही इस अवधारणा को

लोकप्रियता और प्रमुखता मिली। **विश्व बैंक और यूएनडीपी ने 1990 के दशक** की शुरुआत से सुशासन की अवधारणा के सिद्धांतों और उद्देश्यों को आकार देने में एक महान् भूमिका निभाई। निस्संदेह, लोकतांत्रिक शासन और सुशासन के बीच गहरा पारस्परिक संबंध है, हालांकि दोनों समान नहीं हैं। दुनिया के विकासशील समाजों में मानवाधिकारों, स्थायी विकास, मानसिक और सामाजिक न्याय के कारकों को बढ़ावा देने में सुशासन की धारणा महत्वपूर्ण रही है। बहरहाल, यह तर्क दिया जा सकता है कि सुशासन का मॉडल बाजार और निजी खिलाड़ियों के वर्चस्व वाले पश्चिमी राजनीतिक और आर्थिक दर्शन में इसकी उत्पत्ति का कारण है। सुशासन का विचार एक शिक्षित, सूचित और सक्रिय नागरिकों से मिलकर एक अपेक्षाकृत विकसित समाज है। हालाँकि, अधिकांश विकासशील समाजों जैसे कि उप-सहारा अफ्रीका, मध्य पूर्व और मध्य एशिया में ऐसा नहीं है। जातीय और धर्म-आधारित हिंसा और संघर्ष और इन समाजों के सामाजिक और शैक्षणिक संस्थानों में पिछड़ेपन उन्हें सुशासन के तत्वों को पेश करने के लिए अयोग्य करार देते हैं। इन समाजों के सामाजिक और राजनीतिक परिवेश को एक मजबूत राज्य की आवश्यकता है। सुशासन के आंदोलन को मिश्रित अनुभव मिला है और इसे अभी भी लंबा सफर तय करना है। आखिरकार, शासन की बेहतर गुणवत्ता की तलाश एक राजनीतिक समुदाय की कभी न खत्म होने वाली आकांक्षा है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

ई - शासन की अवधारणा

(The Concept of E - Governance)

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक के परिणामस्वरूप उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण के दौर ने शासन की अवधारणा में एक नवीन शब्द को इजाद किया है जिसे ई शासन या डिजिटल शासन के नाम से पहचान मिली है। इसने राज्य की शासन प्रणाली को ओर अधिक सरल, पारदर्शी एवं वहनीय लागत तथा जनता तक या सुदूर क्षेत्रों तक स्थापित करने में अविश्वसनीय सहायता की है। तकनीक के प्रयोग ने मानव की दैनिक गतिविधियों की प्रकृति को ही परिवर्तित कर दिया है। हम दुकान के लिए, मौसम के बारे में जानने के लिए, अनुसंधान करने के लिए, परीक्षाओं के लिए या दुनिया के बारे में जानने के लिए इण्टरनेट का प्रयोग करते है और नेटवर्क से जुड जाते है। बहुत ही कम समय में दूनियाभर में इण्टरनेट के उपयोगकर्ताओं की संख्या बहुत ही तेज गति से बढ़ती जा रही है। 2010 के एक अनुमान के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में 240 मिलियन इण्टरनेट यूजर्स थे। इसी तरह से सरकार के द्वारा तकनीक एवं इण्टरनेट का प्रयोग ई शासन को अभिव्यक्त करता है। यद्यपि इसके अपने गुण-अवगुण होते है तथापि इसने शासन प्रणाली को बहुत अधिक आसान एवं सरल स्वरूप प्रदान किया है जो कि निश्चित रूप से सुशासन की दिशा में एक सूचना क्रांति के समान है। इसे ई-गवर्नेंस अथवा इलेक्ट्रॉनिक शासन या डिलिटल शासन के नाम से जाना जाता है।

पूरी दुनियाभर में राज्य के द्वारा सूचना एवं सेवाओं को आमजन तक विस्तारित एवं वितरित करने में डिजिटल संसाधनों का प्रयोग किया जाने लगा है। इसने राज्य प्रशासन या अभिशासन और सुशासन की दिशा में व्यापक बदलाव कर दिया है। प्रशासी राज्य को ई शासन ने एक मशानी राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया है। ई शासन ने तकनीकी नवप्रवर्तन के माध्यम से शासन की मूल प्रवृति में ही परिवर्तन कर दिया है। अब राज्य की पहुँच आम

आदमी तक हो गयी है और सब कुछ या समस्त कार्यप्रणाली आनलाईन सेवा के माध्यम से सम्पादित होने लगी है। डिजिटल शासन ने नागरिकों को डिलिटल पहचान प्रदान कर दी है। अब समस्त जीवन प्रणाली का डिलिटलाईजेशन हो गया है। राज्य की समस्त सेवाओं सरकारी व गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों सहित आनलाईन पोर्टल के माध्यम से नागरिकों के लिए उपलब्ध होन लगी है।

भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है जहाँ संविधान की प्रस्तावना एक लोक कल्याणकारी राज्य के स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समानता, न्याय और भातृत्व की भावना की बात कही गई है। प्रस्तावना में राष्ट्र के लोकतांत्रिक सिद्धांतों का भी विवेचन किया गया है। शासन सदैव जनता के प्रति उत्तरदाई रहे। यह लोकतंत्र की सबसे बड़ी खूबी है। भारत जो कि विविधता में एकता वाला देश है। ऐसे देश में नीति निर्माण प्रक्रिया के अंतर्गत लोकतांत्रिक दृष्टिकोण को स्थापित करना एक बड़ी चुनौती है।

ई-शासन का अभिप्राय :

ई-गवर्नेंस सही स्वरूप में सुशासन के लिए सरकारी कामकाज की प्रक्रियाओं के लिए सूचना एवं सम्प्रेषण या आईसीटी का अनुप्रयोग है। ई-शासन भविष्य के लिए सुनहरी एवं प्रोत्साहित करने वाली अवधारणा है। यह नागरिकों तक और उन लोगों तक सरकार की पहुँच बढ़ा सकता है जो कि सरकार के भीतर कार्य करते है या सरकार के साथ काम करते है। यूनेस्कों (**UNESCO -** The United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation) के द्वारा भी ई-शासन से अभिप्राय है कि **"सरकार को ओर अधिक जवाबहेद, पारदर्शी और प्रभावी बनाने तथा शासन की निर्णयन प्रक्रिया में नागरिकों की सहभागिता को प्रोत्साहित करने तथा सूचना एवं सेवा वितरण प्रणाली में सुधार लाने के ध्येय से सार्वजनिक क्षेत्र में सूचना एवं**

सम्प्रेषण तकनीक (ICT) **का प्रयोग करना ही ई शासन है।"** सूचना और प्रौद्योगिकी मंत्रालय का कहना है कि ई-गवर्नेंस केवल स्टैंड बैक ऑफिस ऑपरेशंस के कम्प्यूटरीकरण से कहीं आगे जाता है। इसका मतलब है कि सरकारी कार्यों में मूलभूत परिवर्तन और विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और नागरिकों के लिए जिम्मेदारियों के एक नवीन समूह का निर्माण। ब्रिटेन के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अनुसार ई-गवर्नेंस का अर्थ है सरकारी विभागों और उनकी एजेंसियों द्वारा इंटरनेट के माध्यम से सूचनाओं को सार्वजनिक पहुँच प्रदान करना। रटगर्स विश्वविद्यालय में स्थित **ई-गवर्नेंस संस्थान दि स्कूल ऑफ पब्लिक अफेयर्स एण्ड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन** के अनुसार ई शासन सामान्यतया **पाँच मुख्य सिद्धान्तों से जुड़ी हुई धारणा** है अर्थात्

1. नागरिक केन्द्रित सेवाओं का सर्जन अर्थात् नागरिकों की पंसद को ध्यान में रखकर सेवा निर्माण करना।
2. सरकार की पहुँच में अभिवृद्धि करना।
3. सामाजिक समावेशन को अधिक बढ़ावा देना।
4. एक जिम्मेदारी के रूप में ई शासन की जानकारियों का प्रचार -प्रसार करना।
5. करदाताओं के संसाधनों का प्रभावी एवं कुशलता के साथ उपयोग करना।

ई-शासन का अभिप्राय स्मार्ट शासन के रूप में : ई-शासन को आजकल स्मार्ट शासन के रूप में भी परिभाषित किया जा रहा है अर्थात् **स्मार्ट गवर्नेंस** (SMART - Simple, Moral, Accountable, Responsive and Transparent) में लागू होता है अर्थात् सरल, नैतिक, जवाबदेह, उत्तरदायी और पारदर्शी शासन की स्थापना करना। **सरल (Simple) -** अर्थात् आईसीटी के उपयोग के माध्यम से सरकार के नियमों, विनियमों

और प्रक्रियाओं का सरलीकरण इस तरह से किया जाता है कि उपयोगकर्ता के अनुकूल सरकार उपलब्ध हो सके। **नैतिक (Moral)** - राजनीतिक और प्रशासनिक मशीनरी में नैतिक मूल्यों की नई प्रणाली का उद्भव। प्रौद्योगिकी या तकनीक के प्रयोग से भ्रष्टाचार विरोधी एजेंसियों, पुलिस, न्यायपालिका आदि की दक्षता में सुधार होता है। **जवाबदेह (Accountable)** - प्रभावी प्रबंधन सूचना प्रणाली, प्रदर्शन माप तंत्र, सुविधाजनक कार्यप्रणाली का कार्यान्वयन करना जिससे कि सार्वजनिक सेवा के अधिकारियों की जवाबदेयता सुनिश्चित की जा सके। **उत्तरदायी (Responsive)** - सार्वजनिक सूचना एवं सेवा वितरण प्रणाली में तेजी लाने और तंत्र या व्यवस्था को अधिक संवेदनशील बनाने के लिए प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करना। **पारदर्शिता (Transparent)** - सार्वजनिक दस्तावेज़ों को पब्लिक डोमेन पर लाने की व्यवस्था प्रक्रियाओं और कार्यों को पारदर्शी बना रही है। इसके माध्यम से प्रशासनिक एजेंसियों की कार्यप्रणाली में समता और कानून का शासन को स्थापित करना आसान हो गया है।

ई-गवर्नेंस और ई-सरकार में भिन्नता : ई-गवर्नेंस और ई-गवर्नमेंट को अक्सर एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है जो कि सही नहीं है। इसलिए इस स्तर पर उनके बीच अंतर स्पष्ट करना अपरिहार्य है।

1. थॉमस बी रिले के अनुसार सरकार और शासन दोनों का ही सम्बन्ध शासितों या जनता की सहमति और सहयोग प्राप्त करने से हैं। सरकार इस उद्देश्य के लिए एक औपचारिक उपकरण के समान है जबकि गवर्नेंस या शासन उन लोगों या शासितों के द्वारा किये जाने वाले अनुभव का परिणाम होता है।
2. ई-सरकार, यदि इसे व्यवस्थित एवं प्रभावी स्वरूप में लागू किया जाता है तो यह सामान्य अर्थ में

सरकार का ही अधिक प्रभावी एवं उत्पादक स्वरूप होता है जबकि ई-शासन, यदि इसे उचित सिद्धांतों, उद्देश्यों, कार्यक्रमों और परियोजनाओं के साथ लागू किया जाता है तो वह सहभागितापूर्ण शासन को विकसित करता है।

3. इस प्रकार ई-सरकार सूचना एवं सम्प्रेषण प्रणाली के उपकरणों का उपयोग करके सरकारी प्रक्रियाओं और कार्यों का आधुनिकीकरण करना है। विश्व बैंक के अनुसार ई-सरकार सरकारी एजेंसियों द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी (जैसे नेटवर्क, इंटरनेट और मोबाइल कंप्यूटिंग इत्यादि) के उपयोग को संदर्भित करती है जो नागरिकों, व्यवसायों और सरकार के अन्य अभिकरणों के साथ संबंध बदलने की क्षमता रखती है। यह प्रौद्योगिकी का उपयोग कर नागरिकों, व्यापार भागीदारों और कर्मचारियों को लाभ पहुँचाने के लिए सरकारी सेवाओं की पहुँच और वितरण की व्यवस्था से जुड़ी हुई अवधारणा है।
4. जबकि ई-गवर्नेंस सेवा वितरण की व्यवस्था के इन पहलुओं या पक्षों से दूर होती है जिसे एक निर्णायक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। यह शासन प्रणाली में आईसीटी के उपयोग से सम्बन्धित होती है अर्थात् सूचना एवं सम्प्रेषण प्रणाली के प्रयोग के माध्यम से निर्णयन प्रक्रिया में बहु-हितधारकों को शामिल करने और सरकारों को पारदर्शी और जवाबदेह बनाने से सम्बन्धित है।

ई-शासन के विभिन्न स्तर : ई-गवर्नेंस के विभिन्न चरणों को कुछ निश्चित मानदंडों के आधार पर पहचाना जाता है। ये चरण हैं **साधारण सूचना प्रसार (एक**

तरफ़ा संचार) - इसे बुनियादी स्तर माना जाता है क्योंकि इसका उपयोग केवल सूचना आमजन तक प्रसारित करने के लिए ही किया जाता है जैसे कि सरकार के द्वारा योजनाओं का प्रचार करना; **दो-तरफ़ा संचार (अनुरोध और प्रतिक्रिया)** - वेबसाइट के रूप में ई-मेल प्रणाली और सूचना और डेटा-स्थानांतरण प्रौद्योगिकी के साथ संम्प्रेषण का स्तर ; **सेवा और वित्तीय लेनदेन** - यह वेब आधारित स्व-सेवाओं से जुड़ा हुआ स्तर है जैसे कि ऑनलाइन सेवाएं और वित्तीय लेनदेन ; **एकीकरण (ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज दोनों)** - इस अवस्था में सरकार अंतर-सरकारी एकीकरण का प्रयास करेगी ; तथा **राजनीतिक भागीदारी-** इस चरण का अर्थ है, ऑनलाइन मतदान, ऑनलाइन सार्वजनिक मंचों और सरकार के साथ अधिक प्रत्यक्ष और व्यापक बातचीत के लिए राय सर्वेक्षण इत्यादि। इनके अलावा भी अनके स्तरों का विवेचन किया जाता है।

ई-शासन के प्रमुख मॉडल या प्रतिमान : **प्रो. ऐरी हलाचमी** ने अपने आलेख **'ई-गवर्नमेंट थ्योरी एंड प्रैक्टिस : द एविडेंस फ्रॉम टेनेसी (यूएसए)'** में ई-गवर्नेंस के पाँच महत्वपूर्ण प्रतिमान दिए हैं। जिन्हें ई-डिजाइनिंग में एक गाइड के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। ये प्रतिमान निम्नलिखित हैं :

1. प्रसारण प्रतिमान : यह प्रतिमान शासन सूचना के प्रसार/प्रसार पर आधारित है जो कि सार्वजनिक डोमेन में आईसीटी के व्यापक उपयोग से जुड़ा हुआ है। यह प्रतिमान इस मान्यता पर आधारित है नागरिकों तक सूचनाओं की अधिक पहुँच होने से मौजूदा शासन तंत्र न्याय करने में सक्षम होता है और उनके बारे में एक सूचित राय बनाता है। इसके परिणामस्वरूप वे अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों का पालन करने के लिए अधिक सशक्त बन जाते हैं। इस प्रतिमान का व्यापक अनुप्रयोग 'सूचनातंत्र की विफलता की स्थितियों को सही करता है' जो कि नागरिको को शासन से संबंधित प्रासंगिक

जानकारी प्रदान करके उनकी राय का निर्माण करने और शासन प्रक्रियाओं को प्रभावित करने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता है। इसके अलावा आईसीटी के उपयोग से लोगों को जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ विभिन्न स्त्रोतों से मौजूदा जानकारी की प्रामाणिकता को परखने का भी अवसर प्रदान करता है।

2. आलोचनात्मक प्रवाह प्रतिमान : इस प्रतिमान के अन्तर्गत निर्धारित उपयोगकर्ताओं तक सूचना प्रसारण के माध्यम से आलोचनात्मक दृष्टिकोण के बारे में जानकारी जुटायी जाती है। यह प्रतिमान आईसीटी के माध्यम से 'दूरी' और 'समय' की अवधारणा को बेमानी बनाता है जब सूचना को डिजिटल नेटवर्क पर होस्ट किया जाता है और इसका उपयोग महत्वपूर्ण सूचनाओं को तुरंत अपने रणनीतिक उपयोगकर्ता समूह में कहीं भी या उसके द्वारा तत्काल लाभ पहुँचाने के लिए किया जा सकता है।

3. तुलनात्मक विश्लेषण प्रतिमान : यह प्रतिमान विकासशील देशों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रतिमान है और इसका उपयोग लोगों को सशक्त बनाने के लिए किया जा सकता है। यह प्रतिमान अनिवार्य रूप से लगातार शासन के क्षेत्रों में सर्वोत्तम प्रथाओं को आत्मसात करता है और फिर अन्य शासन प्रथाओं का मूल्यांकन करने के लिए आधार के रूप में उनका उपयोग करता है। इसके बाद इन परिणामों का उपयोग सकारात्मक परिवर्तनों की वकालत करने या इन शासन प्रथाओं पर 'जनता की राय' को प्रभावित करने के लिए करता है। इस प्रतिमान की प्रभावकता विभिन्न सूचनाओं को संग्रहीत करने और इसे भौगोलिक और पदानुक्रमित बाधाओं के दौरान तुरंत प्राप्त करके इसे प्रसारित करने की अनंत क्षमता में निहित है।

4. मोबिलाइजेशन और लॉबिंग प्रतिमान : यह प्रतिमान वर्चुअल या आभासी समुदायों द्वारा व्यक्त की जाने वाले विचारों, राय और चिंताओं का विश्लेषण करके वास्तविक दुनिया की प्रक्रियाओं की गति का निर्माण करता है। यह प्रतिमान

वैश्विक नागरिक समाज की विश्व स्तर पर लिये जाने वाले निर्णयों पर और प्रक्रियाओं पर प्रभाव ड़ालने में सहायता करता है। यह प्रतिमान योजनाबद्ध और सूचनाओं के प्रत्यक्ष प्रवाह पर आधारित होता है जो कि वास्तविक दुनिया में सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के पूरक के रूप में मजबूत आभासी सहयोगियों के निर्माण के लिए आभासी समुदाय बनता है। ये समुदाय वास्तविक कार्रवाई के लिए समान मूल्यों और चिंताओं को साझा करते हैं और वास्तविक जीवन के समूहों या गतिविधियों के साथ जुड़ते हैं या समर्थन करते हैं।

इसलिए यह आभासी समुदाय की विविधता का निर्माण करता है और नेटवर्किंग के इस आभासी स्वरूप के माध्यम से विचारों, विशेषज्ञता और संसाधनों को संग्रहित करता है। इसके अलावा, यह भौगोलिक, संस्थागत और नौकरशाही बाधाओं से दूर मानव संसाधनों और सूचनाओं को जुटाने में और उनका लाभ उठाने में सक्षम है।

5. अन्तः सेवा प्रतिमान :

यह शासन प्रक्रियाओं में व्यक्तियों की प्रत्यक्ष भागीदारी के मार्ग खोलता है और सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक या आईसीटी के माध्यम से निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में अधिक निष्पक्षता या वस्तुनिष्ठता और पारदर्शिता का स्थापित करता है। इस प्रतिमान में मौलिक रूप से सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक या आईसीटी में प्रत्येक व्यक्ति को एक डिजिटल नेटवर्क में लाने और उनके बीच सूचना के इंटरैक्टिव (दो-तरफा) प्रवाह को सक्षम करने की क्षमता है।

इस प्रतिमान के अन्तर्गत सरकार द्वारा दी जाने वाली विभिन्न सेवाएं अपने नागरिकों के लिए सीधे तौर पर उपलब्ध हैं। यह शासन के विभिन्न पहलुओं जैसे सरकारी अधिकारियों (ई-मतपत्रों) के चुनाव के लिए एक इंटरेक्टिव अर्थात् सरकार से उपभोक्ता और उपभोक्ता से सरकार तक (G2C2G) चैनल के रूप में कार्य करता है; विशिष्ट शिकायतों के ऑनलाइन निवारण;

चिंताओं को साझा करना और विशेषज्ञता प्रदान करना; विभिन्न मुद्दों पर जनमत सर्वेक्षण आदि।

भारत में ई-शासन के प्रावधान : राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस प्रोजेक्ट :
1987 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन द्वारा समर्थन की गई कार्य योजना पहले से ही जवाबदेह और नागरिक अनुकूल प्रशासन के प्रासंगिक मुद्दों को संबोधित करती थी। 1990 के दशक में भारत सरकार के द्वारा **राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस प्रोजेक्ट (NeGP)** की शुरुआत की गई। राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस प्रोग्राम (NeGP) का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे :-

1. सार्वजनिक सेवा वितरण में और अधिक पारदर्शिता को स्थापित करना।
2. सार्वजनिक प्रक्रिया में उत्तरदायित्व की और जिम्मेदारी की नीति को स्थापित करना।
3. सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से जनसेवा वितरण प्रणाली में पारदर्शिता समय निष्ठा और निर्बाध नागरिक सेवाओं को अंतिम तबके या अंतिम छोर वाले आदमी तक न्यूनतम लागत अथवा वहनीय लागत (Affordable Cost) पर पहुँ ंचाना।
4. इसका मूल उद्देश्य था **"जनसेवा कहीं भी और कभी भी।"**
5. आम जनता की शासन तक आसान पहुँ ंच को स्थापित करना ही इसका मुख्य ध्येय रहा।
6. इस कार्यक्रम के माध्यम से आम आदमी के लिए सभी सेवाओं को सुलभ बनाना तथा इन सेवाओं के अंतर्गत कुशलता, पारदर्शिता, विश्वसनीयता और वहनीय लागतों को केंद्र में रखा गया।

राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस प्रोग्राम के अंतर्गत सभी सरकारी सेवाओं को कार्यकुशलता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करते हुए उन्हें वहनीय लागत पर आम आदमी तक पहुंँचाया जाता है। नागरिक केंद्रित प्रशासन का निर्माण करना, सेवाओं में विशेषीकरण को स्थापित करना, जन सेवाओं का विस्तार करना, केंद्रीय योजना और उसका विकेंद्रीकृत क्रियान्वयन करना तथा सार्वजनिक जन सहभागिता को आगे बढ़ाना। ई-गवर्नेंस के इंफ्रास्ट्रक्चर के रूप में स्टेट वाइड एरिया नेटवर्क (SWAN) स्टेट डाटा सेंटर (SDC) नेशनल सर्विस डिलीवरी गेटवे (NSDG) एसएसडीजी तथा कॉमन सर्विस (CSC) इनके अलावा मानव संसाधन विकास, कैपेसिटी बिल्डिंग, नेशनल ई गवर्नेंस डिविजन इत्यादि का गठन किया गया। राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस प्रोग्राम के तहत मिशन मोड प्रोजेक्ट के माध्यम से केंद्र सरकार के द्वारा बैंकिंग, इनकम टैक्स, इंश्योरेंस, पासपोर्ट, पेंशन, आधार परियोजना इत्यादि को संचालित किया जा रहा है। राज्य सरकारों के द्वारा एग्रीकल्चर, ई डिस्ट्रिक्ट, लैंड रिकॉर्ड, ई-पंचायत, एजुकेशन, हेल्थ, सार्वजनिक वितरण प्रणाली इत्यादि जनसेवाओं को संचालित किया जा रहा है तथा केंद्र और राज्य के सामुहिक नेतृत्व में कॉमन सर्विस सेंटर, ई-कोर्ट्स, इंडिया पोर्टल इत्यादि कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 : इन मुद्दों के अनुसरण में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम को 2000 में प्रख्यापित किया गया था। सूचना तकनीक अधिनियम, 2000 ई (The Information Technology Act of 2000) के माध्यम से भारत में डिजिटल शासन को वैधानिक या कानूनी स्वीकृति प्रदान की गई है। अब किसी भी इलेक्ट्रानिक माध्यम से सूचना, तथ्य, भुगतान, व्यापार, वाणिज्य, आवेदन, शिकायत को प्रशासन का हिस्सा स्वीकार कर लिया गया। अधिनियम का उद्देश्य इलेक्ट्रॉनिक डेटा इंटरचेंज और इलेक्ट्रॉनिक संचार के अन्य माध्यमों द्वारा किए गए लेनदेन के लिए कानूनी मान्यता प्रदान

करना है, जिसे आमतौर पर 'इलेक्ट्रॉनिक तरीकों के रूप में जाना जाता है। इसने न केवल प्रशासन में किसी कार्य में अनावश्यक देरी और भ्रष्टाचार वाले नौकरशाही के लालफिताशाही पर हमला किया अपितु आमजन को प्रशासन में निरंतर सहभागी बनाया और उसे प्रशासन के एक ग्राहक की तरह बना दिया जो सदैव सक्रियता की भूमिका में आने लगा तथा आई सी टी ने या डिजिटल शासन ने शासन की लागत को कम किया, शासन में नागरिकों की सहभागिता या आगत में अभिवृद्धि की, लोक निर्णयन प्रणाली को मजबूत किया तथा शासन के कार्यो में पारदर्शिता को स्थापित करने में मुख्य भूमिका अदा की।
भारत सरकार के द्वारा एनईजीपी 18 मई, 2006 को स्वीकार किया गया जिसके अंतर्गत 31 मिशन मोड प्रोजेक्टस और आठ कंपोनेंट्स को अनुमति प्रदान की गई। लोक सेवाओं को अंतिम व्यक्ति तक पहुँंचाने के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ;प्ब्ज्ेद्ध का प्रयोग किया गया।

ई-शासन का महत्व :
सार्वजनिक प्रशासन प्रणालियों की संरचनाओं पर आईसीटी अनुप्रयोग प्रभाव डालते हैं। तकनीकी प्रगति सक्षम करके प्रशासनिक प्रणालियों को सुविधाजनक बनाती है। इसके महत्व को निम्न दो आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है :-
I. प्रशासनिक विकास
II. प्रभावी सेवा वितरण

I. प्रशासनिक विकास :
प्रशासनिक सुधार सामान्यतया प्रक्रियात्मक विवरण, व्यवस्था और सरकारी संगठनों की प्रक्रियाओं के पुनर्गठन पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इन सुधारों का मूल उद्देश्य प्रणालियों की क्षमताओं को बढ़ाना है। इस प्रक्रिया को और गति देने के लिए अब आईसीटी का उपयोग किया जा सकता है और इसका उपयोग किया जा रहा है।

1. प्रशासनिक प्रक्रियाओं का स्वचालन : वास्तव में ई-शासित प्रणाली को न्यूनतम मानवीय हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी और यह प्रणाली संचालित होगी जबकि शुरुआत में जो समाधान पेश किए गए थे, वे खराब सूचना लेआउट, अपर्याप्त नेविगेशन प्रावधानों, सेवाओं में सामयिक व्यवधान, आवधिक पुरानी सामग्री और बहुत कम या ऑफिस बैक ऑफिस के समर्थन के साथ काफी आदिम थे। हालांकि, तकनीकी प्रगति और नागरिकता के बढ़ते दबाव ने इन क्षेत्रों में सुधार को प्रेरित किया है। अब प्रशासनिक विभाग कम्प्यूटरीकृत और नेटवर्किंग के माध्यम से जुड़े हुए हैं। विभागों ने अपने संबंधित विभागों की जानकारी के लिए अलग-अलग वेबसाइट लॉन्च की हैं। यह संचालन और फ़ाइल आंदोलनों को ऑनलाइन ले जाने में सक्षम है। बजट, लेखा, डेटा प्रवाह आदि आसान हो गया है। इससे कार्यालय संचालन और प्रक्रियाओं की दक्षता में वृद्धि हुई है और अनावश्यक देरी कम हुई है।

2. कागजी काम में कमी : ऑटोमेशन का तत्काल प्रभाव कागजी कार्रवाई पर पड़ेगा। इलेक्ट्रॉनिक मार्ग के माध्यम से सक्षम होने और इलेक्ट्रॉनिक रूप में भंडारण और सूचना की पुनर्प्राप्ति के साथ कागजी कार्रवाई को काफी हद तक कम किया जाता है। यह सब 'कम पेपर ऑफिस' के रूप में उभरा है। इस अवधारणा को एक कार्यालय की स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है जहाँ विभिन्न पदाधिकारियों के बीच सभी जानकारी (फ़ाइल और मेल) ऑनलाइन वितरित की जाती है। कार्यालय का काम, जैसे, फ़ाइल आंदोलनों, नोटिंग्स, आदि कम्प्यूटरीकृत और प्रलेखन, रिपोर्ट तैयार करना, डेटाबेस अब कंप्यूटरों में बनाए रखा जाता है। लैन के माध्यम से इंटरकनेक्टिविटी के कारण, सूचनाओं और फाइलों का स्थानांतरण ऑनलाइन होता है जिससे भौतिक आंदोलनों और कागज के विशाल ढेर का उपभोग और भंडारण कम हो जाता है।

3. सेवाओं की गुणवत्ता : आईसीटी सरकारों को नागरिकों को अधिक जवाबदेही और संवेदनशीलता के साथ सेवाएं देने में मदद करता है। सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार होता है क्योंकि अब लोग कुशलतापूर्वक और तुरंत सेवाएं प्राप्त करने में सक्षम हैं। अब लेनदेन और सूचना के संस्करणों को इलेक्ट्रॉनिक रूप से नियंत्रित किया जा सकता है और नेट और वेब के माध्यम से व्यापक क्षेत्र में वितरित किया जा सकता है। इसलिए गुणात्मक सेवाएं कम से कम समय में, कम से कम लागत, कम से कम कठिनाई और अधिक सुविधा में संभव हो जाती हैं।

शिकायतों के ऑनलाइन निवारण को सुनिश्चित करके अधिकारियों की जवाबदेयता को सुनिश्चित किया जा सकता है। वे लोगों को प्रभावित करने वाले मुद्दों के प्रति संवेदनशील हो गए हैं। वीडियो टेलीकांफ्रेंसिंग के माध्यम से निगरानी ने केंद्रीय निगरानी, रिपोर्टिंग और आमने-सामने की सुविधा को और अधिक सुविधाजनक बना दिया है जिससे अधिकारियों द्वारा प्रभावी सेवा वितरण का आश्वासन दिया गया है।

4. पदानुक्रम का उन्मूलन : आईसीटी ने संगठन में पदानुक्रमित प्रक्रियाओं के कारण होने वाली प्रक्रियागत देरी को कम किया है। इंटरनेट और लैन के माध्यम से एक ही समय में संगठन में विभिन्न स्तरों पर सूचना और डेटा भेजना संभव हो गया है। आईसीटी द्वारा कम्प्यूटरीकरण और संचार पैटर्न से दक्षता बढ़ गई है और निर्णय लेने में सभी स्तरों की भागीदारी को नेतृत्व का अवसर मिला है।

5. प्रशासनिक संस्कृति में बदलाव : नौकरशाही संरचनाओं को विक्टर थॉम्पसन द्वारा ''ब्यूरो-पैथोलॉजी'' के रूप में वर्णित किया है। नव लोक प्रशासन के दिनों से नौकरशाही व्यवहार के पैथोलॉजिकल या रोग संबंधी पहलुओं से निपटने और सार्वजनिक सेवाओं के वितरण को प्रभावी और कुशल बनाने के लिए प्रयास किए गए हैं। ई-गवर्नेंस के साथ

सार्वजनिक चकाचौंध के तहत आने वाले सार्वजनिक कार्य निश्चित रूप से प्रशासनिक संस्कृति में जवाबदेही, खुलेपन, अखंडता, निष्पक्षता, इक्विटी, जिम्मेदारी और न्याय के मानदंडों और मूल्यों को प्रेरित करेंगे। अब प्रशासन कुशल और उत्तरदायी बनेगा।

II. प्रभावी सेवा वितरण : पादर्शिता, आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, सूचना तंत्र प्रणाली। ई-गवर्नेंस आज एक वैश्विक घटना है और यह लोक प्रशासन में सबसे हालिया प्रतिमान है। ई-गवर्नेंस से जुड़ी धारणा में जवाबदेयता, कुशलता और पारदर्शिता में लोक प्रशासन को उत्तरदायी और प्रभावी बनाने की क्षमता है। **ई-शासन को प्रभावी बनाने के उपाय या सुझाव :** संरचना, पूंजी, उपलब्धता, सूचना की उपयोगिता, मानव संसाधन विकास, कैपेसिटी निर्माण, सार्वजनिक कार्यप्रणाली के चिंतन में बदलाव, भाषा तंत्र का विकास, शिकायत निवारण तंत्र का निर्माण तथा साईबर कानून एवं लोगों की डिजिटल सुरक्षा इत्यादि। अतः यह कहा जा सकता है कि ई-गवर्नेंस का विकास पायलट परियोजनाओं के चरण से पहले हो जाता है। इसलिए यह स्पष्ट हो जाता है कि ई-गवर्नेंस का सतत विकास एक पर्याप्त संस्थागत ढांचे पर निर्भर करेगा, जो सार्वजनिक प्रशासन को तकनीकी और संगठनात्मक परिवर्तनों की उभरती हुई भीड़ का प्रबंधन और सामंजस्य करने में सक्षम बनाएगा।

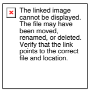

राज्य बनाम बाजार प्रतियोगिता
अथवा
सार्वजनिक निजी सहभागिता

(Public-Private-Partnership or PPP Model)

राजनीति विज्ञान के आरंभिक चिंतकों में गॉर्नर का नाम बहुत ही सम्मान के साथ लिया जाता है जिन्होंने पहली बार राज्य को एक स्पष्ट स्वरूप में परिभाषित किया। राजनीति विज्ञान के प्रारंभिक यूनानी विचारकों प्लेटो और अरस्तू के अनुसार राज्य मानव के जीवन को श्रेष्ठ स्वरूप प्रदान करने के लिए ही उदित हुआ है अथवा वह सद्जीवन के लिए अस्तित्व में आया है और सद्जीवन को बनाए रखने के लिए ही बना हुआ है। इसी तरह से अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य ने राज्य को 'राजनीति और शासन कला' के रूप में अभिव्यक्त किया है। एडम स्मिथ के द्वारा इसे वेल्थ ऑफ नेशन के रूप में तथा हरबर्ट स्पेंसर, जे. एस. मिल और फ्रीमैन के द्वारा न्यूनतम राज्य की बात कही गयी। औद्योगिक क्रांति, फ्रेंच क्रांति 1789,रूसी क्रांति 1917, वैश्विक महामंदी 1930, दूसरा महायुद्ध 1939-1945, पुनर्निर्माण तथा स्वतंत्र देशों की आर्थिक स्थिति और तीसरी दुनिया के देशों में उपनिवेशवाद और नव उपनिवशवाद का आगमन इत्यादि ने राज्य के रूप में आमूलचूल परिवर्तन किया है।
इसी के साथ समाजवादी राज्य, कल्याणकारी राज्य तथा पूंजीवादी राज्य भी चर्चित रहे है। 1980 व 1990 के दशम में अथवा यह कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के समय में राज्य को अनकानेक असफलताएं मिली। मुद्रास्फीति, आर्थिक संकट, गेट, विश्व व्यापार संगठन इत्यादि ने सीमित हस्तक्षेप वाले राज्य का समर्थन किया। सोवियत संघ गणराज्य रशिया का पतन राज्य के बाजार स्वरूप की ओर संकेत कर रहा था। यही कारण है कि अब न्यू पब्लिक मैनेजमेंट अथवा नवीन लोक प्रबंधन की बात कही जाने लगी। अब पूरी दुनिया भर में एक नवीन अवधारणा ने अपने को स्थापित कर लिया जिसे उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण अर्थात् एलपीजी ;स्च्ळद्ध के नाम से पहचान मिली। अब लोक प्रशासन और निजी प्रशासन में कुशलता या दक्षता, आर्थिक विवेकशीलता और प्रभावशीलता की बात की जाने लगी। इसलिए अब तक राज्य जो कर्ता के रूप

में विद्यमान था। वह राज्य अब सार्वजनिक लाभों के वितरणकर्ता के रूप में स्थापित हो रहा था। अब राज्य को समाज और अर्थव्यवस्था में परिवर्तन का सहायक या प्रोत्साहक के रूप में स्थापित किया गया। **ब्रिटेन में** मार्गेट थैचर की **थैचरवाद की नीति** और **न्यूजीलैंड में रोजनॉमिक्स** की अवधारणाओं ने दुनिया की राजनीतिक व्यवस्थाओं में हलचल उत्पन्न कर दी। संयुक्त राज्य अमेरिका में **रोनाल्ड रीगन की रीगेनॉमिक्स** तथा **भारत में 1990 के दशक में रावनोमिक्स** की अवधारणा ने जन्म ले लिया। चीन ने 2000 के दशक में चीनी बाजार समाजवादी अर्थव्यवस्था को स्थापित किया। अब विकासशील देशों में भी नवीन लोक प्रबंधन अथवा लोक विकल्प उपागम की शुरुआत हुई।

सार्वजनिक-निजी-सहभागिता प्रतिमान का अभिप्राय (PPP Model-Public-Private-Partnership) :- यह सरकार और निजी क्षेत्र के बीच जन सेवाओं के वितरण का एक समझौता या बन्धपत्र होता है। आधारभूत जन सुविधाओं, आर्थिक -सामाजिक संरचनाओं को उपलब्ध कराने हेतु सरकार और निजी क्षेत्र के बीच समझौता।

आईसीडी (OECD) के अनुसार 'सार्वजनिक-निजी-सहभागिता को सरकार तथा एक या अधिक जो कि संचालनकर्ता अथवा वितीय व्यवस्थाकर्ता के रूप में हो सकता हे, भागीदारों के बीच समझौते के रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि वे सरकार के ध्येय के अनुरूप सेवाओं को उपलब्ध कराने की व्यवस्था करेंगे तथा प्रभावशीलता तथा जोखिम एवं लाभांश का भी निर्वहन करेंगे।" विश्व बैंक के अनुसार 'यह सरकार व निजी क्षेत्र के बीच जनसेवाओं को डिलीवर करने वाले एक दीर्घकालीन समझौता है जिसके साथ में पर्याप्त जोखिम, प्रबन्धन का उतरदायित्व एवं निष्पादन के अनुरूप भुगतान की शर्ते जुड़ी होती है।" ब्राजील में पीपीपी एक्ट की धारा 2 के अनुसार "यह सरकारी निकाय एवं निजी निकाय के बीच एक कानूनी रूप से बाध्यकारी

समझौता होता है जिसमें निजी निकाय पूर्ण या आंशिक रूप से जनहित से सम्बन्धित सेवाओं का वितरण करता है और निजी क्षेत्र वितीय, निवेश एवं प्रबन्धन के लिए जिम्मेदार होता है।" वित मंत्रालय के आर्थिक मामलों के विभाग, **भारत सरकार, 2007 के अनुसार** "यह स्पोन्सरशिप के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र तथा प्रबन्धन एवं संचालन के लिए 51 फीसदी या इससे अधिक स्वामित्व रखने वाले वैधानिक निकाय के बीच सार्वजनिक ध्येय से आधारभूत संरचना को विकसित करने हेतु व्यापारिक शर्तों पर पारदर्शिता एवं उतरदायित्व के साथ निश्चित समयावधि के लिए किया गया समझौता है।"

सरकारी क्षेत्र के अनुभव को और निजी क्षेत्र की कुशलता को एक मंच पर लाना ही सार्वजनिक निजी सहभागिता है। विकास हेतु पिछड़े क्षेत्र और व्यक्तियों की तरफ निजी क्षेत्र के निवेश को आकर्षित करने हेतु इस मॉडल को सरकार ने अपनाया है। सार्वजनिक परिसंपत्तियों, सेवाओं में पीपीपी निवेश से कुशलता और उतरदायित्व को बढ़ावा मिलता है। आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र की समस्याओं के निदान में पीपीपी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में वाटर सप्लाई प्रोजेक्ट, वडोदरा एक्सप्रेस हाईवे, भीलवाड़ा एयरपोर्ट इत्यादि का विकास इसी प्रतिमान के आधार पर किया जा रहा है।

पीपीपी की आवश्यकता : सामान्य रूप से लोककल्याणकारी या प्रशासी राज्य के द्वारा ही आम जनता के लिए सभी प्रकार की सार्वजनिक सेवाओं की व्यवस्था की जाती है लेकिन इसी के साथ राज्य पर बढते आर्थिक बोझ ने तथा सार्वजनिक क्षेत्र की जन सेवाओं के वितरण में कमजोरी, अकुशलता, अप्रभावशीलता इत्यादि आधारभूत संरचनाओं का विकास करने व जन सेवाओं के वितरण के लिए एक नवीन अवधारणा को जन्म दिया है जिसके सहयोग की आवश्यकता राज्य को निम्नलिखित कारणों से हुई है :

1. **सेवा प्रबन्धन की प्रभावशीलता व दक्षता :** सार्वजनिक क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र का जन सेवाओं के वितरण में मजबूत एवं कुशल प्रबन्धन होता है। सार्वजनिक क्षेत्र जन सेवा वितरण की प्रक्रिया में जन उधार या ऋण, प्रबन्धन की कमी तथा नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण की समस्याओं से ग्रसित रहता है। निजी क्षेत्र जन सेवाओं के वितरण में दक्षता एवं प्रभाशीलता के कारण अपना महत्व रखता है। इसीलिए पीपीपी प्रतिमान की आवश्यकता हुई है।

2. **राज्य के आर्थिक बोझ को कम करने के लिए :** लोक कल्याणकारी राज्य के द्वारा जन हित में सभी कार्यो का निर्वहन करने से बजट सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न होने लगी है। इसलिए अब राज्य ने निजी क्षेत्र का सहयोग लेकर जन सेवाओं के वितरण में नवीन प्रतिमान का स्वीकार किया है। जहाँ उपभोक्ताओं से ही दीर्घकाल तक सेवाओं के बदले मूल्य वसूला जाता है। इससे सरकार पर बढने वाले जन ऋण का भार भी कम हो गया है।

3. **नवीन लोक प्रबन्धन :** नवीन लोक प्रबन्धन की अवधारणा के आगमन ने सरकारी कार्यों के विकेन्द्रीकरण की नीति के बडे स्तर पर बढावा दिया है। इसने जन सेवाओं के वितरण में अन्य समानान्तर इकाईयों को शामिल करने की वकालात की है। 1980 के दशक में उदित लोक प्रशासन की इस नवीन धारणा के कारण पीपीपी जैसे प्रतिमानों की आवश्यकता को बल मिला है।

4. **तकनीकी एवं सूचना प्रणाली का सहयोग :** निजी क्षेत्र के द्वारा अपनी कार्यप्रणाली को सदैव ही लाभांश में रखने के ध्येय से कार्य किया जाता है। अतः वे नवीन तकनीकों व प्रविधियों के माध्यम से कम लागत पर दक्षता एवं मितव्ययता के साथ कार्य करते है जिसका लाभ सरकारी क्षेत्र को भी मिलता है।

5. **लेखांकन, नवप्रर्वतन एवं जोखिम प्रबन्धन की रणनीति :**

सार्वजनिक क्षेत्र में सदैव ही लेखाकन की कमजोरी प्रणाली होती है। वे नवीन तकनीक एवं नवप्रवर्तनों का प्रतिरोध करते है जिसके कारण से अधिकाशंतया सरकार को वितीय घाटे का सामना करना पड़ता है लेकिन निजी क्षेत्र लेखांकन, नवप्रर्वतन एवं जाखिम का प्रबन्धन करने की रणनीति में सदैव ही दक्षता रखता है। इसलिए हमें पीपीपी प्रतिमान को अपनाने की आवश्यकता पड़ी है।

इस प्रकार से निजी क्षेत्र के साथ मिलकर राज्यों के लिए जन सेवा वितरण प्रणाली को आसान, कुशल, दक्ष एवं मितव्ययी तथा प्रभावी बनाने में सफलता मिलती है।

प्रमुख पीपीपी प्रतिमान : सरकार और निजी क्षेत्र के बीच होने वाले समझौते के विविध स्वरूप होते है। प्रत्येक प्रतिमान की अपनी विशेषता होती है। यह प्रत्येक देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक दशाओं पर निर्भर करता है कि कौनसा प्रतिमान उसके लिए अनुकूल होगा। विश्व बैंक के द्वारा अनेक पीपीपी प्रतिमानों का विवरण दिया गया है जिनमें से कुछ प्रतिमान निम्न है :

1. निष्पादन एवं सुधार प्रतिमान : यह एक जटिल प्रतिमान होता है जिसके अन्तर्गत सरकार चाहती है कि उसके सीमित संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जाए तथा उन सार्वजनिक क्षेत्रों में लगातार सुधार किया जाए। इसके लिए व्यवासायीकरण एवं विकेन्द्रीकरण की नीति का सहारा लिया जाता है।

2. जन कार्य एवं सेवा प्रतिमान : सामान्यतया आम जनता को वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता कराने के लिए एक तीसरे समूह की आवश्यकता होती है। इन सेवाओं की उपलब्धता में निजी क्षेत्र का बहुत बडा योगदान रहता है।

3. प्रबन्धन, संचालन एवं मरम्मत समझौता प्रतिमान : विश्व बैंक के अनुसार सरकार एवं निजी क्षेत्र के बीच समझौते के

दौरान ही यह उल्लिखित कर दिया जाता है कि एक निश्चित समय के लिए निर्धारित क्षेत्र में गतिविधियों का प्रबन्धन, संचालन एवं मरम्मत का कार्य उसी निकाय के द्वारा किया जाए।

4. लीज प्रतिमान : इसके अन्तर्गत निश्चित समय के लिए समझौते के अनुरूप सेवा व शर्तां के साथ निजी क्षेत्र को कार्य के लिए प्रतिबद्ध किया जाता है।

5. बीओटी (BOT) **और डीबीओं** (DBO)**:** बनाओं, संचालित करों और हस्तान्तरित करो (Build-Operate-Transfer) तथा डिजाईन करो, बनाओं और संचालित करो (Design-Build-Operate) प्रतिमान के माध्यम से अनेक आधारभूत संरचनाओं का विकास किया जाता है। इनके अलावा (DBOM -Design-Build-Operate-Maintain) (DBFO-Design-Build-Finance-Operate) इत्यादि प्रतिमान भी है। भारत में अधिकांशतया इसी तरह के प्रतिमान कार्यरत है।

पीपीपी मॉडल के लाभ और हानियां : -

पीपीपी मॉडल के लाभ :-

1. आधारभूत संरचनाओ के विकास में सहायक प्रतिमान : निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों मिलकर भारी लागत वाली आर्थिक एवं सामाजिक संरचनओं का विकास करने में एक मजबूत सहायक प्रतिमान के रूप में पीपीपी प्रतिमान उभरकर सामने आया है। निजी क्षेत्र की कुशलता, प्रबन्धन एवं तकनीक तथा सरकारी खजाने के सहारे इनका विकास किया जा रहा है।

2. विकास प्रणाली का गुणवत्तापूर्ण स्वरूप : विकास की प्रणाली में नकारा सार्वजनिक प्रशासन के साथ प्रबन्धन एवं व्यावसायिक व्यवस्था का मेलजोल होने से प्रबन्धन, प्रशासन एवं कार्यप्रणाली में तकनीक, सूचना, दक्षता के माध्यम से गुणवतापूर्ण व्यवस्था को स्थापित करने में भारी सहयोग मिलता है।

3. विकास प्रक्रिया में कुशलता और मितव्ययता का लाभ : निजी क्षेत्र को विकास प्रक्रिया में भागीदारी बनाने से निजी कार्मिकों की योग्यता, दक्षता, प्रबन्धन क्षमता तथा तकनीकी ज्ञान के माध्यम से भ्रष्टाचार एवं लालफीताशाही से मुक्ति मिलती है। इसलिए विकास की प्रक्रिया में कुशलता एवं मितव्ययता का अगमन हो जाता है।

4. वहनीय लागतों पर बुनियादी सेवाओं की सबके लिए उपलब्धता :
यह निजी क्षेत्र के सहयोग के माध्यम से ही संभव है कि मानव संसाधन के लिए अपरिहार्य एवं बुनियादी सेवाओं जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पेयजल, स्वच्छता, भोजन, कपड़े, संचार, सड़क परिवहन, विद्युत इत्यादि आधारभूत सेवाओं को कम से कम लागत या कीमतों पर आमजन के लिए उपलब्ध होती है।

5. समय और पैसे की बचत :
निजी क्षेत्र के सहयोग के माध्यम से कार्य में होनी अनावश्यक देरी अथवा सरकारी कार्मिकों की कामचोरी की मानसिकता से निजात मिलती है और जो लम्बी एवं जटिल सरकारी प्रणाली में समय व धन खर्च होता है, उससे भी बचाव हो जाता है।

6. निजी और सरकार क्षेत्र के बीच समन्वय :
यह प्रतिमान निजी एवं सरकारी क्षेत्र को एक दूसरे का प्रतियोगी नहीं बनाता है अपितु उन्हें सहयोगी के रूप में अवसर प्रदान करता है। दोनों क्षेत्र मिलकर एक दूसरे के साथ सहयोग करते है जिसके माध्यम से कार्य करने वाले संगठनों में समनव्य स्थापित होता है।

पीपीपी मॉडल के अवगुण :-

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था की असफलता :
सामान्य रूप से तो यह कहा जाता है कि सरकार एवं निजी क्षेत्र मिलकर मिश्रित आर्थिक प्रणाली का संचालन करते है। लकिन यह सत्य नहीं है निजी क्षेत्र शुरुआती दौर में जनहित में कार्य करता हुआ दिखायी देता है लेकिन समय के साथ वह जनहित में लगने

वाले व्यय को उसी जनता से पुनः वसूलने में लग जाता है। यह किसी भी दशा में मिश्रित प्रणाली का प्रतिस्थापन नहीं है।

2. जोखिम सरकार का और फायदा निजी क्षेत्र का : पीपीपी प्रतिमान का सबसे बड़ा अवगुण यह है कि इसके माध्यम से निजी क्षेत्र हानि या घाटा होने वाले क्षेत्रों में स्वयं अपने कदम पीछे खींच लेता है अथवा जहाँ पर जोखिम दिखायी देता है, वहाँ से वह दूर हट जाता है जिसके कारण सार्वजनिक क्षेत्र की लागत बहुत ज्यादा हो जाती है और जैसे ही जोखिम दूर हो जाता है तो निजी क्षेत्र स्वयं कार्य करने लग जाता है। ऐसा करके वह अपने को तो लाभ के दायरे में रख लेता है लेकिन सरकार को घाटे में पहुँचा देता है।

3. जनता की जमाओं पर व्यवसाय : निजी क्षेत्र के लिए पीपीपी प्रतिमान एक लाभ का सौदा साबित हुआ है। सरकारी क्षेत्र के साथ होने से इन संगठनों को बहुत बड़ी मात्रा में सरकारी वितीय प्रष्ठिनों से न्यून ब्याज दर पर ऋण की सुविधा मिल जाती है। 80 फ़ीसदी पैसा बैंकों में जनता का पैसा होता है जिसको व्यापारी अपने काम में लेते हैं। इसके माध्यम से वे जनता की जमाओं पर व्यापार करने में सफल हो जाते है और यदि पैसा डूब जाता है या घाटा भी हो जाता है या घाटा दिखा दिया जाता है तो इसकी सारी चपेट सरकार या आम जनता को लगती है।

4. निजी क्षेत्र हमेशा हानि दिखाता है परंतु फायदा नहीं बताता है : इस प्रतिमान का सहारा लेकर निजी संगठन फायदे तो सारे उठा लेते है लेकिन बात जब जिम्मेदारी की या पारदर्शिता या जवाबदेयता की आती है तो इससे वे चालाकी के साथ किनारा कर लेते है। अपने प्रबन्धन व प्रशासन की कुशलता का उपयोग करते हुए वे अपने आगम व लागत का इस तरह से प्रबन्धन करते है कि उनका लाभांश सामने नहीं आता है लेकिन वे हानि को दिखाने

में सदैव आगे रहते है। कर अपवंचना में निजी संगठन महारत हासिल कर लेते है और अन्ततः अहित जनता का ही होता है।

5. ऑडिट से बाहर होना :
सरकारी क्षेत्र की अपेक्षा निजी क्षेत्र के लिए यह एक बहुत ही सुनहरा अवसर होता है कि उसे सामान्यतया सार्वजनिक उद्यमों की तरह अंकेक्षण का सामना नहीं करना पड़ता है। इसके माध्यम से वे अपने लेखाओं को अपनी आवश्यकता के अनुसार तैयार कर लेते है और लाभांश को छिपाने में सफल हो जाते है।

6. सीएजी के नियंत्रण से मुक्त :
भारत जैसे देशों में निजी संगठन न केवल अंकेक्षण से अपितु नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक या अन्य नियमनकारी संस्थाओं के नियंत्रण के दायरे से भी मुक्त होते है।

7. अन्य अवगुण :
इन सबके अलावा इनके अवगुण संचार क्षेत्र के घोटाले, नौकरशाही को खरीदने, भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने इत्यादि अवगुण भी पाये जाते है।

पीपीपी मॉडल की बाधाएं :-

1. नौकरशाही संरचना में बिजनेस माहौल का अभाव अथवा ग्रीन टेप नौकरशाही का अभाव होता है।
2. सरकारी क्षेत्र की इकाईयों में पारस्परिक समन्वय नहीं होता है।
3. भ्रष्टाचार, कमजोर संस्थानिक पद्धतियां, समझौते के प्रारूप में कमियां इत्यादि है।

राष्ट्रीय सार्वजनिक निजी सहभागिता नीति 2011 (NP-PPP,2011) :
यह भारत सरकार की सार्वजनिक और निजी सहभागिता की नीति है। भारत सरकार पूरे देश में स्तरीय और गुणवत्तापूर्ण आर्थिक और

सामाजिक, सृजनात्मक सेवाएं उपलब्ध कराने हेतु पूर्णतया प्रतिबंध है। सरकारी उद्योगों और सेवाओं में पीपीपी मॉडल से निजी निवेश को बढ़ाकर दक्षता और कुशलता उत्पन्न करना इसका उद्देश्य है। भारत पिछले डेढ़ दशक से पीपीपी मॉडल द्वारा राष्ट्रीय संपत्तियों में वृद्धि का प्रयास कर रहा है। पिछले एक दशक से भारत में समावेशी विकास की अवधारणा को गति प्रदान करने के लिए पीपीपी मॉडल की प्रवृतियां बढ़ती जा रही हैं। विश्व बाजार का नेतृत्व भी इस मॉडल पर ही निर्भर दिखाई दे रहा है। यह समन्वय अथवा मध्यस्थता की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके एक तरफ सरकार या वैधानिक इकाई या सरकार के स्वामित्व वाली इकाई होती है तथा दूसरी तरफ निजी क्षेत्र की इकाई होती है। एक समय अवधि विशेष के लिए सार्वजनिक उपक्रम और सेवाओं में निजी निवेश द्वारा प्रबंधन और संचालन करना तथा जहां तक पूर्व निर्धारित स्तर को प्राप्त करने तक जोखिम की जिम्मेदारी सरकार और निजी क्षेत्र दोनों की होगी होती है।

पीपीपी मॉडल की कुछ शर्तें : सार्वजनिक निजी सहभागिता प्रतिमान अपनी कार्यप्रणाली का संचालन अनेक शर्तो के आधार पर करता है जो कि निम्नलिखित है :

1. निजी क्षेत्र के प्रबंधन के साथ निश्चित भाग अर्थात कंपनी अधिनियम इत्यादि।
2. वितीय और गैर वित्तीय निवेश के साथ-साथ उपभोक्ता को कुशल और गुणवत्तापूर्ण सेवाएं उपलब्ध कराना।
3. निश्चित समय अवधि हेतु निजी प्रबंधन ।
4. लाभ के साथ जोखिम में भी निजी क्षेत्र की हिस्सेदारी।
5. कार्य का भुगतान उसकी निष्पादन क्षमता से जुडा हो।

6. निष्पादन स्तर की सुनिश्चितता।

नागरिक अधिकार पत्र की अवधारणा
(The Concept of Citizen Charter)

नवीन प्रशासनिक व्यवस्था की अनेक नागरिक सम्बन्धी अवधारणाओं मेंं से एक है नागरिक अधिकर पत्र की धारणा। उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की अवधारणा के परिणामस्वरूप जब से राज्य ने जनता को सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए स्टेकहोल्डर्स का सहयोग लेना शुरू किया है अथवा निजी क्षेत्र को सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं के वितरण में भागीदार बनाया है तब से जनता को एक ग्राहक के रूप में अहमियत देने के ध्येय से अनेकानेक उपबन्धों की व्यवस्था की गई है, उनमें से एक है नागरिक अधिकार पत्र। नागकिर अधिकार पत्र की अवधारणा के अन्तर्गत भी राज्य के नागरिक को इन संगठनों या अभिकरणों के द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं के अन्तर्गत एक प्रमुख **'ग्राहक या कस्टमर'** के रूप में स्वीकार किया गया है। नागरिक अधिकार पत्र या नागरिक अधिकार घोषणा पत्र यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को उपलब्ध करायी जाने वाली सेवा प्रदत प्रणाली को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप उचित एवं प्रभावी स्वरूप मिल सके। नागरिक अधिकार पत्र एक ऐसा दस्तावेज होता है जो कि नागरिकों को उपलब्ध करायी जाने वाली सेवा प्रणाली को समयबद्ध एवं प्रभावी बनाता है। चार्टर में यह भी प्रावधान होते है कि यदि सेवाओं में किसी भी प्रकार की त्रुटि रहती है तो इस सम्बन्ध में सूचना तंत्र, सेवा के स्तर, प्रभावी वितरण के लिए शिकायत निवारण तंत्र की स्थापना की जाए।

नागरिक अधिकार पत्र की सबसे बड़ी समस्या यह है कि एक यह **कानूनी रूप से बाध्यकारी दस्तावेज नहीं है** और न ही यह न्यायालय में वाद दायर करने योग्य होता हे। अतः नागरिक अधिकार पत्र को हम सुशासन के एक प्रभावी माध्यम या उपकरण कह सकते है। प्रत्येक संगठन को आवश्यक रूप से नागकिर अधिकार पत्र को स्थान देना चाहिए जिसके माध्यम से नागरिकों को उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं का अधिक प्रभावी एवं कुशल स्वरूप प्रदान किया जा सके तथा एक नागरिक केन्द्रित प्रशासन की धारणा को भी लागू किया जा सकें।

नागरिक चार्टर की अवधारणा एवं अभिप्राय : नागकिर अधिकार पत्र की अवधारणा के अन्तर्गत भी राज्य के नागरिक को इन संगठनों या अभिकरणों के द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सेवाओं के अन्तर्गत एक प्रमुख **'ग्राहक या कस्टमर'** के रूप में स्वीकार किया गया है। नागरिक अधिकार पत्र या नागरिक अधिकार घोषणा पत्र यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को उपलब्ध करायी जाने वाली सेवा प्रदत प्रणाली को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप उचित एवं प्रभावी स्वरूप मिल सके। नागरिक अधिकार पत्र एक ऐसा दस्तावेज होता है जो कि नागरिकों को उपलब्ध करायी जाने वाली सेवा प्रणाली को समयबद्ध एवं प्रभावी बनाता है। नागरिक अधिकार पत्र की अवधारणा का प्रतिपादन **ब्रिटिश प्रधानमंत्री जॉन मेजर** के द्वारा **22 जुलाई, 1991** को किया गया। जॉन मेजर के अनुसार नागरिक अधिकार पत्र का अभिप्राय है कि ''ऐसी सेवा वितरण प्रणाली जिसमें नागरिक के हितों को केन्द्र में रखा जाता है।'' नागरिक एक ग्राहक है जो कि क्रेता के रूप में सार्वजनिक सेवाओं को खरीदता है। सार्वजनिक सेवा जिसे नागरिक अपनी इच्छा से खरीदता है लेकिन निर्धारित समय में वह गुणवत्ता के साथ सेवा की अपेक्षा करता है। सरकार द्वारा जनता को प्रदान की जाने वाली सार्वजनिक सेवाएं

समाज के सदस्यों के रूप में उनका अधिकार है। सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक और भौतिक अवसंरचना सम्बन्धी सुविधाएं नागरिकों के अधिकारों के रूप में राज्य के विरूद्ध दावे है।

नागकिर अधिकार पत्र इस बात का भी समर्थन करता है कि यह अधिकार पत्र नागरिकों के कुछ कर्तव्यों के साथ भी जुड़ा हुआ हैं जिन्हें वह राष्ट्र के लिए निभाने हेतु बाध्य होता है। मेजर के विचारों में नागरिक चार्टर सार्वजनिक सेवाओं को उन लोगों की आँखों से देखता है जो उनका उपयोग करते हैं। बहुत लंबे समय तक प्रदाता का वर्चस्व रहा है। अब इन सेवाओं के उपभोक्ता की बारी है। नागरिक चार्टर के सिद्धांत बहुत ही सरल लेकिन कठिन है तथापि इन्हें अब सभी देशों में तेज गति से स्वीकार किए जा रहा हैं। अब सेवा प्रदाता किसी देश के अन्तर्गत वहनीय लागतों पर उपलब्ध सीमित संसाधनों का अधिकतम उपयोग करके गुणवत्ता में सुधार एवं जवाबदेही का सर्जन करते है। इससे नागरिकों को अधिक शक्तिशाली होते है और उन्हें सेवाओं के चयन की अधिक स्वतंत्रता मिलती हैं। **जॉन मेजर** ने नागरिक चार्टर के निर्माण के लिए सार्वजनिक सेवाओं से सम्बन्धित **छः सिद्धांत दिए** जो कि निम्नलिखित है :

1. मानक या स्टैण्डर्डस।
2. सूचना और खुलापन या उदार प्रणाली।
3. चयन और परामर्श।
4. सहयोग और सहायता।
5. चीजों का व्यवस्थित स्वरूप।
6. लागत वहन करना।

नागरिक अधिकार पत्र की ऐतिहासिक यात्रा : 22 जुलाई 1991 को तत्कालीन प्रधान मंत्री जॉन मेजर द्वारा यूके में नागरिक चार्टर शुरू किया गया था। नागरिक चार्टर के सिद्धांतों

और उनकी अवधारणा की आलोचना सार्वजनिक सेवा में सुधार करने का दावा करने के आधार पर की गई थी, लेकिन निजी तरीकों को लाने के लिए प्रबंधन। कई देशों ने समय सीमा के साथ सेवा की गुणवत्ता और पारदर्शिता में सुधार के लिए सेवा वितरण को एक उत्तरदायी अभ्यास बनाने की अवधारणा शुरू की। ऐसे चार्टर को **'नवीन लोक प्रबंधन' का एक भाग** माना जा सकता है। नागरिक अधिकार पत्र की मूल भावना के अनुरूप धीरे-धीरे जन सेवाओं में गुणवता स्तर को बढ़ाने की पहल बेल्जियम, फ्रांस, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे कई देशों में फैल गई।

ऑस्ट्रेलियाई सरकार ने अपने सेवा चार्टर की **शुरुआत 1997 में** सरकारी एजेंसियों द्वारा जनता को दी जाने वाली सेवाओं में बेहतर गुणवत्ता के लिए पारंपरिक नौकरशाही तरीकों को ग्राहक-आधारित तरीकों में परिवर्तित करके की। इसलिए, कुछ चुनिंदा देशों में इन उपर्युक्त चार्टरों में देखा जा सकता है कि सिटीजन चार्टर का मुख्य उद्देश्य समय पर सेवाएं प्रदान करना और सरकार को जवाबदेह बनाना है। इस अवधारणा को 'कुल गुणवत्ता प्रबंधन' का नाम भी दिया जा रहा है।

भारत में नागरिक चार्टर :

भारत में सबसे **पहली बार 1997 में** सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में 'प्रभावी एंव उतरदायी सरकार की स्थापना की कार्य योजना' की बात कही गई। **प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग, भारत सरकार** के द्वारा इसे रेलवे, डाकघर सार्वजनिक वितरण प्रणाली में लागू किया जाए और बाद में राज्य सरकारे इसे लागू करेंगी। अनेक राज्य सरकारों ने सिटीजन चार्टर को लागू किया है लेकिन भारत में यह प्रभावी स्वरूप में कार्य नहीं कर सकता है। यहाँ जुगाड़ प्रणाली के माध्यम से कानून के शासन या अन्य किसी भी प्रकार की सुशासन की धारणा को विफल कर दिया जाता है। भारत में नागरिक चार्टर के साथ निम्नलिखित छह घटकों को शामिल करने

की बात पर बल दिया गया है अर्थात्

1. विजन और मिशन स्टेटमेंट

2. संगठन की गतिविधियां।

3. नागरिकों के लिए दैनिक उपभोग की वस्तुएं।

4. ग्राहकों के एक विशिष्ट समूह को दी जाने वाली सेवाओं का स्पष्ट विवरण।

5. शिकायत निवारण प्रणाली की उचित प्रक्रिया।

6. ग्राहकों की प्रत्याशित सेवाएं।

यह नागरिक चार्टर के निर्माण में विभिन्न संगठनों और हितधारकों को शामिल करने के उद्देश्य को पूरा करता है ताकि इसे सुशासन का एक प्रभावी उपकरण बनाया जा सके।

सिटीजन चार्टर की आवश्यकता : आधुनिक युग जो कि नवीन प्रबन्धन का युग है जिसमें न केवल वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादकों अपितु उनका उपयोग करने वालों के हितों का भी ध्यान रखना अपरिहार्य है। नागरिक अधिकार पत्र की आवश्यकता को निम्न कारकों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है :

1. नागरिकों की प्रत्याशाओं और लोक सेवओं के बीच संयोजन के लिए : नागरिक चार्टर जनता की प्रत्याशाओं और सार्वजनिक सेवा वितरण प्रणाली के बीच एक संयोजक के माध्यम से संतुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक है। आमतौर पर यह देखा गया है कि दोनों के बीच असंतुलन पाया जाता है और नागरिक उन्हें प्रदान की जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता से असंतुष्ट रहते हैं। प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग या ;क्।त्व्ळद्ध के द्वारा निर्मित नागरिक अधिकार पत्र प्रारूप के अनुसार, यह नागरिकों और प्रशासन के बीच की खाई को कम करने में मदद करता है और नागरिकों की जरूरतों की धारणा में किसी भी अस्पष्टता से बचने के लिए बेहतर योजना और नीति निर्माण में काफी सकारात्मक परिणाम दे सकता है। इन सबका व्यावहारिक

पहलू यह है कि प्रशासनिक और राजनीतिक स्तर पर सटीक रणनीति बनाई जानी चाहिए। इन रणनीतियों में निम्नलिखित तीन तत्व होने चाहिए। स्पष्टता : राजनीति और प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर नागरिक चार्टर की स्पष्ट समझ होनी चाहिए ताकि लोक नीति को नागरिकों के प्रत्याशित उद्देश्यों के अनुरूप व्यावहारिक स्वरूप में परिवर्तित किया जा सके। अर्न्तमुखता : चार्टर में नागरिक-प्रशासन इंटरफ़ेस होने चाहिए ताकि नागरिक को उसके महत्व का स्थान दिया जा सके क्योंकि पूरी प्रक्रिया नागरिक के लिए है। निगरानी : यह नागकिर चार्टर की अवधारणा को प्रत्याशाओं के अनुरूप परिवर्तित् करने वाला तीसरा महत्वपूर्ण तत्व होता है। यदि उचित निगरानी प्रणाली विकसित नहीं की जाती है तो चार्टर प्रभावी नहीं होता हैं।

2. निष्पादकता या निष्पादन : आमतौर पर सरकार द्वारा बनाई गई योजनाएं और परियोजनाएं अच्छी होती हैं लेकिन उनका कार्यान्वियन बहुत ही कमजोर या निम्न स्तर का होता है। यदि सिटीजन चार्टर को लागू किया जाए तो इस समस्या से बचा जा सकता है। नागकिर अधिकार पत्र सरकार को अपने कार्यक्रमों के निष्पादन में और सेवाओं के वितरण में गुणवत्ता के साथ सुधार करने में सहायक हो सकता है। इसके माध्यम से संगठनों के कर्मचारी ग्राहकों को संतुष्ट करने के लिए कार्य संस्कृति को भी समझेंगे और उसका भी पालन करेंगे। इसलिए चार्टर पहल मानकों को बढ़ावा देने और उन्हें सीमित करने में मदद करती है। यहाँ मुद्दा यह भी है कि नागरिकों को सेवाएं प्रदान करने का मानक, न तो बहुत अधिक होना चाहिए और न ही बहुत कम होना चाहिए ताकि नागरिकों को असामान्य अपेक्षाएं न हों।

3. समयबद्धता : सिटीजन चार्टर यह सुनिश्चित करता है कि नागरिक को उसकी सेवाएं समय पर मिलें। यदि सरकार द्वारा ग्राहकों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं को समय पर वितरित नहीं किया जाता है तो

इसका उद्देश्य और मूल्य या महत्व या उपादेयाता समाप्त हो जाती है। यदि यह उद्देश्य एक कानून का स्वरूप ग्रहण कर लेता है, जैसा कि कुछ देशों में है, तो यह नागरिक सेवाओं के लिए प्रत्याभूति या गारंटी के रूप में समयबद्ध वितरण प्रणाली का स्वरूप ले लेता है। ऐसा कानून 'समयबद्ध' सेवा वितरण में विफल रहने पर आर्थिक दंड या जुर्माने की भी व्यवस्था कर सकता है।

4. पारदर्शिता : एक नागरिक चार्टर का उद्देश्य पारदर्शिता में सुधार करना है ताकि प्रक्रिया ;च्तवबमेद्ध और प्रक्रियाओं ;च्तवबमकनतमेद्ध को सरल बनाकर भ्रष्टाचार के बिना लोगों तक आवश्यक सेवाओं की पहुँच को सुनिश्चित की जा सके।

5. कुल गुणवत्ता प्रबंधन : किसी देश में सुशासन के लिए गुणवत्ता में सुधार करना बहुत आवश्यक होता है। हाल के दिनों में सुशासन के एजेंडे को पूरा करने के लिए कुल गुणवत्ता प्रबंधन एक नवीन अवधारणा के रूप में उदित हुई है। सिटीजन चार्टर्स सेवा की गुणवत्ता को उच्च स्तर तक ले जाते हैं जिससे सभी हितधारक अधिक संतुष्टी को प्राप्त कर पाते हैं।

नागरिक चार्टर के सिद्धांत : सामान्यतया नागरिक अधिकार पत्र नागरिकों और सेवा प्रदाताओं के बीच एक कड़ी, एक सेतु या एक योजक के रूप में लिखित दस्तावेज होता है। नागरिक चार्टर निश्चित दृष्टिकोण, लक्ष्यों और समयबद्ध सेवा वितरण प्रणाली के कुछ सिद्धांतों पर आधारित होता है। नागरिक अधिकार पत्र सुशासन का एक प्रभावी उपकरण है जो कि निम्न सामान्य सिद्धांतों या मान्यताओं पर आधारित होता है :

1. पारदर्शिता का सिद्धान्त : कतिपय राष्ट्रीय महत्व के विषयों को छोडकर सभी निजी एवं सरकारी संगठनों को अपनी समस्त कार्यप्रणाली में पारदर्शिता का निर्वहन करना होता है। नागरिक अधिकार पत्र नागरिकों को

संगठन की कार्यप्रणाली एवं प्रक्रिया के बारे में समस्त जानकारी उपलब्ध कराता है। इसके माध्यम से नागरिक इन सेवाओं के लिए प्राधिकृत कार्मिक, सेवा शुल्क, भुगतान इत्यादि के बारे में आसानी से जानकारी प्राप्त कर इनके तक पहुँच सकते है। कार्यप्रणाली में पारदर्शिता के लिए यह आवश्यक है कि सम्पर्क सूत्रों का चार्टर में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। सभी अभिकरणों के स्थानों एवं उनके कार्यालय समय के साथ-साथ विशिष्ट सेवा से सम्बन्धित प्राधिकारी व्यक्ति के भी पुरे नाम और पते का स्पष्ट रूप से उल्लेख होना चाहिए। इसी के साथ सभी संगठनों में अपने सूचना सुविधा काउंटर होने चाहिए जो कि नागरिकों को को सही व उचित सूचना प्रदान कर सके। इसके अलावा सूचना सुविधा काउंटर के रूप में सूचना प्रदान करने के अन्य कार्य करने चाहिए जैसे कि संगठन की सूचना पुस्तिका, योजना पुस्तिकाएं और आगंतुक रजिस्टर चार्टर में प्रशिक्षित कर्मचारी के साथ कम्प्यूटरीकृत प्रशासनिक प्रतिष्ठानों वाले सूचना सुविधा काउंटरों के बारे में भी जानकारी शामिल होनी चाहिए, यदि वे उपलब्ध हो।

2. गुणवत्ता का सिद्धान्त : नागरिको को प्रदान की जाने वाली सेवाएं गुणवतापूर्ण होने चाहिए तथा इनकी गुणवता को परखने का कोई निश्चित पैमाना भी निर्धारित होना चाहिए। नागरिक अधिकार पत्र सभी सार्वजनिक सेवाओं में बेहतर गुणवत्ता की दिशा में कार्य करने वाला दस्तावेज हैं। सेवाओं की अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए नागकिर अधिकार पत्र में पूर्व-परिभाषित मानकों का होना आवश्यक है ताकि गुणवता की जवाबदेयता बनी रहे। वस्तुओं एवं सेवाओं की गुणवता जांच के अनके माध्यम या उपकरणों का उपयोग दूनियाभर में किया जाता है जैसे कि स्वर्ण या गोल्ड के लिए स्पेशल मार्क की व्यवस्था करना। कुल गुणवत्ता प्रबंधन उपकरणों के माध्यम से सेवाओं की गुणवत्ता में भी सुधार किया जा सकता है। ऐसे उपकरणों की संख्या सौ से भी अधिक है लेकिन सबसे अधिक उपयोग में लिए जाने वाले गुणवता पैमाने पाई चार्ट, बार

ग्राफ, हिस्टोग्राम, रन चार्ट, फोर्स फील्ड विश्लेषण, फोकस समूह इत्यादि हैं।

3. ग्राहक के लिए चयन या विकल्प का सिद्धान्त : नागकिर चार्टर का यह सिद्धान्त 'ग्राहक की पसंद' को संदर्भित करता है। ग्राहक को यह चुनने का अधिकार है कि वह क्या पसंद करता है और क्या चाहता है? वास्तविकता यह है कि सभी ग्राहकों के पास समान विकल्प नहीं होते हैं क्योंकि यह बहुत हद तक नागरिक की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। इसी के साथ में ग्राहक के पास विकल्प होने के लिए उसे नवीनतम विकास और उपलब्ध विकल्पों के बारे में अपडेट और जागरूक होना चाहिए। इसलिए सार्वजनिक संगठनों को ग्राहकों या नागरिकों की भागीदारी के साथ जहाँ तक संभव हो अधिक व्यावहारिक होना चाहिए। संगठन के लिए ग्राहकों की आवश्यकताओं की प्राथमिकता को ध्यान में रखना आवश्यक है ताकि उपयोगकर्ताओं को तदनुसार सेवाएं और विकल्प प्रदान किया जाना संभव हो सके।

4. जवाबदेयता का सिद्धान्त : सद्शासन की अवधारणा के मुख्य सहायकों में से एक है जवाबदेही या अकांण्टबिलिटी जिसे नागरिक चार्टर पत्र में शामिल किया गया है। नागरिक चार्टर का उद्देश्य सूचना के अधिकार के माध्यम से जवाबदेही तय करना है। सार्वजनिक क्षेत्र नागरिक केंद्रित प्रशासन के प्रति अपने कर्तव्य की अनुपालना में व्यक्तिगत एवं सांगठनिक रूप में जवाबदेह होता है। यह मूल रूप से सेवा वितरण में रहने वाली कमी या किसी भी प्रकार की त्रुटि के लिए प्राधिकृत अधिकारी की जिम्मेदारी या रेसपोन्सिबिलिटी तय कर रहा है। नागरिक अधिकार पत्र में निगरानी, मूल्यांकन और समीक्षा और शिकायतों के निवारण की व्यवस्था के माध्यम से जवाबदेही को सुनिश्चित किया जा सकता है। जैसा कि संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) के द्वारा सरकारी क्षेत्र के लिए विकसित 'जवाबदेह और नागरिक-हितैषी सरकार' के प्रतिमान में

अभिव्यक्त किया गया है कि नागरिक चार्टर को सही स्वरूप में लागू करने पर यह एक प्रभावी उपकरण के रूप में कार्य करता है।

5. सेवाओं के स्तर या मानक का सिद्धान्त : संगठन के द्वारा नागरिकों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं के स्तर या मानकों का चार्टर में स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। नागरिक अधिकार पत्र के मूल खाके में भी सेवाओं के स्तर को, निर्धारित या पूर्व परिभाषित मानक के अनुरूप में सेवा स्तर नहीं मिलने पर ग्राहक क्या आकांक्षा रखते है? और उनकों क्या करना होगा? इन सबको चार्टर में उल्लेखित करने की बात कही गई है। यह सिटीजन चार्टर का सबसे मार्गदर्शक सिद्धांत प्रतीत होता है। नागरिक चार्टर को स्पष्ट रूप से सेवा वितरण मानकों जैसे कि स्पष्टता, समयसीमा, पहुँच विश्वसनीयता, मूल्य निर्धारण, प्रतिक्रिया इत्यादि के लिए स्पष्ट रूप से प्रतिबद्धता व्यक्त करनी चाहिए। ग्राहक पहले, नेतृत्व, प्रणाली विश्लेषण, सुधार करने के लिए सतत प्रयास करना, तथ्यों और आंकड़ों पर विशेष बल, ग्राहकों व माल आपूर्तिकर्ता के बीच मधुर संबंधों के उप सिद्धान्तों के आधार पर सेवा स्तरीकरण या मानकीकरण को निर्धारित किया जा सकता है।
जैसे कि भारत में किसी उत्पाद पर ***(The Bureau of Indian Standerds- BIS)*** मानक चिह्न का दावा उसके स्तर या मानक की प्रामाणिकता को साबित करता है जिससे निर्माता के लिए वस्तु का विपणन करना आसान हो जाता है।

6. करदाताओं के पैसे के मूल्य का सिद्धान्त : नागरिक चार्टर के माध्यम से नागरिकों को सशक्त बनाने वाला छठा सिद्धांत 'मूल्य' है। इसका तात्पर्य यह है कि सार्वजनिक संगठनों को संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करके करदाता के पैसे अथवा कर भुगतान का मूल्य देना होगा।

इस प्रकार से निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भले ही नागरिक चार्टर कानूनी रूप से स्वीकार्य नहीं हो तथापि यह नागरिकों को विभिन्न संगठनों के द्वारा प्रदत सेवाओं के सम्बन्ध में

मानकों को तय करके गुणवत्तापूर्ण सेवा वितरण के लिए रोडमैप तैयार करता है। इसके माध्यम से राजनीति विज्ञान के पितामह अरस्तू की सद्शासन की धारणा को निश्चित रूप से प्राप्त किये जाने की ओर एक कदम आगे बढ़ा जा सकता है।

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

सूचना का अधिकार
(The Right to Information)

प्रत्येक शासन प्रणाली में नागरिक का यह अधिकार कि वह यह जान सके कि उसकी सरकार क्या कर रही है? प्रत्येक संगठन की कार्यप्रणाली का स्वरूप बहुत ही व्यापक एवं जटिल होता है। डिजीटल युग के परिणामस्वरूप भी संगठनों की अनेकानेक गतिविधियां मैनुअली संचालित होती है। अपनी समस्त कार्यप्रणाली जो चाहे नियमों व विनियमों से जुडी हो या लाभांश प्रक्रिया से अथवा कार्मिकों के वेतन, भतों या व्यय से जुडी हो उसके बारे में संगठन के पास समस्त सूचना होना अपरिहार्य होता है। यदि इसी सूचना को संगठन के सदस्यों या अन्य व्यक्तियों के साथ साझा किया जाता है तो यह लोक सूचना होती है। लेकिन संगठन सभी प्रकार की सूचनाओं को सब लोगों को नहीं बताता है। संगठन के बारे में गोपनीय या राष्ट्रीय महत्व की सूचनाओं को छोड़कर अन्य सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार लोगों को दिलाने वाली अवधारणा को ही सूचना के अधिकार के नाम से जाना जाता है। सूचना की धारणा आज की अपेक्षा पुराने जमाने में भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी। सूचना की अवधारण का महत्व 12 वीं शताब्दी के ब्रिटेन के 'महाधिकार पत्र' या मैग्नाकार्टा के जमाने से आज तक निरतंर दिखायी देता है जो कि आज आम आदमी के

लिए सूचना प्राप्त करना एक अधिकार बन गया है। अतः सूचना का महत्व सदैव सर्वोपरि रहा है। सूचना हर चरण और रूप में विकास का मूल रही है।

सूचना के अधिकार का अभिप्राय : सामान्यतया सूचना हमेशा किसी न किसी रूप में जनता से संबंधित होती है। व्यक्ति राज्य रूपी संगठन का सदस्य होता है और प्रत्येक संगठन इस राज्य के अधीन या नियंत्रण या सहमति से ही कार्य करता है। अतः राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले को छोड़कर उनके बारे में जानकारी प्राप्त करना जनता का अधिकार होता है। आंग्ल भाषा का शब्द (Information) का हिन्दी अनुवाद सूचना है। आंग्ल भाषा का यह शब्द लैटिन भाषा के शब्द इनफॉर्मरि (Informare) से निर्मित हुआ है जिसका अर्थ है कि विचारों और चिंतन की अस्पष्टता को दूर करके किसी आकृति को पूर्ण करना या एक संरचना सर्जन करना। इस प्रकार सूचना का अधिकार अधिनियम को इस विचार के साथ प्रस्तुत किया गया था कि सूचना आम आदमी को शक्ति प्रदान करती है या सशक्त बनाती है।

सूचना के अधिकार की ऐतिहासिक विकास यात्रा : ब्रिटेन में **मैग्ना कार्टा या 'ग्रेट चार्टर' 1215** ने स्वतंत्रता की धारणा की नींव के रूप में कुछ बुनियादी मानवाधिकारों की स्थापना की। इस ऐतिहासिक घटना के बाद पिछली शताब्दियों में सौ से अधिक देशों ने किसी न किसी रूप में सूचना की स्वतंत्रता से सम्बन्धित अनेक कानून बनाए है। **सबसे पहले स्वीडन के स्टॉकहोम में 'लेखन एवं प्रेस की स्वतंत्रता' से सम्बन्धित अध्यादेश, को 1766 ई'** में पारित किया गया। यह आगे चलकर नागरिकों के लिए एक कानूनी अधिकार बन गया। स्वीडन सूचना के अधिकार एवं भ्रष्ट्राचार मुक्त राज्य के बीच की कडी को सत्यापित करता है। इस का परिणाम है कि स्वीडन सबसे कम

भ्रष्ट्र देशों की सूची में सर्वाच्च स्थान पर काबिज है जबकि भारत जैसे देश इसमें बहुत नीचे है।
संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1948 में आयोजित ’नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय समझौते’ के दौरान अनुच्छेद 19 के तहत एक प्रस्ताव पारित कर सूचना की स्वतंत्रता को एक मानव अधिकार के रूप में स्वीकृत किया है जो कि नागरिकों को सार्वजनिक संगठनों एवं अभिकरणों के बारे में सूचना प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है।
फिनलैंड ने 1951 में ’सार्वजनिक दस्तावेजों के खुलेपन पर अधिनियम’ पारित किया जिसने सरकार और पंजीकृत धार्मिक समुदायों सहित आम जनता के लिए सभी अभिलेखों और दस्तावेजों के खुलेपन को स्वीकृति प्रदान की।
1966 में अमेरिका ने ’सूचना की स्वतंत्रता का अधिनियम पारित किया। न्यूजीलैण्ड ने 1982 में ’कार्यालय सूचना एक्ट’ पारित किया। कनाडा ने 1983 में, डेनमार्क ने 1985 में तथा ब्रिटेन ने ’सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम 2000’ पारित किया।

सूचना के अधिकार का भारत में विकास : भारत में सूचना के अधिकार के विकास की एक लम्बी कहानी है। अनेकाने संघर्षो के परिणामस्वरूप भारत में सूचना के अधिकार ने कानूनी अमलीजामा पहना है। यह प्राय विकासशील या पिछड़े समाजो की सबसे बडी समस्या है कि वे यथास्थिति में बदलाव पंसद नहीं करते है। सबसे पहली बार 1975 में भारतीय सर्वाच्च न्यायालय के द्वारा यह निर्णय दिया गया कि भारतीय नागरिकों को भी सार्वजनिक संगठनों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का हक है।

राजस्थान में सरकारी कार्यप्रणाली को जवाबदेय बनाने के उद्देश्य से 1980 में मजदूर किसान शक्ति संगठन (डज्ञै) की स्थापना की गई। इस संगठन के आंदोलन शुरुआत श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी की मांग से हुई थी। राजस्थान के अजमेर जिले में 1996 में न्यूनतम मजदूरी का भुगतान न करने की

जानकारी की मांग को लेकर हड़ताल शुरू हुई लेकिन इसकी सबसे बडी उपलब्धि है, आरटीआई या सूचना का अधिकार। 1982 में सूचना के अधिकार को भारतीय संविधान में अनुच्छेद 19,1 के तहत मौलिक अधिकार के रूप में विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का हिस्सा घोषित किया गया। भोपाल गैस त्रासदी 1984 ने इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1996 में सूचना के अधिकार के लिए राष्ट्रीय अभियान की स्थापना की गई। इसने अन्य समूहों और भारतीय प्रेस परिषद की मदद से आरटीआई का एक मसौदा विधेयक तैयार किया गया। इस मसौदे को 1997 में एच डी शौरी के अध्यक्षता वाली समिति को समीक्षा के लिए भेजा गया।
वर्ष 2000 में आरटीआई एक्ट पास करने के लिए सुप्रीम कोर्ट में केस दायर किया गया तथा दूसरी ओर शौरी समिति की रिपोर्ट को एक संसदीय समिति को भेजा गया। मई, 2005 में विधेयक को लोकसभा के साथ-साथ राज्य सभा ने भी पारित कर दिया। अतः जून, 2005 में आरटीआई बिल को राष्ट्रपति से मंजूरी मिल गई और अन्ततः 12 अक्टूबर, 2005 को भारत में आरटीआई अधिनियम लागू हुआ।

आरटीआई की आवश्यकता एवं महत्व :
सूचना का अधिकार राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए एक अनिवार्य घटक है। सूचना नागरिकों के बीच जागरूकता को बढ़ाती है और इसलिए यह सहभागी शासन के स्तर को बढ़ाने में मदद करती है। नागरिकों के सामाजिक-राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के साथ ही निम्नलिखित आधारों पर आरटीआई की आवश्यकता और इसके महत्व को स्पष्ट किया जा सकता है :

न्यायिक आवश्यकता के रूप में :
सूचना के अधिकार, 2005 को भारत के संविधान में अन्य देशों की तरह, भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के हिस्से के रूप में शामिल किया गया है। यह एक्ट

लोक हित में कार्य करने वाली सभी कंपनियों, गैर सरकारी संगठनों और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों पर जनता के अधिकार के विस्तारित स्वरूप में लागू होता है। इस अधिनियम के तहत सूचना प्रदान करने के दौरान भारत को काफी दबाव का सामना करना पड़ रहा है। चूंकि यह एक ऐसा अधिकार है जो कि अन्य अधिकारों जैसे कि भोजन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार और सबसे महत्वपूर्ण जीवन के अधिकार से जुडे हुए कृत्यों को भी पूरा कराने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

मानवाधिकार को स्थापित करने की आवश्यकता के लिए : सूचना के अधिकार को पूरी दुनिया में बड़ी संख्या में एजेंसियों और संगठनों के द्वारा एक मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 10 दिसम्बर, 1948 में आरटीआई उस समय ही विद्यमान था। इसमें कहा गया था कि 'सूचना की स्वतंत्रता एक मौलिक अधिकार है और यह उन सभी स्वतंत्रताओं के लिए पारस पत्थर के समान है जिनके लिए संयुक्त राष्ट्र समर्पित है'। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय समझौते या वार्ता के अनुच्छेद 19 में यह कहा गया था कि हर किसी को 'किसी भी मीडिया के माध्यम से और सीमाओं की परवाह किए बिना' सूचना और जानकारी प्राप्त करने का अधिकार होगा। आरटीआई सभी मानवाधिकारों को प्राप्त करने का एक उपकरण है। सूचना के अधिकार की सहायता से नागरिक अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हो सकते हैं और सामाजिक और आर्थिक कल्याण सुनिश्चित करने वाले अपने मौलिक अधिकारों के प्रति सरकारों को जवाबदेह ठहरा सकते हैं।

भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए आवश्यक : यद्यपि भ्रष्टाचार की समस्या एक विकराल समस्या है इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि आरटीआई इसे पूरी तरह खत्म कर सकता है तथापि आरटीआई भ्रष्टाचार को रोकने के लिए एक प्रभावी उपकरण के रूप में कार्य करता है। आरटीआई अधिनियम

की प्रस्तावना के उद्देश्यों में भ्रष्टाचार की रोकथाम को शामिल किया गया है। अगर सरकारी कर्मचारी, नौकरशाह या कानून भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, तो लोगों और एजेंसियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो स्वच्छ और ईमानदार सुशासन के लिए भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने के लिए काम कर रहा है। निम्न स्तर पर भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के लिए उच्च स्तर पर विद्यमान भ्रष्टाचार के बीजों को नष्ट करने की आवश्यकता है। आरटीआई के साथ में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के सहयोग से भ्रष्टाचार को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

लोकतांत्रिक आकांक्षाओं या पूर्वापेक्षाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक :

दुनिया में कोई भी लोकतंत्र 'लोगों का, लोगों द्वारा और लोगों के लिए' के मूल सिद्धांत पर काम करता है। सरकारी परियोजनाओं और गतिविधियों में नागरिकों की आम सहमति को शामिल करके आरटीआई प्रत्यक्ष रूप से लोकतांत्रिक राज्य को संबोधित करता है। लोकतांत्रिक पूर्वापेक्षा सहभागी शासन के ढांचे पर काम करती है। आरटीआई इस लोकतांत्रिक सहभागीदारी को प्रोत्साहित करने में मदद करता है। चूंकि सरकार सभी तरह के राजस्व का संग्रहण करती है और सभी क्षेत्रों में जनता से संबंधित निर्णय लेती है इसलिए यह उचित है कि जनता सरकार की इस कार्यप्रणाली की जानकारी को प्राप्त करे। सूचना के अधिकार का मूल उद्देश्य सरकार को जवाबदेह ठहराना है। यह सूचना के अधिकार का ही परिणाम है कि सरकारी संगठनों ने अब अपनी गतिविधियों की प्रणालियों और प्रक्रियाओं के बारे में सभी प्रासंगिक जानकारी उपलब्ध कराना अनिवार्य कर दिया है।

पारदर्शितापूर्ण और जवाबदेही सिस्टम की स्थापना के लिए आवश्यक :

सूचना का अधिकार अधिनियम स्वचालित रूप से पारदर्शिता की ओर ले जाता है क्योंकि यह लोगों के लिए सरकार की नीतियों और गतिविधियों तक पहुँच को सरल बनाता है। इसलिए जब

लोगों के पास आवश्यक जानकारी होती है तो उनके पास किसी भी प्रकार की गलती या त्रुटि के लिए सरकार को जवाबदेह ठहरा सकते है। मीडिया आरटीआई अधिनियम के माध्यम से पारदर्शिता और जवाबदेही की प्रक्रिया को तेज करने में मदद करता है। इसे न्याय को कायम रखने के लिए प्रासंगिक और महत्वपूर्ण मुद्दों पर सार्वजनिक बहस के रूप में देखा जाता है। सार्वजनिक संगठनों को भी नए सिरे से और दृश्यमान जवाबदेही के कारण बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

शासन के प्रति जनविश्वास के निर्माण हेतु आवश्यक : आमतौर पर यह माना जाता है कि जनता को सरकार की गतिविधियों की मंशा या नियति पर भरोसा नहीं होता है। यह विश्वासघात की भावना पर आधारित समाज को अशांति और निराशा की ओर ले जाता है। दूसरी ओर सूचना तक पहुँच, जैसी नीतियां शासन प्रणाली को खुलेपन और पारदर्शिता की ओर ले जाती हैं तथा राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र को मजबूत करती हैं। लोगों के विश्वास के अभाव में सुशासन के ध्येय को प्राप्त करना कठिन होता है।

इस प्रकार से उपयुक्त विवेचन के पश्चात् निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सूचना का अधिकार सुशासन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसे आज दूनियाभर के अधिकांश लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों के द्वारा अपना लिया गया। यह निश्चित रूप से एक बेहतर मानवीय समाज का सर्जन करने में मील का पत्थर साबित होगा।

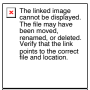

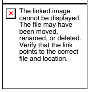

लोक प्रशासन पर उदारीकरण का प्रभाव

(Effect of Globalisation on Public Administration)

उदारीकरण के इस युग में देशों की मूलभूत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन अपेक्षित है। यह उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध अथवा पश्चिमी और गैर पश्चिमी अथवा विकसित या विकासशील राज्य के विभाजन को दर्शाती है। उत्तर अमेरिकी देशों की नौकरशाही जनता के प्रति अथवा कर्तव्यों के प्रति सकारात्मक रुख रखती है अथवा वह उदारीकरण की साथ जुड़ी हुई है जबकि विकासशील देशों में यह धर्म, सत्ता, अभिजन, एक पार्टी से जुडी होती है। सूचना प्रवाह को नियंत्रित करके नौकरशाही को उसके प्रभाव और कुशलता से दूर रखती है जैसे कि मुस्लिम देश ईरान, सऊदी अरब, सीरिया इत्यादि।

समाजवादी देश चीन, उत्तरी कोरिया, क्यूबा इत्यादि देश भूमंडलीकरण के द्वारा अपनी सामाजिक संस्कृति, मूल्यों का राजनीतिक व्यवस्था के लिए इनका प्रचार करते हैं जबकि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया तकनीकी, वैज्ञानिक विधि और आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित तथा परिवर्तित करना चाहती है। यह वास्तव में लोक प्रशासन की भूमिका को न्यूनतम लेकिन जवाबदेय स्वरूप में परिवर्तित करना चाहती है। विकसित देशों में ही प्रभावी कार्य और कुशलता प्रशासन पर प्रभाव डालता है, विकासशील देशों में नहीं। जैसे कि नवीन औद्योगिक अर्थव्यवस्था वाले देश हांगकांग, ताइवान, साउथ कोरिया, आइसलैंड, सिंगापुर जबकि पूर्वी यूरोपीय देश हंगरी, पोलैंड, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया इत्यादि। इन देशों को उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण का विशेष फायदा मिला है। वैश्विक दबाव सरकार के सभी स्तरों पर होता है, भले ही राष्ट्रीय स्तर हो अथवा स्थानीय स्तर अथवा अंतरराष्ट्रीय स्तर। स्थानीय नीति अक्सर राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर जाती है। वैश्विक दबाव पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिकी देशों की

सरकारों के कार्यों, बजट, निजी संगठन, निजीकरण, उत्पादन इत्यादि को अभिव्यक्त करता है। यह सरकारी कार्य और सेवाओं सभी स्तरों पर लगातार समावेशी स्वरूप से आगे बढ़ रहे हैं जबकि राज्य की भूमिका लगातार कम होती जा रही है मानव संसाधन विकास पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है। सरकार सामाजिक सेवा कार्यों के लिए अन्य एजेंसियों से एग्रीमेंट अथवा समझौता करती हैं। सूचना तकनीक, औपचारिकता और अनौपचारिकता पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है।
इसी के साथ बाजार दबाव एवं बाजार प्रतिमान सिद्धांतों ने लोक प्रशासन को बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन अथवा व्यवसायिक प्रशासन के रूप में परिवर्तित कर दिया है। व्यापारिक प्रशासन के समान लोक प्रशासन भी अब कुशलता, दक्षता, प्रभावशीलता, उत्पादकता, कार्य निष्पादन, उत्तरदायित्व, लचीलापन के साथ जुड़ रहा है। जर्मन विचारक मैक्स वेबर ने जिस आदर्श नौकरशाही प्रतिमान की विशेषताएं बताई हैं। वह इसका सामना नहीं कर सकती हैं उदारीकरण ने इन सबको परिवर्तित कर दिया है।
यद्यपि आज सभी सरकारें भले ही वह स्थानीय स्तर की सरकार हो अथवा अंतरराष्ट्रीय स्तर की सरकार उत्तरदायित्व, जिम्मेदारी, कुशलता और प्रभावशीलता को प्राप्त करना चाहती है। लोक सेवक भी यह आशा करते हैं कि नियोक्ता के अधिकार, कार्य की सुरक्षा, सामाजिक समानता, न्याय, श्रम विभाजन इत्यादि स्पष्ट हो।
इस उदारीकरण युग में नौकरशाही दो सिद्धांतों से जुड़ी हुई रहना चाहती है अर्थात संगठन में उत्पादकता, उत्तरदायित्व और लचीलापन हो। इसके लिए कार्य निष्पादन प्रणाली के अनुरूप वेतन अथवा भुगतान का समर्थन नौकरशाही करती है। भुगतान का दूसरा तरीका है, उत्पादकता के आधार पर भुगतान।
यह सूचना तकनीक क्रांति से जुड़ी हुई अवधारणा है जिसने मानवीय व्यवहार, निगम प्रबंधन, सरकार की स्थिति को व्यापक रूप से परिवर्तित कर दिया है। इतना ही नहीं है अपितु जितना

औद्योगिक क्रांति ने कृषि आधारित समाज को बदला उससे भी अधिक बदलाव उदारीकरण लेकर आया है। बाजार और व्यापार के समन्वय को इंटरनेट और मोबाइल उपक्रम ने बहुत अधिक आसान बना दिया है। सूचना तकनीक ने संसार में महाशक्ति और कमजोर राष्ट्रों की श्रेणी को स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया है। आज कुछ लोग राष्ट्रीय पूंजी के रूप में 24 घंटे संसार से जुड़े हुए रहते हैं। लोक प्रशासन प्रणाली अनेक देशों को इस संबंध में सहायता प्रदान करती है अनेक सामाजिक वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व्यापार और राजनीतिक प्रणाली की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। विकसित और विकासशील देशों में लोक प्रशासन का अलग तरीके से मुकाबला करते कुछ लाभ प्राप्त किया तो क्यों और कैसे क्या इसका कारण प्रशासनिक प्रणालियां प्रशासन है। यदि है तो विवादित लोक प्रशासन व्यवस्था ने इन चुनौतियों को कैसे सामना किया।

संदर्भ :

C.S.R. Prabhu, E-governance: Concepts and Case Studies, Printice Hall of India, New Delhi, 2004

Pankaj Sharma, E-government: From vision to implementation, Sage Publication, New Delhi, 2004

Subhash Bhatnagar, E-governance: Concepts and Case Studies, Printice Hall of India, New Delhi, 2004

Special Number on IT and Indian Administration, IJPA, July -September, 2000

Mohit Bhattacharya, "Public Administration: Today & Tomorrow", IJPA, Vol. XLIII, No.3 July-Sept. 2001

Mohit Bhattacharya "Globalization, Governance and Development ", IJPS, Vol.62, No.3, Sept. 2001

N.K. Kulshrestha, "Management in Public Administration, IJPA, Vol. XL, No.1, January-March, 1994 1. E. Lindblom Charles, The Policy Making Process, Englewood Cliffs, NJ Prentice Hall Incorporation, 1968

Paul H. Appleby, Policy and Administration, The University of Albara Press, 1940

Jones Charles O., An Introduction to the Study of Public Administration Policy, Brooks Cole Pub. Co., Monetary California, 1986

O. Pardeep Sahni, Public Policy, Conceptual Dimension, Allahabad, Kitab Mahal, 1987

R.B. Jain, Policy and Parliament in India, Indian Institute of Public Administration, New Delhi, 1983

James F. Anderson, Public Policy Making, Preager, New York, 1979

Yehezkel Dror, Design for Policy Sciences, American Elsevier Publishing Company, New York, 1971

Annual Report, 2004-05, Department of Information Technology, Government of India

Cabinet Office, 1999, Modernising Government, Cm 4310, Stationery Office, London

Chatillon, G., 2004, Electronic Government in France, in Martin Eifert and Jan Ole Puschel, (eds.), National Electronic Government, Routledge, New York

Comptroller and Auditor General, 2002, Better Public Services through E-Government, Report submitted to House of Commons in Session 2001-02: 4 April 2002, The Stationery Office, London

Dror, Y., 1990, Democratic Reformcraft, Working Paper, European Institute of Public Administration, Maastricht, Netherlands

Dubey, M., 2003, Less Paper Governance, Paper Presented at EROPA Conference, New Delhi

Halachmi, Arie, E-Government Theory and Practice: The Evidence from Tennessee USA, in Marc Holzer, Mengzhong Zhang, and Keyong Dong, (eds.), Frontiers of Public Administration, The American Society for Public Administration, New York

Government of India, Information Technology Act, 2000 (No. 21 of 2000)

http://www.worldbank.org/publicsector/egov/definition.htm

http://egov.mitgov.in/bground1.htm

Office of the E-Envoy, 2000, E-Government: A Strategic Framework for Public Services in the Information Age, Stationery Office, London

Planning Commission of India, 2001, Report of the Working Group on Convergence and E-governance 2002-07 for Tenth Five-Year Plan

OECD. (2008). Public–Private Partnerships: In the pursuit of Risk Sharing and Value for Money. Paris: OECD Publications

Yescombe, E.R. (2011). Public–Private Partnerships Principles of Policy and Finance. Netherlands: Elsevier Publications

Mahajan, A. P. 'Public Administration' Pearson India Education Services, Pvt. Ltd, Noida, UP, 2019

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, 'Public Administration : An Introduction' PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

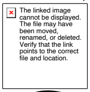

सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा

(The Concept of Social Audit)

संगठनात्मक निर्णय किसी न किसी रूप में हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए उनकी जवाबदेही महत्वपूर्ण है कि वे सामाजिक दृष्टिकोण से धन के किसी भी दुरूपयोग के बिना अपना काम कुशलतापूर्वक, आर्थिक और प्रभावी ढंग से कर रहे हैं। सभी हितधारकों के सामने इसे रखने के लिए संगठन इसकी प्रगति और समस्याओं को स्थापित और मात्रात्मक रूप से मूल्यांकन कर सकते हैं।

सामाजिक अंकेक्षण की धारणा का अभिप्राय : ऑडिट शब्द एक **लैटिन शब्द 'ऑडियर'** से निकला है जिसका अर्थ है 'सुनना'। अतः सामान्य अर्थ में किसी कार्यप्रणाली के बारे में सुनना या उसकी जांच करना।
डेविड और ब्लोमस्ट्रॉम के अनुसार एक सामाजिक लेखा परीक्षा एक संगठन के सामाजिक प्रदर्शन का एक व्यवस्थित अध्ययन और मूल्यांकन है, जो इसके आर्थिक प्रदर्शन से अलग है। यह जीवन की अर्थव्यवस्था के बजाय जीवन की सामाजिक गुणवत्ता पर संभावित प्रभावों से संबंधित है। सामाजिक लेखा परीक्षा प्रबंधन और शायद बाहरी लोगों के लिए भी एक सामाजिक प्रदर्शन रिपोर्ट की ओर ले जाती है।
खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार एक सामाजिक लेखा परीक्षा किसी संगठन के सामाजिक और नैतिक प्रदर्शन को मापने, समझने, रिपोर्ट करने और अंततः सुधारने का एक तरीका है। एक सामाजिक अंकेक्षण दृष्टि/लक्ष्य और वास्तविकता के बीच, दक्षता और प्रभावशीलता के बीच के अंतर को कम करने में मदद करता है। यह संगठन के सामाजिक प्रदर्शन को समझने, मापने, सत्यापित करने, रिपोर्ट करने और सुधारने की एक तकनीक है।
सुशासन केंद्र के अनुसार सामाजिक अंकेक्षण एक ऐसा उपकरण है जिसके माध्यम से सरकारी विभाग गैर-वित्तीय गतिविधियों की योजना, प्रबंधन और माप कर सकता है और

विभागों के सामाजिक और वाणिज्यिक संचालन के आंतरिक और बाहरी दोनों परिणामों की निगरानी कर सकता है।

सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा ऐतिहासिक स्वरूप या विकास यात्रा :

प्राचीन काल में भी सामाजिक अंकेक्षण प्रणाली मौजूद थी जब राजा यह जांचने के लिए अधिकारियों को भेजते थे कि क्या कार्य/परियोजनाओं को योजना के अनुसार किया जा रहा है। यद्यपि अपने वर्तमान स्वरूप में विद्यमान नहीं थी। राजाओं की रिपोर्ट की जमीनी हकीकत से तुलना करने के लिए सम्राट ऑडिटर भेजते थे। ऑडिट शब्द एक लैटिन शब्द 'ऑडियर' से निकला है जिसका अर्थ है 'सुनना'।

प्राचीन रोम में, सम्राट लोगों को उनकी कल्याणकारी गतिविधियों और संबद्ध मुद्दों जैसे कर्मचारियों के व्यवहार, कर की घटना, स्थानीय अधिकारियों की छवि आदि पर जनता से सीधे फीडबैक प्राप्त करने के लिए लेखा परीक्षकों के नाम पर व्यक्तियों को शामिल करते थे। सम्राट अपनी प्रतिक्रिया के आधार पर आम लोगों के लाभ के लिए अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को संशोधित या परिवर्तित करते थे। इस प्रक्रिया में नीति-निर्माण में आम लोगों को शामिल किया गया और परोक्ष रूप से पूरे समाज ने शासन में भाग लिया।

बोवेन की भूमिका :

1930 का दशक में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के एक शिक्षाविद प्रोफेसर थियोडोर क्रेप्स ने 'सामाजिक अंकेक्षण' शब्द को प्रस्तुत करने तथा सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा को अंतिम रूप देने से पहले उसने अपने विषय व्यवसाय और सामाजिक कल्याण में कंपनियों की जिम्मेदारियों के रूप में सामाजिक लेखा परीक्षा की अवधारणा को विकसित किया। लेकिन यह ज्ञातव्य रहे कि सामाजिक अंकेक्षण या सोशल ऑडिट शब्द का पहली बार उल्लेख हॉवर्ड आर. बोवेन ने 1953 में अपने एक लेख 'सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटीज ऑफ ए बिजनेसमैन'1953 में किया था।

उन्होंने व्यावसायिक नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी पर चर्चा की और इसकी नींव रखी जिसके द्वारा व्यावसायिक अधिकारी और शिक्षाविद विषयों को रणनीतिक योजना और प्रबंधकीय निर्णय लेने के हिस्से के रूप में मान सकते हैं। सामाजिक अंकेक्षण के विषय में बोवेन का कार्य व्यवसाय संचालन के वर्तमान नैतिक मुद्दों की प्रासंगिकता के कारण महत्वपूर्ण है और इसे कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व पर मौलिक पुस्तक के रूप में माना जाता है।

जॉर्ज गोएडर 1950 की भूमिका :
सोशल ऑडिट शब्द को उसी अवधि में बोवेन के रूप में प्रचारित किया गया था। उन्होंने सामाजिक अंकेक्षण के बढ़ते महत्व को समाज द्वारा संगठनों के बहुराष्ट्रीय निगमों के रूप में विकसित होने पर नियंत्रण को सक्षम करने की आवश्यकता से जोड़ा। उन्होंने कहा, 'वित्तीय ऑडिटिंग एकतरफा स्थिति है और उन दिनों की है जब कंपनियां छोटी थीं और सार्वजनिक जवाबदेही सुरक्षित थी .... बड़े व्यवसाय की अर्थव्यवस्था में .... स्पष्ट रूप से एक सामाजिक अंकेक्षण की उतनी ही आवश्यकता है जितनी एक वित्तीय अंकेक्षण के लिए'।

चार्ल्स मेडावर की भूमिका :
1972 में चार्ल्स मेडावर ने सोशल ऑडिट का विषय का आगे बढ़ाया। उनके अनुसार 'सोशल अंकेक्षण न तो एक प्रत्यक्ष और न ही एक पूर्ण समाधान है'। सामाजिक अंकेक्षण सर्वोत्तम रूप से वास्तविक औद्योगिक लोकतंत्र के अंत का एक साधन है। व्यावसायिक नैतिकता को कानून में परिभाषित करने की आवश्यकता है और सामाजिक लेखा परीक्षा के किसी भी बुनियादी प्रारूप में कानून के अनुपालन के स्तर का माप होना चाहिए। समस्या कानूनों में निहित है क्योंकि वे लोगों के सामाजिक जीवन पर प्रदर्शन और प्रभाव को मापने के लिए तैयार नहीं किए गए थे। (6) मेडावर ने सरकार के साथ-साथ कॉर्पोरेट संगठनों में दवा, दवा सुरक्षा मुद्दों और जवाबदेही पर नीति में

सामाजिक लेखा परीक्षा की अवधारणा को लागू किया। 1970 के दशक में यूके और यूरोप में सामाजिक अंकेक्षण की धारणा का विकास ट्रेड यूनियनों, स्थानीय सरकारी संस्थानों, कॉरपोरेट्स और औद्योगिक संगठनों ने सामाजिक अंकक्षण की अवधारणा को लागू करने के लिए संगठन की गतिविधियों के नौकरियों, समुदाय और पर्यावरण पर प्रभाव को समझने के लिए अपने उद्देश्यों को सामाजिक और एक विशिष्ट गतिविधि के आर्थिक प्रभाव के रूप में पेश करने के लिए लागू किया। 1984 सहकारी खुदरा समिति ने फिर से सामाजिक लेखा परीक्षा की और कई संगठनों ने स्वेच्छा से इसके लिए जाने का पालन किया।

1990 के दशक में, इस अवधारणा ने लोकप्रियता हासिल की और 1997 में, सोशल एंटरप्राइज पार्टनरशिप ने पहला यूरोपीय सोशल ऑडिट प्रोग्राम शुरू किया, जिसमें पूरे यूरोप के समूह शामिल थे। विश्वविद्यालयों ने सोशल ऑडिट को एक पाठ्यक्रम के रूप में आरम्भ किया।

सामाजिक लेखा परीक्षा के उद्देश्य : अवधारणा की बेहतर समझ के लिए सामाजिक अंकेक्षण के ध्येय के बारे में जानकारी प्राप्त करना अति महत्वपूर्ण है। इसके ध्येय निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किये जा सकते है।

1. अंतराल की पहचान : सामाजिक लेखा परीक्षा समाज के स्थानीय विकास के लिए उपलब्ध जरूरतों और संसाधनों के बीच भौतिक और वित्तीय अंतराल का आकलन करती है। इससे लोगों को क्या चाहिए और लोगों को क्या मिलता है, के बीच का अंतर कम हो जाएगा।

2. सामाजिक सिद्धांत : सामाजिक अंकेक्षण प्रतिवेदन संगठन के द्वारा तैयार किया जाता है जो इस बात पर प्रकाश डालती है कि संगठन की रणनीतियाँ और गतिविधियाँ सामाजिक सिद्धांतों के अनुरूप हैं या नहीं। संगठन के सामाजिक-आर्थिक योगदान को लेखापरीक्षा में मापा

जाता है।

3. जागरूकता :
यह संगठन की विकासात्मक गतिविधि और वास्तविकता के बीच के अंतराल को प्रकाश में लाता है और उन लोगों के बीच जागरूकता फैलाता है जो संगठन की सेवाओं के लाभार्थी हैं।

4. सुधार :
एक सामाजिक अंकेक्षण सामाजिक दृष्टिकोण से कार्यक्रमों और संगठन की गतिविधियों में कमजोरियों का विश्लेषण और निष्कर्ष निकालता है। इन कमियों से संगठन को सकारात्मक सामाजिक प्रभाव के लिए अपने कार्यक्रमों में सुधार करने के लिए बदलाव करने की योजना बनाने में मदद मिलती है।

5. सामाजिक संसाधनों के आवंटन की जानकारी :
इससे पता चलेगा कि ऑडिट के तहत संगठन ने सामाजिक जिम्मेदारियों के लिए कितने संसाधन आवंटित किए हैं।

6. सलाहकार की भूमिका :
सामाजिक लेखा परीक्षा संगठन के प्रबंधन के लिए एक सलाहकार की भूमिका निभाती है कि सामाजिक खाते और सामाजिक आय विवरण कैसे तैयार किया जाए। यह जांच करता है कि क्या 'मूल्य वर्धित विवरण' सही ढंग से दिए गए हैं। यदि यह इसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान के रूप में वर्णित करता है।

7. सेवाओं की गुणवत्ता का आकलन :
एक सोशल ऑडिट संगठन द्वारा अपने लाभार्थियों को प्रदान की जा रही सेवा की गुणवत्ता का भी आकलन करती है।
उपरोक्त उद्देश्यों से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक अंकेक्षण जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए अभिव्यक्तीकरण के सिद्धांत के लिए एक उपकरण है। यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक जवाबदेही को मजबूत करने के लिए सामाजिक लेखा परीक्षा तंत्र कितना महत्वपूर्ण है। यह कहना नहीं है कि यह कॉर्पोरेट के लिए काम नहीं करता है, कानून द्वारा, यह अनिवार्य है कि बड़े निगम सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ी गतिविधियों में निवेश करते हैं।

सामाजिक अंकेक्षण की आवश्यकता : किसी संगठन से लोगों की अपेक्षाओं और लोगों को जो मिलता है उनके बीच विभाजन और अलगाव ही सामाजिक अंकेक्षण की आवश्यकता का मूल आधार होता है। सार्वजनिक परियोजनाओं में निवेश की आधी रकम रिश्वत के रूप में और मध्य स्तर के प्रबंधन में अधिकारियों के द्वारा की जाने वाली धोखाधड़ी जगजाहिर है। मार्जिन, कटौती, कमीशन और रिश्वत का खेल लाभार्थियों की दिशा से सार्वजनिक धन को विचलित कर देता है। जमीनी स्तर पर कार्यक्रमों को लागू करने में नौकरशाहों की अहम भूमिका होती है। सामाजिक अंकेक्षण के माध्यम से संभवतया नीति निर्माताओं और नीति के कार्यान्वयन कर्ताओं पर निम्नलिखित तरीके से नियंत्रण रखा जा सकता है :

1. यह सामाजिक लाभ को मापता है।
2. किसी संगठन के प्रदर्शन के सामाजिक और नैतिक प्रभाव पर नज़र रखता है।
3. सामाजिक रूप से जिम्मेदार और जवाबदेह में प्रबंधन की नीतियों को तैयार करने के आधार के रूप में कार्य करता है।
4. जवाबदेही बढ़ाता है।
5. पारदर्शिता बढ़ाता है।
6. सामाजिक लागत का आकलन करता है।

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सोशल ऑडिट कमीशन और रिश्वत को कम करने में मदद कर सकता है। यह कहा जा सकता है कि सोशल ऑडिट सभी मुद्दों के लिए रामबाण नहीं है, लेकिन यह निश्चित रूप से उपयोगकर्ताओं को सामाजिक लाभ पहुंचाने में आने वाली चुनौतियों के लिए एक निवारक के रूप में कार्य कर सकता है।

सामाजिक अंकेक्षण के प्रमुख सिद्धांत : सामाजिक अंकेक्षण अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित होता है। दुनिया भर के सभी देशों में आठ सिद्धांतों को आम तौर पर स्वीकार किया जाता है। इन्हें

हैदराबाद में 'सेंटर फॉर गुड गवर्नेंस' द्वारा तैयार किया गया है जो कि निम्नलिखित है :

1. **बहुआयामी/बहुपद** : इसका उद्देश्य संगठन/विभाग/कार्यक्रम से जुड़े या उसके द्वारा बनाए गए सभी लोगों (हितधारकों) के विचारों (आवाज) को प्रतिबिंबित करना है।
2. **व्यापकता** : संगठन के काम और प्रदर्शन के सभी पहलुओं पर (अंततः) रिपोर्ट करने का लक्ष्य है।
3. **सहभागिता** : हितधारकों की भागीदारी और उनके मूल्यों को साझा करने के लिए प्रोत्साहित करता है।
4. **बहुआयामी** : हितधारक कई पहलुओं पर साझा करते हैं और प्रतिक्रिया देते हैं।
5. **नियमित** : नियमित रूप से सामाजिक खातों को तैयार करने का लक्ष्य ताकि संगठन की सभी गतिविधियों को शामिल करते हुए इसे अवधारणा एवं अभ्यास के माध्यम से संगठन की संस्कृति के रूप में अंतर्निहित किया जा सके।
6. **तुलनात्मक** : सामाजिक अंकेक्षण एक ऐसा साधन प्रदान करता है जिससे संगठन प्रत्येक वर्ष अपने स्वयं के प्रदर्शन की तुलना उचित बाहरी मानदंडों या बेंचमार्क के समानान्तर कर सकता है और समान कार्य करने वाले और समान तरीके से रिपोर्टिंग करने वाले संगठनों के बीच तुलना भी की जा सकती है।
7. **सत्यापन :** यह सुनिश्चित करता है कि सामाजिक खातों का ऑडिट एक उपयुक्त अनुभवी व्यक्ति या एजेंसी द्वारा किया जाता है, जिसका संगठनों में कोई निहित स्वार्थ नहीं है।

8. **प्रकटीकरण या प्रस्तुतीकरण** : यह सुनिश्चित करता है कि लेखापरीक्षित खाते जवाबदेही और पारदर्शिता के हित में हितधारकों और व्यापक समुदाय के सामने प्रकट किए जाते हैं।

ऊपर दिए गए सिद्धांत एक सामाजिक लेखा परीक्षा का निर्माण करते हैं जिससे निर्णय लेने वालों को समानता, सामाजिक जिम्मेदारी, विश्वास, जवाबदेही, पारदर्शिता समावेशी, देखभाल और लोगों की भलाई के सार्वभौमिक मूल्यों को सुधारने और बनाए रखने में मदद मिलती है।

सामाजिक अंकेक्षण के दृष्टिकोण : यद्यपि सामाजिक अंकेक्षण के सम्बन्ध में विभिन्न विचारकों और अभिकरणों के मत में व्यापक भिन्नता है। सामाजिक लेखा परीक्षा के बारे में सामान्य सहमति यह है कि सामाजिक अंकेक्षण वित्तीय लेखा परीक्षा या अंकेक्षण के सामाजिक प्रदर्शन से संबंधित है। सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख दृष्टिकोण निम्न हैं :

सामाजिक अंकेक्षण का लागत या परिव्यय दृष्टिकोण : इसमें लागतों की पहचान और लागतों को कम करने के तरीकों की खोज शामिल है लेकिन यह लागत आवंटन की जटिल समस्याएं पैदा करता है। यह केवल इनपुट पर ध्यान केंद्रित करता है और आउटपुट को मापने का कोई प्रयास नहीं करता है। आउटपुट को मापने से तात्पर्य है कि संगठन के प्रति सामाजिक हित या अनुकूल सार्वजनिक प्रतिक्रिया में वास्तव में कितनी धनराशि खर्च की गई है। यह संगठन के भीतर परिचालन अधिकारियों का मार्गदर्शन करने के लिए आवश्यक जानकारी प्रदान करता है लेकिन उपलब्धि के कोई उपाय नहीं करता है जो उपभोक्ताओं, बड़े पैमाने पर जनता और सरकार द्वारा सूचना की मांगों को पूरा करता है।

सामाजिक अंकेक्षण का मानव संपत्ति मूल्यांकन दृष्टिकोण :
यह संगठन या फर्म या संयंत्र या कार्यालय जहाँ स्थित हैं वहाँ पर मानव संगठन की उत्पादक क्षमता के मूल्य' और 'शेयरधारक वफादारी, आपूर्तिकर्ता वफादारी, और समुदायों में वफादारी का मूल्य को मापता है। संगठन की सामाजिक गतिविधियों की लागत को सही ठहराने के लिए इन मूल्यों को पूरा किया जाना चाहिए। यह सामाजिक गतिविधियों के सकारात्मक मूल्यों का मापन करता है और उन्हें पूरा करने के तरीकों की सिफारिश करता है। हालांकि, यह दृष्टिकोण सामाजिक उपलब्धियों को उन संदर्भों में नहीं मापता है जो संगठन के बाहर के लोगों के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

सामाजिक अंकेक्षण का कार्यक्रम प्रबंधन दृष्टिकोण : यह उन गतिविधियों को मापता है जो विशेष रूप से सामाजिक कारणों से संबंधित हैं अर्थात् लागत अनुमान और गतिविधि की प्रभावशीलता का आकलन करना।

सामाजिक अंकेक्षण का इन्वेंटरी दृष्टिकोण : यह संगठन की गतिविधियों के वर्णनात्मक विवरण को सूचीबद्ध करता है जिसके लिए विशिष्ट समुदाय या समाज के वर्ग को संगठन से अपेक्षाएं होती हैं। इस दृष्टिकोण में लागतों के विश्लेषण और मनोबल, सद्भावना, प्रतिष्ठा या समाज को अर्जित लाभों के मूल्य की कमी है और मूल्यांकनात्मक लेखांकन की कमी है।

सामाजिक अंकेक्षण का लागत लाभ दृष्टिकोण : लागत लाभ दृष्टिकोण के कई प्रकार होते है जिनमें से दो हैं:

1. बैलेंस शीट दृष्टिकोणः यह समाज के लिए योगदान की गई संपत्ति / मूल्यों और समाज के

लिए संगठन द्वारा की गई या नहीं की गई कार्रवाई के लिए समाज के लिए नुकसान / देनदारियों को मापता है।

2. लागत/लाभ का मूल्यांकन : यह एक अधिक लोकप्रिय और सरल दृष्टिकोण है जो मात्रात्मक या गुणात्मक रूप से संगठन और/या समाज के लिए सामाजिक कार्यक्रमों और लाभों की लागत की गणना करता है।

व्यावहारिक रूप से, किसी एक दृष्टिकोण का पालन नहीं किया जाता है, और दृष्टिकोणों का एक संयोजन लागू किया जाता है।

सामाजिक अंकेक्षण के लाभ और कार्यक्षेत्र : सामाजिक अंकेक्षण सार्वजनिक गतिविधियों के उपयोगकर्ताओं, यानी नागरिकों के सामाजिक कल्याण पर प्रभाव का आकलन करने का एक उपकरण है। के. डेवनपोर्ट ने सामाजिक अंकेक्षण के अनेक लाभ बताए है जिन्हें सभी अभिकरणों और सरकारों द्वारा स्वीकार किया जाता है जो कि निम्नलिखित है :

1. संगठन की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि : एक सामाजिक लेखा परीक्षा रिपोर्ट के परिणाम स्पष्ट रूप से संगठन के नैतिक प्रदर्शन के स्तर और दूसरी ओर सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के बारे में हितधारकों की धारणा को दर्शाता है। यदि संगठन के सेवा वितरण में सामाजिक दृष्टिकोण उच्च स्तर का है तो यह संगठन की प्रतिष्ठा को जोड़ता है और बढ़ाता है। सेवाओं के मूल्यांकन की वर्तमान प्रणाली बेंचमार्किंग और संकेतकों के बारे में है। नागरिक सभी प्रक्रियाओं से अवगत हैं और नागरिक चार्टर और सूचना का अधिकार अधिनियम के माध्यम से सूचना तक पहुँच रखते हैं सरकारी संगठन उनमें सार्वजनिक हित बनाने के लिए अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते हैं।

2. हितधारकों के लिए नीति-निर्माताओं को सचेत करने की प्रवृति :

सोशल ऑडिट ऐसी सूचनाओं को हटा देता है जो हितधारकों के मुद्दों और समस्याओं को समझने और उनकी भविष्यवाणी करने की कुंजी है। यह सरकार और समाज के बीच एक दूसरे पर परस्पर निर्भरता को सुगम बनाने में मदद करता है।

3. एक सकारात्मक संगठनात्मक परिवर्तन :

सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया के माध्यम से कार्यान्वयन और किस हद तक संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है। इससे प्रबंधन को अपने दिन-प्रतिदिन के कामकाज में सुधार करने में मदद मिलती है।

4. जवाबदेही में बढोतरी :

सामाजिक लेखा परीक्षा बाहरी स्त्रोतों से अपनी जानकारी को सम्मिलित रूप से प्राप्त करने के लिए सत्यापित करती है। सामाजिक अंकेक्षण का बाहरी सत्यापन सेवा वितरण में संगठन के कार्यों में स्वीकार्यता और विश्वसनीयता जोड़ता है। सामाजिक अंकेक्षण के बाद निष्पादन स्तरों में वृद्धि सामाजिक अंकेक्षण की विश्वसनीयता की वास्तविक परीक्षा है।

5. प्राथमिकताएं का निर्धारण :

यह सभी आवश्यक जानकारी होने के बाद प्राथमिकताओं को फिर से उन्मुख और पुनः केंद्रित करने में मदद करता है।

6. सामाजिक क्षेत्रों में विश्वास में वृद्धि :

जब एक बार संगठनों को उनके बारे में पता चल जाता है तो विशिष्ट सामाजिक क्षेत्रों में कमजोर होने पर वे आत्मविश्वास के साथ उन क्षेत्रों में अधिक ध्यान केंद्रित कर सकते हैं।

सामाजिक अंकेक्षण का क्षेत्र : एक बार यह स्थापित हो जाने के बाद कि सामाजिक लेखा परीक्षा का संगठनों के सामाजिक और नैतिक प्रदर्शन में सुधार के लिए इष्टतम उपयोग है, इसके दायरे का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। जिन क्षेत्रों में इसे लागू किया जा सकता है वे हैंः

1. **नैतिकताः** किसी संगठन में सामाजिक अंकेक्षण यह पता लगाने के लिए किया जा सकता है कि क्या उसकी नीतियां और परियोजनाएं नैतिक रूप से दिन-प्रतिदिन की कार्यात्मक गतिविधियों के लिए खुद को संरेखित करती हैं। यह सत्यापित करता है कि क्या संगठनात्मक गतिविधियाँ निर्धारित नैतिक मानकों और सिद्धांतों के अनुसार की जा रही हैं
2. **दर्शन और दृष्टिः** सामाजिक लेखा परीक्षा सामाजिक जिम्मेदारी के संबंध में एक संगठन की दृष्टि की पहचान करती है। यह अपने दर्शन में किसी भी कमी के बारे में जानकारी प्रदान करता है ताकि इसे सुधारा जा सके।
3. **स्टैंगः** यह निर्धारित करने के लिए एक सामाजिक लेखा परीक्षा आयोजित की जा सकती है कि संगठन प्रबंधक अपनी नीति के संबंध में पुरस्कार, प्रशिक्षण और विकास, भेदभाव विरोधी, निष्पक्षता और सभी के साथ समान व्यवहार कैसे करता है।
4. **पर्यावरणः** अधिकांश निर्माण संगठनों को पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए अपशिष्ट निपटान और क्षति में कमी से निपटना पड़ता है। ऐसे संगठनों के लिए सामाजिक लेखा परीक्षा आयोजित की जा सकती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि विशेष संगठन पर्यावरण की रक्षा के

लिए सभी संबंधित कानूनों और विनियमों का पालन कर रहा है या नहीं और यदि नहीं, तो संगठन सुधार के तरीके निकाल सकते हैं।

5. **मानवाधिकारः** संगठन द्वारा किसी मानवाधिकार का उल्लंघन किया जा रहा है या नहीं, इसकी जांच के लिए सोशल ऑडिट किया जा सकता है।
6. **समुदायः** सामाजिक लाभ को अधिकतम करने के लिए एक संगठन के लिए उनकी जरूरतों को समझने के लिए नागरिक भागीदारी और सामुदायिक जुड़ाव महत्वपूर्ण है। सामाजिक अंकेक्षण यह सुनिश्चित करता है कि सामाजिक प्रतिबद्धताओं से संबंधित समझौतों का रखरखाव किया जा रहा है।
7. **समाजः** संगठन के लाभ का कम से कम दो प्रतिशत हर साल कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) में योगदान करना अनिवार्य है। कानून को लोकप्रिय रूप से '2 प्रतिशत विधेयक' कहा जाता है। सोशल ऑडिट सुनिश्चित करता है कि सीएसआर का लक्ष्य पूरा किया जा रहा है।
8. **अनुपालनः** प्रत्येक संगठन को कुछ वैधानिक और कानूनी आवश्यकताओं का पालन करना होता है और सोशल ऑडिट यह सुनिश्चित करता है कि ऐसी शर्तें पूरी हों।

इस प्रकार से हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि संगठनों को सफल बनाने के लिए सामाजिक अंकेक्षण को स्वीकार करना होगा।

सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया के निष्पादन के मुख्य चरण :

आमतौर पर संगठन आंतरिक प्रशासन और नीति-निर्माण पर

इसके कार्यान्वयन के लिए प्रबंधन द्वारा सोशल ऑडिट रिपोर्ट को उजागर किया जाता है। वह नागरिकों के विश्लेषण के लिए इसे सार्वजनिक नहीं करता है कि वे यह देखे कि यह संगठन की नीतियों के अनुसार हैं या इसमें कोई अंतराल है। सामाजिक अंकेक्षण को दो दृष्टिकोणों से आयोजित की जानी चाहिए :

1. एक तो प्रबंधन के दृष्टिकोण से इसकी आन्तककिर कार्यप्रणाली के सुधार हेतु।
2. दूसरा समुदाय के उस वर्ग के दृष्टिकोण से जो संगठन की गतिविधियाँ से सामाजिक रूप से प्रभावित होता है।

सामाजिक अंकेक्षण की प्रणाली को एक स्थापित प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है जिसके 6 चरण निम्नलिखित होते है :

1.'क्या' की पहचान करना : सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया में पहला कदम समावेशीता के सिद्धांत के आधार पर हितधारकों के साथ परामर्श करके 'क्या' वास्तव में हो रहा है, इसकी पहचान करना है। हितधारकों में सदस्य, ग्राहक, उपयोगकर्ता, ग्राहक, स्टा, बोर्ड के सदस्य, ट्रस्टी, अनुदान प्रदाता, दबाव समूह, आपूर्तिकर्ता और स्थानीय समुदाय के सदस्य शामिल हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो कोई भी संगठन की गतिविधियों से प्रभावित होता है, उससे उनकी संतुष्टि और इसके विस्तार के बारे में सलाह ली जाती है अर्थात्

1. वित्तीय लेन-देन में पारदर्शिता
2. उनके लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करना
3. संगठनात्मक मूल्य और नैतिकता

प्रारंभिक प्रायोगिक अध्ययन करने के बाद, सामाजिक अंकेक्षक संगठन और समुदाय के बीच की गतिशीलता के संबंध

में समुदाय में चिंता के क्षेत्रों को तय कर सकते हैं जो सामाजिक पूंजी का निर्माण करते है या उसे रोकते हैं।

2. 'क्यों' का निर्णय करना :
दूसरा यह तय करना है कि 'क्यों' सामाजिक लेखा परीक्षा आयोजित की जा रही है। प्रासंगिक जानकारी के साथ आने के लिए संगठनात्मक गतिविधियों के सामाजिक प्रभाव का आकलन करने के लिए एक शोध डिजाइन तैयार किया जाएगा।

3. डेटा संग्रह को डिजाइन करना :
डेटा एकत्र करते समय, संसाधनों और समुदाय की जरूरतों के सभी कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। डेटा संग्रहकर्ताओं को डेटा संग्रह विधियों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उन्हें अपनी राय से दूर रहना चाहिए और प्रतिवादी के जवाब को ईमानदारी से दर्ज करना चाहिए। सोशल ऑडिटर को डेटा एकत्र करने के लिए सबसे उपयुक्त तकनीक का चयन करना चाहिए।

4. 'क्या है' और 'क्या होना चाहिए' के बीच तुलना :
अनुसंधान डिजाइन के अनुसार सर्वेक्षण के बाद, डेटा की जांच की जाती है। वास्तविकता में जमीनी स्थिति और बेहतर क्या होना चाहिए, के बीच तुलना की जाती है। प्रदर्शन संकेतक तैयार किए जाते हैं जो इंगित करते हैं कि संगठन प्रतिशत में कैसा कर रहा है।

5. आवश्यक सुधारों की पहचान :
एक बार डेटा का विश्लेषण हो जाने के बाद, सुधार के क्षेत्रों की पहचान की जानी चाहिए और रिपोर्ट में अधिसूचित किया जाना चाहिए।

6. स्मार्ट लक्ष्य :
पहचाने गए क्षेत्रों में किए जाने वाले सुधारों के अलावा, स्मार्ट (विशिष्ट, मापने योग्य, प्राप्त करने योग्य, प्रासंगिक और समय पर

संक्षिप्त) लक्ष्यों को तैयार किया जाना चाहिए ताकि संगठन अपने कर्मचारियों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर सके।

एक स्वतंत्र प्राधिकरण द्वारा निष्कर्षों का सत्यापन : एक स्वतंत्र प्राधिकरण जो संगठन में हितधारक नहीं है, उसे निष्कर्षों का सत्यापन करना चाहिए।
सोशल ऑडिट रिपोर्ट का प्रकाशन : सोशल ऑडिट रिपोर्ट को प्रिंट में प्रकाशित किया जाना चाहिए और संगठन की वेबसाइट पर अपलोड किया जाना चाहिए।

इस प्रकार उपयुर्क्त 6 चरणों के माध्यम से काई भी संगठन अपने स्तर पर सामाजिक अंकेक्षण प्रणाली का आयोजन कर सकता है।

भारत में सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा का स्वरूप : भारत में सामाजिक अंकेक्षण करने की **सर्वप्रथम आधुनिक पहल टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड** (टिस्को), जमशेदपुर द्वारा 1979 में अपने सामाजिक प्रदर्शन को मापने के लिए की गई थी। आधुनिक युग में भारत में सामाजिक अंकेक्षण का यह पहला प्रयास था। हालाँकि, अवधारणा की परंपरा को वैदिक युग में भी खोजा जा सकता है। लगभग चौथी ईसा पूर्व कौटिल्य के अर्थशास्त्र, मनुसंहिता और शुक्रनीति ग्रंथों में स्पष्ट रूप से सामाजिक लेखा परीक्षा का उल्लेख किया गया है। आज सामाजिक, आर्थिक, कानूनी, राजनीतिक, प्रबंधकीय और अनुसंधान क्षेत्रों में समस्याओं के कारण भारत में सामाजिक अंकेक्षण आवश्यक है।

73वां संशोधन अधिनियम, 1992 :
ग्राम सभा एक अभिन्न आधार बन गई जहां सामाजिक लेखा परीक्षा सार्वजनिक संगठनों की सामाजिक जिम्मेदारी में लोगों की भागीदारी को मजबूत करने के लिए अपनी प्रक्रिया शुरू कर सकती है। 1993 में भारत के संविधान के 73वें संशोधन ने

सामाजिक अंकेक्षण को अनिवार्य बना दिया जिसके द्वारा ग्राम समुदायों को सभी विकासात्मक गतिविधियों का सामाजिक अंकेक्षण करने की शक्ति प्राप्त है। वे ही वास्तविक रूप से एक सक्रिय हितधारक हैं जिन्हें ग्राम सभा के अधिकारियों द्वारा सामाजिक लेखा परीक्षा करने की सुविधा प्रदान की जाएगी। जरूरत पड़ने पर पंचायती राज संस्थाओं के प्रत्येक स्तर पर एक 'सामाजिक लेखा परीक्षा समिति' का गठन किया जाएगा। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कैग) पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों/स्तरों के खातों के उचित रखरखाव पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण के लिए जिम्मेदार है, लेकिन चूंकि पंचायत राज्य का विषय है, इसलिए कैग लेखांकन और लेखा परीक्षा प्रक्रिया को नियंत्रित नहीं कर सकता है। व्यावहारिक रूप से, सीएजी सभी 2.41 लाख पंचायतों का ऑडिट नहीं कर सकता है, इस तथ्य के साथ कि भारत में सभी पंचायतों के लिए ऑडिट की कोई एकीकृत प्रक्रिया नहीं है।

भारत में सामाजिक अंकेक्षण का वैधानिक स्वरूप : भारत के संविधान के अनुच्छेद 40 में कहा गया है, 'राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हो'।

73वें और 74वें संशोधन ने औपचारिक रूप से भारत के सभी राज्यों के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में न्यूनतम स्तर के विकेंद्रीकरण और लोकतांत्रिक स्थानीय शासन के लिए एक बुनियादी ढांचा पेश किया। आधे से अधिक राज्य विधानसभाओं की संतुष्टि के बाद, संविधान (73वां संशोधन), संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 (74वां संशोधन) ने भारत में स्थानीय सरकारों के विकेंद्रीकरण के लिए अनिवार्य प्रावधान स्थापित किए। जहाँ 73वां संशोधन ग्रामीण स्थानीय निकायों के लिए प्रावधान प्रदान करता है, वहीं 74वां संशोधन प्राथमिक रूप से शहरी स्थानीय

निकायों से संबंधित है। 73वें संशोधन के प्रमुख अनिवार्य प्रावधानों में शामिल हैंः

1. त्रिस्तरीय स्थानीय सरकारी संरचना, पंचायती राज संस्थान (पीआरआई) का निर्माण।
2. अनुसूचित जाति/जनजाति और महिलाओं के लिए सीट आरक्षण के साथ नियमित पंचायती राज चुनाव।
3. स्थानीय सरकार पर विशेषज्ञ नियंत्रण के लिए ग्राम सभा (ग्राम सभा) की स्थापना।
4. स्थानीय सरकार के खातों की आवधिक लेखा परीक्षा।

74वां संशोधन : इसी तरह, 74वां संशोधन भी शहरी केंद्रों में त्रिस्तरीय नगरपालिका प्रणाली का प्रावधान करता है और नगर पालिकाओं में वार्ड समितियों की स्थापना की आवश्यकता है।

आदिवासी और अनुसूचित क्षेत्र : आदिवासी (आदिवासी लोग) और अनुसूचित क्षेत्र जो 73 वें और 74 वें संशोधन में शामिल नहीं थे, पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम 1996 (पेसा) को दिसंबर 1996 में भाग प्‌ के प्रावधान का विस्तार प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था।

73वें और 74वें संशोधन का प्रभाव : संशोधन पंचायती राज संस्थाओं को स्थानीय विकास को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करते हैं, जिसका लक्ष्य सबसे गरीब और सबसे हाशिए पर पड़े लोगों को निर्णय लेने की प्रक्रिया की मुख्य धारा में एकीकृत करना है। इन संशोधनों के लिए अनुसूचित जातियों/जनजातियों और महिलाओं के लिए पंचायत सदस्यों और अध्यक्ष पदों का कोटा होना आवश्यक है (कुल सीटों

की संख्या का एक तिहाई से कम नहीं)। यह हाशिए के व्यक्तियों और समूहों को अपनी समस्याओं को आवाज देने और उन मामलों पर निर्णय लेने में शामिल होने में सक्षम बनाता है जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं।
भारत में त्रिस्तरीय ग्रामीण स्थानीय सरकार संरचना में शामिल हैं:
1. ग्राम पंचायत (ग्राम परिषद)
2. पंचायत समिति (मध्यस्थ या ब्लॉक)
3. जिला परिषद (जिला परिषद)।
शहरी क्षेत्रों में, वर्गीकरण है:
1. नगर पंचायत (क्षेत्र परिषद, नगर परिषद)
2. नगर पालिका (नगरपालिका), और
3. महानगर निगम (नगर निगम)

1. **सामाजिक अंकेक्षण :** भारत में पंचायती राज व्यवस्था की त्रि-स्तरीय प्रणाली को समझने के बाद, यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि 73वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों ने ग्राम सभाओं को सामाजिक अंकेक्षण करने के लिए अनिवार्य किया।
2. **मजदूर किसान शक्ति संगठन (एमकेएसएस) :** एमकेएसएस ने 1990 के दशक में सामाजिक अंकेक्षण की अवधारणा शुरू की, जब इसका गठन 1991 में राजस्थान के एक ग्रामीण राज्य में एक सामंती जमींदार और किसानों और श्रमिकों के बीच भूमि संघर्ष के बाद हुआ था। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 को संसद में पारित कराने में इसकी अहम भूमिका रही।
3. **डूंगरपुर :** एमकेएसएस ने अन्य गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर 2006 में राजस्थान के

डूंगरपुर जिले में अपने समुदाय में सरकार के कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए एक सामाजिक लेखा परीक्षा आयोजित की. लगभग 800 लोगों ने अभ्यास में भाग लिया और 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' (नरेगा) के तहत डूंगरपुर जिले में खर्च किए गए कार्यक्रम निधि पर ध्यान केंद्रित किया। सामाजिक अंकेक्षण में प्रतिभागियों के कठोर प्रशिक्षण और एक सर्वेक्षण करने के बाद, उन्होंने निम्नलिखित विसंगतियों को निष्कर्ष के रूप में अभिव्यक्त किया कि : न्यूनतम मजदूरी का भुगतान न करना ; देर से वेतन भुगतान और खराब कार्य स्थल सुविधाएं इत्यादि दोष दिखायी देते है।इन सभी मुद्दों को तब जिला प्रशासन के साथ एक सार्वजनिक मंच पर उठाया गया, जिसने सुधारात्मक कार्रवाई की घोषणा की।

4. **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी (मनरेगा) अधिनियम, 2005 :** 2005 में मनरेगा पारित होने के बाद सामाजिक लेखा परीक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ संपत्ति और आजीविका के अवसर पैदा करने के लिए प्रत्येक पंजीकृत ग्रामीण परिवार को काम करने के अधिकार के रूप में 100 दिनों के अकुशल शारीरिक कार्य की गारंटी दी गई।
5. **कानूनी आदेशः** नरेगा के अनुच्छेद 17 (2) में कहा गया है कि ग्राम सभा ग्राम पंचायत के भीतर शुरू की गई योजना के तहत सभी परियोजनाओं का नियमित सामाजिक ऑडिट करेगी। अनुच्छेद 17(13) कहता है, 'ग्राम पंचायत इस उद्देश्य के लिए ग्राम सभा को मस्टर रोल, बिल, वाउचर, माप

पुस्तिका, अनुभाग आदेशों की प्रतियां और अन्य जुड़े खातों और कागजात सहित सभी प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध कराएगी। सामाजिक लेखा परीक्षा आयोजित करने के लिए'।

6. **सोशल ऑडिट फंक्शनिंग:** शुरू में ग्राम पंचायत ने 'सोशल ऑडिट फोरम' या 'सोशल ऑडिट टीम' की मदद से सोशल ऑडिट किया लेकिन इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया।

7. **आंध्र प्रदेश:** मनरेगा को शुरू करने के साथ, आंध्र प्रदेश सरकार ने एक वास्तविक समय कम्प्यूटरीकृत प्रबंधन सूचना प्रणाली विकसित की। यह टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज द्वारा मनरेगा की वेबसाइट पर जाने वाले किसी भी व्यक्ति को जानकारी का खुलासा करने के लिए बनाया गया था। प्रगति पर विभिन्न स्थिति रिपोर्ट और विश्लेषण ऑनलाइन उपलब्ध हैं: परियोजना/योजना के कार्यान्वयन से जुड़े लोगों को इसकी प्रगति पर नज़र रखने में मदद करें तथा जांच और सत्यापन के लिए सूचना उपलब्ध कराकर जवाबदेही को प्रभावी बनाना।

8. **सोसाइटी फॉर सोशल ऑडिट एकाउंटेबिलिटी एंड ट्रांसपेरेंसी (एसएसएएटी) :** बदलते राजनीतिक माहौल और सोशल ऑडिट प्रक्रिया के खत्म होने के डर से, सोसाइटी फॉर सोशल ऑडिट अकाउंटेबिलिटी एंड ट्रांसपेरेंसी (एसएसएएटी) की स्थापना मई 2009 में हुई थी। ग्रामीण विकास के तहत एक स्वतंत्र बोर्ड के साथ स्थित है और राज्य में सामाजिक लेखा परीक्षा के संचालन के लिए जिम्मेदार है। उन्होंने शिकायत निवारण तंत्र पर ध्यान केंद्रित किया।

9. शिकायत निवारणः 2010 में एक शिकायत निवारण तंत्र बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया। 2011 में ग्रामीण विभाग के भीतर एक सतर्कता प्रकोष्ठ बनाया गया था, लेकिन मनरेगा कार्यान्वयन टीम से स्वतंत्र था। सामाजिक अंकेक्षण के चरणों के लिए एसएसएएटी द्वारा तैयार किया गया।

सोशल ऑडिट के ऐसे ही उदाहरण जो उड़ीसा और केरल में सफलतापूर्वक किए गए थे। हाल ही में, मेघालय 4 अप्रैल, 2017 को कानून पारित करने वाला पहला राज्य बन गया, जिसके बाद उत्तर पूर्वी राज्य के 18 गांवों में 26 योजनाओं के लिए पायलट सोशल ऑडिट किया गया। अधिनियम ने सामाजिक लेखा परीक्षा को कानूनी प्रणाली का एक हिस्सा बना दिया है। ऑडिट करने और ग्राम सभा को प्रस्तुत करने के लिए एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए एक सोशल ऑडिट फैसिलिटेटर नियुक्त किया जाएगा जो अपनी जानकारी और निष्कर्षों को जोड़ देगा जो लेखा परीक्षकों को प्रस्तुत किया जाएगा। निष्कर्ष निकालने के लिए, सामाजिक लेखा परीक्षा कार्यक्रम कार्यान्वयन में अंतराल की पहचान करने में बहुत उपयोगी हैं जो सरकार को रिपोर्ट के निष्कर्षों पर कार्रवाई करने के लिए प्रेरित करती है।

सामाजिक अंकेक्षण की सीमाएँ हैं :

1. **तकनीकी सहायता** : सामाजिक अंकेक्षण को डेटा प्राप्त करने और उसका विश्लेषण करने के लिए पर्याप्त तकनीकी सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसा करने में तकनीकी स्टाफ और सार्वजनिक विभागों को काम पर रखने के लिए धन की आवश्यकता होती है।

2. **अभिलेखों तक पहुँच** : सार्वजनिक अधिकारियों के अभिलेखों तक मुफ्त पहुंच के बिना एक सामाजिक लेखा परीक्षा नहीं की जा सकती है। सरकार को ऐसी सभी सूचनाओं को प्रस्तुत करने के लिए कानून बनाना चाहिए जो लेखा परीक्षकों को सामाजिक अंकेक्षण के लिए आवश्यक हैं।
3. **'सोशल ऑडिट कॉन्सेप्ट' के बारे में जागरूकता** : सर्विस प्रोवाइडर सोशल ऑडिट की अवधारणा और प्रक्रिया से पूरी तरह से संतुष्ट नहीं हैं। सभी सरकारी अधिकारियों के लिए सामाजिक लेखा परीक्षा की अवधारणा और प्रक्रिया के साथ अद्यतन रखने के लिए लघु प्रशिक्षण पाठ्यक्रम होना चाहिए।
4. **नागरिक जुड़ाव :** ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की मानसिकता सार्वजनिक संगठनों द्वारा सेवा वितरण के प्रति प्रश्नात्मक रवैये के अनुरूप नहीं है। जो भी स्थिति हो, वे अभी भी संतुष्ट हैं और विकास गतिविधियों में सुधार के लिए सामाजिक लेखा परीक्षा की प्रक्रिया में शामिल होने और भाग लेने में संकोच करते हैं।
5. **सामाजिक अंकेक्षण के सिद्धांत** : संगठन इसके सिद्धांतों का ठीक से पालन किए बिना सामाजिक अंकेक्षण के चरणों से गुजरते हैं। इससे सोशल ऑडिट की पूरी कवायद बेकार हो जाती है और न ही संगठन ऐसा करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य हैं। यदि संगठन प्रक्रिया से नहीं गुजरते हैं तो कोई जुर्माना नहीं है।
6. **बार-बार स्थानांतरण** : सरकारी विभागों में स्थानांतरण सामान्य कार्मिक घटना है। संगठन की विकासात्मक गतिविधियों में पाए जाने वाले किसी

भी विचलन को किसी व्यक्ति के लिए तय नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे स्थानांतरित कर दिया गया हो सकता है।

7. **महिलाओं की स्वतंत्र आवाज** : भारत में पंचायती राज संस्थाओं में चुनावी प्रक्रिया में महिलाओं का प्रतिनिधित्व आरक्षित है, लेकिन उनकी कोई आवाज नहीं है। वे सोशल ऑडिट की प्रक्रिया से दूर भागते हैं।
8. **मनरेगा :** मनरेगा अधिनियम के तहत, जॉब कार्ड प्राप्त करने वालों और कम मजदूरी दरों में अनियमितताओं और धन के वितरण में देरी होती है। सामाजिक लेखा परीक्षकों को इस क्षेत्र में एक समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि या तो जॉब कार्ड प्राप्तकर्ता अनियमितता की रिपोर्ट नहीं करते हैं, या उन्हें समझ में नहीं आता है कि ग्राम सभा सदस्यों और ग्राम पंचायत सदस्यों के पास जॉब कार्ड के साथ कैसे व्यवहार किया जाए। उनके जॉब कार्ड पर दिनों की संख्या उसी गाँव में कम संख्या में काम पाने के दिनों से मेल नहीं खाती।
9. **टकराव की स्थिति** : सामाजिक लेखा परीक्षकों को सरकारी अधिकारियों और स्थानीय शक्तिशाली किसानों से टकराव का सामना करना पड़ता है जो नहीं चाहते कि भ्रष्टाचार और अनैतिक प्रथाओं के उजागर होने के डर से सामाजिक लेखा परीक्षा पूरी हो।
10. **फॉलो-अप** : यदि रिपोर्ट पर कोई अनुवर्ती कार्रवाई या कार्रवाई नहीं की जाती है, तो सोशल ऑडिट की उसकी पूरी कवायद का कोई फायदा नहीं है। अनियमितताओं के लिए सजा आम नहीं है

और खोए हुए धन की वसूली का एक बुरा प्रतिशत है। सोशल ऑडिट की सफलता निर्वाचित प्रतिनिधियों और नौकरशाहों की इच्छा पर निर्भर करती है कि वे दोषी पाए गए कर्मियों के खिलाफ उपचारात्मक कार्रवाई करें।

इसलिए भारत में सामाजिक लेखा परीक्षा प्रक्रिया में कई कमियां हैं जिन्हें ठीक करने की आवश्यकता है। भारत के सभी राज्यों में सामाजिक अंकेक्षण को अनिवार्य बनाने से पहले भारत को एक लंबा रास्ता तय करना है।

सामाजिक अंकेक्षण का महत्व : संगठनों से अपने लाभार्थियों को सामाजिक लाभ के क्षेत्र में सार्वजनिक जवाबदेही के एक उपकरण के रूप में सामाजिक लेखा परीक्षा की अवधारणा परिपक्व होने की ओर बढ़ रही है। सामाजिक अंकेक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता सामाजिक लेखा परीक्षा के महत्व को उजागर करती है क्योंकि यह प्रबंधन के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है जहाँ वे अपने सामाजिक योगदान में खड़े होते हैं। सामाजिक लेखा परीक्षा सामाजिक लागतों को निर्धारित करती है और संगठन के प्रबंधन के लिए सामाजिक लाभ को प्राप्त करती है।

सन्दर्भ :

Mahajan, A. P. ‘Public Administration’ Pearson India Education Services, Pvt. Ltd, Noida, UP, 2019

Subhash Bhatnagar, E-governance: Concepts and Case Studies, Printice Hall of India, New Delhi, 2004

Special Number on IT and Indian Administration, IJPA, July -September, 2000

Mohit Bhattacharya, “Public Administration: Today & Tomorrow”, IJPA, Vol. XLIII, No.3 July-Sept. 2001

Mohit Bhattacharya “Globalization, Governance and Development “, IJPS, Vol.62, No.3, Sept. 2001

N.K. Kulshrestha, “Management in Public Administration, IJPA, Vol. XL, No.1, January-March, 1994 1. E. Lindblom Charles, The Policy Making Process, Englewood Cliffs, NJ Prentice Hall Incorporation, 1968

Paul H. Appleby, Policy and Administration, The University of Albara Press, 1940

Jones Charles O., An Introduction to the Study of Public Administration Policy, Brooks Cole Pub. Co., Monetary California, 1986

11

लोक उद्यमों का सांगठनिक स्वरूप

लोक उपक्रमों का सांगठनिक प्रारूप

(Organisational Pattern of Public Enterprises)

संगठन व्यक्तियों का एक समूह होता है जो कि सहकारिता के सिद्धांत पर कार्य करता है अर्थात एक व्यक्ति सबके लिए और सब व्यक्ति एक के लिए यह कार्य करने की पूर्व निर्मित योजना का स्वरूप होता है। आवश्यकता और लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त

करने के लिए एक शक्ति की आवश्यकता होती है और इस सामूहिक शक्ति का नाम ही संगठन है। संगठन सामान्यतया कार्य विशेषीकरण, विभागीयकरण, श्रम विभाजन और सहयोग के माध्यम से लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त कर लेता है। इन संगठनों में कुछ संगठन स्थायी होते हैं और कुछ संगठन अस्थायी होते हैं। यदि हम इस आधार पर संगठन के संदर्भ में विचार करे तो सामान्यतया दो तरह के दृष्टिकोण पाए जाते हैं। यांत्रिक स्वरूप वाला वाला या मशीनी प्रतिमान जो कि संगठन को औपचारिक संगठन मानता है तथा मानवीय मानवीय प्रतिमान जो कि संगठन को अनौपचारिक संगठन के रूप में स्वीकार करता है। सामान्यतया संगठन का अर्थ है, एक व्यवस्थित इकाई जहाँ किसी निर्धारित उद्देश्यों, लक्ष्यों एवं कार्यो की पूर्ति के लिए इसका संचालन किया जाता है। जहाँ पर संगठन के सभी कार्मिकों में सहकारिता रूपी सहयोग की भावना अन्तर्निहित होती है और जहाँ अनेक व्यक्तियों द्वारा एक लक्ष्य के लिए कार्य किया जाता है, उसे संगठन कहते हैं। संगठन के दो स्वरूप अर्थात् औपचारिक संगठन और अनौपचारिक संगठन।

औपचारिक और अनौपचारिक संगठन में विभेद अथवा अंतर :

The linked image cannot be displayed. The file may have been moved, renamed, or deleted. Verify that the link points to the correct file and location.

औपचारिक और अनौपचारिक संगठन में विभेद

औपचारिक संगठन : औपचारिक संगठन संरचनात्मक और कार्यात्मक संगठन होता है। अनौपचारिक संगठन से स्पष्ट और विभाजित होते हैं। यह यंत्रवादी संगठन के दृष्टिकोण का समर्थन करता है जहाँ पर निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही कार्य किया जाता है। इस उपागम के अनुसार औपचारिक संगठन एक मशीन के समान होता है। संगठन व्यक्ति द्वारा निर्मित, व्यक्ति की स्थिति, अधिकार, दायित्व, स्पष्टता, आदेश की एकता, पदसोपान ,स्थायित्व इत्यादि गुणों से परिपूर्ण होता है। औपचारिक संगठन को निम्न रेखा चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है :

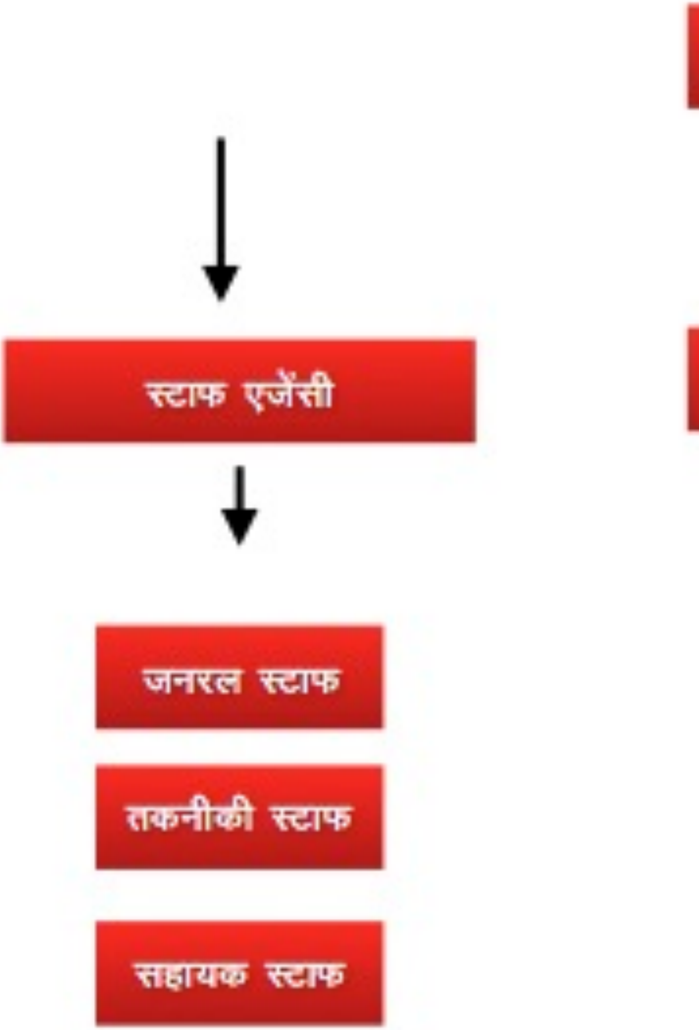
स्टाफ एजेंसी
जनरल स्टाफ
तकनीकी स्टाफ
सहायक स्टाफ

औपचारिक संगठन

सार्वजनिक उपक्रम अथवा उद्यम (Public Enterprises) :

सार्वजनिक उपक्रम से हमारा अभिप्राय है ऐसे उपक्रम, निगम, कंपनियां, बोर्ड इत्यादि जो कि पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से केंद्र अथवा राज्य अथवा संयुक्त रूप से सरकारों के अधीन होते हैं।

सार्वजनिक उपक्रमों की स्थिति देश में विद्यमान प्रशासनिक अथवा शासन प्रणाली के स्वरूप पर निर्भर करती है। जैसे कि राजनीतिक प्रणाली का स्वरूप पूंजीवादी है अथवा मिश्रित है अथवा साम्यवादी या समाजवादी। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को पब्लिक अंडरटेकिंग, पब्लिक एंटरप्राइजेज, पब्लिक सेक्टर अथवा गवर्नमेंट सेक्टर के नाम से जाना जाता है।

सार्वजनिक उद्यम (Public Enterprises) :- ऐसे उपक्रम जिनमें सरकार की पूंजी पूर्ण रूप से या अधिकांशत या अथवा व्यक्तिगत इकाई में अन्य की तुलना में सबसे ज्यादा लगी होती है। उन्हें पब्लिक अंडरटेकिंग के नाम से जाना जाता है। इनकी स्थापना सरकारी नियमों के द्वारा की जाती है। इस प्रकार के उद्यम पर सरकार का नियंत्रण, निर्देशन और अंतिम उत्तरदायित्व होता है। पब्लिक एंटरप्राइजेज की प्रकृति व्यवसायिक होती है परंतु उद्देश्य जनहित होता है अर्थात् ऐसे उद्यम लाभ और हानि में भी कार्य करते हैं अथवा लाभ नहीं होने या हानि होने पर भी कार्य करते हैं। वित्तीय, दैनिक कार्यों और निर्णयन में इनको स्वायत्तता दी जाती है। ऐसे उद्यम के अंतर्गत प्रबंधन के तत्वों को अधिक महत्व दिया जाता है। उदारीकरण के परिणाम स्वरुप अथवा भूमंडलीकरण के दौर में ये उद्यम औद्योगिक, कृषि, व्यापारिक और वित्तीय गतिविधियों से भी संबंधित होते हैं। अधिकांशत ऐसे पब्लिक अंडरटेकिंग उपक्रम समाजवादी और साम्यवादी अथवा मिश्रित प्रकृति के देशों में पाए जाते हैं। इनकों स्वामीत्व, प्रकृति और कार्यों के आधार पर अनेक प्रकारों में विभाजित किया जाता

है। जैसे कि यदि भारत की बात करें तो स्वामित्व और वैधानिक स्वरूप के आधार पर स्थापित सरकारी उपक्रमों के संगठन को सामान्यतः चार भागों में विभाजित किया जाता है अर्थात विभाग, निगम, कंपनी और अन्य।

जैसे कि ब्रिटिश भारत में भारत के आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के विकास हेतु रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एकमात्र राष्ट्रीय उपक्रम था जिसकी स्थापना 1935 में की गई। पहली भारतीय औद्योगिक नीति 1948 के अंतर्गत भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रकृति को अपनाया गया। 1991 की नवीन औद्योगिक नीति में 3 उद्योगों को छोड़कर सबके लिए उदारीकरण एवं निजीकरण को स्वीकार किया गया। 1996 के वर्ष में विनिवेश की प्रक्रिया को बहुत आगे बढ़ाया गया तथा सरकारी उपक्रमों को सफेद हाथी मानकर इन उद्यमों में से धीरे-धीरे राज्य अथवा सरकार की हिस्सेदारी को कम किया जाने लगा।

1991 में केवल 5 केंद्रीय उपक्रम रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, पुनर्वास वित्त निगम, दामोदर घाटी निगम, औद्योगिक वित्त निगम, कर्मचारी राज्य बीमा निगम थे। 1951 से 1991 तक 246, 1991 से 2001 तक 240, 2001 से 2012 तक 260 और वर्तमान में लगभग 250 उपक्रम सार्वजनिक उद्यम के रूप में कार्यरत हैं लेकिन वर्तमान में सरकार ने निजी क्षेत्र को लगभग सभी उद्योगों में शामिल कर लिया है अथवा हिस्सेदारी दे दी है।

सार्वजनिक उद्यमों की आवश्यकता और महत्व *(Importance of Public Enterprises)* :-

1. **समतावादी समाज की स्थापना करने के लिए :** भारत जैसे विकासशील देशों में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के महत्व को नकारना आसान नहीं है क्योंकि इन देशों में सामाजिक एवं आर्थिक संरचना का स्तर पिछड़ेपन की स्थिति में होता है। समाज में व्यापक स्तर पर विषमता पायी जाती है।

इस विषमता को कम करने के लिए आर्थिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता होती है और यह कार्य केवल सरकार के हस्तक्षेप से ही संभव हो सकता है।

2. **राजस्व की प्राप्ति हेतु :** ऐसा नहीं है कि सभी सरकारी संगठन केवल हानि की दशा में रहकर ही जनकल्याण के कार्य करते है अपितु अनेक बड़ी कम्पनियां जिन्हें महारत्न, नवरत्न या मिनि रत्न का भी दर्जा दिया गया है या सबसे बड़े सरकारी उपक्रम के रूप में भारतीय रेलवे जो कि जनहितों की पूर्ति के साथ-साथ राज्य को राजस्व भी प्रदान करते है।

3. **सरकार का नियंत्रण महत्वपूर्ण क्षेत्रों में** : यद्यपि उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की अवधारणा ने पूरी दुनिया में सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों को क्षेत्र को बहुत हद तक सीमित कर दिया है। इसके बावजूद भी सरकार का महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियंत्रण होता है ताकि निजी संगठन कहीं राज्य को ही चूनौती नहीं देने लगे।

4. **राजनीतिक दलों के कार्यक्रम के रूप में** : राजनीतिक दलों के द्वारा चुनावी राजनीति के माध्यम से जनहितों की जो घोषणा की जाती है अथवा विकास के कार्यक्रमों के साथ में अनेक जनकल्याणकारी योजनाओं का भी सर्जन किया जाता है। उन सबकी आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए सरकारी संगठन कार्य करते है।

5. **निजी क्षेत्र बनाम प्रतियोगिता** : यदि विकसित देशों के स्थान पर बात विकासशील देशों के बारे में करे तो यक सरकारी संगठनों का ही योगदान है कि वे निजी संगठनों को प्रतियोगिता में उतरने के लिए

मजबूर करते है। यदि पूरी तरह से किसी क्षेत्र को केवल निजी क्षेत्र के लिए ही छोड दिया जाता है तो या तो वे संगठन जनता को लूटने का कार्य शुरू कर देते है अथवा जनहितों को ताक पर रखकर कार्य करने लग जाते है। अतः इन देशों में कार्य की गुणवता को बनाये रखने के लिए एवं जनहितों की सुरक्षा के लिए सरकारी संगठनों का अस्तित्व होना अनिवार्य होता है।

6. **आर्थिक नियोजन और राष्ट्रीय विकास** : यह सरकारी संगठनों की सहायता से ही संभव हो सकता है कि किसी देश के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उचित नियोजन करके देश के विकास में इनका उपयोग किया जा सकता है।

7. **निजी क्षेत्र कार्य नहीं करें वहां पर सरकार का द्वारा कार्य करना** : सामान्यतया निजी उद्यमों का मुख्य ध्येय लाभ कमाना होता है। यदि देश में संकट या आपदा या महामारी की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो निजी क्षेत्र अपने हाथ पीछे खींच लेते है अथवा नगण्य भूमिका अदा करते है। सार्वजनिक संगठन अपनी जान को जोखिम में डालकर लोगों के जीवन को बचाने के लिए कार्य करता है। हमने देखा कि किस तरह 2008 की अमेरिकी आर्थिक मंदी न अथवा कोरोना, 2020 जैसी महामारियों में निजी संगठनों ने कार्मिकों को तबाह कर दिया।

भारत में सार्वजनिक उद्यमों का स्वरूप :

यदि भारत में सार्वजनिक उद्यमों के बारे में विचार करे तो कानूनी स्वरूप के आधार पर सरकारी उद्योगों का संगठन चार प्रकार का होता है।

1. **विभाग अथवा मंत्रालय,**
2. **लोक निगम,**
3. **सरकारी कंपनी और**
4. **अन्य उपक्रम।**

विभागीय संगठन या डिपार्टमेण्ट :- मुख्य कार्यकारी, मंत्री, विभाग, उपविभाग, संभाग, शाखा, खंड, व्यक्तिगत पद या लिपिक इत्यादि के रूप में इनकी पदसोपानीय संरचना होती है। सरकारी उद्योगों या विभागों का अधिकाशंतया स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है अपितु वे मंत्रालय के ही अधीन कार्य करते है या उन्हीं के एक के रूप में कार्य करते है।

विभागीय सार्वजनिक उपक्रमों की विशेषताएं :

1. **विभागीय उपक्रमों की संरचना त्रिस्तरीय होती है** : सामान्यतया इन संगठनों की संरचना के तीन स्तर होते है अर्थात् सबसे ऊपर मंत्री, उसके अधीन सचिव और उसके अधीन निदेशक होते है।
2. **संपूर्ण निवेश केवल सरकार द्वारा किया जाता है** : विभागीय संगठनों में समस्त निवेश या व्यय का निर्वहन केवल सरकार के द्वारा ही किया जाता है।
3. **कार्मिक प्रशासन की व्यवस्था** : सार्वजनिक संगठनों में स्थायी कर्मचारी, लोक सेवक और अन्य कार्मिकों की भर्ती तथा सेवा शर्तें, लोक सेवाओं के समान होती हैं।
4. **विभागीय उपक्रमों की संरचना स्वंत्रत और स्वायत होती है** : विभागीय संगठन अपनी कार्यप्रणाली के संचालन में स्वतंत्रता एवं स्वायतता को धारण करते है।

5. **संप्रभु इकाई होते है** : विभागीय उपक्रम प्रभुसत्ता को धारण करते है। अतः सरकारी अनुमति के बिना इनके प्रति वाद दायर नहीं किया जा सकता है।
6. **जनता के प्रति उतरदायी होते है** : विभागीय संगठन संसद एवं मंत्रियों के या जनता के प्रति सम्मानित मंत्री के माध्यम से जिम्मेदार होते हैं।
7. **उपक्रम का संपूर्ण राजस्व और व्यय सरकार का होता है** : यदि कोई सार्वजनिक विभाग लाभ प्राप्त करता है तो यह सरकार का ही लाभ या राजस्व होता है।
8. **बजट, लेखा एवं लेखा परीक्षण होता है** : इन उद्यमों के प्रतिवर्ष बजट की व्यवस्था की जाती है। इसी के साथ सम्पूर्ण कायप्रणाली का लेखांकन किया जाता है तथा आय एवं व्यय का परीक्षण या अकेंक्षण भी किया जाता है।
9. इनका गठन मुख्य कार्यकारी के प्रस्ताव द्वारा किया जा सकता है। संसद की पूर्व अनुमति आवश्यक नहीं है।

प्रमुख उदाहरण के रूप में प्रधानमंत्री कार्यालय, मुख्य सचिव का कार्यालय, निर्वाचन आयोग कार्यालय, संघ लोक सेवा आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया, भारत नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कार्यालय इत्यादि। इसी तरह से मिनिस्ट्री ऑफ डिफेंस के अधीन 6 विभाग होते हैं अर्थात डिफेंस ऑफ फाइनेंस, डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस, डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस प्रोडक्शन, डिपार्टमेंट ऑफ डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट, डिपार्टमेंट ऑफ एक्स सर्विसमैन वेलफेयर, इंडियन आर्म्ड फोर्सेज एंड इंटर सर्विस ऑर्गेनाइजेशन। इसी तरह मिनिस्ट्री ऑफ फाइनेंस के अधीन 5 विभाग होते हैं डिपार्टमेंट ऑफ दि इन्वेस्टमेंट, डिपार्टमेंट ऑफ इकोनॉमिक

अफेयर्स, डिपार्टमेंट ऑफ एक्सपेंडिचर, डिपार्टमेंट ऑफ फाइनेंशियल सर्विसेज, डिपार्टमेंट ऑफ रेवेन्यू। इसी तरह से मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स के अधीन 5 विभाग होते हैं अर्थात् डिपार्टमेंट ऑफ बॉर्डर मैनेजमेंट, डिपार्टमेंट ऑफ होम, डिपार्टमेंट ऑफ इंटरनल सिक्योरिटी, डिपार्टमेंट ऑफिसियल लैंग्वेज, डिपार्टमेंट ऑफ स्टेट्स।

यद्यपि कुछ मंत्रालय बिना विभाग के भी होते हैं जैसे कि रेलवे मंत्रालय, ऊर्जा मंत्रालय, पंचायती राज मंत्रालय इत्यादि। इसके अलावा कुछ विभाग बिना मंत्रालय के भी होते हैं जैसे कि डिपार्टमेंट ऑफ स्पेस, डिपार्टमेंट ऑफ एटॉमिक एनर्जी।

विभागीय सार्वजनिक उपक्रम के लाभ और हानि :

1. सरकार का नियंत्रण और जवाबदेयता निश्चित होती है।
2. अन्य सरकारी तंत्र के साथ स्पष्ट संबंध और पदसोपान होता है।
3. वित्त पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है।
4. संगठन के नियम, मानक और प्रतिमान निर्धारित होते हैं।
5. जनहित व राष्ट्रीय महत्व के कार्य हेतु लाभदायक और उचित होते हैं। जैसे रेलवे, डाक-तार सामरिक विभाग इत्यादि।

विभागीय उपक्रम की हानियाँ या अवगुण :-

1. नौकरशाही की दुष्प्रवृत्ति का उदय होना।
2. पारदर्शिता का अभाव होता है।
3. प्रबंधन लचीलापन और नव प्रोत्साहन को स्वीकार नहीं करना।
4. नियमों और कानूनों की कठोरता से कार्य और निर्णय में देरी।

5. अत्यधिक राजनीतिक हस्तक्षेप होना।
6. लेखांकन और परीक्षण पद्धति के कारण कार्यकुशलता प्रभावित होना।
7. राजस्व पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है।

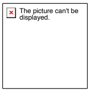

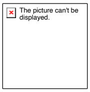

लोक निगम
(Public Corporation)

लोग निगम भी सार्वजनिक प्रकृति के ही उपक्रम होते है। विभागीय उपक्रमों की तुलना में लोक निगम की आवश्यकता क्यों होती है? विभागीय सार्वजनिक उद्यमों की अपेक्षा इनमें लचीलापन लाने के लिए, जनहित के लिए, ऋण सेवा उपलब्ध कराने के लिए, अधिक स्वायत्तता देने हेतु, स्थापित क्षेत्रीय विकास कार्य और जवाबदेयता के एक वैधानिक ढांचे के रूप में लोक निगमों की स्थापना की आवश्यकता होती है। केंद्रीय अथवा राज्य विधायिका के द्वारा पारित अधिनियम के माध्यम से ही लोक निगमों की वैधानिक स्वरूप में स्थापना की जाती है। जैसे कि रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया 1935, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया 1955, फूड कॉरपोरेशन इंडिया 1965, लाइफ इंश्योरेंस कॉरपोरेशन 1956, नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन 1975, ऑयल एंड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन 1956 इत्यादि।

लोक निगमों की विशेषताए :-

1. **सरकारी स्वामित्व** : लोक निगमों पर सरकार का पूर्ण स्वामित्व होता है अर्थात् पूंजी सरकार उपलब्ध कराती है।
2. **कम्पनी का संगठन** : लोक निगम का गठन केंद्र अथवा राज्य विधायिका द्वारा कानून के माध्यम से किया जाता है और इसके अंतर्गत ही इसके उद्देश्य, शक्तियाँ, कर्तव्य, अधिकार, स्वरूप सरंचना इत्यादि को स्पष्ट कर दिया जाता है।
3. **सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण** : लोक निगमों पर सरकार का अप्रत्यक्ष नियंत्रण होता है।
4. **लोक निगम की स्वायतता** : लोक निगम प्रबंधन और निर्णयन की प्रक्रिया में स्वायत्तता रखते है।
5. **विभागीय व्यवस्था से भिन्नता** : सरकारी विभागों वाले प्रतिबंध जैसे कि बजट, लेखा परीक्षण, मितव्ययता इत्यादि लोक निगमों पर लागू नहीं होते हैं तथा इनके विरूद्ध भी वाद दायर किया जा सकता है।
6. **स्वतंत्र वित प्रबन्धन** : लोक निगम अपने स्तर पर सामान्यतया वित्त पोषण के रूप में स्वतंत्र होती हैं।
7. **स्वतंत्र कार्मिक व्यवस्था** : लोक निगमों के अधिकांश कर्मचारी लोकसेवक नहीं होते हैं। निगम अपने स्तर पर ही कर्मचारियों की भर्ती करता है और भर्ती प्रक्रिया एवं संचालन के नियम बनाता है।
8. **सरकारी सहायता** : लोक निगम भले ही स्वतंत्रता और स्वायतता को धारण करते हो परन्तु संकट के समय या हानि होने अथवा जोखिम उत्पन्न होने पर सरकार सहायता प्रदान करती है।

लोक निगम के गुण :-

1. अन्य सार्वजनिक उद्यमों की अपेक्षा लोक निगमों में स्वायत्तता, लचीलेपन और नव प्रोत्साहन का गुण होता है।
2. निजी क्षेत्र की भांति प्रबंधन एवं संचालन करके प्रतियोगिता और गुणवत्ता के लाभ को बढ़ावा मिलता है।
3. लोक निगम ऐसे सार्वजनिक उद्यम के रूप में होते है जो कि आर्थिक जगत पर सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में कार्य करते है।
4. सरकारी उत्तरदायित्व और व्यापारिक दक्षता होती है।
5. कार्यकुशलता एवं मितव्ययता का लाभ।
6. जमा पूंजी का उपयोग करना आसान होता है।

लोक निगम के अवगुण या दोष :

1. सरकार का अप्रत्यक्ष राजनीतिक हस्तक्षेप होता है।
2. नीतिगत, सामान्य और दैनिक कार्यों का स्पष्ट विभाजन नहीं होता है।
3. वित्तीय जोखिम होने अथवा हानि होने पर सरकार को वहन करना पडता है।
4. सेवा विशेषीकरण या विशेषज्ञता का लाभ नहीं मिलता है।
5. लोक निगम की संरचना एवं स्वरूप में परिवर्तन या संशोधन संसद और विधानसभा अधिनियम के माध्यम से ही संभव हो सकता है।

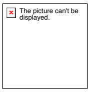

सरकारी कंपनी
(Government Company)

सरकारी कंपनी की स्थापना सरकार द्वारा अधिनियम के माध्यम से की जाती है जैसे कि कंपनी अधिनियम 1956 और कंपनी अधिनियम 2013 कंपनी का निजी या सरकारी व्यक्ति या संस्था द्वारा अधिनियम सूची में पंजीकरण कराना होता है। सरकारी कंपनी दो रूपों में होती है। प्राइवेट लिमिटेड कंपनी और पब्लिक लिमिटेड कंपनी।
कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 2 के खंड 45 के अनुसार कुल पूंजी या शेयर धारक इकाई के रूप में केंद्र या राज्य सरकार की हिस्सेदारी ज्यादा होनी चाहिए परन्तु अब यह निर्धारित कर दिया गया है कि किसी को भी कम्पनी की शेयरधारिता में 26 फीसदी से ज्यादा हिस्सा नहीं मिलेगा।

प्राइवेट लिमिटेड कंपनी (Private Limited Company) :-
इसके अंतर्गत न्यूनतम 2 और अधिकतम 50 से शेयर धारक हो सकते हैं। ऐसी कम्पनियों को शेयर हस्तांतरण का अधिकार नहीं होता है। इनकी जवाबदेयता सीमित और न्यूनतम होती है। जैसे हिंदुस्तान मशीन टूल्स प्राइवेट लिमिटेड हिंदुस्तान केबल प्राइवेट लिमिटेड हिंदुस्तान हाउसिंग फैक्ट्री प्राइवेट लिमिटेड
पब्लिक लिमिटेड कंपनी (Public Limited Company) :-
इसके अंतर्गत न्यूनतम 7 सदस्य हो सकते है लेकिन अधिकतम संख्या निर्धारित नहीं होती है। इसमें शेयर हस्तांतरण का अधिकार होता है। जैसे इंडियन टूरिस्ट डेवलपमेंट, भारत संचार निगम लिमिटेड, एयर इंडिया, कोच्चि शिपयार्ड।
इनके अलावा कुछ रजिस्टर्ड कंपनी भी होती जैसे हिंदुस्तान साल्ट कंपनी, हिंदुस्तान केमिकल एंड फर्टिलाइजर कंपनी, हिंदुस्तान एयरक्राफ्ट कंपनी, हिंदुस्तान स्टील कंपनी इत्यादि।

सरकारी कंपनी की विशेषताए (Features of Government Company) :

1. ये कम्पनिया भी प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों के समान होती है।
2. इसकी कुल पूंजी में सरकार का हिस्सा ज्यादा होता है।
3. इनका केवल एक्ट में पंजीकरण कराना आवश्यक होता है।
4. आंतरिक प्रबंधन, नियम निर्धारण सरकार द्वारा और संशोधन भी सरकार द्वारा ही किया जा सकता है।
5. विभागीय नियम लागू नहीं होता है अर्थात् लेखांकन परीक्षण या अन्य कुछ नहीं होता है।
6. इनमें कर्मचारी प्रतिनियुक्ति को छोड़कर लोक सेवक नहीं होते तथा अन्य भर्ती नियम आदि कंपनी द्वारा निर्मित होते हैं।
7. सरकारी भागीदारी के आधार पर ही निदेशक की नियुक्ति होती है।
8. इनकी रिपोर्ट संसद में प्रस्तुत प्रतिवर्ष प्रस्तुत की जाती है।

सरकारी कंपनी के लाभ या गुण :-

1. इनके गठन प्रक्रिया सरल होती है।
2. सरकार का नियंत्रण होता है।
3. निजी उद्यमों के साथ संबंध होते हैं।
4. विस्तार आसानी से हो सकता है।
5. स्वायतता अधिक होती है।
6. निजी क्षेत्र प्रतियोगिता को बढ़ावा मिलता है
7. सरकारी व निजी हितों के समन्वय।
8. इनके लिए पीपीपी मॉडल सफल होता है।

सरकारी कंपनी के दोष या अवगुण :-

1. इनकी कोई जिम्मेदारी नहीं होती है। अतः लंकासुंदर ने इन्हें राज्य के भीतर छोटे राज्य की संज्ञा दी है।
2. सरकारी नियंत्रण में कमी होती है।
3. इनमें लचीलापन होता है।

अन्य सार्वजनिक उपक्रम :

अन्य सार्वजनिक उपक्रमों के अंतर्गत कुछ होल्डिंग कंपनियां होती हैं अर्थात् ऐसी कंपनी जो कि एक ही क्षेत्र में कार्य करने वाली कंपनियों को एक छत के नीचे लाती है। ये सहायक कंपनियां कहलाती है। एक दूसरे के साथ समान प्रबंधन के तहत तकनीकी और व्यापारिक संबंध रखती हैं। सभी पर होल्डिंग कंपनी के नियम लागू होते हैं जैसे कि स्टील अथॉरिटी इंडिया लिमिटेड, गैस अथॉरिटी इंडिया लिमिटेड इत्यादि। इनके अलावा कुछ नियंत्रण बोर्ड भी होते हैं। किसी समूह के द्वारा इनका प्रबंधन एवं संचालन होता है। जैसे कि बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएं, भाखड़ा व्यास प्रबंधन, चंबल बोर्ड, दामोदर घाटी नियंत्रण बोर्ड इत्यादि। इसी तरह से कुछ पब्लिक ट्रस्ट होते हैं जो कि सेवा कार्य से जुड़े हुए होते है जैसे कि यूनियन ट्रस्ट ऑफ इंडिया, पोर्ट ट्रस्ट, एजुकेशन ट्रस्ट इत्यादि। इसी तरह से कुछ कमीशन होते है जो किसी क्षेत्र विशेष में कार्य करते है जैसे कि प्रशासनिक सुधार आयोग, सरकारिया आयोग, खादी ग्रामोद्योग आयोग इत्यादि। कुछ कमोडिटी के वायदा बोर्ड होते हैं जो कि किसी क्षेत्र विशेष में विकास को बढ़ावा देने के लिए कार्य करते हैं। इनकी स्थापना

संसद नियमों के द्वारा ही होती है जैसे कि काफी बोर्ड, रबड़ बोर्ड, जूट बोर्ड इत्यादि।
इनके अलावा कुछ सहकारी समितियां होती है जैसे भारतीय दुग्ध विकास निगम, व्यापार मेला समिति इत्यादि।
इनके अलावा कुछ विकास प्राधिकरण होते हैं जैसे जयपुर डेवलपमेंट अथॉरिटी, दिल्ली डेवलपमेंट अथॉरिटी इत्यादि।

सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग (Public Enterprises Department) :-
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग एक नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करने वाला विभाग होता है। सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो वित्त मंत्रालय के अधीन 1965 में स्थापित किया गया। 1985 में इसे उद्योग मंत्रालय का दर्जा दे दिया गया।

सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो के मुख्य कार्य :-
सूचना व सम्प्रेषण का कार्य :
यह सरकारी उपक्रमों के समान सम्बन्धित विषयों को सूचनाओं का संग्रहण करना उनकों विविध विभागों को सम्प्रेषण करता है।
सचिवालय के रूप मे कार्य करना :
यह सार्वजनिक प्रतिष्ठान चयन बोर्ड के एक सचिवालय रूपी संगठपन के रूप में कार्य करता है।
विकास सम्बन्धी कार्यो का निर्वहन :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो के द्वारा कार्मिकों के लिए प्रशिक्षण, कार्मिकों की मजदूरी, सेवा शर्तों का निर्धारण, प्रबंधन और विकास के लिए कार्य किया जाता है।
तकनीकी सम्बन्धी एवं विशेषज्ञता के कार्य करना :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो के द्वारा तकनीकी सहायता एवं सेवा विशेषीकरण सम्बन्धी कार्य किये जाते है।
वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो के द्वारा प्रतिवर्ष अपनी सम्पूर्ण कार्यप्रणाली का तैयार किया जाता है और इस प्रतिवेदन

को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।
समनव्य का कार्य करना :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो के द्वारा सरकारी संगठनों की कार्यप्रणाली को समसामयिक बदलाव के साथ जोडने एवं निरतंर सुधार हेतु प्रशासनिक सुधार विभाग के साथ संपर्क बनाए रखता है।
मूल्याकंन का कार्य करना :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो के द्वारा वित्तीय प्रबन्धन, कार्मिक प्रबंधन, बोर्ड संरचना, प्रशिक्षण, औद्योगिक इकाईयों के बीच संबंध इत्यादि का मूल्यांकन किया जाता है।
सरकारी निर्देशन जारी करनी :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग या ब्यूरो के द्वारा समस्त सरकारी क्षेत्र संबंधी सामान्य नीति का निर्धारण किया जाता है। इसी के साथ सरकारी क्षेत्र संबंधी दिशा-निर्देश और गाईडलाइन जारी करता है।

सार्वजनिक प्रतिष्ठान चयन बोर्ड :-
यह भारत सरकार का एक स्वायत्त निर्णयकर्ता निकाय होता है। यह उच्च शक्ति प्राप्त और स्वतंत्र निकाय है जिसकी स्थापना सर्वप्रथम 1987 में की गई तथा 2008 में संशोधन किया गया। अब यह कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय का एक भाग है।

इसके प्रमुख कार्य :-
सर्वोच्च पदों पर नियुक्ति की सिफारिश करना :
सरकार के अधीन आने वाले अनेक सरकारी प्रतिष्ठानों, उद्योगों के मुख्य कार्यकारी, निदेशक बोर्ड के सर्वोच्च पदों पर नियुक्ति की अनुशंसा सार्वजनिक प्रतिष्ठान बार्ड के द्वारा की जाती है।
कार्मिकों की सेवा से सम्बन्धी निर्णय :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग के द्वारा अपनी सिफारिश के अनुसार नियुक्त कार्मिकों की नियुक्ति के स्थायीकरण, कार्य विस्तार, सेवा

शर्तो इत्यादि सम्बन्धी निर्णय लेने की अनुशंसा करता है।

संगठनों के संरचनात्मक निर्णयन कार्य की पहल करना :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग के द्वारा न केवल कार्मिकों की नियुक्ति एवं सेवा सम्बन्धी निर्णयन की सिफारिश की जाती है अपितु यह सरकारी उपक्रमों की संरचना, बोर्ड स्तर, वरिष्ठ प्रबंधक, कार्मिक इत्यादि का कार्य भी करता है।

संगठन नीति निर्माण, प्रबन्धन एवं अनुसंधान सम्बन्धी कार्य करना :
सार्वजनिक प्रतिष्ठान विभाग के द्वारा संगठनों के प्रबंधन सम्बन्धी नीति का प्रस्तुतीकरण, प्रबन्धन , अनुसंधान तथा सूचना एवं उचित प्रशिक्षण की सलाह देता है।

सरकारी उद्योगों की समस्याएं :-

अत्यधिक राजनीतिक हस्तक्षेप :
एक तो सरकारी प्रतिष्ठान अब केवल नाममत्र के शेष रहे है और जो बचे हुए है उनमें बेवजह राजनीतिक हस्तक्षेप का अवगुण दिनोंदिन बढता ही जा रहा है। इसके कारण प्रतिष्ठान में कार्य करने वालों का मनोबल गिरता है और वे भी केवल राजनीतिक इच्छा शक्ति के अनुसार कार्य लग जाते है। यह समस्या विकासशील राज्यों में विशेष रूप से दिखायी देती है। राजनीतिक हस्तक्षेप इन प्रतिष्ठानों की गुणवता एवं गिरती साख के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

जनता से दूरी बनाए रखना :
सरकारी प्रतिष्ठान अपने आपकों राज्य की तरह सर्वोच्चता की भावना से ग्रसित कर लेते है। उनकी नीति केवल सरकार को प्रसन्न करने तक सीमित हो गयी है। वे अपनी प्रक्रिया में जनसहभागिता को कोई भी अवसर प्रदान नहीं करना चाहते है। वे इसके माध्यम से पारदर्शिता एवं जवाबदेयता के उतरदायित्व से बचते हुए दिखायी देते है।

अंकेक्षण की समस्या :
यदि कोई प्रतिष्ठान कुछ अच्छे कार्मिकों की सहायता से आगे

बढ़ता है तो उसकी समस्त कार्यप्रणाली विशेष रूप से ऑडिट का भय दिखाया जाता है तथा काम करने वाले कार्मिक के उपर इसका दोष आरोपित करने का कुत्सित कार्य किया जाता है। अतः वह भी पीछे हट जाता है और अन्ततः इन प्रतिष्ठानों पर काम नहीं करने या कामचोर होने का आरोप लगाया जाता है।

स्वायत्तता बनाम जवाबदेयता :
पहले तो इन संगठनों के पास अपनी कार्यप्रणाली के संचालन की, निर्णयन की एवं नवप्रवर्तनों को स्वीकार करने की कोई स्वायतता नहीं होती है। यदि थोड़ी बहुत स्वायतता प्रदान की जाती है तो उसी अनेक प्रकार की राजनीतिक एवं गैर तार्किक प्रणालियों की जवाबदेयता के जंजाल में बांध दिया जाता है।

नीतिगत और दैनिक कार्यों का विभाजन नहीं होना :
इन संगठनों में सेवा विशेषीकरण के साथ ही कार्य विशेषीकरण की भी समस्या पायी जाती है। दैनिक कार्यो सम्बन्धी निर्णयों एवं नीतिगत निर्णयन के लिए अलग-अलग व्यवस्था का अभाव होता है। इस कारण से नीतिगत निर्णयन भी दैनिक कार्यो की तरह या तो लम्बित पडे रहते है या उनकों महत्व नहीं दिया जाता है अथवा दैनिक निर्णयन प्रणाली इतनी जटिल होती है कि नीतिगत निर्णयन की प्रक्रिया शुरू ही होती है अथवा उस तरफ कोई ध्यान ही नहीं देता है।

निर्णयन प्र्णाली में अनावश्यक विलम्ब :
सार्वजनिक उद्यमों की जटिल बाबूशाही प्रणाली के कारण कोई भी निर्णय समय पर संभव नहीं हो पाता है जिसका नुकसान पूरे संगठन को उठाना पड़ता है। इसी के साथ इन संगठनों में कार्मिक एक दूसरे पर कार्य व जिम्मेदारियों को टालते रहते है। इसी के साथ वे तकनीक व सूचना प्रणाली, नवप्रवर्तन इत्यादि को अपनाना नहीं चाहते है जिसके कारण उनकी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। अतः ये संगठन बहुत पीछे चले जाते है।

सफेद हाथी की मान्यता के अनुसार कार्यप्रणाली :
उपयुर्क्त समस्याओं या यदि इन्हें दोष कहे तो ज्यादा बेहतर होगा,

के कारण अधिकांश सरकारी संगठन सरकारों के लिए आर्थिक बोझ के रूप में साबित हो रहे है। बात केवल इतनी ही नहीं है कि वे लोककल्याणकारी राज्य के ध्येय को पूर्ण करने के लिए कार्य कर रहे है। उनकी सरकारी कार्मिक होने की मनोदशा या दुर्भावना अथवा भ्रष्ट कार्यवाही तंत्र अथवा जुगाड़ भारतीय सरकारी व्यवस्था के कारण वे जनहित के कार्यो हेतु की जाने वाली आर्थिक व्यवस्था को मिलीभगत कर डकार जाते है और उन पर कोई कठोर कार्यवाही भी नहीं होती है।

तकनीकी या विशेषज्ञता का अभाव :

भारत व इसके जैसे विकासशील देशों में सार्वजनिक तंत्र का संचालन करने के लिए कुछ क्षेत्रों को छोड़कर नकारा व उस क्षेत्र से अनभिज्ञ सिविल सेवकों को एक आल राउण्डर की तरह नियुक्त किया जाता है। शायद ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र का इतना भयंकर प्रभाव रहा है कि अब भी नौकरशाही विद्यमान सरकारों के संरक्षण के लिए और अपने व्यक्तिगत आर्थिक विकास के लिए प्रतिबद्ध होकर कार्य करती है। आजादी के दशकों के बाद भी राजनीतिक कार्यपालिका एवं स्थायी कार्यपालिका ने समस्त भारत की जनता को अपने शोषण का शिकार बना रखा है।

सार्वजनिक उद्योगों की भूमिका अथवा महत्व :-

उपयुर्क्त सभी प्रकार के अवगुणों के बावजुद भी भारत जैसे विकासशील समाजों में सार्वजनिक प्रणाली या तंत्र का निर्णायक योगदान रहता है। यद्यपि यह बात सही है कि विकसित समाजों में निजी संगठनों के द्वारा सरकारी तंत्र ही गुणवता व जवाबदेयता के साथ कार्य किया जाता है क्योंकि उन पर मजबूत एवं एक जनउतरदायी शासनतंत्र को नियंत्रण तंत्र कार्य करता है। विकासशील समाजों में इनके योगदान या महत्व को निम्न स्वरूपों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है :

आर्थिक विकास की शुरुआत करना :

वे क्षेत्र जहाँ पर आधारभूत संरचना का विकास हुआ हो, वहाँ अधिकांशतया सरकारी तंत्र को ही विकास प्रक्रिया की शुरूआत करनी होती है।

सामाजिक व आर्थिक संरचना का विकास करना : पिछड़े समाजों में जहाँ आर्थिक संरचना अर्थात् विद्युत, संचार, सड़क, परिवहन इत्यादि की भौतिक उन्नति नहीं होती है, उसे विकसित करने के लिए सरकार ही अग्रिम कदम बढ़ाती है। इसी तरह से सामाजिक संरचना अर्थात् शिक्षा, स्वास्थय, आवास, स्वच्छता, पेयजल इत्यादि की व्यवस्था करना सरकार का ही प्रथम कार्य है। निजी संगठन केवल लाभ के ध्येय पर ही कार्य करते है।

वितीय विकेंद्रीकरण की संरचना को विकसित करना : यह सार्वजनिक संगठनों की आधारभूत विशेषता होती है कि वे किसी व्यक्ति विशेष की विरासत नहीं होते है अपितु इसमें आर्थिक शक्तियां विकेन्द्रीत रहती है।

समावेशी, सुस्थिर एवं सत्त विकास को बढ़ावा देना : सरकारी संगठनों के द्वारा ही जनहित में कार्य किया जा सकता है। विकास की प्रक्रिया में सभी लोगों को भागीदार बनाने के ध्येय से सरकार ही कार्य कर सकती है। निजी संगठन केवल स्वहित के लिए कार्य करते है। वे विकास की प्रक्रिया को सुस्थिरता एवं निरंतरता का स्वरूप प्रदान करते है।

सरकारी उद्योगों पर उदारीकरण का प्रभाव :- 1980 के दशक की उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की अवधारणा ने राज्य एवं उसके कार्य की प्रकृति में व्यापक बदलाव कर दिया। इन उद्योगों के एकाधिकार एवं अहमवादी नीति में बदलाव आया। निजीकरण के भय ने उन्हें प्रतियोगिता के मैदान में उतरने के लिए मजबूर किया अन्यथा उनके दरवाजे हमेशा के लिए बन्द हो गए।

सरकारी क्षेत्र की आरक्षण नीति में शिथिलता : अधिकांश उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ही आरक्षित किया गया था। यदि भारत की बात करे तो 1991 से पूर्व यह एक बन्द अर्थव्यवस्था थी लेकिन उदारीकरण की नीति के बाद आर्थिक प्रणाली के दरवाजे खोल दिये गए और यह आरक्षण अथवा सरकारी एकाधिकार 17 उद्योगों तक सीमित हो गया जो कि अब लगभग शून्य हो गया है। इस तरह से उदारीकरण ने निजी क्षेत्र के लिए अर्थव्यवस्था के सभी दरवाजे खोल दिए है।

रुग्ण या बीमार औद्योगिक इकाईयों का समाधान करना : अधिकांश कमजोर औद्योगिक इकाईयों को निजी क्षेत्र में दे दिया गया अथवा उनमें विनिवेश के माध्यम से सरकार की हिस्सेदारी कम कर दी गई। भारत में विनिवेश की प्रक्रिया को गति प्रदान करने के लिए रंगराजन समिति 1992, विनिवेश आयोग 1996, जीबी रामकृष्ण प्रथम अध्यक्ष 1997 विनिवेश विभाग की स्थापना की गई। इसे के साथ उदारीकरण ने उद्योगों को अनेक प्रकार के नवप्रर्वतनों, तकनीकों की सहायता प्रदान की।

सरकारी उद्यमों को स्वायत्तता प्रदान करना :- ऐसे सार्वजनिक उद्यम जो कि बड़े स्तर पर सरकार को प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में लाभांश प्रदान कर रहे थे उनकों व्यापारिक क्षेत्र में अनेक प्रकार की स्वायतता प्रदान करते हुए 1997 में नवरत्न उसके बाद मिनी रत्न और महारत्न का दर्जा देना आरंभ किया गया। ये कम्पनिया निजी क्षेत्र के समानान्तर संगठनों की तुलना में बहुत ज्यादा मुनाफा कमा रही थी। यही कारण रहा कि मनमोहन प्रशासन से लेकर मोदी प्रशासन तक लगातार इनमें विनिवेश की नीति को बढावा देकर सरकारों ने राजकोषीय घाटे के नाम पर अपनी जेबे भरने का काम किया है।

समझौता ज्ञापन प्रणाली या एम ओ यू की शुरूआत :

सार्वजनिक संगठनों में उदारीकरण की नीति के परिणाम स्वरूप मेमोरेण्डम ऑफ अण्डरस्टेण्डिग या एम ओ यू अथवा समझौता ज्ञापन प्रणाली का आरम्भ हुआ है जिसके माध्यम से निजी क्षेत्रों का सहयोग लिया गया है तथा अनेक संगठनों को सरकार के आर्थिक बोझ से भी दूर कर दिया है।

पीपीपी मॉडल :
उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की अवधारणा ने औद्योगित क्षेत्र में एक नवीन नीति को उदित किया जिसे सार्वजनिक-निजी-सहभागिता के नाम से जाना जाता है। बड़े स्तर पर इस स्वरूप ने सफलता प्राप्त की है जिसमें निजी एवं सार्वजनिक संगठन मिलकर कार्यप्रणाली का संचालन करते है।

एकल खिड़की योजना :
उद्योगों से सम्बन्धित विविध कार्यों के निर्वहन अथवा समस्याओं के समाधान हेतु एक ही स्थान पर सभी प्रकार की सुविधाओं को उपलब्ध कराने के ध्येय से एकल खिड़की योजना का श्रीगणेश किया गया।

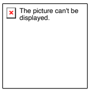

स्वतत्र नियामकीय आयोग

(Independent Regulatory Commission IRCs)

स्वतंत्र नियामकीय आयोग जो कि भारत के सार्वजनिक संगठनों विभाग और सार्वजनिक निगमों की तरह अमेरिका में कार्य करने वाली इकाई है। स्वतंत्र नियामकीय आयोग अमेरिका की विशेष सांविधानिक रचना से निर्मित एक प्रशासनिक इकाई होती है। उदारवादी एवं पूंजीवादी व्यवस्था होने से निजी क्षेत्र अधिक प्रभावी रहता है। स्वतंत्र नियामकीय आयोग स्वतंत्र और स्वायत होते है। वे कार्यपालिका से स्वतंत्र रहते है। यद्यपि कांग्रेस अर्थात्

विधायिका और न्यायपालिका का नियंत्रण विशेष परिस्थितियों में होता है तथापि यह दैनिक कार्यों में नहीं होता है। आयोग अथवा बोर्ड अपने कार्य क्षेत्र में स्वायत्तता रखते हैं।

स्वतंत्र नियामकीय आयोग की स्थापना के कारण अथवा आवश्यकता :-

1. लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के आदर्श को साकार स्वरूप प्रदान करने में अहम भूमिका का निर्वहन करते हैं।
2. इन आयोगों के द्वारा जनहितों पर सरकारी नियंत्रण के समान कार्य किया जाता है।
3. राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि को रोकने के लिए इन आयोगों की आवश्यकता होती है।
4. तकनीकी व विशिष्ट गतिविधियों के संचालन में विशेषज्ञों की नियुक्ति करने के लिए।
5. कांग्रेस के पास समय की कमी होती है, अतः उसके कार्यों की क्षतिपूर्ति के लिए।
6. औद्योगिक एवं प्रशासनिक कार्यों में कुशलता और दक्षता को स्थापित करने के लिए।
7. संगठनों की कार्यप्रणाली में होने वाले अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्ति के लिए।
8. अमेरिका की सांविधानिक संस्था या सरचना के अनुरूप कार्य करने वाली इकाई के रूप कार्यों के निर्वहन के लिए।

अमेरिकी स्वतंत्र नियामकीय आयोग के रूप में कार्यरत प्रमुख आयोग और बोर्ड :-

अंतर्राज्य वाणिज्य आयोग 1887 :
यह अमेरिका में रेल, सड़क, जहाजरानी, परिवहन संबंधी सभी व्यापारीक गतिविधियों का नियमन और नियंत्रण करता है।

संघीय रिजर्व बोर्ड 1913 : यह व्यापारिक बैंकों का नियमन और संचालन करने के लिए गठित किया गया।

इसी तरह से **संघीय व्यापार आयोग 1914, संघीय विद्युत आयोग 1930, संघीय संचार आयोग 1934, प्रतिभूति विनिमय आयोग 1934, राष्ट्रीय श्रमिक सदस्य बोर्ड 1935, संघीय समुद्री बोर्ड 1936, नागरिक विमानन बोर्ड 1938** इत्यादि स्वतंत्र नियामकीय आयोगों के रूप में कार्य करने वाले संगठन है।

स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की विशेषताएं :-

1. स्वतंत्र नियामकीय आयोग कांग्रेस की चतुर्थ शाखा के रूप में कार्य करते हैं।
2. ये आयोग जनमत के आधार पर निर्मित संस्थान के रूप में कार्यरत है।
3. इनका निर्माण कांग्रेस के द्वारा अधिनियम के माध्यम से किया जाता है।
4. ये आयोग कार्यपालिका के मंत्रालय या विभाग के अधीन नहीं होते हैं। इन आयोगों के पर राष्ट्रपति या कार्यपालिका के अन्य अधिकारियों का नियंत्रण नहीं होता है।
5. इनके कार्य मिश्रित प्रकृति के होते हैं।
6. इनका मुख्य ध्येय सरकारी नीतियों को लागू करना, उनका नियमन करना तथा जनहित व सुरक्षा करना होता है।
7. आयोगों के सदस्य विषय विशेषज्ञ होते हैं
8. इन्हें प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम 1949, प्रशासनिक ट्रिब्यूनल के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है।

9. इनके बोर्ड बहू सदस्य होते है और इनके द्वारा लिये जाने वाले निर्णय बहुमत से लिए जाते है।
10. इन आयोगों से सम्बन्धित अधिनियम में स्थापना के समय ही इनके कार्यों, शक्तियों, संरचना इत्यादि का स्पष्टीकरण कर दिया जाता है।

स्वतंत्र नियामकीय आयोग का संगठन, कार्यप्रणाली और प्रकृति :
इनकी स्थापना कांग्रेस के अधिनियम द्वारा की जा सकती है। ये सामान्यतया **सांविधानिक आयोग की संरचना** के रूप में कार्य करते हैं जिसकी स**दस्य संख्या, कार्य, अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख** रहता है। सामान्य रूप से आयोग के **सदस्यों की संख्या और कार्यकाल 4 से 7 वर्ष** होता है तथापि यह एक साथ शुरू और एक साथ समाप्त नहीं होता है। सदस्य संबंधित क्षेत्र के **विशेषज्ञ ही नियुक्त** किए जाते हैं।
संगठन के कार्मिकों की **नियुक्ति और पदमुक्ति राष्ट्रपति द्वारा सीनेट से अनुमोदन** के माध्यम से होती है। स्वतंत्र नियामकीय आयोग के सदस्यों को लोक सेवकों के समान राष्ट्रपति स्वेच्छा से नहीं हटा सकता अपितु कानूनी प्रक्रिया और निश्चित आधारों पर ही हटाया जा सकता है। इनके विरुद्ध वीटो नहीं किया जा सकता है।
सभी सदस्य व आयोग कांग्रेस के प्रति उत्तरदाई होते हैं तथा प्रतिवर्ष अपनी रिपोर्ट कांग्रेस में प्रस्तुत करते हैं।

स्वतंत्र नियामक आयोग के कार्य :-
कांग्रेस अधिनियम के अन्तर्गत ही इन आयोगों के कार्यों का स्पष्ट उल्लेख होता है। सामान्यतया स्वतंत्र नियामकीय आयोग निम्न कार्यों का संचालन करते है जैसे कि :

1. निजी क्षेत्र की गतिविधियों का नियमन व पर्यवेक्षण :
ये आयोग अपने नाम के अनुसार ही निजी क्षेत्र की समस्त

गतितिधियों का नियमन करने का कार्य करते है। इनके द्वारा उनके कार्यों व कार्यप्रणाली पर पैनी नजर रखते है ताकि किसी भी प्रकार की चूक होने पर उनको सचेत किया जा सके और जनता को लूटने की नीति पर रोक लगायी जा सके। आयोग संबंधित क्षेत्र की सरकारी गतिविधियों के संचालन में और प्रशासनिक नियमों को लागू करवाने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

2. अर्द्ध-न्यायिक, अर्द्ध-विधायी और प्रशासनिक प्रकृति के कार्यों का संचालन : स्वतंत्र नियामकीय आयोगों के द्वारा मिश्रित प्रकृति के कार्यो का निष्पादन किया जाता है। इनके द्वारा समस्त औद्योगिक गतिविधियों के लिए संचालन सम्बन्धी नियमों का निर्माण करने, उनकी प्रशासनिक प्रणाली के संचालन की प्रक्रिया तय करने तथा उनके पारस्परिक एवं अन्य औद्योगिक विवदों के समाधान हेतु न्यायिक निर्णयन के कार्यो का भी सम्पादन किया जाता है। इनके कार्य सामान्य प्रशासनिक प्रकृति के अलावा सचिवालय के समान अर्द्ध-न्यायिक प्रकृति के अर्थात दंडित करना और जांच करना तथा अर्द्ध-विधायी प्रकृति के अर्थात नियंत्रण और नियमन हेतु नियम बनाने के रूप में होते हैं। संबंधित उत्पन्न विवादों पर निर्णय और उनका समाधान करते हैं। नीति नियमों का उल्लंघन करने वालों पर अभियोग, दंड संबंधी कार्य करते हैं।इस प्रकार से वे निः सन्देह मिश्रित प्रकृति के कार्यों का निर्वहन करते है।

3. कांग्रेस की चौथी शाखा के रूप में कार्य करना : इन संगठनों के कार्यो के महत्व को इस आधार पर भी समझा जा सकता है कि इन्हें अमेरिका में शासन की शीर्षविहीन शाखा अथवा शासन की चतुर्थ शाखा या अथवा कांग्रेस की भुजाओं अथवा स्वायत्तता के दीप समूह के उप नामों से जाना जाता है। ये संबंधित क्षेत्र की निजी कंपनियों और अन्य संगठनों की गतिविधियों पर पूर्ण नियंत्रण और नियमन रखने के लिए नियम बनाते हैं। वे राष्ट्रपति से या कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त होते हैं।

4. जनहितों का संरक्षण करना :
निजी संपत्ति और व्यक्तिगत आर्थिक क्रियाओं का इस प्रकार से नियंत्रण और नियमन करना कि सामाजिक हितों अथवा जनहितों की भी सुरक्षा हो सके तथा आर्थिक प्रणाली का भी बिना किसी कारण के हस्तक्षेप को रोका जा सके जिससे कि औद्योगिक विकास में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं हो। इसी के साथ जनहितों की अवहेलना करने वाले संगठनों की जांच करना, सबूत जुटाना, चेतावनी देना और दंडित करने का कार्य भी स्वतंत्र नियामक आयोग के द्वारा किया जाता है।

5. सार्वजनिक नीति के कार्यपालक के रूप में कार्य करना :

इनका मुख्य कार्य सरकारी नीति को लागू करना और इसके सहायक नियम बनाना है। यह आयोग उद्योग के लिए सरकारी नीति के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हैं। सार्वजनिक नीति नियमों को लागू करने में आने वाली बाधाओं को पता लगाकर दूर करते हैं।

6. विभिन्न संगठनों व इकाईयों में समनव्य का कार्य करना :

संबंधित क्षेत्र के प्रशासनिक विभागों और निजी उपक्रमों में समन्वय स्थापित करते हैं।
अतः इस स्वरूप में कार्य करने वाले आयोग ही स्वतंत्र नियामक आयोग के नाम से जाने जाते है। आर्थिक, वित्तीय, व्यापारिक, व्यावसायिक गतिविधियों का नियमन संचालन और नियंत्रण करने के लिए भी इनके बीच समनव्य जरूरी होता है।

7. वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना :
स्वतंत्र नियामकीय आयोग प्रत्येक वर्ष अपनी समस्त कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में प्रतिवेदन कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करते है। इसक माध्यम से ये आयोग भी सरकार के नियंत्रण व निर्देशन में कार्य करते है।

स्वतंत्र नियामक आयोग की लाभ अथवा महत्व :-

1. संगठनों में निष्पक्ष और स्वतंत्र कार्यां का संचालन।

2. संगठन कार्य में अनावश्यक देरी या लालफीताशाही जैसे नौकरशाही के दोषों से मुक्त।
3. इन नियामकीय आयोगों के माध्यम से संगठन राजनीतिक हस्तक्षेप से स्वतंत्र।
4. संगठनों को विषय विशेषज्ञता तथा कार्य व सेवा में कुशलता या दक्षता का लाभ।
5. आर्थिक, वित्तीय, व्यापारिक, औद्योगिक क्षेत्र में विशेषज्ञता के कारण राष्ट्रीय विकास में योगदान।
6. अपनी कार्यप्रणाली से जनता में बढ़ती लोकप्रियता के कारण प्रासंगिक।
7. जनहित व की रक्षा में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करते हैं।
8. इन संगठनों के कारण राजनीतिक दल भी संधि और दबाव समूह के रूप में इनका मुकाबला करते हैं।
9. अमेरिका के हुवर आयोग ने स्वतंत्र नियामकीय आयोगों को बहुत प्रभावी माना है।

स्वतंत्र नियामकीय आयोग की आलोचना अथवा कमियां :-

1. इनके कार्यो की मिश्रित प्रकृति के कारण शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन होता है।
2. राष्ट्रपति का नियंत्रण नहीं होने से स्वेच्छाचारीता पर से नियंत्रण हट जाता है।
3. विभागीय मंत्रालय की तुलना में खुद को महत्वपूर्ण समझते हैं।
4. सांविधानिक रूप से वास्तविक उत्तरदायित्व का अभाव होता है।

5. अनेक विभागों, आयोगों में समन्वय की समस्या और संघर्ष उत्पन्न होता है।
6. ये आयोग नागरिक अधिकार पत्र और स्वतंत्रता को खतरा उत्पन्न करते हैं।
7. ये आयोग कार्यकाल परस्पर व्यापी, निश्चित पद मुक्ति की कठिन प्रक्रिया के कारण अधिक स्वायत्तता और स्वतंत्रता रखते हैं।
8. इन आयोगों के द्वारा जनहितों के नाम पर निजी हितों को साधने का प्रयास किया जाता है।
9. इन आयोगों के कारण आदेश की प्रशासनिक व्यवस्था में बिखराव आता है।

इन सब आलोचनाओं के बावजूद भी प्रशासन प्रबंधकीय समिति, 1936-37, **ब्राउन्लो कमेटी रिपोर्ट 1937** के तहत विभागों के साथ समन्वय करने में स्वतंत्र नियामक आयोग सबसे श्रेष्ठ भूमिका का निर्वहन करते है। इसी के साथ **पहले हूवर आयोग 1945-46** के द्वारा प्रभावी कार्य प्रणाली की बात कही गई है तथा दूसरे **हूवर आयोग 1949**, के द्वारा स्वतंत्र नियामकीय आयोगों को असाधारण विकास की संरचना के रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

संदर्भ :

H. George Frederickson and Kevin B. Smith, ‘Public Administration Theory Primer’ Rawat Publications, Jaipur, 2008

H. George Frederickson, 'New Public Administration' The University of Alabama Press, Alabama, 1980

Raymond W. Cox III, Susan J. Buck ad Betty N. Morgan, 'Public Administration in Theory and Practice' Pearson Education, New Delhi,2005

Hoshiar Singh & Pardeep Sachdeva, 'Administrative Theory' Kitab Mahal, New Delhi, 2005

M.P. Sharma and B. L. Sadana, 'Public Administration in Theory and Practice' Kitab Mahal, Allahabad, 1988

J.D. Straussman, 'Public Administration' Holt, Rinehart and Winslow, New York, 1985

A.R. Tyagi, 'Public Administration – Principles and Practices' Atma Ram & Sons, Delhi, 1992

S.L.Goel, 'Public Administration - Theory & Practice' Deep & Deep Publications, New Delhi, 2003

C.P.Bhambhari, 'Public Administration – Theory and Practice' Jai Parkash Nath Publishers, Meerut, 1993

Nichlos Henry, 'Public Administration and Public Affairs' Prentice - Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 2002

Jack Rabin, W. B. Hildreth & G. J. Miller (eds.), 'Handbook of Public Administration' Marcel Dekker, Inc., New York, 1998.

Marc Holzer & Richard W. Schwester, 'Public Administration : An Introduction' PHI Pvt. Ltd., New Delhi, 2011

A.N. Aggarwal: Indian Economy, Delhi: Wiley Eastern Ltd. 1987

Ghosh: Indian Economy – its Nature and Problems, Calcutta: The World Press Pvt. 1998

Dutt and Sundharam: Indian Economy, Delhi: S. Chand & Co., 2004

B.L. Mathur: Economic Policy and Administration (Hindi), Jaipur: RBSA Publishers, SMS Highway 1990

Hoshiar Singh & Mohinder Singh: Public Enterprises in India - A Plea for Reforms, New Delhi, Sterling Pulbishers, 1990

Mohinder Singh (ed.): Some Aspects of Public Enterprises in India– a Plea for Reforoms, New Delhi, Uppal Publishing House, 1993

V.V. Ramanadhan (ed.), Public Enterprises and Developing World, London: Groom Helm, 1984

A.H. Hansen: Public Enterprises and Economic Development, London: Rutledge and Kegan, 1972

Laxmi Narain: Principles and Practice of Public Enterprises Management, New Delhi: S. Chand & Co., 1999
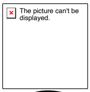
S.C. Kuchhal: The Industrial Economy of India. Agra: Chitanya Pub. House, 1987